प्रशममूर्ति आचार्य शान्तिसागर छाणी
स्मृति ग्रंथ

सम्पादक

डॉ० कपूरचन्द जैन

श्री महावीरा टायर एजेन्सीज प्रा०लि०

खतौली--२५१२०१ (मुजफ्फरनगर) उ०प्र०

प्रशममूर्ति आचार्य शान्तिसागर छाणी
स्मृति ग्रंथ

प्रथम संस्करण – १९९७

मूल्य – स्वाध्याय

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान – श्री महावीरा टायर एजेन्सीज प्रा० लि०
खतौली–२५१२०१ (मुजफ्फरनगर) उ० प्र०
दूरभाष – ०१३९६–७२१८१ व ७२५८१

Prasham Murti Acharya Shanti Sagar Chhani
Smriti Granth

Ist Edition : 1997

Price : Swadhyaya

Publishers and Available from : Shri Mahavira Tyre Agencies (P) Ltd.
Khatauli-251201 (Mazaffarnagar), U.P.

आर्यिका भरतमती माताजी की
मंगल – कामना

स्वस्ति श्री परम पूज्य १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज को आर्यिका भरतमति माताजी का आचार्य भक्तिपूर्वक बारम्बार नमोऽस्तु। बहुजनहितकर–चर्यान्–निरन्तर जनकल्याण में जिनके मन–वचन काय योग की प्रवृत्ति रही तथा भव्य आत्माओं को उपदेश देकर उनका कल्याण किया एवं जिनमार्ग की अपने ज्ञान एवं वैराग्य से समीचीन प्रभावना की। लम्बे अंतराल के पश्चात् आचार्य श्री ने ही मुनिमार्ग का पुनरुत्थान किया और जन–जन को इसका ज्ञान कराकर मार्ग को निष्कंटक किया। आचार्यश्री एवं आचार्यश्री शान्तिसागर जी दक्षिण वाले दोनों मुनिराजों का ब्यावर में एक साथ चातुर्मास हुआ। वह एक स्वर्णिम अवसर था जो सोने पर सुहागा जैसा था। उन्होंने हम सभी पर अनन्त उपकार किया क्योंकि विना मुनिधर्म को अपनाए मुक्ति नहीं। उन्होंने वास्तव में हमारे लिए मोक्षमार्ग प्रशस्त किया।

ऐसे महान सन्तों का जीवन–चरित्र जन–जन तक पहुँचाने का पुरुषार्थ जिन भव्यात्माओं ने किया वह सभी अपना अज्ञान मिटाकर स्वकल्याण करेंगे। मेरा ऐसे भव्यात्माओं को पुनः–पुनः मंगलमय शुभ आशीर्वाद ....।

आर्यिका भरतमती माता

प्रकाशकीय

आचार्य शान्तिसागर छाणी स्मृति ग्रंथ आज आपके हाथों में सौंपते हुए हमें हार्दिक हर्ष और अपरिमित सन्तोष का अनुभव हो रहा है। यह परमपूज्य सराकोद्धारक युवा उपाध्याय १०८ ज्ञानसागर जी महाराज के आशीर्वाद का ही सुफल है कि आचार्य शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) और उनकी परम्परा के साधुवृन्दों का व्यक्तित्व/कृतित्व साथ ही अन्य प्राचीन जैनाचार्यों की मानव समाज को देन, हम आपके सम्मुख ला सके हैं। शाहपुर (मुजफ्फरनगर) उ०प्र० में पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज का वर्ष १९९० में प्रभावक और महिमामय चातुर्मास हुआ था। उस अवसर पर आचार्य शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) के व्यक्तित्व/कृतित्व को उजागर करने के लिए एक स्मारिका का प्रकाशन हुआ था। प्रकाशनोपरान्त उपाध्याय श्री के सान्निध्य में विद्वानों की चर्चा चल रही थी, विद्वानों का अभिमत था कि छाणी महाराज और उनकी परम्परा के साधको के समुद्रवत् गम्भीर और विराट व्यक्तित्व को प्रकाशित करने के लिए यह स्मारिका खद्योत–तुल्य है। अतः उनकी स्मृति में एक स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन नितान्त आवश्यक है।

इस अवसर पर हम भी सपरिवार पूज्य उपाध्याय श्री के दर्शनार्थ गये थे और विद्वानों की चर्चा के मध्य हमें भी थोड़ी देर बैठने का सौभाग्य मिला था। चर्चा के समय हमारी मातुश्री श्रीमती रतनमाला जैन की यह भावना बनी कि यदि उस स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन के माध्यम से पूज्य आचार्य शान्तिसागर जी महाराज और उनकी परम्परा के साधुवृन्दों को विनयाञ्जलि समर्पित करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हो तो हमारा जीवन सफल हो जाये। भावना ने वाणी का रूप लिया और उपाध्यायश्री की मौन स्वीकृति हमें मिल गई। तद्नुसार आज इस स्मृति ग्रन्थ के माध्यम से हमारी भावना मूर्त आकार ले रही है।

स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन में पूज्य उपाध्यायश्री ज्ञानसागर जी महाराज एवं मुनिश्री वैराग्यसागर जी महाराज का आशीर्वाद ही मूल कारण है। परिवार के हम सभी सदस्य पूज्य उपाध्यायश्री एवं मुनिश्री के चरणों में पुनः पुनः अपना नमोऽस्तु समर्पित करते हैं। संघस्थ ब्र० अतुल जी, ब्रह्मचारिणी बहिनों–अनीता जी आदि का परामर्श भी हमें समय–समय पर मिलता रहा है। इन सभी को हम वन्दन करते हैं। सम्पादक मण्डल के सभी सदस्यों के प्रति हम अपनी प्रणति निवेदन करते हैं, जिन्होंने अपनी नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा के द्वारा इस ग्रन्थ का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन किया है। जिन लेखकों ने अपने गरिमामय लेखों और जिन मनीषियों/समाजसेवियों/राजनेताओं/श्रेष्ठिप्रवरों ने अपनी शुभकामनाओं/ विनयाञ्जलियों/श्रद्धाञ्जलियों/सस्मरणों से इसे समृद्ध और गरिमामय बनाया है उनके हम पुनः पुन· आभारी और कृतज्ञ हैं।

अपनी पूज्या मातुश्री श्रीमती रतनमाला जैन, अग्रज श्री मुकेशकुमार जैन और अनुजों–दिनेश जैन एवं दीपक जैन के साथ परिवार के सभी सदस्यों का भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी जैन धर्म, दर्शन और संस्कृति के प्रति गहन आस्था और पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज एवं मुनिश्री वैराग्यसागर जी महाराज के प्रति अगाध श्रद्धा है। हम सभी की यह आस्था और श्रद्धा सदैव बनी रहे ऐसी वीर–प्रभु से प्रार्थना करता हूँ। प्रकाशन मे जो त्रुटियाँ रह गई हो उनके लिए आप सभी से क्षमाप्रार्थी हूँ।

–योगेश कुमार जैन

श्री महावीरा टायर एजेन्सीज प्रा० लिमिटेड
खतौली–२५१२०१ (मुजफ्फरनगर) उ०प्र०
दूरभाष : ०१३१६–७२१८१–७२५८१

सम्पादकीय

बालब्रह्मचारी परमयोगी प्रशान्तमूर्ति १०८ श्री आचार्य शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) ने अपने कर्म-मल-प्रक्षालनार्थ जिस मुनिपद को धारण किया था उसका इतिहास भक्त से भगवान बनने की कथा है। अनन्तानन्त काल से जीव इसी मुनिपद को धारण करते हुए मुक्ति प्राप्त करते आ रहे हैं। आद्य तीर्थङ्करों तक ने इसी दशा से मुक्ति प्राप्त की है। दैगम्बरी दीक्षा के विना मुक्ति सम्भव नहीं है।

प्राचीन भारतीय साहित्य/संस्कृति में दिगम्बर मुनियों की सत्ता के प्रमाण भरे पड़े हैं। समग्र जैन साहित्य तो दिगम्बरत्व के गुणगान से भरा हुआ है ही वैदिक ग्रन्थों मे भी दिगम्बरत्व के उल्लेख मिलते हैं। वर्तमान चौबीसी में ऋषभदेव प्रथम व महावीर अन्तिम तीर्थङ्कर हुए। अत: साहित्यग्रन्थों में अधिकत: इन्हीं का उल्लेख हुआ है। नेमिनाथ, पार्श्वनाथ व महावीर ऐतिहासिक महापुरुष भी हैं। अत: इनका क्रमबद्ध व प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध है।

ऋग्वेद उपलब्ध भारतीय साहित्य में प्राचीनतम ग्रन्थ माना गाया है। इसमें अनेक स्थानो पर ऋषभदेव का उल्लेख हुआ है। उन्हे पूर्व यायावर कहा गया है। केशीसूक्त में वातरशना (वायु जिनकी मेखला है) मुनियों का वर्णन आया है, जो दिगम्बर मुनियों से पूर्णत: साम्य रखता है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में व्रात्य और महाव्रात्यों का उल्लेख है जिनमें महाव्रात्य दि० साधु के अनुरूप है।

भारतीय साहित्य में दिगम्बर मुनियों के लिए अकच्छ, अकिञ्चन, अचेलकर, अतिथि, अनगारी, अपरिग्रही, ऋषि, गणी, गुरु, तपस्वी, दिगम्बर, दिग्वास, नग्न, निश्चेक्त, निर्ग्रन्थ, निरागार, पाणिपात्र, महायती, मुनि, यति, योगी, वातवसन, वातरशना, विवसन, संयमी (संयत), स्थविर, साधु, साहु, सन्यस्त, श्रमण, सपणक आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

श्रीमद् भागवत के पंचम स्कन्ध में ऋषभदेव व उनके पुत्र भरत और अन्य १०० पुत्रों का विस्तार से वर्णन है। नाभिराजा और मरुदेवी के पुत्र ऋषभदेव हुए जो परमहंस दिगम्बर धर्म के आदि प्रवर्तक थे। यहाँ ऋषभदेव के भ्रमण का विस्तार से वर्णन है। हठयोग-प्रदीपिका, सन्यासोपनिषद्,

जावालोपनिषद्, भिक्षुकोपनिषद आदि में दिगम्बर मुनियों के लिए प्रयुक्त होने वाले यथाजातरूपधर, शुक्लध्यानपरायण, निष्पर्कग्रह, करपात्र, आदि शब्दों का उल्लेख हुआ है, जो उसकाल में दिगम्बर मुनियों की सत्ता के सूचक हैं।

रामायण में राजा दशरथ को श्रमणों के लिए आहार देते हुए दिखाया गया है। जैन रामायण के अनुसार राम ने मुनिदीक्षा लेकर कैवल्य प्राप्त किया। महाभारत में नग्न क्षपणक के रूप में दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है। तीर्थङ्कर नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) श्री कृष्ण के चचेरे भाई हैं।

भगवान महावीर के निर्वाण के बाद मगध सम्राट नन्द द्वारा कलिङ्ग विजय के समय कलिङ्ग में अग्रजिन की मूर्ति वापिस लाने की घटना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जो इस बात को व्यक्त करती है कि जिन मूर्ति के लिए राज्यों में युद्ध हुआ करते के। नन्द का मन्त्री राक्षस, मुद्राराक्षस नामक नाटक मे जीवसिद्धि नामक क्षपणक अर्थात् दिगम्बर मुनि के प्रति विनय करता हुआ दिखाया गया है। कहा जाता है कि सम्राट नन्द अपने अन्तिम समय में दि० मुनि हो गया था। सम्राट चन्द्रगुप्त श्रुतकेवली भद्रबाहु के शिष्य थे। उन्होंने उत्तर भारत से दक्षिण भारत जाकर दिगम्बर मुनि अवस्था मे समाधिमरण किया था। श्रवणवेलगोल का करवप्र नामक पर्वत उन्हीं के कारण चन्द्रगिरि नाम से विख्यात हुआ।

महाराज बिन्दुसार का पुत्र सम्राट अशोक अपने प्रारम्भिक काल में जैन न होता तो अहिंसा के इतने गहरे बीज उसके हृदय में सम्भव नहीं थे। परवर्ती काल में उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। सारनाथ के सिह स्तम्भ में चतुर्मुख सिंहों का होना और चक्र में चौबीस अरों का होना इस बात को और दृढ़ कर देता है। ध्यातव्य है कि उस समय तीर्थङ्कर महावीर का काल चल रहा था जिसका चिह्न सिंह ही है। साथ ही चौबीस अरे चौबीस जिन तीर्थङ्करों के प्रतीक है। अशोक ने अपने एक स्तम्भ लेख मे स्पष्टत: निर्ग्रन्थ साधुओं की रक्षा का आदेश निकाला था। सिकन्दर महान के समय भी मुनि श्री कल्याण जैसे तपस्वी थे जिनका सिकन्दर आदर करता था और समय-समय पर उनके दर्शन करता था। कहा तो यहाँ तक जाता है कि सिकन्दर कल्याण मुनि को अपने देश ले गया था और उनसे जैन धर्म की शिक्षा ली थी।

ई० पू० द्वितीय शताब्दी में सम्राट खारवेल ने जैन मुनियों का एक सम्मेलन बुलवाया था, जिसमें मथुरा, गिरनार उज्जैन, कॉचीपुर आदि के दिगम्बर जैन मुनि आये थे। सिद्धसेन नामक दिगम्बर जैनाचार्य ने अपने चमत्कारों से चन्द्रगुप्त को जैन धर्म में दीक्षित किया था।

गुप्तकाल के बाद सम्राट हर्षवर्धन ने स्वयं नग्न क्षपणक के दर्शन किये थे, ऐसा हर्षचारित से प्रमाणित है। कन्नौज के राजा, भोजपरिहार के दरबार में जैनाचार्य वप्पसूरि ने आदर प्राप्त किया था। महाराज भोज के समकालीन आचार्य मानतुंग प्रसिद्ध ही हैं। चन्देलकाल में दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्र हुए। तेरहवीं शती में यूरोपीय यात्री मार्कोपोलो ने अपनी भारत यात्रा में दिगम्बर साधुओं को देखा था। अकबर से समय वैराट नगर में दिगम्बर मुनियों का संघ विराजमान था। ब्रिटिश काल में महारानी विक्टोरिया की १८५८ को घोषणा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता थी। इन दिनों दिगम्बर मुनियों का विहार स्वच्छन्द होता था। यह इस बात से भी प्रमाणित है कि हैदराबाद के निजाम ने (श्रमण) पर रोक लगा दी थी, जिसे जैनों ने अपने प्रभाव से हटवाया था।

चौदहवीं से बीसवीं शती के प्रारम्भ तक दिगम्बर जैन मुनि परम्परा कुछ अवरुद्ध सी हो गई थी। शास्त्रों में दिगम्बर जैन मुनियों के जिस स्वरूप का अध्ययन करते हैं उसका दर्शन असम्भव सा था। इस असम्भव को जिन दो महान् आचार्यों ने सम्भव बनाया और जिनकी कृपा से आज हम दिगम्बर मुनि परम्परा को पल्लवित/पुष्पित देख रहे हैं, वे हैं आचार्य शान्तिसागर महाराज (दक्षिण) और आचार्य शान्तिसागर महाराज (छाणी)। दोनों ही समकालिक हैं। दोनों ही शान्ति के सागर हैं कहीं–कहीं तो नाम–साम्य के कारण दोनों को एक समझ लिया गया है। दोनों में इतना मेल था कि व्यावर (राजस्थान) में दोनों का ससंघ एक साथ चातुर्मास हुआ था।

प्रशान्तमूर्ति आचार्य शान्तिसागर महाराज का जन्म 'छाणी' ग्राम में हुआ था, जो उदयपुर के समीप राजस्थान में है। इसी कारण वे 'छाणी' वाले महाराज के नाम से विख्यात हुए। उन्होंने समग्र भारत में विहार किया किन्तु मुख्यतः उत्तर भारत में अधिक रहे इस कारण वे आ० शान्तिसागर महाराज (उत्तर) के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ऐसी प्रसिद्धि का एक कारण उन्हें चा.च. शान्तिसागर महाराज (दक्षिण) से अलग दिखाना भी रहा है।

आ० शान्तिसागर महाराज का बचपन का नाम केवलदास था, जिन्हें उन्होने वास्तव में अन्वयार्थक (केवल=अद्वितीय, अनोखा, अकेला) बना दिया। इनके पिता का नाम श्री भागचन्द्र एवं माता का नाम मणिका बाई था। मणिका के इस माणिक ने न जाने कितनों को माणिक बना स्व–पर जीवन को कृतार्थ किया। बचपन से ही आपमें दीक्षा के बीज अंकुरित हो रहे थे इसी कारण आप बाल ब्रह्मचारी रहे। पहले ब्रह्मचर्यव्रत फिर क्षुल्लक दीक्षा, मुनिदीक्षा और अन्त में उस अवस्था का सर्वोच्च पद आचार्य पद आपने प्राप्त किया। सम्वत २००१ में सागवाड़ा (राजस्थान) मे आपकी समाधि हुई पर अपने यश शरीर से वे आज भी हमारे मध्य विराजमान हैं।

छाणी जी महाराज का व्यक्तित्व इतना तेजोमय था कि आबाल वृद्ध उन्हें देखकर अलौकिक शान्ति का अनुभव करते थे। उन्हीं का प्रताप–पुञ्ज है कि छाणी जैसा छोटा सा ग्राम आज अतिशय क्षेत्र बन गया है। छाणी जी को किसी बड़े विद्वान/मुनि/गुरु का सान्निध्य प्राप्त नहीं हुआ, वे स्वतः प्रेरणा से ही विरक्त हुए, उनका परिवार ही वैराग्यमय था, उनकी छोटी बहिन ने आर्यिका दीक्षा लेकर समाधिमरण किया था इससे यह बात सिद्ध होती है कि निकट भव्य के लिए बहुत बड़े प्रेरक/उपदेशक/विद्वान की आवश्यकता नहीं होती, स्वतः प्रेरणा ही उसे निवृत्ति मार्ग का पथिक बना देती है।

छाणी जी महाराज समाज सुधार के इतिहास में युगो–युगों तक याद किये जाते रहेंगे। उन दिनो कन्याओं के क्रय–विक्रय की प्रथा थी। आचार्य श्री ने 'कन्या विक्रय कर प्राप्त किया गया पैसा मांस के समान है' कहकर इस प्रथा को बन्द कराया। इसी प्रकार मृत्यु के बाद छाती पीटने की प्रथा, विधवा स्त्री को काले कपड़े पहनाने की प्रथा उनके उपदेशों से बन्द हुई। छाणी के जमींदार ने उनके सदुपदेश से अपने राज्य में सदैव के लिए बलि–प्रथा बन्द करा दी थी। उन पर उपसर्ग भी कम नहीं हुए। बड़वानी में उन पर मोटर चलाई गई, पर आश्चर्य कि मोटर टूट गई और आचार्यश्री सकुशल रहे। यह उनकी दैगम्बरी तपस्या और त्याग का ही प्रभाव था। अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन उनके सदुपदेश से हुआ, जिससे आज हमारी श्रुत परम्परा सुरक्षित है। अनेक स्थानों पर जैन पाठशालाओं की स्थापना भी उनके उपदेशों से हुई।

आचार्य शान्तिसागर महाराज के अनेक शिष्य हुए। द्वितीय पट्टाचार्य आचार्य सूर्यसागर बहुश्रुत विद्वान् थे। दिगम्बर जैन परम्परा में अपनी साहित्य–सपर्या के माध्यम से जैन साहित्य को सुदृढ़ और स्थायी बनाने वालों में आचार्य सूर्यसागर जी का नाम प्रथम पंक्ति में आता है। उन्होंने लगभग ३५ ग्रन्थों का संकलन/प्रणयन किया था।

आचार्य सूर्यसागर के बाद इस परम्परा में आचार्य विजयसागर, आचार्य विमलसागर (भिण्ड वाले) व आचार्य सुमतिसागर आदि प्रसिद्ध आचार्य हुए। इसी परम्परा में आचार्य सुमतिसागर जी के शिष्य उपाध्याय ज्ञानसागर महाराज ने विगत दशाब्दी में जो धर्ममन्त्र, विशेषतः उत्तरभारत के नवयुवकों में फूंका है वह धर्म/चरित्र–विमुख होती युवा पीढ़ी के लिए शुभ संकेत है। सराकों के उत्थान मे जो योगदान उपाध्यायश्री दे रहे हैं वह अभिवन्दनीय है। उपाध्याय श्री के सान्निध्य में अनेक स्थानों पर धार्मिक/साहित्यिक/सांस्कृतिक विषयों पर सफल गोष्ठियाँ भी हो चुकी हैं।

उपाध्याय ज्ञानसागर महाराज का चातुर्मास १९९० में शाहपुर (मुजफ्फरनगर) में हुआ था। इस अवसर पर प्रशान्तमूर्ति आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज (छाणी) स्मारिका का प्रकाशन डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल जयपुर, पं. महेन्द्रकुमार 'महेश' शास्त्री मेरठ, डॉ. रमेशचन्द जैन बिजनौर, डॉ. सुपार्श्वकुमार एव डॉ श्रेयांशकुमार बड़ौत, डॉ. जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर के सम्पादकत्व एवं डॉ. कपूरचन्द जैन खतौली के सयोजक–सम्पादकत्व में हुआ था। उस समय यह अनुभव किया गया कि छाणी जी महाराज के विराट व्यक्तित्व को रेखांकित करने हेतु एक स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन आवश्यक है। तत्काल एक सम्पादक मण्डल का गठन किया गया जिसका संयोजक इतिहास मनीषी वयोवृद्ध डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल को मनोनीत किया गया।

स्मृति ग्रन्थ को चार खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड में पूज्य मुनिराजों/आर्यिकाओं/अन्य साधकों/राजनेताओं/विद्वानों/श्रेष्ठि प्रवरों/समाजसेवियों से प्राप्त श्रद्धाञ्जलियों एवं संस्मरणों को समाहित किया गया है। 'आचार्य शान्तिसागर छाणी एवं उनकी परम्परा' नामक द्वितीय खण्ड

में इस परम्परा के आचार्यों/उपाध्यायों/मुनिराजों/अन्य साधकों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को रेखांकित किया गया है। इस खण्ड में प्रखरवक्ता और आगम मनीषी श्री पं. नीरज जैन (सतना) का आलेख–'सविनय नमोऽस्तु' आचार्य श्री के जीवन की विस्तृत घटनाओं को उजागर करता है। स्मारिका प्रकाशन के बाद छाणी जी के साथ रहे उन्हीं के शिष्य ब्र. भगवानसागर द्वारा लिखित आचार्यश्री की एक जीवनी मिली, पुरातन हिन्दी में थी इसका अनुवाद डॉ. कासलीवाल ने किया है। साथ ही कासलीवाल जी द्वारा लिखित एक अन्य लेख, कासलीवाल जी की सुदीर्घ साहित्य–साधना का परिणाम है। प. महेन्द्रकुमार ऐसे व्यक्तित्व हैं जो अनेक वर्षों तक आचार्य श्री के साथ रहे। उनका आलेख–'प्रशान्तमूर्ति आचार्य श्री शान्तिसागर (छाणी) व्यक्तित्व एवं कृतित्व' जितना प्रामाणिक है उतना ही रोचक भी। प. भगवती प्रसाद वरैया एवं स्मृतिशेष पं. भंवरलाल जी न्यायतीर्थ के लेख आचार्य सूर्यसागर महाराज के व्यक्तित्व एव कृतित्व को उजागर करने में सफल हैं। डॉ. प्रकाशचन्द्र इन्दौर एवं श्री बाबूलाल चुन्नीलाल गाधी ईडर ने आचार्य विमलसागर एवं आचार्य सुमतिसागरजी की जीवन झाँकियां प्रस्तुत की हैं। इसी खण्ड में डॉ. कासलीवाल एवं डॉ. नीलम जैन के आलेख उपाध्याय श्री ज्ञानसागर महाराज के चुम्बकीय व्यक्तित्व को दिग्दिगन्त व्यापी बनाने में पूर्णत· सक्षम हैं।

जैन धर्म के प्रभावक आचार्य नामक तीसरे खण्ड में आचार्य जोइन्दु, कुन्दकुन्द, जिनसेन, पूज्यपाद, वीरसेन, गुणधर, नेमिचन्द्र, वादीभसिह, रविषेण पर तत्–तत् विषयों के अधिकारी विद्वानो ने जो निबन्ध लिखे हैं। वे उन–उन आचार्यों के समग्र अवदान को रेखाकित करने के साथ–साथ लेखको के वैदुष्य के निकषोपल भी हैं।

चतुर्थ खण्ड विविधा में डॉ. कासलीवाल का लेख–'मुस्लिम युग के जैन आचार्य' ऐतिहासिक तथ्यों को संजोये हैं। जैन–बौद्ध दर्शन के उद्भट विद्वान् पं. उदयचन्द जी वाराणसी का–'अष्ट सहस्री' (विद्वानों में भी कष्टसहस्री नाम से विख्यात) पर आलेख उनके तलस्पर्शी वैदुष्य को प्रकट करता है। श्रावकाचार, भक्तामर, पुराण, भगवान महावीर, विश्वशान्ति, शाकाहार आदि

विषयों पर लिखे गये लेखों का चिन्तन/मनन/अनुपालन हम सभी के जीवन को सुखमय एवं समृद्धिमय बनाने में सफल है।

स्मृति ग्रन्थ-प्रकाशन के प्रेरणास्रोत उपाध्याय ज्ञानसागर महाराज के आशीर्वाद का ही यह सुफल है कि स्मृति-ग्रन्थ इतना सुन्दर और उपयोगी बन पड़ा है। मौनप्रिय मुनिराज वैराग्यसागर जी महाराज का मौन आशीर्वाद सम्पादक मण्डल को सदैव प्राप्त होता रहा है। सम्पादक मण्डल दोनों के चरण कमलों में पुनः पुनः नमोऽस्तु निवेदन करता है। ब्र. अतुल जी, ब्र बहिनों का समय-समय पर सहयोग मिलता रहा है सभी साधकों के प्रति हम श्रद्धावनत हैं।

जिन पूज्य मुनिराजों/आर्यिकाओं/साधकों/विद्वानों/राजनेताओं/श्रेष्ठि प्रवरों/समाजसेवियों ने अपने आशीर्वाद/आलेख/श्रद्धाञ्जलियाँ/संस्मरण भेजे है उनके प्रति हम कृतज्ञ हैं।

ग्रन्थ का प्रकाशन खतौली (मुजफ्फरनगर) उ०प्र० के श्री सलेकचन्द योगेशकुमार जैन की ओर से हो रहा है। हम सभी उनके मंगलमय भविष्य की कामना करते हैं और आशा करते हैं कि उनका जैन साहित्य के प्रति ऐसा ही उत्साह सदैव बना रहेगा। शाहपुर एवं बुढ़ाना समाज के जिन धर्मनिष्ठ युवकों ने सामग्री संचयन में अहर्निश प्रयास करके ग्रन्थ को इस रूप में प्रकाशित करने में अपना अप्रतिम सहयोग दिया है, उनके प्रति सम्पादक-मण्डल आभार व्यक्त करता है।

स्मृति ग्रन्थ में जो श्रेष्ठ हैं, वरेण्य हैं, फूल हैं, फल हैं वे सब पूज्य उपाध्याय श्री के प्रेरणा और आप सभी के आशीर्वाद/स्नेह/सहयोग के फल हैं और जो त्रुटि रूपी शूल हैं, वे सब हमारे हैं। आपकी वस्तु आपको सौंपते हुए हम गौरव का अनुभव कर रहे हैं आशा है आप हमारी वस्तु हमें देकर उपकृत करेंगे।

खतौली (उ०प्र०)

—डॉ. कपूरचन्द जैन
सम्पादक

छाणी परम्परा: एक दृष्टि में

१. आचार्य श्री शान्तिसागरजी (छाणी) महराज

२. आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज

३. आचार्य श्री विजयसागरजी महाराज

४. आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज

५. आचार्य श्री सुमतिसागरजी महाराज

६. आचार्य श्री विद्याभूषण सन्मतिसागरजी महाराज

७. आचार्य श्री भरतसागरजी महाराज

८. उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज

९. मुनि श्री वैराग्यसागरजी महाराज

१०. आचार्य श्री निर्मलसागरजी महाराज

११. आचार्य श्री दर्शनसागरजी महाराज

१२. उपाध्याय श्री समतासागरजी महाराज

१३. मुनि श्री श्रुतसागरजी महाराज

समाधि सम्राट

चतुर्थ पट्टाचार्य श्री सुमतिसागरजी महाराज के शिष्य पंचम पट्टाचार्य श्री विद्याभूषण सन्मतिसागरजी महाराज का संघ।

मुनि श्री विजयभूषणजी महाराज

मुनि श्री आदिभूषणजी महाराज

मुनि श्री समतासागरजी महाराज

आर्यिका श्री मुक्ति भूषणमती माताजी

आर्यिका श्री सरस्वती भूषणमती माताजी

आर्यिका श्री लक्ष्मी भूषणमती माताजी

आर्यिका श्री संयम भूषणमती माताजी

आर्यिका श्री सृष्टि भूषणमती माताजी

आर्यिका श्री दृष्टि भूषणमती माताजी

आर्यिका श्री स्वस्ति भूषणमती माताजी

ऐलक श्री शिवभूषणजी महाराज

क्षुल्लक श्री विमलभूषणजी महाराज

क्षुल्लक श्री जितेन्द्रभूषणजी महाराज

क्षुल्लक श्री तपभूषणजी महाराज

क्षुल्लक श्री ध्यानभूषणजी महाराज

क्षुल्लक श्री सरलसागरजी महाराज

आचार्य श्री कल्याणसागरजी महाराज (णमोकार मंत्र वाले)

आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज (भिंडवालों) के शिष्य
आचार्य श्री कुन्थुसागरजी महाराज (लश्कर वाले) फिरोजाबाद समाधि हुई

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज (पोरसा वाले)

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज (हस्तिनापुर वाले) ससंघ

क्षुल्लक श्री ज्ञानसागरजी महाराज

मुनि श्री धर्मभूषणजी महाराज

आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज (अजमेर वाले)
आचार्य श्री सुमतिसागरजी महाराज के शिष्य

मुनि श्री अजितसागरजी महाराज
आचार्य श्री सन्मतिसागरजी (भिंड वाले) महाराज के शिष्य

आचार्य श्री श्रेयांससागरजी महाराज
आचार्य श्री निर्मलसागरजी महाराज के शिष्य

आचार्य श्री दर्शनसागरजी महाराज

आचार्य श्री समतासागरजी महाराज

मुनि श्री श्रुतसागरजी महाराज

मुनि श्री निर्वाणसागरजी महाराज

आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी ससंघ

आर्यिका श्री आदिमती माताजी

बालाचार्य श्री नेमिसागरजी महाराज ससंघ

उपाध्याय श्री नयनसागरजी महाराज

आचार्य छाणी के शिष्य गण

आचार्य सुमतिसागरजी के शिष्य गण	समाधि
१. श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज	आरा
२. श्री १०८ वर्धमानसागरजी महाराज	ईडर
३. श्री १०८ संभवसागरजी महाराज	ईडर
४. श्री १०८ पार्श्वसागरजी महाराज.	अहमदाबाद
५. श्री १०८ श्रेयांससागरजी महाराज	नागपुर
६. श्री १०८ सुपार्श्वसागरजी महाराज	सम्मेद शिखरजी
७. श्री १०८ समाधिसागरजी महाराज	बोम्बे वाले
८. श्री १०८ समाधिसागरजी महाराज	गुजरात वाले
९. श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराज	बयाना
१०. श्री १०८ श्रुतसागरजी महाराज	दिल्ली
११. श्री १०८ विजयसागरजी महाराज	सोनागिरि
१२. श्री १०८ मुक्तिसागरजी महाराज	सोनागिरि
१३. श्री १०८ समाधिसागरजी महाराज (एम.पी. वाले)	श्री सम्मेद शिखर जी
१४. श्री १०८ सन्मतिसागरजी महाराज	सोनागिरि
१५. श्री १०८ जम्बूसागरजी महाराज	भिण्ड
१६. श्री १०८ मल्लिसागरजी महाराज	सोनागिरि
१७. श्री १०८ आदिसागरजी महाराज	खतौली (मु०नगर)
१८. श्री १०८ शीतलसागरजी महाराज	
१९. श्री १०८ सिद्धसागरजी महाराज	भिण्ड
२०. श्री १०८ गुणसागरजी महाराज	सोनागिरि
२१. श्री १०८ कुन्थुसागरजी महाराज	फिरोजाबाद

२२. श्री १०८ निर्वाणसागरजी महाराज	श्री सम्मेद शिखर जी
२३. श्री १०८ सुव्रतसागरजी महाराज	सोनागिरि
२४. श्री १०८ महेन्द्रसागरजी महाराज	द्रोणागिरि
२५. श्री १०८ योगसागरजी महाराज	श्री सम्मेद शिखर जी
२६. श्री १०८ संयमसागरजी महाराज	श्री सम्मेद शिखर जी
२७. श्री १०८ समाधिसागरजी महाराज	
२८. आचार्य श्री १०८ सन्मतिसागरजी महाराज	
२९. आचार्य श्री १०८ भरतसागरजी महाराज	
३०. आचार्य श्री १०८ अजितसागरजी महाराज	
३१. उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागरजी महाराज	
३२. एलाचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज	
३३. एलाचार्य श्री १०८ नेमिसागरजी महाराज	
३४. बालाचार्य श्री १०८ विवेकसागरजी महाराज	
३५. मुनि श्री १०८ संभवसागरजी महाराज	
३६. मुनि श्री १०८ बाहुबलीसागरजी महाराज	
३७. मुनि श्री १०८ समतासागरजी महाराज	
३८. मुनि श्री क्षमासागरजी महाराज	
३९. मुनि श्री सन्तोषसागरजी महाराज	
४०. मुनि श्री शीतलसागरजी महाराज	
४१. मुनि श्री वैरागयसागरजी महाराज	
४२. मुनि श्री वीरसागरजी महाराज	
४३. मुनि श्री विनयसागरजी महाराज	
४४. मुनि श्री शान्तिसागरजी महाराज	
४५. मुनि श्री कैलाशसागरजी महाराज	
४६. मुनि श्री निर्वाणसागरजी महाराज	

४७. मुनि श्री संवेगसागरजी महाराज

४८. मुनि श्री शिवसागरजी महाराज

४९. मुनि श्री तीर्थसागरजी महाराज भिंड

५०. मुनि श्री भव्यसागरजी महाराज

५१. मुनि श्री पदमसागरजी महाराज

क्षुल्लक महाराज

१. १०५ विद्यासागरजी महाराज

२. १०५ दयासागरजी महाराज

३. १०५ आदिसागरजी महाराज

४. १०५ सन्मतिसागरजी महाराज

५. १०५ बुद्धसागरजी महाराज

६. १०५ पदमसागरजी महाराज

७. १०५ वीरसागरजी महाराज

८. १०५ चन्द्रसागरजी महाराज

९. १०५ भावसागरजी महाराज

१०. १०५ शीतलसागरजी महाराज

११. १०५ गुणसागरजी महाराज

१२. १०५ नेमिसागरजी महाराज

१३. १०५ नमिसागरजी महाराज

१४. १०५ नंगसागरजी महाराज

१५. १०५ अनंगसागरजी महाराज

१६. १०५ निर्वाणसागरजी महाराज

१७. १०५ वैराग्यसागरजी महाराज

१८. १०५ सिद्धसागरजी महाराज

१९. १०५ वर्धमानसागरजी महाराज

२०. १०५ कैलाशसागरजी महाराज

२१. १०५ सूर्यसागरजी महाराज

२२. १०५ सूर्यसागरजी महाराज

२३. १०५ नियमसागरजी महाराज

२४. १०५ सिद्धसागरजी महाराज

२५. १०५ सम्भवसागरजी महाराज

२६. १०५ मल्लिसागरजी महाराज

२७ १०५ अनन्तसागरजी महाराज

२८ १०५ धर्मसागरजी महाराज

२९ १०५ चन्द्रसागरजी महाराज

३०. १०५ तपसागरजी महाराज

३१. १०५ भव्यसागरजी महाराज

३२. १०५ संयमसागरजी महाराज

ऐलक महाराज

१. ऐलक श्री १०५ ऋषभसागरजी महाराज

२. ऐलक श्री १०५ निर्वाणसागरजी महाराज

३. ऐलक श्री १०५ आदिसागरजी महाराज

४. ऐलक श्री १०५ सिद्धसागरजी महाराज

५. ऐलक श्री १०५ जिनेन्द्रसागरजी महाराज

६. ऐलक श्री १०५ शीतलसागरजी महाराज

७. ऐलक श्री १०५ वीरसागरजी महाराज

८. ऐलक श्री १०५ कुल भूषणसागरजी महाराज

९. ऐलक श्री १०५ समयसागरजी महाराज

१०. ऐलक श्री १०५ जयसागरजी महाराज

आर्यिका माताजी

१. श्री १०५ शान्तिमती माताजी (समाधि)
२. श्री १०५ राजमती माताजी (अजमेर)
३. श्री १०५ पार्श्वमती माताजी (सोनागिरि)
४. श्री १०५ शान्तिमती माताजी (कोडरमा)
५. श्री १०५ वीरमती माताजी (श्री महावीर जी)
६. श्री १०५ समाधिमती माताजी (श्री शिखर जी)
७. श्री १०५ समाधिमती माताजी (मुरैना)
८. श्री १०५ धर्ममती माताजी (सोनागिरि)
९. श्री १०५ श्रीमती माताजी (सोनागिरि)
१०. श्री १०५ निर्वाणमती माताजी (भागलपुर)
११. श्री १०५ समाधिमती माताजी (श्री शिखर जी)
१२ श्री १०५ श्रीमती माताजी (श्री शिखर जी)
१३. आर्यिका गणिनी श्री १०५ ज्ञानमती माताजी
१४. आर्यिका गणिनी श्री १०५ विद्यामती माताजी
१५. आर्यिका गणिनी श्री १०५ सिद्धमती माताजी
१६. आर्यिका गणिनी श्री १०५ चन्द्रमती माताजी
१७. श्री १०५ दयामती माताजी
१८ श्री १०५ कीर्तिमती माताजी
१९. श्री १०५ वीरमती माताजी
२०. श्री १०५ भाग्यमती माताजी
२१. श्री १०५ आदिमती माताजी
२२. श्री १०५ गुणमती माताजी
२३. श्री १०५ सूर्यमती माताजी

क्षुल्लिका माताजी

१. क्षुल्लिका श्री ज्ञानमती माताजी

२. क्षुल्लिका श्री शान्तिमती माताजी

३. क्षुल्लिका श्री आदिमती माताजी

४. क्षुल्लिका श्री विपुलमती माताजी

५. क्षुल्लिका श्री जैनमती माताजी

६. क्षुल्लिका श्री सीतामती माताजी

७. क्षुल्लिका श्री शीलमती माताजी

८. क्षुल्लिका श्री श्रुतमती माताजी

९ क्षुल्लिका श्री दयामती माताजी

१० क्षुल्लिका श्री शुभमती माताजी (स्वर्गस्थ)

११. क्षुल्लिका श्री भाग्यमती माताजी (स्वर्गस्थ)

१२. क्षुल्लिका श्री वीरमती माताजी

१३. क्षुल्लिका श्री गुणमती माताजी

१४. क्षुल्लिका श्री वासुमती माताजी

१५ क्षुल्लिका श्री समाधिमती माताजी

१६. क्षुल्लिका श्री निर्वाणमती माताजी

१७. क्षुल्लिका श्री संयममती माताजी

१८. क्षुल्लिका श्री सूर्यमती माताजी

१९. क्षुल्लिका श्री वीरमती माताजी

२०. क्षुल्लिका श्री प्रज्ञामती माताजी

२१. क्षुल्लिका श्री करुणामती माताजी

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खण्ड : श्रद्धाञ्जलि–संस्मरण तालिका

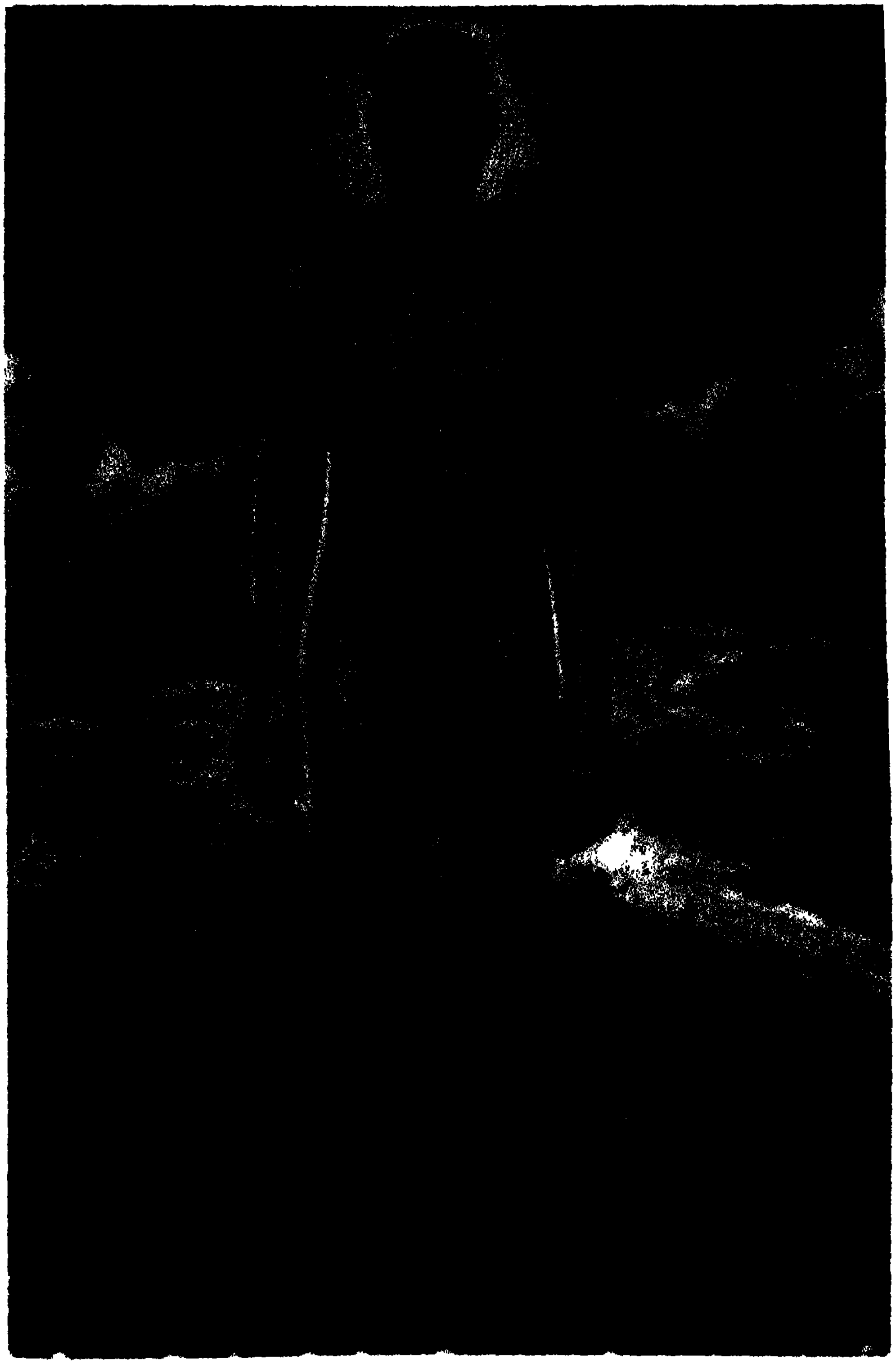
श्रद्धाञ्जलि एवं श्रद्धासुमनः श्रेष्ठिवर्ग

श्रद्धासुमन एवं श्रद्धाञ्जलियाँ : विद्वत्वर्ग

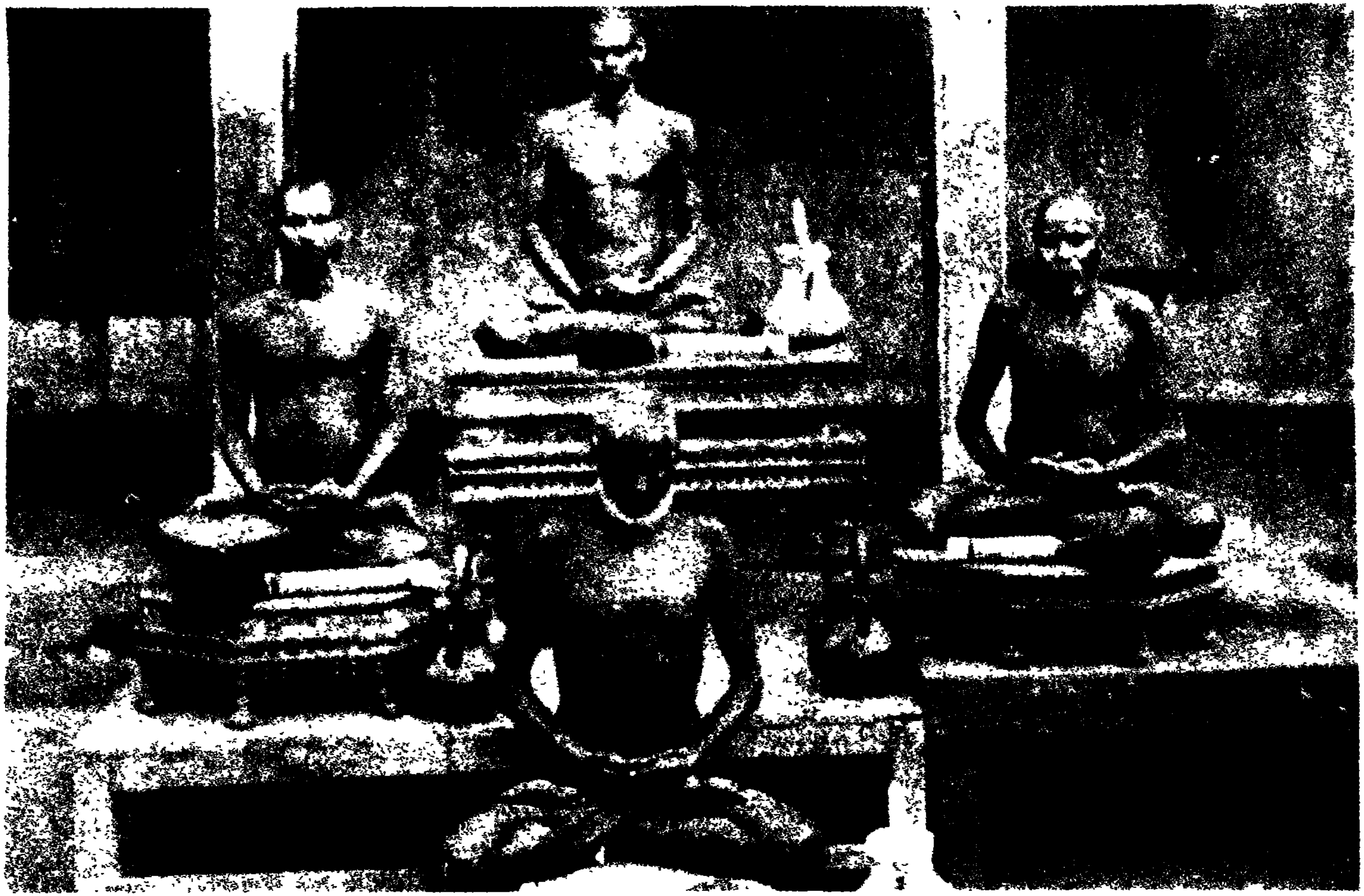
काव्याञ्जलियाँ

तृतीय खण्ड : जैन धर्म के प्रभावक आचार्य

चतुर्थ खण्ड : विविधा



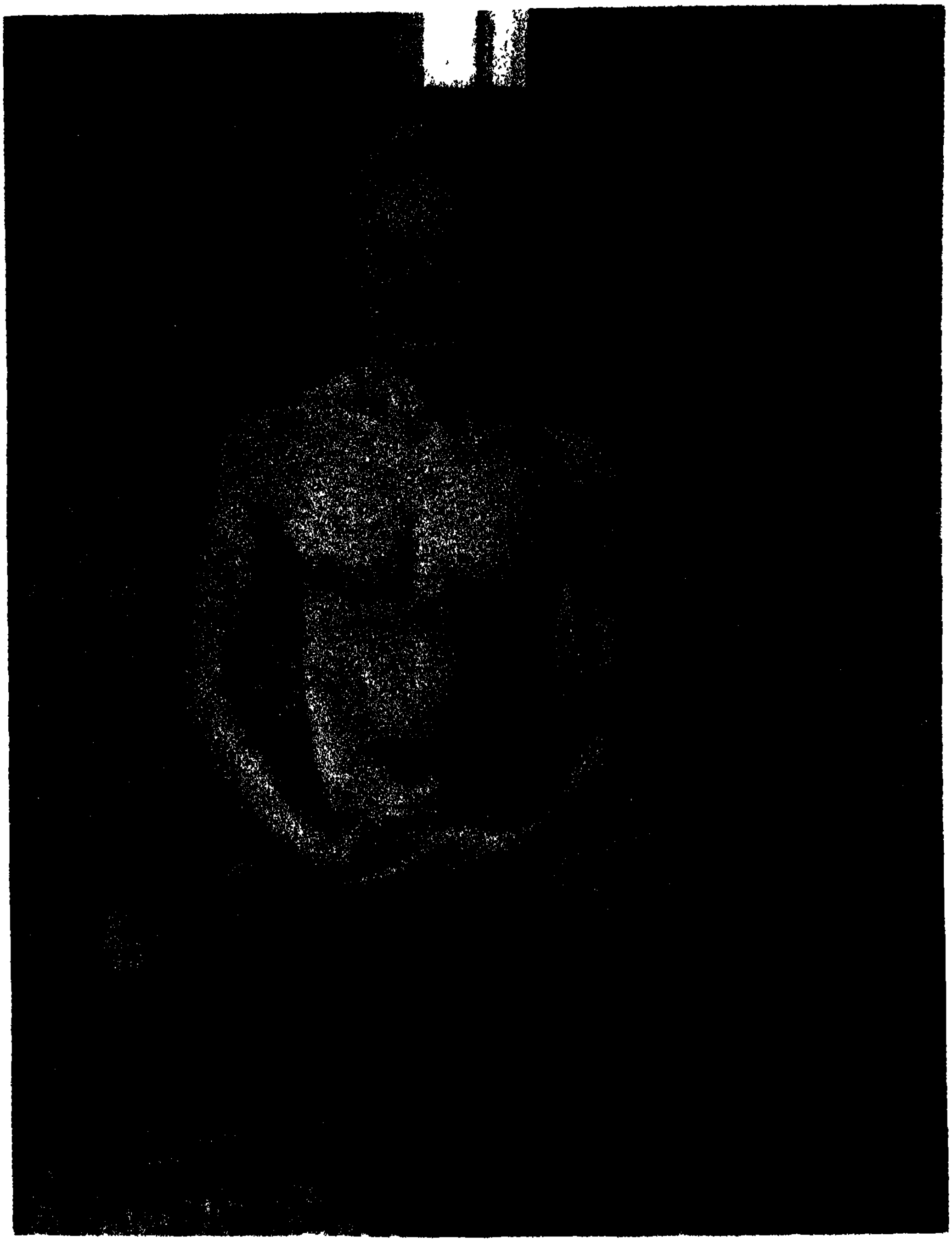
आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज छाणी ध्यान मुद्रा में



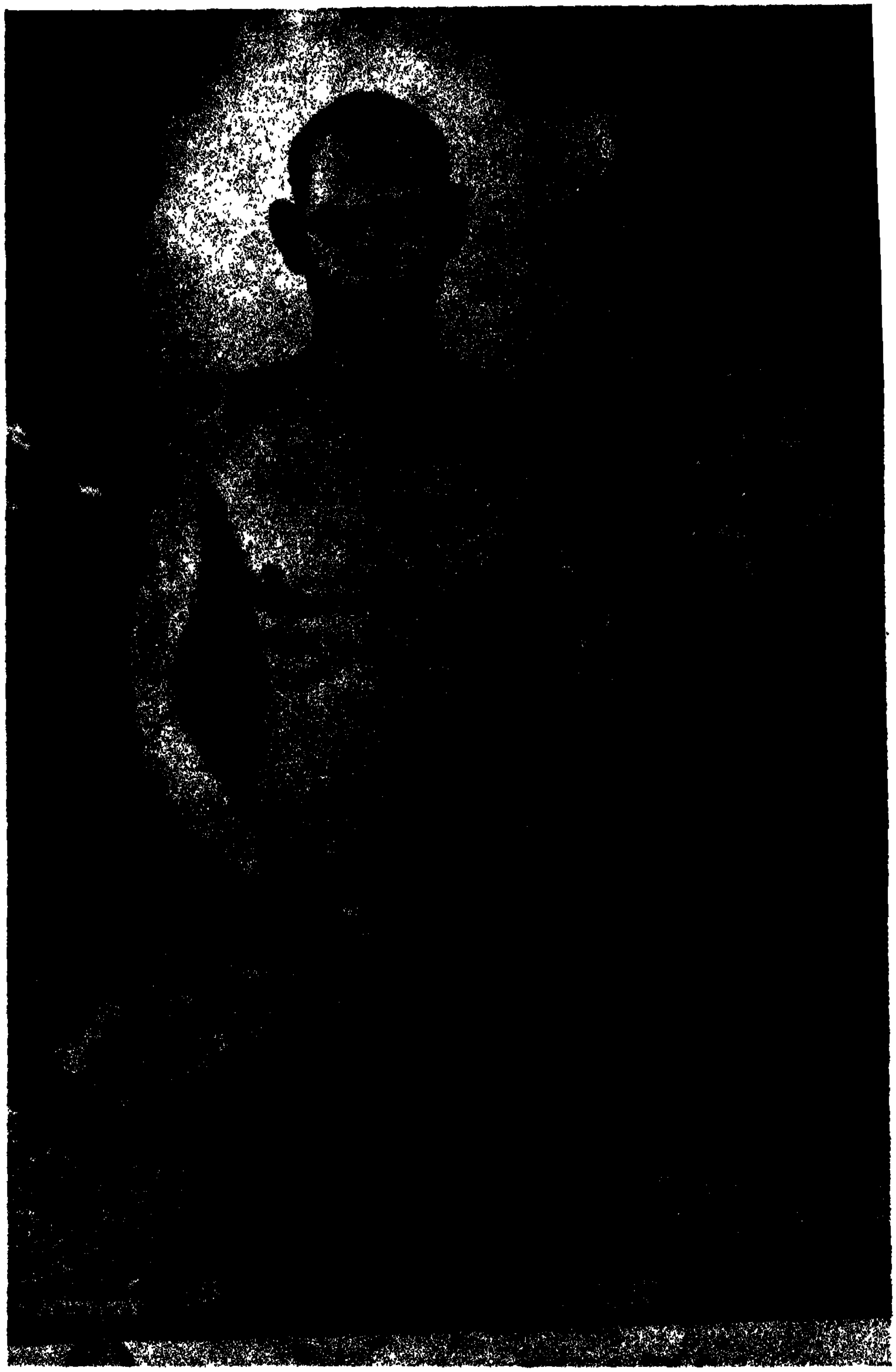
आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज छाणी (ससंघ)



दि. जैनाचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज (छाणी)



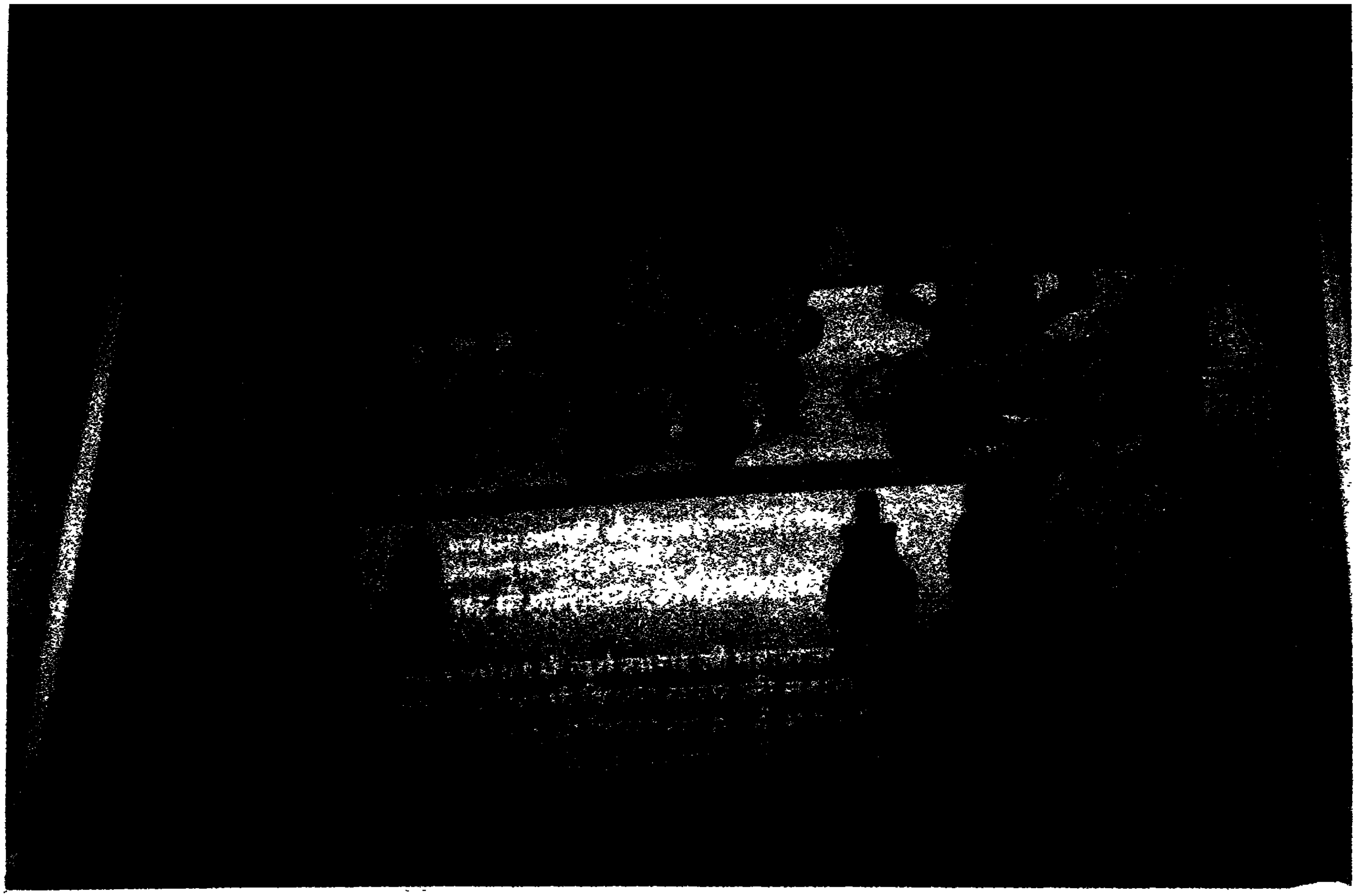
दि. जैनाचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज (छाणी)



आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज छाणी ध्यान मुद्रा में



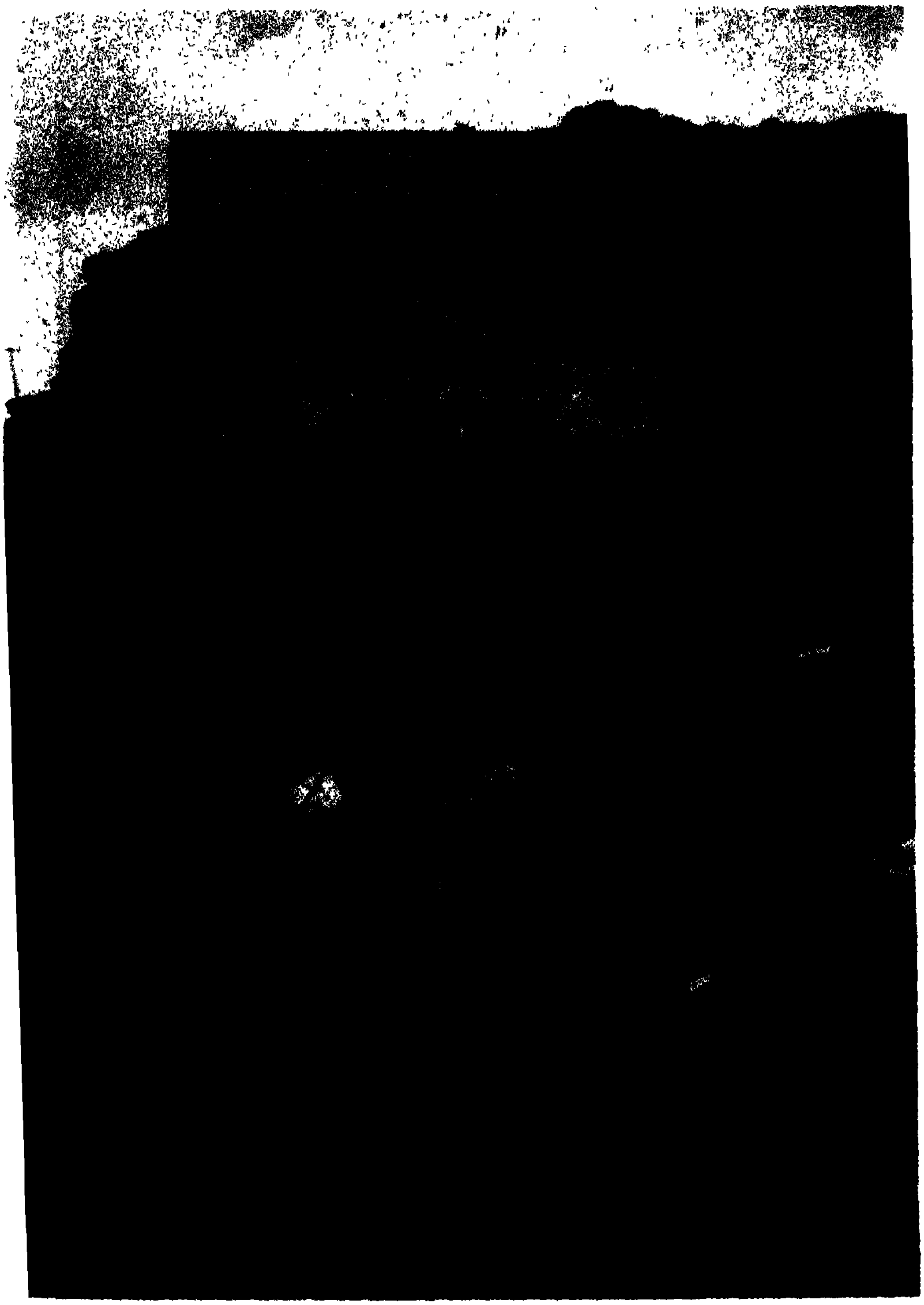
आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी एवं चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्ति सागर दक्षिण का एक साथ व्यावर में चातुर्मास



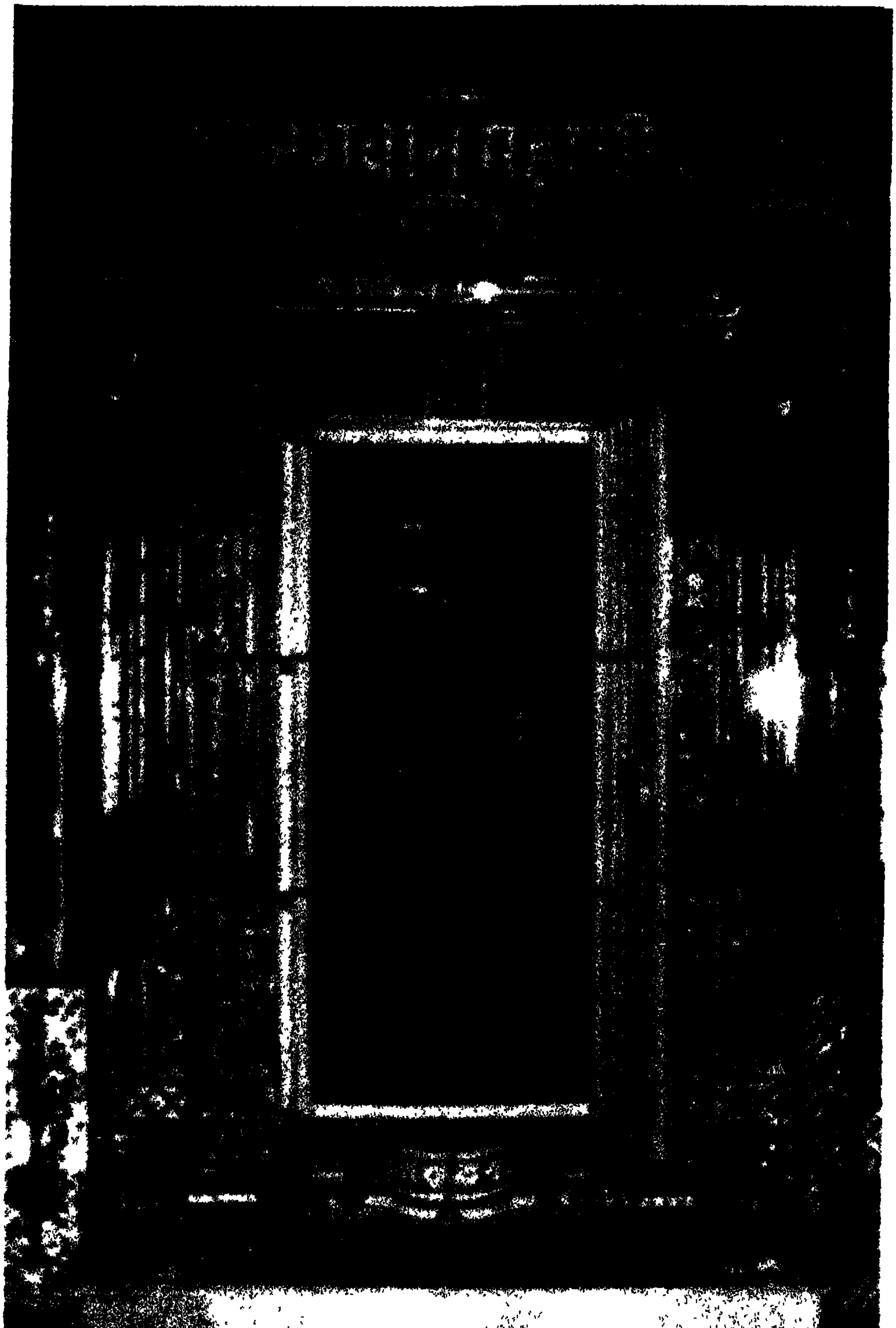
आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज छाणी परम्परा के आचार्य



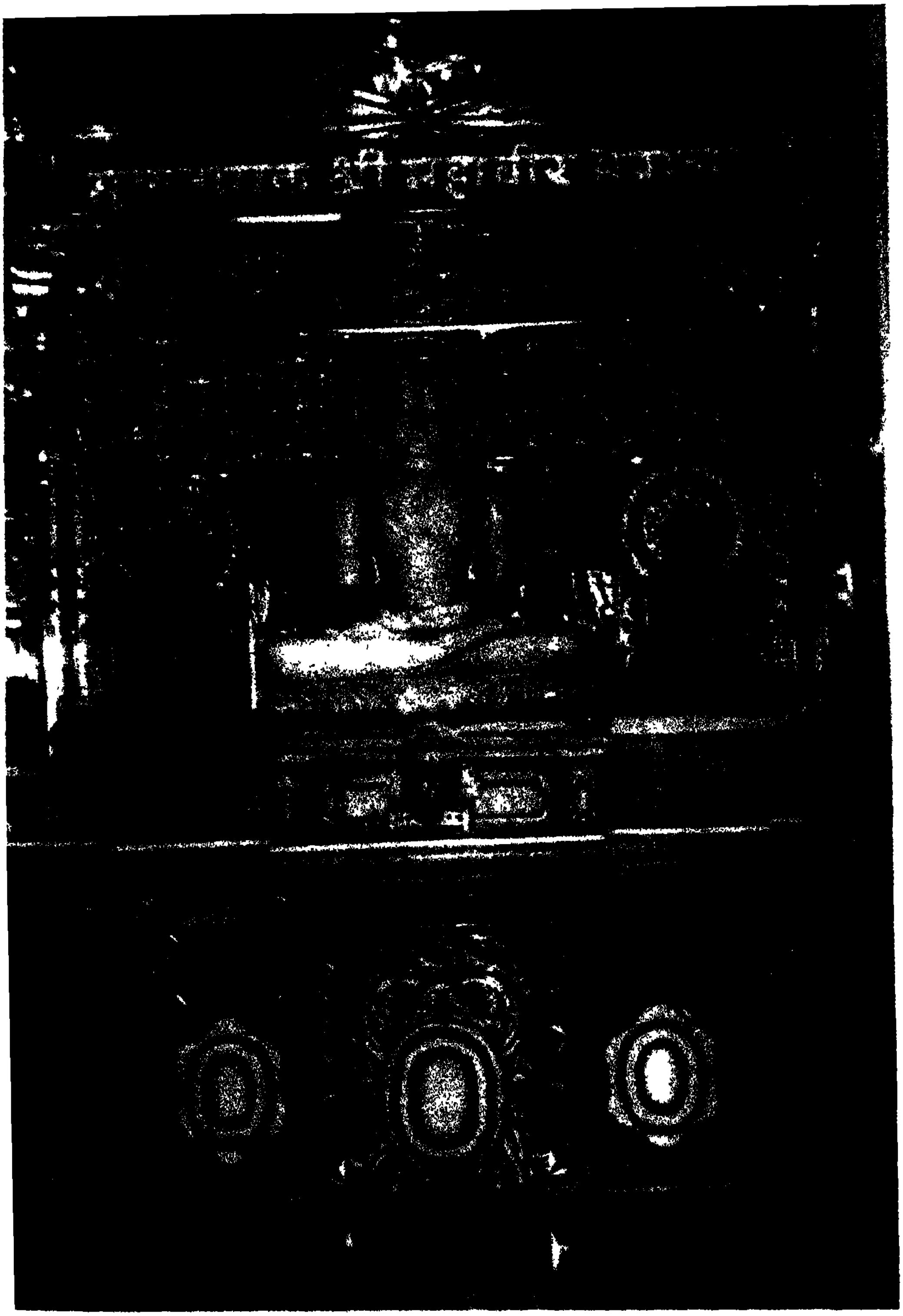
अतिशय क्षेत्र छाणी ग्राम



छाणी में मन्दिर के पास का बोर्ड



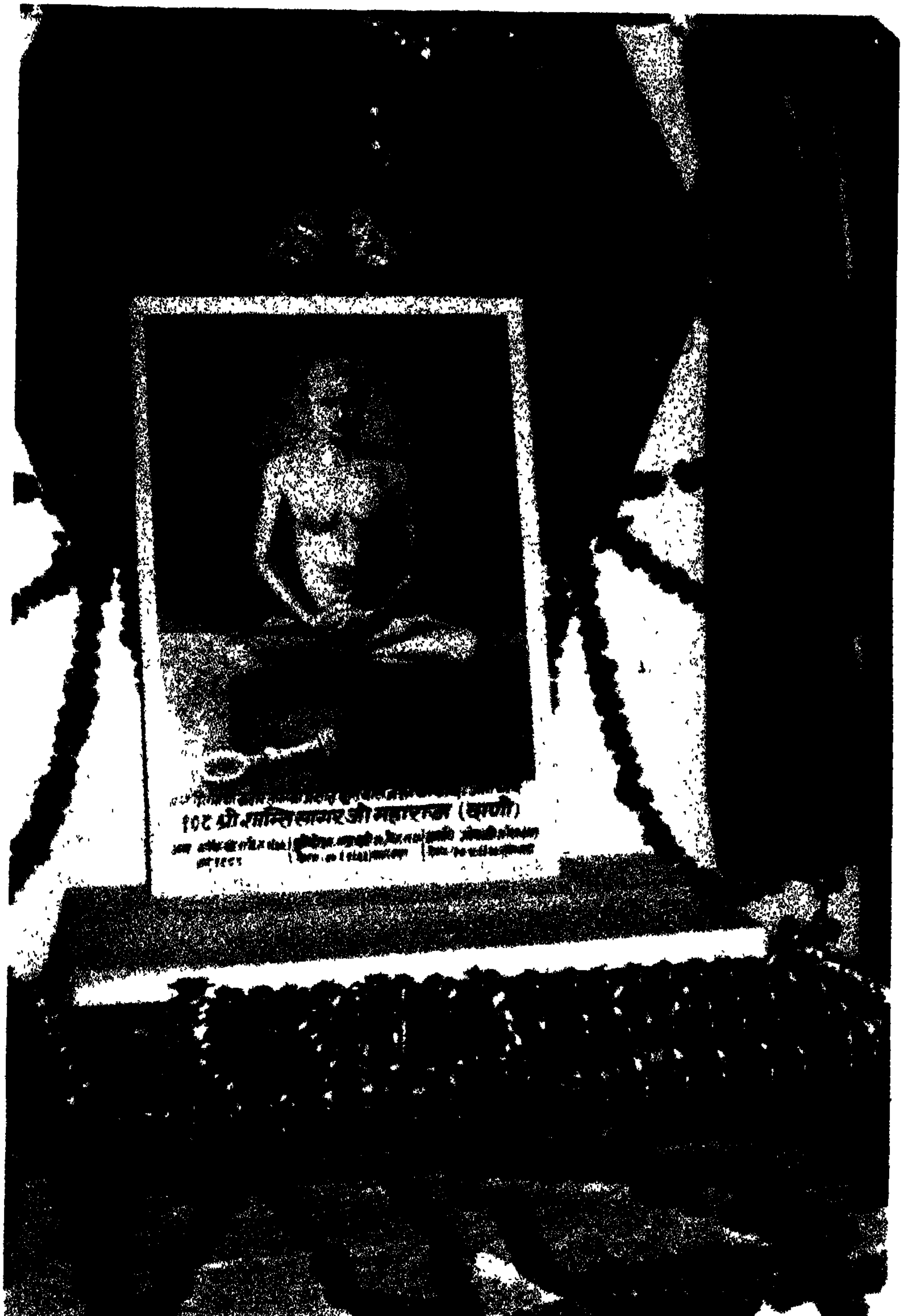
छाणी ग्राम में दिगम्बर जैन मंदिर



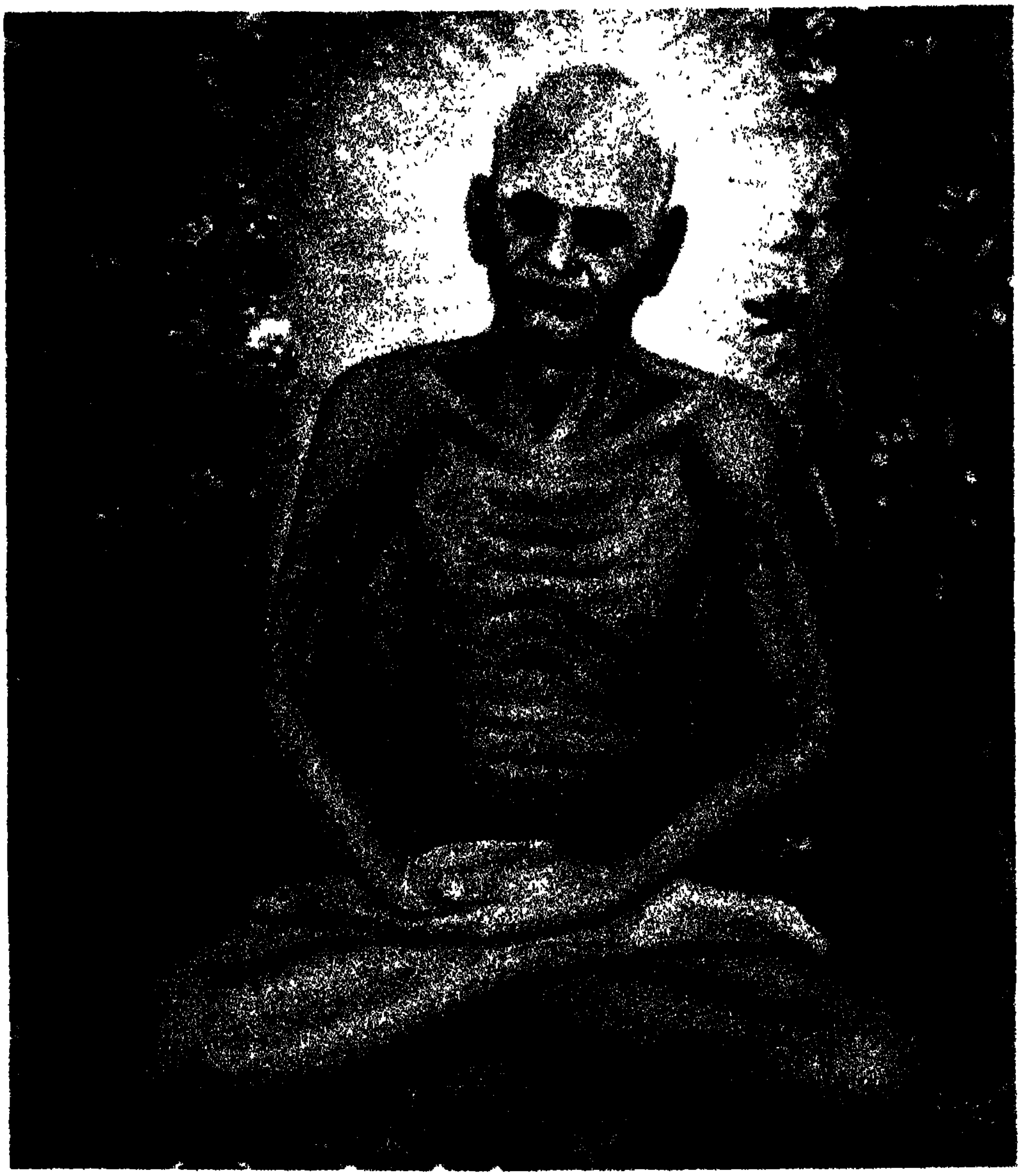
छाणी ग्राम में भगवान महावीर मन्दिर



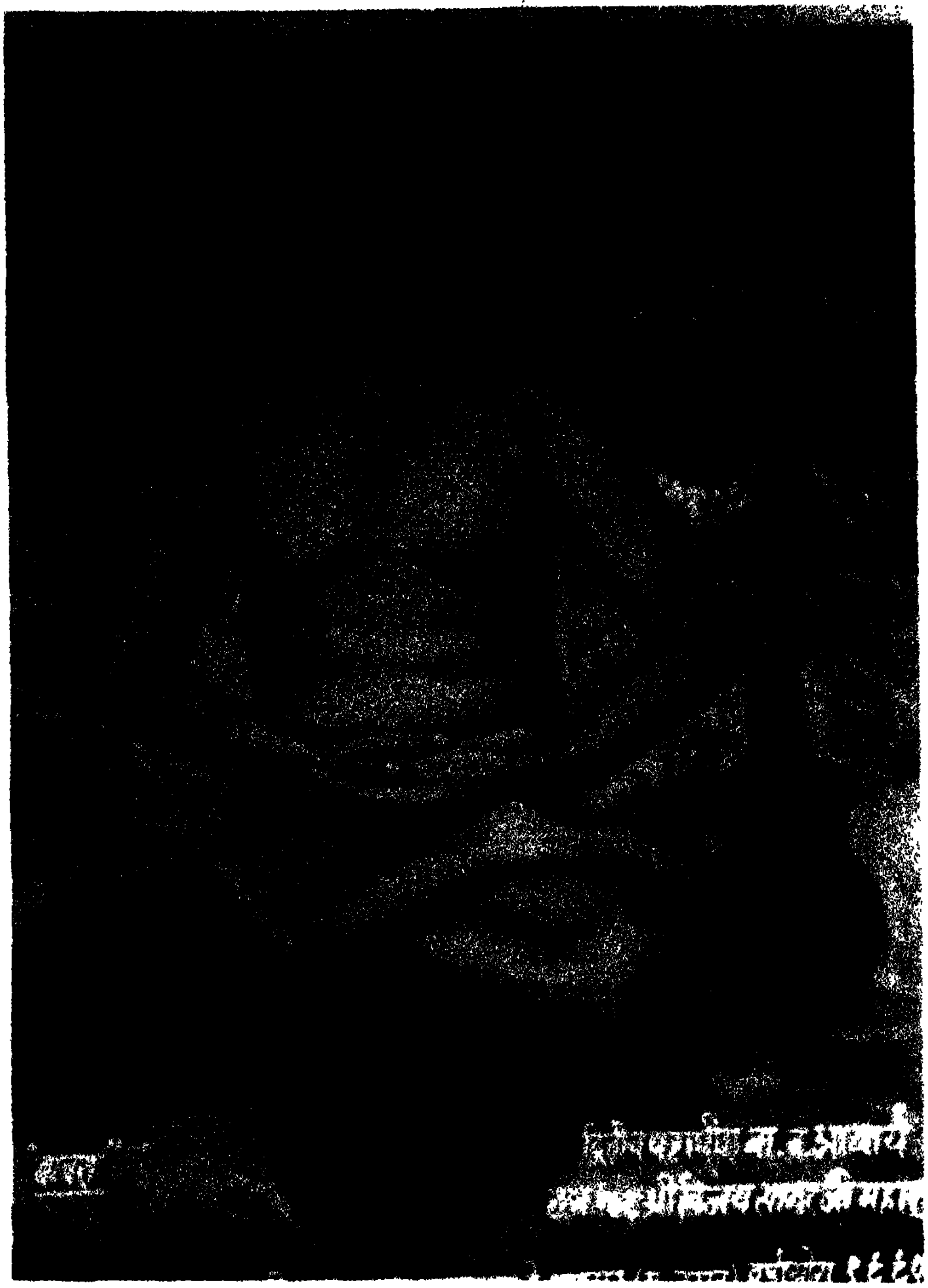
गया में छाणी स्मारिका का विमोचन करते हुए आचार्य श्री



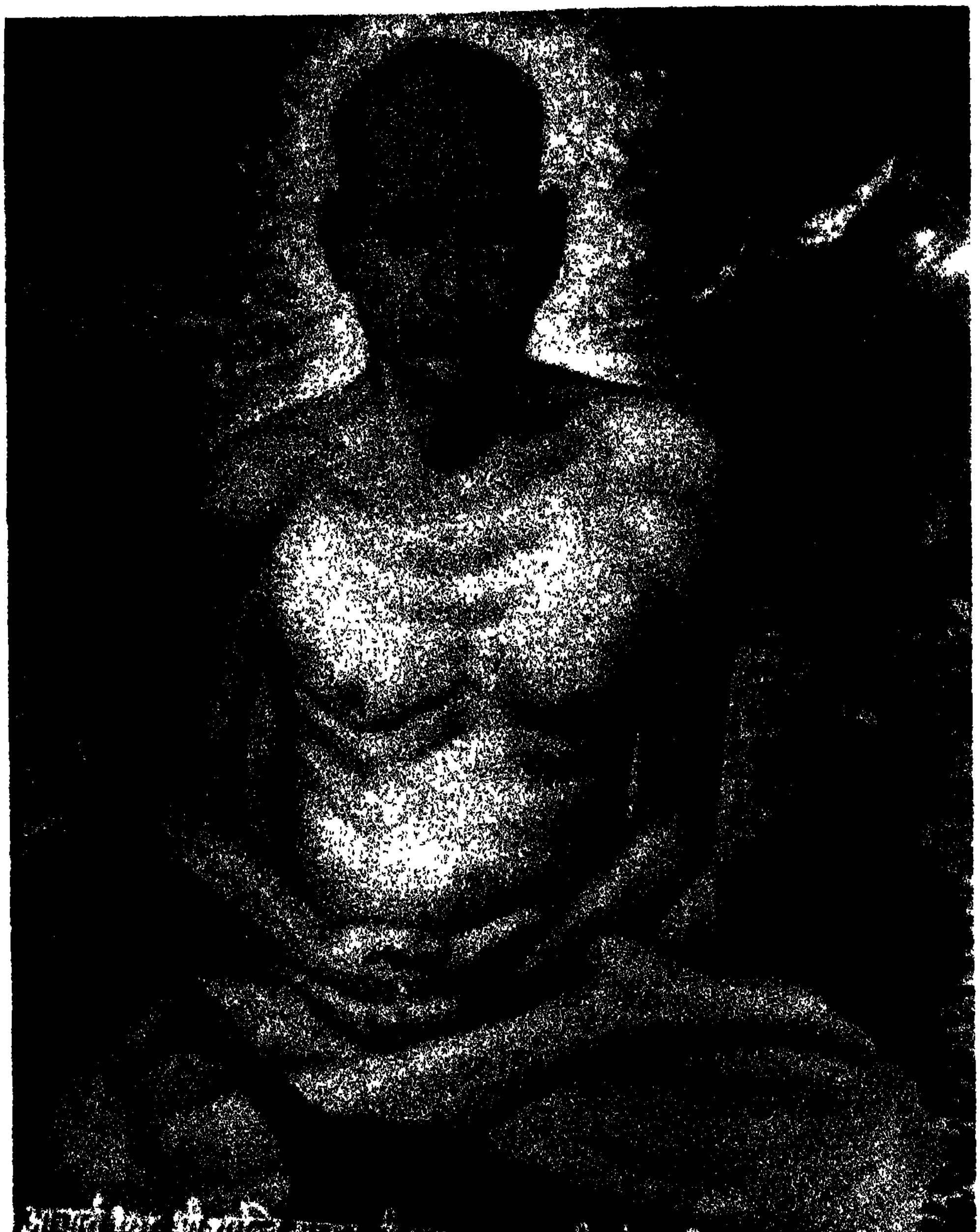
६७वें दीक्षा दिवस पर आचार्य श्री शान्तिसागर जी की तस्वीर का अनावरण



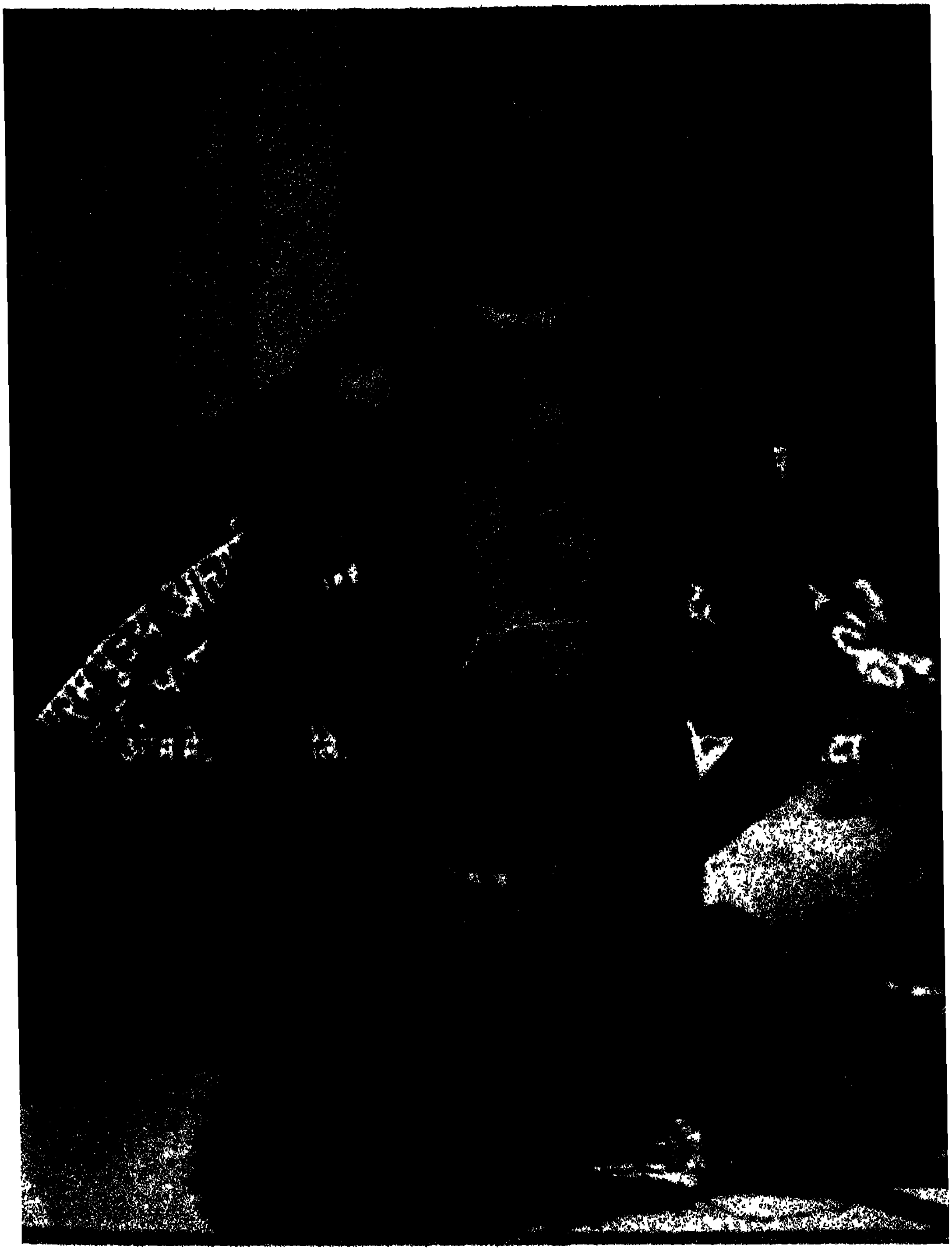
आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज छाणी के प्रथम पट्टाधीश
आचार्य श्री १०८ सूर्य सागर जी महाराज



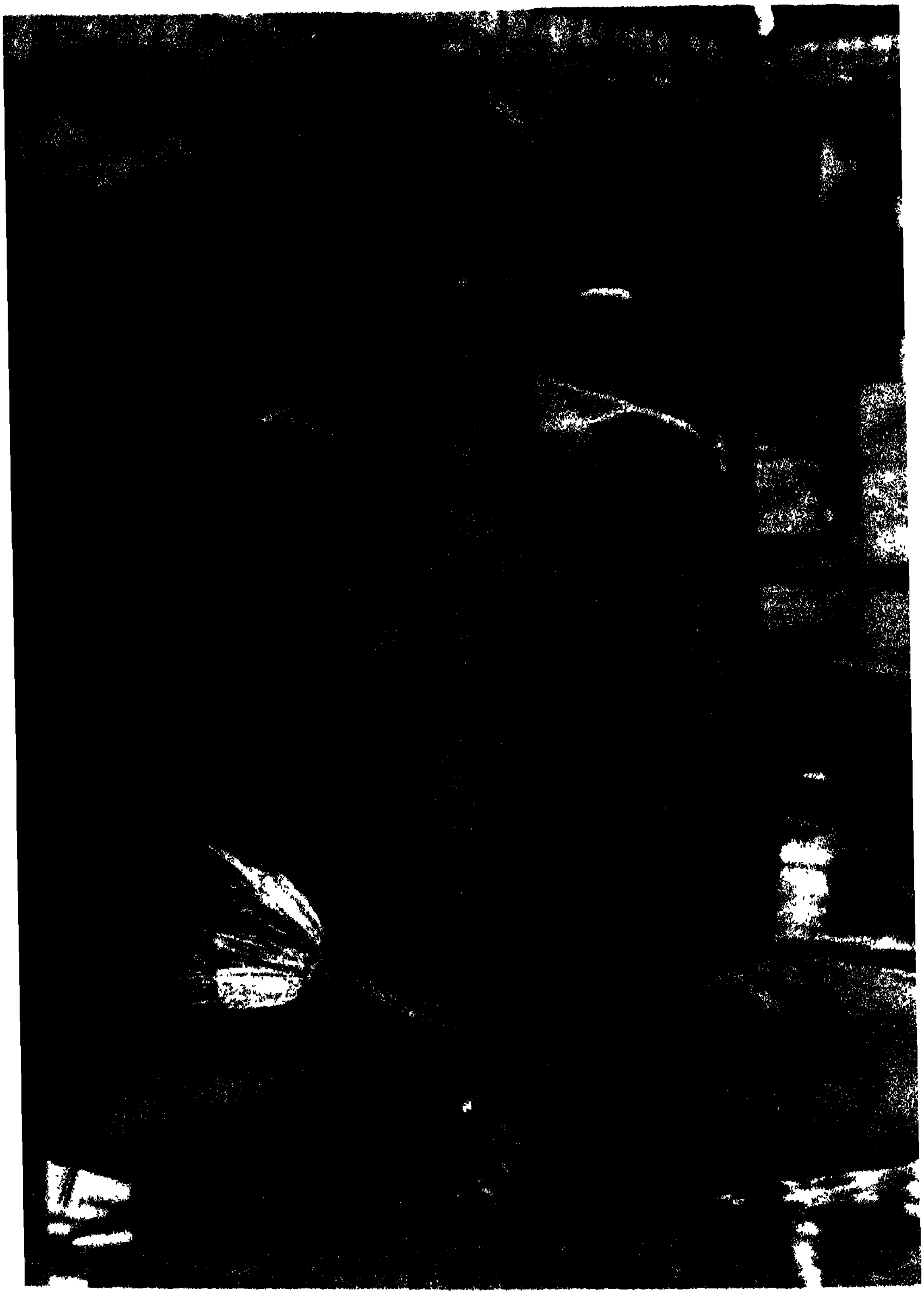
आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज छाणी के द्वितीय पट्टाधीश
आचार्य श्री १०८ विजय सागर जी महाराज



आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज छाणी के तृतीय पट्टाचार्य
श्री १०८ विमल सागर जी महाराज़ भिन्ड



आचार्य श्री १०८ सुमति सागर जी महाराज



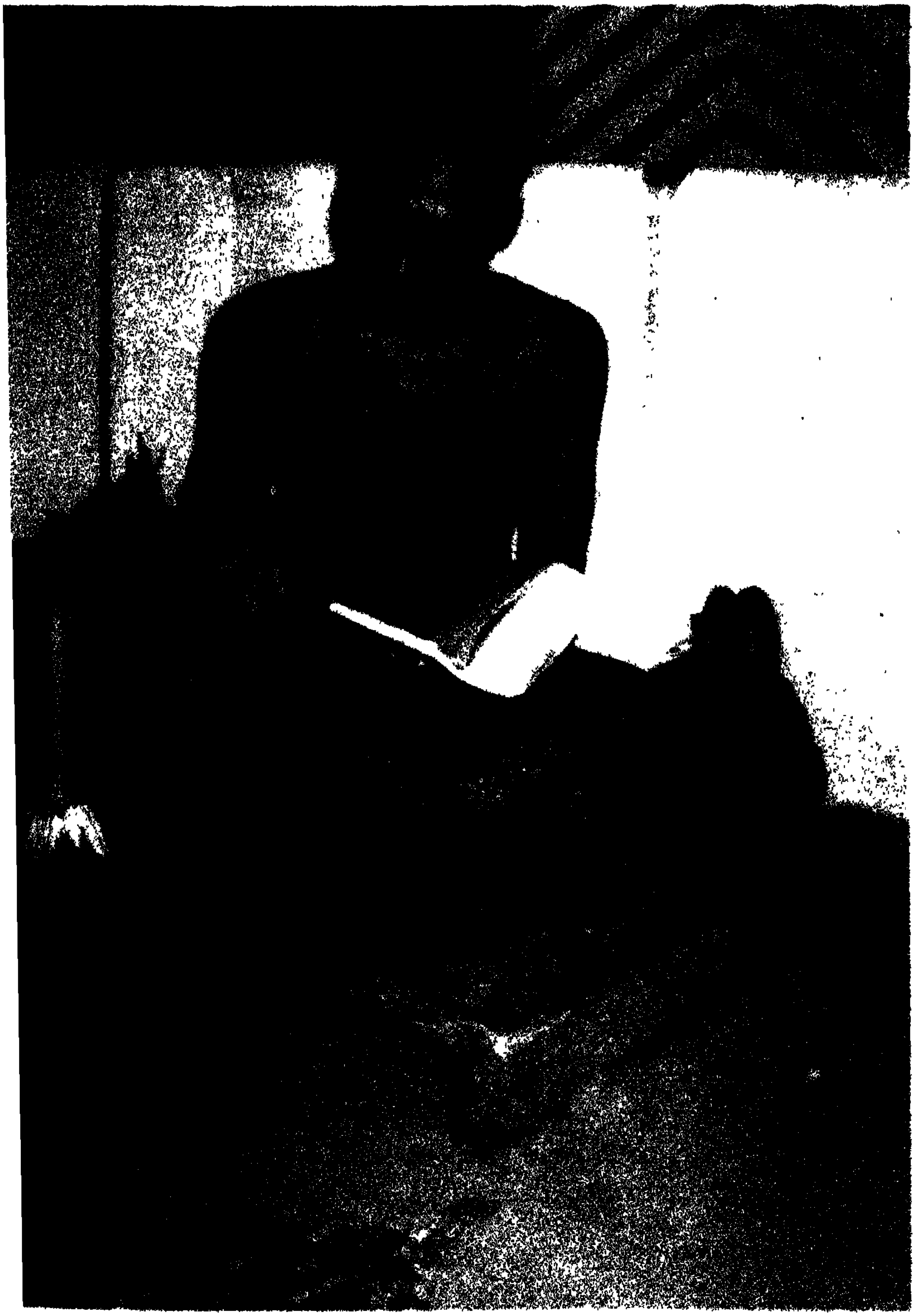
आचार्य श्री १०८ सन्मति सागर जी महाराज



श्री १०८ आचार्य श्री भरत सागर जी महाराज



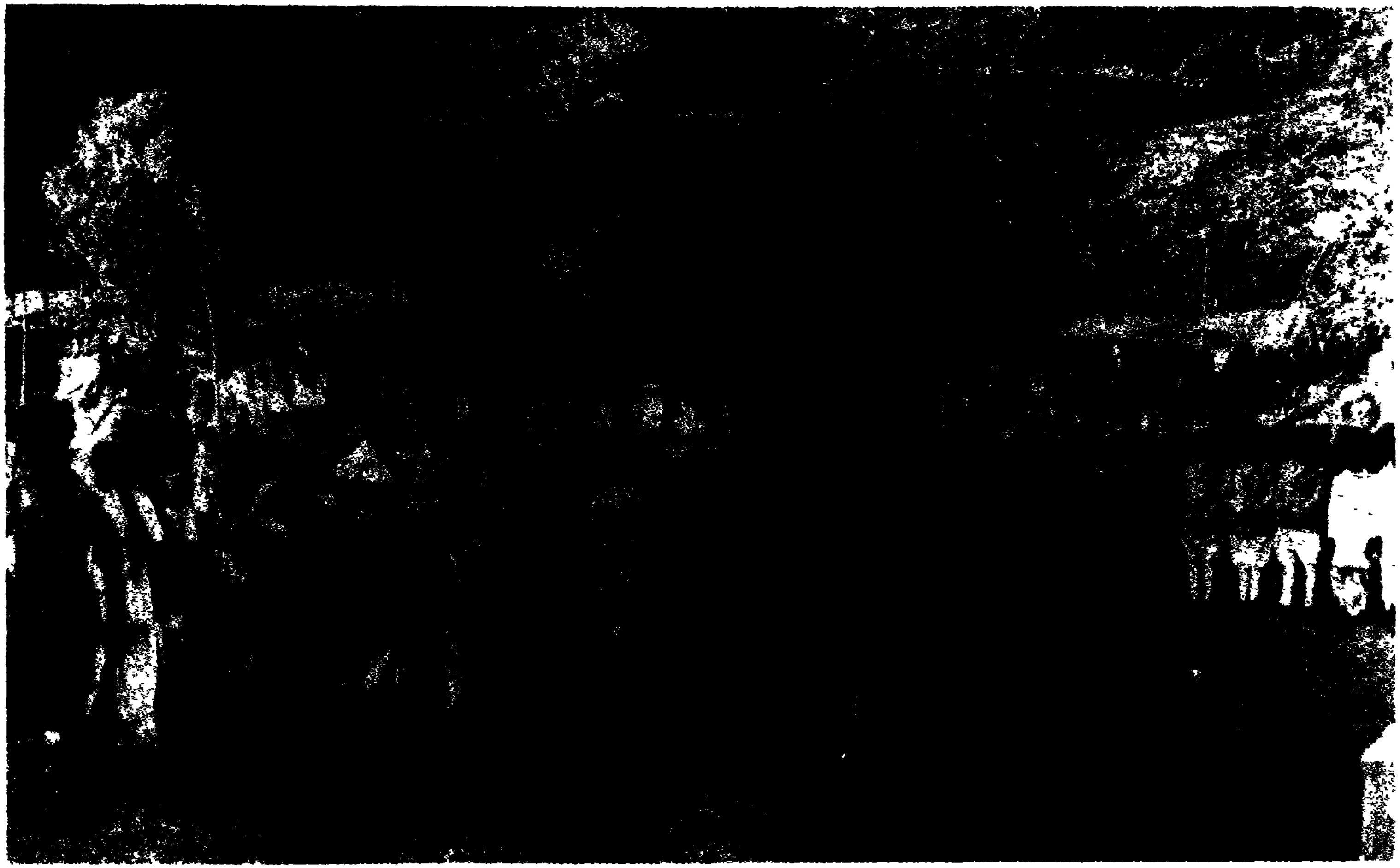
उपाध्याय श्री १०८ ज्ञान सागर जी महाराज



मुनि श्री १०८ वैराग्य सागर जी महाराज



श्री १०८ सुमति सागर जी महाराज की परम शिष्या
"ज्ञान प्रभाकर" गणिनि आर्यिका श्री १०५ ज्ञानमती माता जी



आचार्य कुन्थुसागर जी के साथ - आंचार्य श्री शान्तिसागरजी
तारंगा पंचकल्याणक में - विहार करते हुए



आचार्य श्री १०८ दर्शन सागर जी महाराज

प्रथम खण्ड

श्रद्धाञ्जलि-संस्मरण मालिका

आचार्यरत्न सन्मतिदिवाकर 108 श्री विमलसागर जी महाराज का मंगल आशीर्वाद

परमपूज्य श्री 108 आचार्य शान्तिसागर जी तपोवृद्ध थे, ध्यानी थे, शांत परिणामी दिगम्बर मुद्रा के धारक थे। उनके प्रशिष्यगण स्मृति ग्रंथ प्रकाशित कर रहे हैं उनके लिये मेरा धन्यवाद है तथा स्मृति ग्रंथ आचार्य परम्परा से युक्त हो और भव्यों को सम्यक्त्व का वर्द्धन करने वाला होवे ऐसी हमारी कामना है। उन समान साधु संत बनें/धैर्य युक्त आगमानुसार समाज बने। ग्रंथ को पढ़कर स्व-पर कल्याण करें।

रामवन (सतना) **आचार्य विमलसागर**

29.3.92

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी के चतुर्थ पट्टाचार्य 108 श्री अजितसागर जी महाराज की विनम्र श्रद्धाञ्जलि

स्व. आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज शुद्धाम्नाय के न केवल पोषक थे अपितु इस बीसवीं सदी में इसके प्रवर्तक भी थे। उन्होंने अपने जीवन काल में स्वहित के साथ-साथ परहित भी किया। अनेक कुरीतियों, अंधविश्वासों एवं मिथ्या मान्यताओं का उन्मूलन कर जनता को मोक्ष का सही मार्ग दिखाया। मैं समस्त संघ के साथ उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

आचार्य अजितसागर महाराज

परमपूज्य सन्तशिरोमणि आचार्य विद्यासागर जी द्वारा व्यक्त शुभकामना

आचार्य शान्तिसागर जी छाणी महाराज अपने युग के महान संत थे। उनका एवं आचार्य शान्तिसागर जी महाराज दक्षिण का चातुर्मास सन् 1933 में व्यावर (राजस्थान) में एक साथ हुआ था। उस समय हमारे गुरू महाराज भी वहाँ पहुँचे थे। उनको उस समय प्रशान्तमूर्ति कहा करते थे। आचार्य श्री का स्मृति ग्रंथ निकल रहा है यह प्रसन्नता का विषय है। मेरी ग्रन्थ के लिए शुभकामनाएं हैं।

प्रस्तुतकर्ता

मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र **डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल**

मंगल कामना

स्वर्गस्थ आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी) बुद्धिमान् और धर्मपरायण तपस्वी महाराज थे।

जिनेन्द्र प्रभु से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को मुक्ति लाभ हो।

आचार्य सन्मतिसागर

प्रशममूर्ति आचार्य शान्तिसागर छाणी की परम्परा के चतुर्थ पट्टाचार्य आचार्य सुमतिसागर जी महाराज की हार्दिक विनयाञ्जलि

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर जी महाराज छाणी का स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है। पूज्य आचार्य श्री शुद्धाम्नाय के प्रबल समर्थक थे। उनकी स्मृति में प्रकाशित इस ग्रन्थ से जैन समाज उनके उपदेशों से परिचित हो सकेगी। मैं ससंघ उन्हें विनयाञ्जलि अर्पित करते हुए ग्रन्थ की सफलता की कामना करता हूँ।

सोनागिरि (म.प्र.) **आचार्य सुमतिसागर महाराज**

हार्दिक श्रद्धाञ्जलि

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अवस्मिरणीय प्रशममूर्ति —आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) का स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन करने की योजना है। आपका यह प्रयास सफल हो ऐसा मेरा शुभाशीष है।

—आचार्य श्री शांतिसागर जी (छाणी) महाराज सच्चे अर्थों में आत्मानुसंधानी थे, तभी तो उन्होंने स्वतः दीक्षा धारण कर स्वावलम्बी मार्ग अपनाया। भगवज्जिनेन्द्रदेव के शुद्ध मार्ग को अपनाकर, रत्नत्रयधारी बनकर आत्महित के साथ-साथ यथासंभव परहित भी किया। मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

आचार्य शांतिसागर महाराज
(हस्तिनापुर वाले)

हार्दिक श्रद्धाञ्जलि

108 आचार्य प्रशममूर्ति श्री शान्तिसागर जी महाराज को आ. पार्श्वसागर जी महाराज का सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, आचार्यभक्तिपूर्वक सविनय नमोस्तु। आ. श्री का मेरे को प्रत्यक्ष दर्शन तो नहीं हुआ पर थोड़ा सा परिचय गुरू आ. महावीर कीर्ति जी से जो प्राप्त हुआ वह मैं लिख रहा हूं। आ. श्री ने बताया कि आचार्य शान्तिसागर एक अनुभवी सन्त थे, घोर तपस्वी थे, तेरापंथ आम्नाय के थे पर पंथ मोह नहीं था। आ. शान्तिसागर दक्षिण, आ. शान्तिसागर छाणी दोनों आचार्यों का चातुर्मास व्यावर में सेठ रामस्वरूप ने कराया था। दोनों आचार्य वात्सल्य रूप से रहे और कहते थे अपनी अपनी पद्धति के अनुसार पूजा-पाठ करो। एक दूसरे पर टीका-टिप्पणी नहीं करना। हमें पंथों से क्या लेना-देना है। दिगम्बर मुद्रा पूजनीय है। आज जो पंथ व्यामोह चल रहा है वह कषाय पैदा करने वाला है। आचार्य शान्तिसागर दक्षिण आ. शान्तिसागर जी छाणी दोनों समकालीन आचार्य थे। दोनों की परम्परा अक्षुण्ण चल रही है। सभी साधु आपस में प्रेम से रहें यही हमारी भावना है। आ. श्री

शान्तिसागर छाणी को परोक्ष वंदना करता हूँ। उनकी आत्मा जल्दी से मोक्ष सुख को प्राप्त हो। उनके चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं।

आचार्य शान्तिसागर जी महाराज टीकमगढ़ संघ सहित पधारे थे। उनको देखकर वहाँ की अन्य समाज कहने लगी कि नंगे साधु आ गये, अब पानी नहीं पड़ेगा, अकाल पड़ेगा। ये अदर्शनीय हैं ऐसा वेद में लिखा है। इतना कहा कि यह समाचार आ. श्री को मालूम हो गया और दोपहर को 12 बजे से धूप में सामायिक की और प्रतिज्ञा लेकर बैठ गये—पानी पड़ेगा तभी उठेंगे। फलतः 2 घंटे बाद ही वर्षा हो गई और वहाँ के लोग सभी प्रभावित हुए। राजा ने भी अच्छी भक्ति दिखलाई। जैनधर्म की प्रभावना हुई। यद्यपि पंचमकाल है पर सत्यता अभी भी मौजूद है। कुछ लोग आजकल नारे लगाने लगे हैं कि पंचमकाल में साधु नहीं होते, यह कहना बिल्कुल गलत है। पंचमकाल के अंतिम समय तक भावलिंगी साधु रहेंगे। समाज को संदेश है कि ऐसे लोगों की बातों में नहीं आयें। साधु हैं तभी तक जैन धर्म है। "न धर्मो धार्मिकैः बिना" यह बात बिल्कुल सत्य है।

सोनागिर **आ. पार्श्वसागर महाराज**

महान् तपस्वी

आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) महान् तपस्वी थे। वे अपने युग के सच्चे एवं परमादरणीय आचार्य थे। जहां भी विहार करते, वहीं धर्मामृत की वर्षा कर देते। उन्होंने अपने पावन विहार से राजस्थान के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बिहार, देहली, गुजरात, मध्यप्रदेश सभी को लाभान्वित किया। ऐसे परम तपस्वी आचार्य श्री के चरणों में त्रिकाल नमोस्तु।

धूलिया (महाराष्ट्र) **आचार्य ज्ञानभूषण**

हार्दिक श्रद्धाञ्जलि

भगवान् महावीर के अन्नतर कुन्द-कुन्द स्वामी की शुद्ध दिगम्बर मूल आम्नाय में पूज्यपादाचार्य श्री शान्तिसागर जी "उत्तर" का उद्भव हुआ।

गौरवशाली इस भारत वसुन्धरा पर अगणित ऋषि, मुनियों का आवागमन होता रहा है, उन्हीं में से एक दीप्तिमान् नक्षत्र के तुल्य हैं आचार्य शान्तिसागर जी महाराज। आपने अपने समय में उत्कृष्ट चारित्र का परिपालन करते हुए सम्यग्ज्ञान का विशेष प्रचार-प्रसार कराया, जिसके फलस्वरूप आज भी अनेकों आश्रम, गुरुकुल विद्यालय एवं पाठशालाएं परिलक्षित हो रही हैं।

विशेष गौरव की बात तो यह है, कि सन्तशिरोमणि, प्रशान्तमूर्ति श्री 108 आचार्य रत्न शान्तिसागरजी महाराज हमारे परम्पराचार्य गुरुदेव हैं।

आचार्य शान्तिसागर स्मृति ग्रंथ प्रकाशित कराने की चर्चा उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने अनेकों बार की एवं उन्हीं के प्रयास से यह कार्य सम्पन्न हो रहा है।

विशेष प्रसन्नता की बात यह है, कि उपाध्याय श्री के मार्गनिर्देशन में यह स्मृति ग्रन्थ कुशल सम्पादक मंडल द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है।

ग्रंथों में समाहित स्याद्वाद शैली में चारों अनुयोगों के लेखों के पठन-पाठन से समाज लाभान्वित हो इसी भावना के साथ समाधि सम्राट् आचार्य श्री जैसा उत्तम समाधि मरण मेरा भी हो यह भावना भाते हुए उनके पुनीत चरण कमलों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कोटि-कोटि नमोस्तु।

लखनादौन **आचार्य कल्प सन्मतिसागर जी**

30.3.92

मंगल स्मरण

108 आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) को मेरा कोटिशः नमोस्तु। आचार्य महाराज बहुत सरल स्वभावी थे, वात्सल्य के धनी थे, और गुणों के प्रति उनको बहुत अनुराग था। ऐसे महान् दिगम्बराचार्य का यह स्मृति ग्रन्थ हमारी गुरुभक्ति का प्रतीक है। उनके गुण हमारे चारित्र वृद्धि के कारण हैं। यही हमारे उनके प्रति श्रद्धा सुमन हैं।

रामवन (सतना) — **उपाध्याय भरतसागर**
29.3.92 — संघस्थ आचार्य विमल सागर जी

ज्योतिर्धर युगपुरुष

परमपूज्य आचार्यश्री शान्तिसागर जी 'छाणी' महाराज अध्यात्म योगी ज्योतिर्धर युग–पुरुष थे। अहिंसा, संयम, तप की त्रिवेणी में निमज्जित संयम साधना से अनुप्राणित आपका आदर्श यशस्वी जीवन प्रत्येक मानव के लिए मार्गदर्शक बना, अनेक भव्यात्माओं ने कल्याणमार्ग को अपनाकर अपना जीवन–लक्ष्य प्राप्त किया।

साधु के जीवन की सर्वाधिक विशेषता यही है कि वह अपने स्वीकृत धर्मपथ से कभी विचलित नहीं होता, दुविधाओं और सुविधाओं की काली घटाएँ उसको कर्तव्य पथ से कभी विचलित नहीं कर पातीं।

आचार्य श्री के जीवन दर्शन का जब हम गम्भीरता से परिशीलन करते हैं तो उनके जीवन में साध्वाचार के प्रति दृढ़ता, स्थिरता और निश्चलता के ही दर्शन होते हैं। चारित्रिक दृढ़ता और ज्ञानानुराग का संगम आपके जीवनतीर्थ की सबसे बड़ी विशेषता रही। आपका समग्र जीवन युगचेतना के अभ्युत्थान के लिए ही समर्पित रहा। उनकी वाणी आज भी भक्तों के हृदयाकाश मे प्रतिध्वनित हो रही है। उनका कर्म आज भी समाज को विकास तथा प्रगति का दिव्य–संदेश दे रहा है।

जिनागम मंदिर के प्रज्ञादीप आचार्य श्री के चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हुआ त्रिबार नमोऽस्तु निवेदन करता हूँ।

उपाध्याय ज्ञानसागर
शिष्य–आचार्य सुमतिसागर जी

चारित्रनायक

आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) ज्ञान, ध्यान, तपोरक्त एवं समतामयी साधना से परिपूर्ण चारित्र निष्ठ साधक थे। उनकी आगमानुकूल चर्या स्व और पर का कल्याण करने वाली थी। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में होने वाले चारित्र नायक के प्रति मैं संयम भावना से युक्त होता हुआ अपनी विनयाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

पूज्य आ. शान्तिसागर जी महाराज का स्मृति ग्रंथ प्रकाशित करवाकर विद्वत् वर्ग ने अभूतपूर्व कार्य कर आदर्श महापुरुष के पवित्र जीवन वृत्त को उजागर किया एवं जन-जन में मुनि धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा भक्ति को प्रकट किया।

आचार्य शान्तिसागर स्मृति ग्रंथ के समस्त संपादक मंडल को एवं कर्मठ कार्यकर्ताओं को मेरा मंगलमय शुभाशीर्वाद है।

कल्पद्रुम विधान नागपुर **प्रज्ञा श्रमण देवनन्दि मुनि**
31.1.92

आत्महितैषी

दक्षिण के 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज तथा उत्तर भारत के 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज दोनों ही प्रभावक आचार्य थे। छाणी ग्राम के आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज अध्यात्म प्रिय एवं आत्म हितैषी थे, अतः उनका अधिक प्रचार-प्रसार नहीं हो पाया। इन्होंने अपने जीवन में आत्महित को प्रधानता दी तथा बाह्य क्रियाकाण्डों से दूर रहकर आचार्य श्री कुन्दकुन्द की आम्नाय का संरक्षण व परिवर्धन किया। इनके उपदेशों से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने अंधविश्वासों व मूढ़ताओं को छोड़कर अवश्य ही आत्महित का अवलम्बन किया। ये महान तपस्वी थे तथा इन्होंने आत्महित रूप साध्य की सिद्धि की।

मुनि सुधासागर महाराज

सन्मार्गदर्शी

सन्मार्ग दर्शक गुरु के अभाव में समीचीन वीतरागी देव, आगम ज्ञान और चारित्र की विशुद्धता का होना असंभव है, वैराग्य मार्ग को सुदृढ़ और प्रशस्त करने के लिये गुरु का संबल अत्यावश्यक है, लेकिन पूज्य आ. शान्तिसागर जी ने जिन प्रतिमा को ही गुरु मानकर स्वयं दीक्षित होकर श्रमण मार्ग प्रशस्त किया, यह साधु जीवन उनकी ही देन है, आप उग्र तपस्वी, शान्त परिणामी, निस्पृह प्रवृत्ति के साधु थे। उनके जीवन से सत्प्रेरणा लेकर हमारा जीवन भी उनके सदृश बनें, ऐसी प्रतिक्षण भावना भाते हुए मैं श्रद्धावनत होकर सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्तिपूर्वक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

मुनि वैराग्य सागर महाराज
संघस्थ-उपाध्याय मुनि श्री ज्ञानसागर जी

सौम्यमूर्ति

प्रातः स्मरणीय परमपूज्य गुरुवर 108 आचार्य श्री शान्ति सागर जी (छाणी) के चरणों में कोटि-कोटि नमोस्तु। आप बड़े शांत स्वभावी, सरल परिणामी, सौम्यमूर्ति, विशेष तपस्वी थे। आपका जीवन त्यागमयी था।

अतः ऐसे महान् तपस्वी ऋषि आचार्य महाराज के आशीर्वाद से हम उन जैसे बनकर उनके मार्ग पर चलकर उनके अनुयायी बनें।

लखनादौन **108 मुनि आदिभूषण**
30.3.92

अनूठे तपस्वी

प्रातः स्मरणीय परमपूज्य परम्पराचार्य गुरुवर 108 श्री शान्तिसागर जी छाणी के चरणों में त्रिकाल नमोस्तु। आप बड़े शांत स्वभाव वाले थे। सरल, सहजता की मूर्ति थे। आपका जीवन प्रारंभ से ही त्यागमय था। आप जब क्षुल्लक जी बने तब आपकी तपस्या अपने आप में अनूठी थी। इसके बाद मुनि बने तब आप मुनियों में महान् तपस्वी कहलाये और सारे भारत में भ्रमण करते हुए अज्ञान में भटके हुए जीवों को सन्मार्ग पर लगाया।

अतः ऐसे महान् ऋषि आचार्य महाराज के आशीर्वाद से हम भी उन जैसे बनकर उनके मार्ग के अनुयायी बनें इसी भावना से उनके चरणों में श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं।

लखनादौन — **विजय भूषण मुनि**

30.3.92 — संघस्थ–आचार्यकल्प सन्मतिसागर जी

मंगल-स्मरण

परम पूज्य ज्ञानदिवाकर, अध्यात्म योगी, करुणामूर्ति, गुरूणां गुरु आचार्य श्री 108 शान्तिसागर जी महाराज ने उत्तर भारत वसुन्धरा के गर्भ से अवतीर्ण होकर अहिंसा एवं स्याद्वादमय सत्यधर्म की पताका को ही नहीं फहराया अपितु संपुटित हुए भव्य कमलों को प्रमुदित कर जनमानस को सुरभित करते हुए नैतिकता एवं श्रमण संस्कृति के सजग प्रहरी बनकर जगह-जगह पाठशालाएं, गुरुकुल एवं आश्रम आदि संचालित कराकर रत्नमय सरिता को प्रवाहित कर दिया, जिसमें अवगाहन कर अनेकों भव्यात्मा मुक्ति पथ पर अग्रेषित हो गये।

आचार्य श्री द्वारा सं. 1982 के ललितपुर चातुर्मास में पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव की पावन बेला में उद्घाटित श्री शान्तिसागर दिगम्बर जैन कन्या पाठशाला में प्रारंभिक अध्ययन करने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। अतः हम भी उनकी गरिमा से गौरवान्वित होते हुए उनके चरणानुयायी बनकर आचार्य श्री के चरण-कमलों में श्रद्धाञ्जलि समर्पित करके हृदय वेदिका में कुछ भाव पुष्प संजोते हैं, कि उनके ही सदृश सम्यग्ज्ञान रूप सलिल प्रवाह को प्रवाहित करते हुए, समाधिमरण कर अमल धवल निजात्म स्वरूप को प्राप्त करें।

आचार्य श्री के चरणारविन्द में कोटिशः नमोस्तु।

लखनादौन — **आर्यिका सरस्वती भूषण**

30.3.92

उपसर्ग विजेता

परम तपस्वी, उपसर्ग विजेता, अधुनातन युग के समाज सुधारक आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी) के युगल चरण कमलों में, मैं अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं। मुझे आशा है उनकी स्मृति में प्रकाशित ग्रंथ से अज्ञान तिमिर में भटके प्राणियों को सन्मार्ग मिलेगा।

जबलपुर **ऐलक सम्यकत्वसागर**
29.3.92

शुद्धाम्नायावलम्बी

आत्महित करने वालों के लिए कहीं कोई बाधक तत्त्व नहीं है, यह बात स्व. आचार्य श्री शान्तिसागर जी (छाणी) महाराज ने सिद्ध कर दी है। उस समय जब उत्तर भारत में कोई मुनि परम्परा नहीं थी, उन्होंने भगवान् की प्रतिमा के समक्ष स्वयं दीक्षा लेकर न केवल आत्महित किया अपितु दूसरों के लिए भी मोक्ष मार्ग प्रशस्त किया।

मैं उन शुद्धाम्नायावलम्बी दिगम्बराचार्य स्व. श्री शान्तिसागर जी (छाणी) महाराज के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ तथा भव्य समाज को उनके मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिले, ऐसी शुभकामनाएं प्रस्तुत करता हूँ।

क्षुल्लक कुलभूषण महाराज

हार्दिक श्रद्धाञ्जलि

सच्चे साधु की चर्या राग द्वेष निवृत्ति परक होती है। चाहे वह किसी भी प्रान्त, भाषा, या जाति के क्यों न हों। प्रशममूर्ति आचार्य शान्तिसागर (छाणी) जी महाराज की चर्या इतरों के लिये परम उपादेय रही है। वे त्यागी, उपसर्ग विजयी और वीतरागी साधु थे। ऐसे महान् आचार्य के स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

हम पूज्य आचार्य श्री के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए यह कामना करते हैं कि यह स्मृति ग्रंथ उनके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर जिन धर्म की प्रभावना में एक नई दिशा प्रदान करे।

श्रवणवेलगोल (कर्नाटक) **कर्मयोगी चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी**
1.6.92

निष्परिग्रही सन्त

सरल, शान्त, प्रशममूर्ति, धर्मात्मा एवं उत्तम दशलक्षण धर्म, रत्नत्रय आदि सर्व धर्मों की उत्कृष्ट आराधनाओं में अग्रणी रहने वाले और अध्ययन, मनन, चिंतवन, ज्ञान, ध्यान, समाधि में अंतर्लीन रहने वाले, निष्परिग्रही, तपस्वी, उपसर्ग विजेता, उत्तम संयमी, स्वर्गीय मुख्य दिगम्बराचार्य प० पू० 108 श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी की स्मृति में उनके प्रति विनम्र सम्यक् श्रद्धा एवं भक्ति भाव प्रगट करने हेतु प्रकाशित होने वाले स्मृति ग्रंथ में अपनी शुभ भावनायें एवं विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित कर रहा हूँ निज आत्म कल्याणार्थ।

ब्र० गोकुलचन्द

श्रद्धासुमन

प्रशान्तमूर्ति परम दिगम्बराचार्य शान्तिसागर जी महाराज के स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन से मुझे बहुत प्रसन्नता है। मैं उनके पावन चरणों में अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ।

मूडबिद्री **भट्टारक चारुकीर्ति महास्वामी**

रूढ़िवाद एवं वर्गवाद उन्मूलक

प्रागैतिहासिक काल से ही, मानव को महामानव बनने, समता एवं समानता के उपदेश से रूढ़िवाद एवं वर्गवाद मिटाने में, श्रमण-परम्परा का अतुलनीय योगदान रहा है। जीवन की वास्तविकताओं का परिचायक विशुद्ध अध्यात्म, सर्वप्रथम श्रमणों के जीवन-दर्शन एवं वाणी से ही प्रस्फुटित हुआ। ऐसी श्रमण-परम्परा के अनन्य चेता प. पूज्य आचार्य श्री 108 शान्तिसागर जी महाराज (छाणी), जिन्होंने अपने त्यागमय जीवन से संपूर्ण उत्तर भारत में श्रामण्य का पाठ पढ़ाया था, को स्मृति ग्रंथ के माध्यम से भावप्राणित श्रद्धाञ्जलि प्रेषित कर स्वयं को महाभाग अनुभव कर रहा हूँ।

13.3.92 **ब्र. देवेन्द्र कुमार**

श्रमण-परम्परा के स्तम्भ

आचार्य शान्तिसागर छाणी दिगम्बर श्रमण-परम्परा के सुदृढ़ स्तम्भ थे। बीसवीं शताब्दी में उन्होंने निर्मल मुनि परम्परा को पुनर्जागृत कर जैन धर्म एवं समाज का महान् उपकार किया है। मैं उनके चरण–कमलों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अभिव्यक्त करते हुए गौरवान्वित हूँ।

ब्र० अतुल
संघस्थ–उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज

यथानाम तथा गुण

अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के बाद श्रमण-धारा अविरल रूप से प्रवाहित हो रही थी, काल रूपी तूफान की लहरों ने उत्तर में दि. मुनि परम्परा का अकाल सा ला दिया। श्रमण परम्परा के अकाल का अन्त हुआ था, बागड़ प्रान्त में जन्मे बालक केवलदास से। जिन्होंने जिन प्रतिमा के सामने दीक्षा लेकर केवल ज्ञान के पथ पर चलते हुए अपने नाम को सार्थक किया।

ऐसे परम तपस्वी पूज्य आ() शान्ति सागर जी महाराज श्री के चरणों में अपार श्रद्धा भक्ति के साथ विनयाञ्जलि समर्पित करता हूं।

ब्र. मनीष
तड़ाई, बिहार संघस्थ-उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज

श्रद्धाञ्जलि एवं श्रद्धा-सुमन

श्रेष्ठिवर्ग

कल्याण सिंह
मुख्यमंत्री उत्तरप्रदेश

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि छाणी के दिगम्बराचार्य परम पूज्य श्री शान्ति सागर जी महाराज की स्मृति में एक स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

भारतीय भूमि में समय-समय पर ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा पैदा होते रहे हैं, जिन्होंने अपनी वाणी व लेखनी से मानव कल्याणकारी एवं समाजोपयोगी विचारों का प्रसार किया है। समय-समय पर सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध इनकी आवाज से सुधार का युग आया। इन सन्त-महात्माओं का एकमात्र ध्येय मानवता का हित था, उसे दुःख-कष्टों से त्राण दिलाना था।

श्री शान्तिसागर महाराज पर प्रकाशित होने वाले स्मृति-ग्रन्थ से उनके विचारों व उपदेशों को समाज में प्रचारित करने में सहायता मिलेगी।

स्मृति ग्रन्थ की सफलता के लिये मेरी शुभकामनाएं।

मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश **कल्याण सिंह**

I am glad to note that you will bring out a commemorative volume. I am sure this will be a rich source of spiritual knowledge with Articles from learned scholars. I wish the publication of the commemorative Volume all success.

Thanking You,

Yours sincerely

Veerendra Heggade

संस्कृति संरक्षक

दिगम्बर मुनि परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है और इस परम्परा पर आसीन होकर अनेकानेक आत्माओं ने स्वकल्याण कर मोक्ष को प्राप्त किया है। आज भी भारतवर्ष में इस परम्परा के पथ पर चलने वाले अनेक मुनि, आचार्य, क्षुल्लक एवं क्षुल्लिकाएं विद्यमान हैं जिन्होंने भारत-भूमि को महान् योगदान दिया है एवं इस देश की महान् संस्कृति की रक्षा में अपना अनन्य सहयोग दिया है।

श्री शान्तिसागर छाणी ने निर्ग्रन्थ मुनि धर्म को ग्रहण कर इस परम्परा की कड़ी को महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। वे अत्यन्त ही सरल स्वभावी थे। उनके जीवन का अध्ययन कर भावी-पीढ़ी अपना जीवन उज्जवल करेगी। ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। मैं आचार्य श्री के चरणों में अपनी भाव-भीनी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

निर्मलकुमार जैन सेठी

अध्यक्ष अ.भा.दि. जैन महासभा

श्रद्धासुमन

प्रशममूर्ति आचार्य श्री शान्तिसागर छाणी स्मृति ग्रंथ का जो महत्त्वपूर्ण कार्य अपने हाथ में लिया है और जितने विषय इस ग्रंथ में आपने चुने हैं, उससे आंचार्य श्री शान्तिसागर जी का ही नहीं, अपितु वर्तमान युग के सभी आचार्य व त्यागियों का जीवन परिचय प्रकाशित करके नई पीढ़ी पर बहुत बड़ा उपकार कर रहे हैं। इस ग्रंथ के माध्यम से आपने पूरी शताब्दी को महान् विभूतियों का समाज को ज्ञान कराने का महत्त्वपूर्ण कार्य हाथ में लिया है। मैं इस कार्य के प्रेरणास्रोत पू. उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज का आभारी हूँ तथा सम्पादक मंडल एवं प्रकाशन सहयोगी श्री सलेखचन्द योगेशकुमार जैन खतौली को आदरपूर्वक बधाई देता हूं, कि आपने एक बहुत ही दुर्गम कार्य हाथ में लिया है। अतः भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि आपको इस कार्य में पूर्ण सफलता मिले।

मैं आचार्य श्री के चरणों में सादर श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ।

त्रिलोकचन्द कोठारी

कोटा (राजस्थान) महामंत्री अ.भा.दि. जैन महासभा

श्रद्धाञ्जलि

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी स्मृतिग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है। उन्होंने 25 वर्षों से अधिक समय तक देश के विभिन्न नगरों एवं ग्रामों में भ्रमण कर जैनधर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार किया था। वे इस युग के महान् आचार्य थे। जब दिगम्बर साधुओं का विहार अति मुश्किल था, उस काल में भी आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने जो जैनधर्म का डंका बजाया एवं जन-जन में प्रचार किया, वह चिरस्मरणीय है। ऐसे महान् आचार्य के चरणों में मैं सादर श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

राजकुमार सेठी

कलकत्ता अध्यक्ष बंगाल शाखा अ.भा.दि. जैन महासभा

विनयाञ्जलि

इतिहास के पन्नों पर अभी तक यही पाया जाता रहा कि आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ही दक्षिण से उत्तर की ओर दिगम्बरत्व को लाये और उत्तर प्रदेशीय धर्मालु जनता ने प्रथम निर्ग्रन्थता के दर्शन किए परन्तु ऐसी बात नहीं है। नाम साम्य संयम-घटनाक्रम-सामान्य से अब ज्ञात हुआ है कि राजस्थान में परम पूज्य आचार्य 108 श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) विद्यमान थे और उन्होंने संयम की सीढ़ियाँ स्वयं आत्म साक्षी से चढ़कर आचार्य पद से सुशोभित हुए थे। पूज्य आचार्य श्री का चातुर्मास भी व्यावर में हुआ था। मेरी पूज्या दादीजी कहा करती थी कि मेरे पूज्य पितामह राय बहादुर सेठ टीकमचंद जी पूरे चातुर्मास तक सपरिवार आहारादिक क्रिया संपन्न करने के लिए प्रतिदिन ब्यावर जाया करते थे।

वह क्या ही धर्मोद्योत का समय रहा होगा जब राजस्थान के ब्यावर नगर में इन दो संयम की विभूतियों का समागम हुआ होगा और साधारण जनता ने दिगम्बरत्व को काल्पनिक न मानकर साक्षात् निर्ग्रन्थ मुनियों के दर्शन किये होंगे और उनके दिव्य प्रवचनों को हृदयंगत किया होगा। आज यह सुखद स्मृति भी पुण्य स्मृति के रूप में आत्म साधना की ओर प्रेरित करती है। मानव जीवन की सफलता इसी में है कि ऐसे गुरूजनों के चरणों में जो भी जीवन की घड़ियाँ बीता जाय वे ही सार्थक हैं।

मैं सपरिवार उक्त दोनों ही आचार्यो के चरणों में अपनी विनयाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

अजमेर **निर्मलचन्द सोनी**

निःस्पृही साधु

पूज्य श्री 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) वयोवृद्ध, महान तपस्वी एवं निस्पृही साधु थे। उनको नाम की बिल्कुल चाह नहीं थी। वे उस जमाने के मुख्य आचार्यों में थे। उन्होंने अपने कई शिष्य बनाये और हजारों प्राणियों को मोक्षमार्ग पर लगाया। उनको शास्त्र के तत्त्वों की गहरी पकड़ थी। उन्होंने उत्तर भारत में अधिकतर विहार किया।

मेरी उनको हार्दिक श्रद्धाञ्जलि है।

रामगंज मंडी **मदनलाल चांदवाड़**

संस्कृति के प्रभावशाली प्रवक्ता

आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी परम तपस्वी, विद्वान एवं जिनधर्म तथा संस्कृति के प्रभावशाली प्रवक्ता थे। मुझे आशा है कि आपके कुशल सम्पादन में यह ग्रंथ उनके जीवनचरित्र, दर्शन एवं उच्च आदर्शों का अद्भुत संकलन होगा, जो समाज को एक नई दिशा एवं बोध प्रदान करेगा।

आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी की स्मृति में मैं अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ। ग्रंथ के सफल प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

रतनलाल जैन गंगवाल

देहली अध्यक्ष दि. जैन महासमिति

उच्चव्यक्तित्व के महान् धनी

यह बड़े प्रसन्नता की बात है कि आचार्य श्री शान्तिसागर छाणी स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन हो रहा हैं। यद्यपि पूज्य आचार्य श्री के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ परन्तु उनके जीवन-परिचय से जो भी व्यक्ति जानकारी रखते हैं, उनके मानस पर पूज्य आचार्य श्री का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता है।

उच्च व्यक्तित्व के महान् धनी प्रशममूर्ति आचार्य श्री शान्तिसागर के पावन स्मृति के प्रति मैं अपनी सादर श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर रहा हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि आपके द्वारा सम्पादित ग्रंथ के माध्यम से इन महान् तपस्वी के प्रति पाठकों के मन में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करने का और भी अधिक सुअवसर प्राप्त होगा। आपके कुशल सम्पादन में यह स्मृति ग्रंथ एक अनूठा ग्रंथ होगा जिसमें मुझे नेक की शंका नहीं है।

सुबोध कुमार जैन

आरा (बिहार) संचालक श्री जैन सिद्धान्त भवन

श्रद्धाञ्जलि

प्रशम मूर्ति, महान तपस्वी, आदर्श संयमी मोक्षमार्ग के प्रणेता, उत्कृष्ट साधक परमपूज्य 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी (छाणी) अपने समय के आदर्श दिगम्बर संत थे। उत्तर भारत में आपने विलुप्त मुनि परम्परा को पुनर्जीवित करके वर्तमान शताब्दी में प्रथम मुनि दीक्षा धारण कर निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि का पद ग्रहण किया और पांच वर्ष मुनि पद की साधना में रहने पर आपके त्याग और तपस्या के आधार पर समाज ने आपको आचार्य पद से विभूषित किया।

आप एक अत्यन्त प्रभावी उपदेशक थे। आपकी मधुर वाणी सभी श्रोताओं को धर्म मार्ग पर बढ़ने में प्रेरक होती थी। छाणी में आपका अहिंसा पर प्रभावक उपदेश सुनकर वहाँ के जमींदार ने दशहरा के अवसर पर भैंसों की बलि देने की प्रथा को रोक दिया तथा राज्य में सभी प्रकार की हिंसा पर रोक लगा दी। समय-समय पर आपके ऊपर अनेक उपसर्ग हुए, पर आपने सभी को अपने समताभाव से सहन कर एक महान् दिगम्बर साधु का आदर्श सामने रखा।

आपने अनेक भव्यजीवों को मुनि दीक्षा देकर मोक्षमार्ग पर लगाया। आपके शिष्यों में मुनि श्री ज्ञानसागर जी, मुनि श्री नेमिसागर जी, मुनि श्री वीरसागर जी आदि उल्लेखनीय हैं। आप आचार्य श्री शान्तिसागर जी (दक्षिण) के समकालीन आचार्य थे और कट्टरता के साथ 28 मूलगुणों का पालन करते थे।

सहारनपुर दिगम्बर जैन समाज के सभी स्त्री, पुरुष महाराज को अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं एवं भावना करते हैं कि महान आचार्य श्री 108 कुन्दकुन्द स्वामी द्वारा अष्टपाहुड में बताए गए मुनिधर्म पर चलने की सभी दिगम्बर जैन सन्तों को उनके जीवन से प्रेरणा मिले एवं उन्हें अपने साधना में बढ़ते हुए शीघ्र ही पंचम गति की प्राप्ति हो।

श्री दिगम्बर जैन पंचान समिति,
जैन समाज, सहारनपुर

मंगल किरण जैन, अध्यक्ष
वीरेश्वर प्रसाद जैन, मंत्री

स्वनामधन्य दिगम्बराचार्य

आचार्य श्री शान्तिसागर जी ने विलुप्त मुनि परम्परा को पुनर्जीवित किया। भारतीय संस्कृति सदा ही सन्तों की साधना से ही अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित हुई है। इस शताब्दी में भी भारतवर्ष में अनेक स्वनामधन्य दिगम्बर जैन साधु हुए हैं। आचार्य श्री शान्तिसागर जी (छाणी) वर्तमान शताब्दी के प्रथम चरण के महान् तपस्वी निर्ग्रन्थाचार्य थे। आपकी वाणी में मधुरता, स्नेह और लोकोपकार की भावना थी। आपने धर्म का मूल सिद्धान्त अहिंसा का प्रचार किया। बांसवाड़ा में 30 दिन का उपवास तथा जैनेतर द्वारा बड़वानी में किये गये घोर उपसर्ग पर भी महाराज श्री जरा भी विचलित नहीं हुए। यह चमत्कारी घटना तो है ही, साथ ही जैन समाज के लिए गौरव की बात भी है। ऐसे महान् वीतरागी सन्त परमपूज्य आचार्य श्री के प्रति मैं अपने तथा अपने परिवार की ओर से भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती हूँ तथा ग्रंथ के लिए शुभकामनायें प्रेषित करती हूँ।

श्रीमती गीता जैन, स्यौहारा

श्रद्धाञ्जलि

मेरी तो मान्यता ही नहीं, अपितु दृढ़ विश्वास है कि इस बीसवीं सदी में निर्ग्रन्थ परम्परा के महान् श्रमणों ने ही हमारी संस्कृति की पहिचान को जीवित रखा है। आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी ने ग्राम–ग्राम में मंगल विहार करके समाज का जो उपकार किया, वह सदैव इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

आप महानुभाव प्रयत्न करके इन महामानवों की स्मृति को संजोकर आज की पीढ़ी को प्रेरणा प्रदान करने का जो महान् कार्य कर रहे हैं, वंदनीय है। मैं आपके इस प्रयास की सफलता की कामना करता हूँ तथा आचार्य श्री के चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं।

इन्दौर **बाबूलाल पाटोदी**

सिंहवृत्ति साधक

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी का स्मृति ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है। वे इस बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण के दिगम्बर जैन साधु थे। हम लोगों का वह विद्यार्थी जीवन का काल था। केवल उस समय दिगम्बर जैन साधुओं का स्वरूप शास्त्रों/पुस्तकों में पढने को मिलता था। या कभी-कभी जैन विद्वानों द्वारा मुनियों की चर्चा सुनने को मिल जाती थी। दिगम्बर जैन समाज दिगम्बर जैन साधु के दर्शन करने को लालायित था। उस समय दूर-दूर तक कोई दिगम्बर जैन मुनि का नाम भी सुनने को नहीं मिलता था। उन्होंने वि. संवत् 1980 में भगवान आदिनाथ की साक्षी पूर्वक समाज के सामने सिंहवृत्ति स्वरूप नग्न दीक्षा ग्रहण की थी और विलुप्तप्राय मुनि परम्परा को पुनर्जीवित कर आदर्श श्रमण संस्कृति का पुनरूत्थान किया था। उन्होंने राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के सैकड़ों नगरों में विहार कर धर्मोपदेश दिया और दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के चिर-पिपासित धर्मावलम्बियों को अपने दर्शनों से लाभान्वित किया। उनके प्रथम विहार से जैन जगत् में चेतना की एक नई लहर जाग उठी थी। वे हमारी श्रमण सरकृति के आदर्श साधु थे। उनकी पावन स्मृति में, उनके पुनीत चरणों में शत-शत प्रणाम।

कटनी — **स० सिंघई धन्य कुमार जैन**

एक महान् आचार्य

आचार्य श्री शान्तिसागर जी (छाणी) स्मृति ग्रन्थ के लिए आपका पत्र मिला। मेरा स्वयं तो उनसे कभी सम्पर्क नहीं रहा। जब उन्होंने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की, उस वर्ष मेरा जन्म हुआ था। जब उनका समाधिमरण हुआ तब मैं केवल 22 वर्ष का था। इसलिए उनके विषय में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। जहां तक उनके विषय में सुना है, वे एक महान्

आचार्य अपने समय के हुए हैं और उनके शिष्य आचार्य सूर्यसागर जी से मेरा सम्पर्क रहा है, जो स्वयं एक बड़े आचार्य हुए हैं। पूज्य क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी महाराज उनको गुरूतुल्य मानकर मार्गदर्शन प्राप्त करते रहे हैं। जब उनका समाधिमरण डालमिया नगर में हुआ उस समय मेरे स्व. पिता जी एवं माताजी उनके चरणों में रहे। वे एक महान् आचार्य रहे हैं।

मैं आचार्य शान्तिसागर जी छाणी के चरणों में शत-शत वन्दना करता हूँ।

अहिंसा मंदिर, देहली **प्रेमचन्द जैन, अध्यक्ष**

वीतरागी सन्त

परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर जी अपने युग के महान् सन्त थे। वे छाणी ग्राम के होने के कारण छाणी उपनाम से प्रसिद्ध थे। यद्यपि मैं उनके दर्शन तो नहीं कर सका, लेकिन वे वीतरागी सन्त थे तथा उत्तर भारत के महान् दिगम्बराचार्य थे। "ज्ञानध्यानतपोरक्तः तपस्वी सः प्रशस्यते" वाला लक्षण उन पर पूरी तरह लागू होता था। परमपूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज ने उनके विस्तृत जीवन को पुनः प्रकाश में लाने का बहुत बड़ा कार्य किया है।

हमें भी उन जैसा जीवन प्राप्त हो, इसी भावना के साथ मैं उनके चरणों में सादर श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

खतौली **योगेश जैन**

उपसर्गविजेता आचार्य

आचार्य शान्तिसागर जी महाराज अपने युग के महान् आचार्य थे। वे अपनी साधना, तपस्या, त्याग एवं प्रभावक प्रवचन शैली के लिये प्रसिद्ध थे। उन्होंने राजस्थान, मालवा, गुजरात आदि में विहार करके दिगम्बरत्व का प्रचार किया। उन्होंने कितने ही उपसर्गों पर सहज ही में विजय प्राप्त की और दिगम्बर जैन साधु का जीवन कितना स्वाभाविक एवं चमत्कारिक होता है यह उनके जीवन में देखा जा सकता है।

ऐसे महान् आचार्य श्री के चरणों में अपनी विनयपूर्वक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

जयपुर **महेश चन्द जैन**

दिव्य विभूति को शत-शत नमन

परमपूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से परम-पूज्य प्रातःस्मरणीय प्रशान्तमूर्ति 108 श्री आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी) स्मृति ग्रन्थ में प्राञ्जल भाषामय, सुसंस्कृत एवं ज्ञान, वैराग्यवर्धक सामग्री प्रकाशित की जा रही है, जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। निःसन्देह प्रस्तुत प्रकाशन से आचार्य श्री के बारे में विस्तृत जानकारी समाज को मिल सकेगी। 'स्मृति-ग्रन्थ' एक प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं एवं शाहपुर जैन समाज उस दिव्य विभूति के श्री चरणों में शत शत नमन करते हुए उस महान् दिव्यात्मा को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

शाहपुर — **जयन्ती प्रसाद जैन**

मुजफ्फरनगर, उ.प्र. — प्रधान-जैन समाज शाहपुर

सन्मार्गदर्शक

प्रशममूर्ति आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज का जन्म कार्तिक वदी 11 सन् 1888 को छाणी नगर (राजस्थान प्रान्त) मे हुआ। इस समय मुनि परम्परा अवरूद्ध सी प्रतीत हो रही थी और मुनियों के दर्शन असम्भव से लगने लगे थे। इस असम्भव को सम्भव बनाया बालक केवलदास से बने क्षुल्लक शान्तिसागर ने, जिन्होंने भाद्रपद शुक्ला 14 (अनन्त चौदस) सन् 1923 को सिंहवृत्तिरूप दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण की, आपने समस्त भारतवर्ष में जैन धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

आचार्य श्री फोटो खिंचवाने से परहेज करते थे इसी कारण उनका परिचय नई पीढ़ी को अपेक्षाकृत कम हो पाया। युवामनीषी उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने इस दिशा में महान् प्रयास किये। आचार्य श्री से सम्बन्धित साहित्य पूरे भारतवर्ष से खोज-खोज कर मंगाया गया, यह स्मृति ग्रन्थ उन्हीं की सत्प्रेरणा का प्रतिफल हैं। यशस्वी, तपस्वी, जिनधर्म प्रभावक, सन्मार्गदर्शक आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) के चरणों में मैं अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

सरधना — **प्रमोद कुमार जैन**

नमन

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) के स्मृति ग्रन्थ का डॉ. कस्तूर चन्द जी कासलीवाल, जयपुर सम्पादन कर रहे हैं। अभी डॉ. सा. तड़ाई आये थे, तब उनसे भेंट हो सकी तथा स्मृति ग्रन्थ के बारे में चर्चा हुई। मुझे परम कृपालु प्रशममूर्ति आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज के दर्शनों का सौभाग्य तो प्राप्त नहीं हो सका लेकिन सभी विद्वानों से मैंने उनकी प्रशंसा सुनी है तथा उनके त्याग एवं तपस्या के प्रति सभी श्रद्धावनत हैं। ऐसे परम निर्ग्रन्थ गुरू के चरणों में मैं भी बार-बार नमन करता हुआ कभी उन जैसा मैं भी बनूँ, यही कामना करता हूँ।

रांगामाटी (रांची) बिहार **दयाल चन्द सराक**

श्रद्धासुमन

मैं छोटा नागपुर सराक जाति संघ की ओर से तथा मेरी ओर से परम–पूज्य स्व. आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) के श्री चरणों में सादर नमन करता हूँ। हमें प्रसन्नता है कि आचार्य श्री के प्रशिष्य परमपूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज हम सराक बन्धुओं को धर्मामृत का पान करा रहे हैं तथा हमारे पूर्वजों का स्मरण करा रहे हैं।

आचार्य शान्तिसागर जी महाराज शान्ति एवं अहिंसा के अवतार थे। हम ऐसे आचार्य श्री के चरणों में बार-बार श्रद्धा–सुमन अर्पित करते हैं।

दक्षिण छोटा नागपुर **रमेश चन्द मांझी**

शत-शत नमन

आचार्य शान्तिसागर जी छाणी महाराज के जीवन परिचय से ज्ञात होता है, कि वे अपने युग के महान सन्त थे। वे परम कृपालु थे। उन्होंने देश में अहिंसा धर्म का प्रचार किया और प्राणी मात्र को गले लगाया। ऐसे आचार्य श्री का स्मृति ग्रन्थ निकल रहा है यह महान प्रसन्नता का विषय है।

मेरा उनके चरणों में शत-शत नमन है।

तड़ाई (रांची) बिहार **(डॉ.) शम्भूनाथ जैन सराक**

सादर श्रद्धाञ्जलि

परमपूज्य 108 उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज अपने प्रवचनों में आचार्य शान्तिसागर जी छाणी के दिव्य जीवन का उल्लेख करते रहते हैं। आचार्य श्री के सभी गुण हमारे जीवन में भी उतरें और हमें भी कभी मुनि मार्ग पर चलने का सुअवसर प्राप्त हो। यही हमारी उनके चरणों में सादर श्रद्धाञ्जलि है।

तड़ाई (रांची) **गोवर्धन चौधरी (सराक जैन)**

अमर ज्योति

आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी ने जिस श्रद्धा, त्याग, तप एवं निष्ठा की अमर ज्योति जगाई है, वह आने वाले युगों तक मानव समाज के पथ को प्रदर्शित करती रहेगी। इस परमोपकारक श्रेष्ठ सन्त की स्मृति में शत शत श्रद्धाञ्जलि।

रांची (बिहार प्रांत)

रामचन्द बड़जात्या
बड़जात्या ब्रदर्स

प्रकाशदीप

परमपूज्य 108 आचार्य शान्तिसागर महाराज छाणी जी की स्मृति हेतु स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन का निर्णय लिया है, जो स्तुत्य है।

पू. आचार्य महाराज का चातुर्मास ललितपुर में संवत् 1982 सन् 1925 में हुआ था। महाराज श्री की प्रेरणा से यहां शान्ति सागर दि. जैन पाठशाला की स्थापना की गई थी। यह पाठशाला आज ललितपुर दि. जैन पंचायत के अधीनस्थ संस्था हैं, जो बढ़कर कन्या जूनियर हाई स्कूल के रूप में विकसित है। आजकल इसमें कक्षा 1 से 8 तक लगभग 350 छात्राएं लौकिक शिक्षण के साथ धार्मिक शिक्षण प्राप्त कर रही हैं।

यह विद्यालय ललितपुर जनपद में सबसे प्राचीन विद्यालय है।

पू. आचार्य महाराज उत्कृष्ट घोर तपस्वी, परमज्ञानी और दिगम्बर परम्परा में प्रमुख मुनि थे। इनके संघ में ललितपुर आगमन के समय तीन मुनि महाराज थे।

पू. महाराज दिगम्बर परम्परा के प्रकाशदीप थे। उनके श्री चरणों में मेरा कोटिशः नमन।

ललितपुर **सिंघई शीलचन्द**

श्रद्धाञ्जलि

परमपूज्य 108 आचार्य शान्तिसागर जी छाणी अपने समय के आदर्श सन्त थे। राजस्थान में छाणी ग्राम में पैदा होने से राजस्थानवासियों को उन पर पूरा गर्व है। आचार्य श्री महिलाओं में व्याप्त कुरीतियों के सख्त खिलाफ थे, इसलिए बागड प्रदेश में महिला समाज से उन्होंने कितनी ही बुराईयों को दूर किया। आचार्य श्री महिला शिक्षा के पक्षपाती थे और उनकी जीवनी से पता चलता है, कि उन्होंने महिलाओं के विकास में अपनी पूरी प्रेरणा दी। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि ऐसे महान् आचार्य के संबंध में स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है, जिसकी मैं हृदय से प्रशंसा करती हूँ। उनके प्रति मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर रही हूँ। हम सब उनके बताये हुए मार्ग पर चलें इसी में हमारी भलाई है।

जयपुर **(श्रीमती) सरोज छाबड़ा**

ज्ञानपुञ्ज

मोक्षमार्ग के साधक आचार्य श्री ने त्याग, तप की जो ज्योति जलाई, वह चिरकाल तक भावी पीढ़ी के लिए निर्देशन का कार्य करेगी। वह हमारे प्राचीन श्रमण परम्परा में आये एक सन्त हैं। जीवन के प्रति उनका विराग भाव केवल शब्दों में नहीं, अपितु क्रियात्मक रूप में आधुनिक युग का एक अद्‌भुत चमत्कार है। वे पूरे मानव समाज के निर्देशक एवं आराध्य हैं। उन्होंने जैनधर्म की ध्वजा को पूरे भारत में फहराया।

ऐसे तपस्वी दिगम्बर जैनाचार्य एवं ज्ञानपुंज गुरूवर के चरणों में नतमस्तक होकर विनम्र कोटिशः श्रद्धाञ्जलि श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ।

शाहपुर **राजभूषण जैन**

श्रद्धाञ्जलि

आचार्य श्री का घोर दुर्धर तप, जैनधर्म के सूक्ष्म तथ्यों का गहन अध्ययन, जैनधर्म के प्रति अगाध श्रद्धा आदि ने सम्पूर्ण जैन समाज को अपनी ओर आकर्षित किया था।

यह आचार्य श्री का ही प्रभाव था कि जिनकी परम्परा में परमपूज्य 108 आचार्य श्री सुमतिसागर जी महाराज एवं 108 आचार्य कल्प विद्याभूषण सन्मति सागरमहाराज, उपाध्याय मुनि श्री ज्ञानसागर जी आदि के ससंघ दर्शन हो रहे हैं। पूज्य उपाध्याय मुनि ज्ञानसागर जी के दर्शन से उनकी मुख्य परम्परा, गुरू की छवि, वात्सल्य, निस्पृहता, ज्ञान की गंभीरता और उनकी उत्कृष्ट चर्या का ज्ञान हो जाता है।

ऐसे महान् आचार्य के लिए मैं भी पूर्ण श्रद्धा के साथ शत शत वन्दन नमन करती हूँ।

ललितपुर **श्रीमती अनन्ती बाई सर्राफ**

निष्कलंक जीवन

आचार्य श्री ने जैनधर्म की पताका एवं गौरव को ऊंचा उठाया। भारत में सर्वत्र विहार करके समस्त भारत को अपनी चरण रज से पवित्र किया। उनकी निष्कलंक दिव्य जीवन चर्या हमारे जीवन को सन्मार्ग प्रदर्शित करेगी। ऐसी महान् विभूति के चरणों में मेरी कोटिशः श्रद्धाञ्जलि।

शाहपुर **सुन्दरलाल जैन**

महान् प्रेरणास्रोत

परमपूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से प्रशान्तमूर्ति, परम श्रद्धेय, प्रातः स्मरणीय 108 आचार्य श्री शान्ति सागर (छाणी) की स्मृति में "स्मृति ग्रन्थ" प्रकाशित किया जा रहा है। निःसन्देह यह एक महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय कार्य है। यह ग्रन्थ सांसारिक जीवों को कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करेगा। आचार्यश्री हम सभी के लिये महान् प्रेरणा स्रोत तथा संसार के अज्ञान रूपी अन्धकार को नाश करने के लिए सूर्य के समान थे।

मैं उन महान् दिव्य विभूति के श्री चरणों में शत शत नमन करते हुए उन महान् दिव्यात्मा को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

शाहपुर जि. मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) **राकेश चन्द जैन**

समाधि-साधक

आचार्य श्री शान्ति सागर जी महाराज 'छाणी' ने दुनिया के सामने अहिंसा और अपरिग्रह की जो अमिट छाप छोडी है, वह सदा स्मरणीय रहेगी। उन्होंने समाधि साधना के समर में विजय प्राप्त कर इस भूमि को पावन और मोक्षमार्ग के पथ को सरल बनाया। उनके अनुरूप अपनी प्रवृत्ति को धर्ममय बनाना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

मैं पुनः पुनः अपनी श्रद्धाञ्जलि उनके चरणों में अर्पित करता हूँ।

शाहपुर मुजफ्फरनगर **कमल कुमार जैन**

श्रद्धाञ्जलि

आचार्य श्री हमारे देश के उन महान् सन्तों में से एक थे, जिनका जन्म देश, जाति एवं धर्म के उत्थान के लिए हुआ था। जब जैन समाज अंधेरे में भटक रहा था और अपने पृथक् अस्तित्व को खोने की स्थिति में था, तब आचार्य श्री एक सूर्य के समान उदित हुए और धर्म की ज्योति चारों दिशाओं में छिटकायी। उन आचार्य श्री के चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित है।

शाहपुर मुजफ्फरनगर **दीपक जैन**

शत-शत वन्दन

परम वीतरागी आचार्य शान्ति सागर जी छाणी महाराज के प्रति सारा दिगम्बर जैन समाज भक्ति एवं श्रद्धा से ओत-प्रोत है। राजस्थान में छाणी महाराज ने निर्ग्रन्थ परम्परा को पुनर्जीवित किया और दिगम्बर मुनि कैसे होते हैं, उनका आहार, उनकी चर्या, विहार एवं उपदेश कितने प्रभावक होते हैं, इन सबका उन्होंने अपने पावन जीवन से बोध कराया। वे सिंहवृत्ति के धारक साधु थे और अपनी चर्या से सबको प्रभावित कर लेते थे। वे ज्ञानी थे, ध्यानी

थे तथा कितने ही ग्रन्थों के निर्माता थे। वे हमारे बीच में नहीं हैं, लेकिन उनका पावन जीवन आज भी हमें स्वपर का बोध कराता है। सुपथ पर चलने का पाठ पढ़ाता है। भगवान् महावीर एवं उनके पश्चात् होने वाले सभी अचार्यों का स्मरण कराता है।

ऐसे परम पावन वीतरागी सन्त के चरणों में मेरा शत-शत वन्दन है।

जयपुर **नरेन्द्र कुमार कासलीवाल**

प्रभावक आचार्य

जब मैंने सुना कि आचार्य श्री शान्ति सागर जी महाराज छाणी का स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, तो मुझे बडी प्रसन्नता हुई। आचार्य श्री अपने युग के महान् प्रभावक आचार्य थे। उन्होंने स्वयं की प्रेरणा से मुनिलिंग धारण किया। और उनको महान् सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने श्रमण धर्म का प्रशस्त स्वरूप देश एवं समाज के सामने रखा।

ऐसे महान् तपस्वी आचार्य श्री के चरणों में शत-शत वन्दन करता हूँ।

महावीर नगर जयपुर **सुरेन्द्र कुमार जैन बाकलीवाल एम.ए.**

निस्परिग्रही साधक

परम श्रद्धेय आचार्य शान्ति सागर जी छाणी स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन निःसंदेह ही एक प्रशंसनीय कदम है। आचार्यों एवं जैन सन्तों के जीवन पर जितना प्रकाश डाला जावे, वही कम रहेगा। आचार्य शान्तिसागर छाणी महाराज तो अपने समय के युग पुरुष थे, उन्होंने भगवान् महावीर की अहिंसा, अनेकान्त एवं अपरिग्रह का जितना प्रचार किया और अपने निर्ग्रन्थ जीवन से तत्कालीन समाज को अहिंसक मार्ग पर चलाया। उनका जीवन प्रशस्त, पूर्ण निष्परिग्रही था। ऐसे महान् सन्तों पर जितना भी साहित्य प्रकाशित होगा, वही कम रहेगा। मैं उनके चरणों में पूर्ण श्रद्धा के साथ नमन करती हूँ।

जयपुर **सुशीला बाकलीवाल**

महान् दिगम्बराचार्य

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विस्मृत दिगम्बर मुनि परम्परा को पुनर्जीवित करने वालों में छाणी वाले आचार्य शान्तिसागर जी महाराज का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। आचार्य श्री स्वयं दीक्षित मुनि थे, इससे उनके वैराग्य परिणामों की उच्चता देखी जा सकती है। उन्होंने अनेक उपसर्गों का सामना किया और सभी में उनकी विजय हुई। उनकी वीतरागी मुद्रा के कारण उन पर चलायी हुई मोटर भी स्वयमेव रुक गई।

आचार्य श्री ने अपने जन्म से राजस्थान की भूमि को पावन किया। तथा यहाँ के जन-जन में अहिंसा एवं अनेकान्त को जीवन में उतारने पर बल दिया।

ऐसे महान् आचार्य श्री के चरणों में मेरा शत-शत वन्दन है।

बून्दी **निर्मल कुमार कासलीवाल**

युग पुरुष

परमपूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी युग पुरुष थे। आचार्य श्री ने सुषुप्त जैन समाज में जागृति पैदा की थी तथा विलुप्त हुए मुनि धर्म को धारण कर अपनी वीतराग मनोवृत्ति का परिचय दिया था। वे साहसी एवं सिंहवृत्ति के साधु थे। ऐसे प्रशान्तमूर्ति, घोरतपस्वी आचार्य श्री के चरणों में मैं अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूँ।

बलवीर नगर, दिल्ली **इन्द्रमल जैन**

संयम की प्रतिमूर्ति

उत्तर भारत में श्रमण संस्कृति के पुनरूत्थापक, प्रशम मूर्ति आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज, त्याग, तपस्या एवं संयम की प्रतिमूर्ति थे। आपने भारत वर्ष में ज्ञान एवं संयम की नई ज्योति जगाई। आज भी आपकी परम्परा के अनेक तपस्वी सन्तों का समागम समाज को प्राप्त हो रहा है। आचार्य श्री शान्ति सागर छाणी स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन के इस ऐतिहासिक अवसर पर मैं अपनी विनयांजलि आचार्य श्री के चरणों में अर्पित करता हूँ।

पंकज कुमार जैन
चार्टर्ड इंजीनियर

बुढाना (मुजफ्फरनगर) 251 309

बेमिशाल सन्त

परमपूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज के शाहपुर (उ. प्र.) चातुर्मास के पावन अवसर पर स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन का अभूतपूर्व निर्णय लिया गया। आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध करने हेतु युवकों के विभिन्न दल दूर-दराज स्थानों पर गये। आचार्य श्री जी के व्यक्तित्व एवं आचार अपने आप में बेमिशाल थे। स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन के शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

बुढाना (मुजफ्फरनगर) उ.प्र.

हंस कुमार जैन

मोक्ष-मार्ग के पथिक

आचार्य श्री छाणी की स्मृति में स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन से न केवल आचार्य श्री की सेवाओं एवं त्याग की स्मृति स्थायी रहेगी, अपितु उसका अध्ययन करने वालों को उससे प्रेरणा भी मिलेगी।

आचार्य श्री के विशाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व का प्रभाव देश के जन-जन के हृदय में था। सम्पूर्ण भारत में आपने धर्म ध्वजा फहराई, समाज में फैली हुईं कुरीतियों को दूर किया तथा नगर-नगर में नव चेतना जागृत की तथा अनन्त भव्य जीवों का कल्याण करते हुए सर्वत्र निर्बाध विहार किया। आपने समाज में संगठनात्मक सूत्र का बीजारोपण किया। जिससे जैन समाज का परिचय विश्व की अन्य समाज के समक्ष क्षितिज पर आया।

धर्म की पावन गंगा बहाने वाले उस तपःपूत आत्मा के चरणों में मेरी हार्दिक शतशः श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पित हैं।

शाहपुर, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) **अकलंक कुमार जैन**

श्रमण-परम्परा के उन्नायक

परमपूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी के स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन के शुभावसर पर मैं अपनी विजयांजलि पूज्य आचार्य श्री के चरणों में सादर समर्पित करता हूँ। पू. आचार्य श्री के बारे में अभी कम ही लोगों को विस्तार से ज्ञात है। ग्रन्थ के प्रकाशन से यह एक कमी पूरी हो सकेगी। इस शताब्दी में श्रमण परंपरा को जीवित बनाये रखने में उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। उनके माध्यम से जैनधर्म की महती प्रभावना हुई है।

ग्रंथ प्रकाशन पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

जैन नर्सिंग होम, मैनपुरी **(डा.) सुशील जैन**

असाधारण तपस्वी

परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर जी छाणी अपने समय के दिगम्बर साधु, कठोरतम तपस्या के साधु हो गये हैं। मैं अपने ग्राम के वृद्ध पुरुषों से सुनती आई हूँ कि महाराज श्री जब चन्देरी में विराजमान थे, तब ज्येष्ठ मास की खरी दुपहरिया में खन्दार जी के विंध्य शिखर पर चार-चार घन्टे योग धारण कर सामायिक करते थे। हस्तपुट में नीरस आहार लेने वाले परम ऋषि के श्री चरणों में विनम्र श्रद्धा सुमन समर्पित हैं।

खरगौन (म.प्र.) **सौ. प्रज्ञा जैन**

ते गुरु मेरे उर वसो

संसार के कारागार से मुक्ति दिलाने वाले गुरू ही होते हैं। ये सद्-गुरू प्राणियों को कुमार्ग से हटा कर सुमार्ग पर लगाते हैं। ऐसे परमपूज्य गुरू आचार्य श्री शान्तिसागर जी (छाणी) ने बीसवीं सदी के प्रथम चरण में दिगम्बर मुद्रा को धारण कर स्व-पर कल्याण किया तथा संसारी प्राणियों को मोक्षमार्ग का उपदेश देकर सन्मार्ग में लगाया, उनके पुनीत चरणों में मेरी सभक्ति श्रद्धाञ्जलि समर्पित है। गुरुवे नमः!

सौ. शांति देवी "प्रभाकर"

अचल साधक

महान् तपस्वी, घोर संयमी, परम चारित्र-साधक, सरल स्वभावी आचार्य श्री 108 शान्ति सागर छाणी महाराज जी ने ही आर्ष परम्परा को जीवित रखा। वह अनेक प्रकार के उपसर्गों के आने पर भी दृढ़ रहे। विचलित नहीं हुए। ऐसे अचल साधक के प्रति किसका हृदय असीम श्रद्धा से नत नहीं होगा? अतः ऐसे गुरू के चरण कमल वन्दनीय हैं। चरण रज धरणीय है। चरण चिह्न अनुसरणीय हैं। सम्यक् मार्गदर्शक हैं, ऐसे चरण-कमलों में भक्ति पूर्वक कोटि-कोटि शत शत नमन है।

ललितपुर **कपूर चन्द जैन**

दृढ़तपस्वी

जिस समय मुनियों का अभाव सा हो गया था, उसी समय एक साथ दो सूर्यों का उदय हुआ। एक दक्षिण में जो कि चारित्र चक्रवर्ती आचार्य 108 श्री शान्तिसागर जी के नाम से विख्यात थे, दूसरे छाणी (राजस्थान) में जो कि प्रशममूर्ति आचार्य 108 श्री शान्ति सागर जी छाणी के नाम से प्रसिद्ध थे। जिनको सभी ने विस्मृत कर दिया था, ऐसे छाणी जी के विस्मृत व्यक्तित्व को उजागर करने का श्रेय परमपूज्यं उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज को है, जिन्होंने उनके अनूठे व्यक्तित्व को प्रकाश में लाकर जन-जन को परिचित कराया।

आप अडिग आस्थावान तथा दृढ़तपस्वी थे। ऐसे महाराज श्री के चरणारविंद में हम अपनी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

सागर (म.प्र.) **गुलाबचन्द, पटनावाले**

जैन संस्कृति के सन्देशवाहक

आध्यात्मिक जगत् में श्रमण संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने में दिगम्बर जैनाचार्यों का विशेष योगदान रहा है। जैन संस्कृति के सन्देशवाहक बाल ब्रह्मचारी दिगम्बर जैनानार्य श्री 108 शान्तिसागर जी छाणी ने 19वीं सदी में लुप्त प्रायः दिगम्बर जैन मूल परम्परा को अपने तप की साधना से, ज्ञान के प्रकाश से तथा संयम के प्रताप से पुनर्जीवित किया। तथा अनेक भव्य आत्माओं के लिये मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

ऐसे महान् आध्यात्मिक एवं ऐतिहासिक युग-पुरुष को शत-शत नमन।

रामहपुर (उ० प्र०) **बालेश जैन**

प्रशममूर्ति

प्रशम-मूर्ति आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी की जन्म जयन्ती तथा दीक्षा दिवस समारोह, परम श्रद्धेय उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज की सत्प्रेरणा से जिस प्रकार हम शाहपुर वासी मनाते हैं। उसी प्रकार सम्पूर्ण भारत में मनाई जाये। यही मेरी मनोकामना है। आचार्य श्री के चरणों में सादर श्रद्धाञ्जलि समर्पित है।

शाहपुर मण्डी, मुजफ्फरनगर **जिनेन्द्र कुमारजैन**

यशस्वी श्रमण

19वीं शताब्दी तथा उससे पूर्व कई शताब्दियों में, जब कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में दिगम्बर जैन मुनिराजों का अभाव सा हो गया था, लगता था कि कहीं दि. जैन मुनिराजों की परम्परा लुप्त ही न हो जाए, ऐसे समय में 19वीं शताब्दी के अंतिम भाग में दि. जैन मुनि परम्परा में मानों दो सूर्य का उदय हुआ। एक दक्षिणी भारत में परमपूज्य 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (दक्षिण) और दूसरे उत्तरी भारत में पर पूज्य 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी राजस्थान।

दोनों ही आचार्यगण ने इस 20वीं शताब्दी के प्रथम चरण में जहां विलुप्त सी होती हुई मुनि परम्परा को नवजीवन प्रदान किया, वहाँ सम्पूर्ण भारत को दिगम्बर जैनधर्म के प्रकाश से आलोकित किया और सन् 1933 में ब्यावर (राजस्थान) में एक साथ चातुर्मास करके तो दोनों महान् आचार्यों ने मानो चौथे काल का ही दृश्य उत्पन्न कर दिया था। धर्म के इतिहास की यह एक उल्लेखनीय तथा स्मरणीय घटना थी।

परमपूज्य 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) ने सन् 1923 में मुनि दीक्षा लेकर 22 वर्ष तक संपूर्ण उत्तरी तथा मध्य भारत में विहार किया और जन-जन को धर्म के मार्ग पर लगाया। आचार्य श्री के

मधुर एवं प्रभावी उपदेश जैन-अजैन, वृद्ध, बाल,-युवा, जो भी सुनता, धर्ममय हो जाता।

ऐसे यशस्वी एवं परम वीतरागी आचार्य 108 श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी के महान् उपदेशों एवं उनके पावन जीवन की स्मृति को युगों-युगों तक बनाये रखने के लिए इस स्मृति ग्रंथ के प्रकाशन की योजना निश्चय ही प्रशंसनीय है। इस ग्रंथ के माध्यम से आचार्य श्री का पावन जीवन हमें तथा भावी पीढ़ियों को युगों-युगों तक धर्म की ओर प्रवृत्त करता रहेगा।

परमपूज्य आचार्य श्री ने जिस प्रकार अपने मनुष्य-भव को सार्थक बनाकर भव्य प्राणियों का कल्याण किया, ऐसा ही सुयोग जीवन में हमें भी प्राप्त हो। इसी भावना के साथ मैं आचार्य श्री के पावन चरणों में अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

मेरठ **सुकुमार चन्द जैन**

एक संस्मरण

सम्यक् साधना के साधक आचार्य श्री...

महान् आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी इस सदी के मुनि परम्परा के चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी दक्षिण के समकालीन आदि सन्त हैं। भगवंत समन्त भद्र की "ज्ञान-ध्यान-तपोरक्त" की उक्ति के यह साकार रूप थे। अपार तपः साधना, अगाध ज्ञान और आत्मोत्कर्ष की ओर ले जाने वाला सातिशय उन्नत ध्यान के परम प्रभावी सन्त थे।

एक दिन मैंने अपनी ८५ वर्षीय वृद्ध माँ से यह प्रकरण सुना था कि आज से ७० वर्ष पूर्व विक्रम सम्वत् १६८२ में ग्रीष्म का समय था। चारों ओर भयंकर आताप से सभी जीव दुःखी थे। पृथ्वी दिन में भीषण गर्मी के कारण आग उगलती सी महसूस हो रही थी। ऐसे समय में अचानक आसपास के ग्रामों में बिजली की तरह यह खबर फैली कि परम तपस्वी महान् ज्ञानी सन्त शिरोमणि आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी बुन्देल खण्ड के तीर्थों की वन्दनार्थ आए हैं। आज जैसे सुलभ वाहन, साधन एवं सड़क मार्ग नहीं थे। जहाँ-जहाँ आचार्य श्री का पद विहार हो रहा था, ग्रीष्म ऋतु भी उनके पाद-

प्रक्षालन की भावना से असमय में वर्षा कर उनके अपार संयम-साधना का प्रभाव जीवों तक पहुँचा रही थी। वह एक ऐसा सुखद संयोग था जबकि आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज एवं मुनि श्री अनंत सागर जी के पद विहार की चरण रज से बुन्देल खण्ड की भूमि धन्य हो रही थी। उस युग में मुनित्रय के दर्शनार्थ नगर-नगर और गाँवों-गाँवों के श्रावक गण हजारों-हजारों की संख्या में आए और उन सन्तों की चरणरज मस्तक पर लगाकर धन्य हुए। आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी ज्ञान और तप के परम प्रभावी सन्त थे। बड़े-बड़े विद्वान् उनके संघ में दुर्लभ ग्रंथों का वाचन कर उनके अभीक्ष्ण ज्ञान को प्रवर्धित करने में सहकारी हो रहे थे, यह मुनिगण विद्वानों के प्रति तो अपार धर्मानुराग रखते थे। उनके विद्वत् अनुराग के कारण समीपवर्ती ग्रामों के श्रावकों ने जानकारी दी कि पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी महाराज की निवास भूमि मड़ावरा में श्री सिंघई गुलजारी लाल जी जैन सौंरया उद्भट विद्वान् हैं, जो वर्णी जी के सान्निध्य में समयसार जैसे महान ग्रंथ का सूक्ष्मता से विवेचन करते हैं। पूज्य गणेश प्रसाद जी जैसे महान् सन्त ने मेरी जीवन गाथा में एक प्रसंग में लिखा है कि सर्वप्रथम मुझे 1919 में श्रीमान् पं० सिं० गुलजारी लालजी जैन सौंरया ने भगवंत कुन्दकुन्द देव की मंगलवाणी समयसार का वाचन कर सूक्ष्म प्रतिपादन से मुझे प्रभावित किया। पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी भी आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी के परम भक्त रहे हैं उन्हें गुरु तुल्य मानकर जीवन भर मार्गदर्शन प्राप्त करते रहे। मुनित्रय के मड़ावरा आने पर मेरे स्वर्गीय पिता श्री मान् पं० गुलजारी लाल जी जैन सौंरया ने उनकी भक्तिपूर्वक अगवानी की थी और 4-5 दिन तक लगातार 8-8 घंटे तक अध्यात्म की चर्चा करते रहे। मुनिराजों के मध्य सिद्धान्त की गहन चर्चा करने से उस युग में मेरे पिताजी का गौरव क्षेत्रीय समाज में व्यापकता से फैल गया। महान् पुरुषों एवं सद्गुरुओं का आशीर्वाद ही ऐसा होता हैं। वह एक ऐसा समय था जब युगों युगों के बाद किसी निर्ग्रन्थ गुरुओं के दर्शनों, उनकी अमृतमय वाणी को सुनने का सौभाग्य बुन्देलखण्ड को प्राप्त हुआ था। आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी एवं आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज ने अपनी तपः साधना एवं सम्यक् प्रभावी वाणी से समाज पर जो अमिट प्रभाव डाला, आज भी नगर-नगर के वृद्धजन उस स्वर्णिम घड़ी की स्मृति कर उन महान् साधकों के चरणों में नत हो जाते

हैं। जयवंत रहें वह आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी महाराज जिनके पावन आशीर्वाद से उनकी महामंगल मय परम्परा का भव्यता एवं अश्रुणता पूर्वक निर्वाह हो रहा है। उनकी पावन परम्परा में वर्तमान में अनेक साधुसन्तों के बीच उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज जैसे युग के श्रेष्ठतम प्रभावी हैं जिन्होंने जैनधर्म, जैन संस्कृति और जिनवाणी को प्रकाशवान् तो किया ही जैन समाज को गौरवान्वित किया। अनेक सन्तों को जन्म देकर आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी महाराज की महान् वीतरागी परम्परा को जयवंत किया है। वर्तमान शताब्दी के महान् सन्त पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने आचार्य श्री के विस्मृत व्यक्तित्व को इस स्मृति ग्रंथ के रूप में प्रकाश मानकर अपनी पावन श्रद्धा भक्ति का जो अर्घ चढ़ाया है, अवश्य ही सम्पूर्ण समाज उपाध्याय श्री के इस उपकार के प्रति युगों–युगों तक कृतज्ञ रहेगी।

टीकमगढ़ (म०प्र०)
श्रीमहावीर जयंती 94

प्रतिष्ठाचार्य पं० विमलकुमार जैन सोंरया
सम्पादक – वीतरागवाणी मासिक

श्रद्धा-सुमन एवं श्रद्धाञ्जलियाँ

विद्वत् वर्ग

श्रद्धा-सुमन

मुझे जहाँ तक स्मरण है, कि आचार्य शान्तिसागर जी महाराज छाणी का एक चातुर्मास बुन्देलखण्ड के नगर ललितपुर में हुआ था और एक कुछ दिनों के बाद बुन्देलखण्ड के ही नगर खुरई में हुआ था। उन अवसरों पर मुझे महाराज के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वहाँ पर मैंने उनके जो प्रवचन सुने थे, उनमें वाणी का ओज था, विषय की गंभीरता थी, इससे उनके प्रति मेरी अपार श्रद्धा जागृत हुई थी। उस अवसर पर जो जो तात्त्विक चर्चा हुई थी, उसमें उनके तात्त्विक ज्ञान की गहरी झलक दिखाई दी थी।

मैं उनके प्रति अगाध श्रद्धा प्रकट करता हूँ।

म.प्र. 470 113 **पं. वंशीधर शास्त्री, बीना**

उनके प्रथम दर्शन

68 वर्ष पूर्व, सन् 1923 की सुखद बात है, जब मैं ग्यारह वर्ष का था और प्राईमरी स्कूल, ग्राम सौरई (ललितपुर) में कक्षा तीन में पढ़ता था। ज्ञात हुआ कि ग्राम सादूमल (ललितपुर) में, जो सौरई से 6 मील दूर था, एक दिगम्बर मुनिराज विहार करते हुए पधारे हैं।

यह वह समय था, जब किसी दिगम्बर मुनिराज के दर्शन नहीं किये थे और न वे इस प्रदेश में इससे पूर्व आये थे। अतएव स्वभावतः उनके दर्शन की बाल-सुलभ उत्कण्ठा हुई और एक साथी (स्व. सि. हल्केलाल जी) को तैयार कर स्कूल से छुट्टी लिये बिना उनके दर्शनार्थ स्कूल से भाग निकले।

रास्ते में एक ऐसी अविस्मृत घटना घटित हुई जो आज भी ताजी है। हुआ यह कि हम दोनों ने सोचा कि नास्ता कर लिया जाये। एक कुए पर पहुंचे और कुए से पानी निकालने के लिए लोटे को डोर में फंसा कर कुए में डाला, संयोग से डोर हाथ से छूट गई और लोटा तथा डोर दोनों कुए

में गिर गये। उन्हें कुए से निकालने का कोई साधन न देख कर हम दोनों नास्ता किये बिना सादूमल चले गये।

उस समय वहाँ सिं. पूरण चन्द जी के यहां मुनिराज का आहार हो रहा था। यह सौभाग्य था कि एक दिगम्बर मुनिराज को हमने पहली बार दिगम्बरचर्या के अनुसार आहार लेते देखा। वे खड़े-खड़े अपने हाथों की अंजुली से आहार ग्रहण कर रहे थे और आस-पास के ग्रामों से आये सैकड़ों भाई-बहन बड़ी श्रद्धा से मौनपूर्वक उनका आहार देख रहे थे। वह दृश्य बड़ा अनुपम था।

मुझे अन्तः से बड़ी प्रसन्नता हो रही थी। आहार हो चुकने के बाद मुनिश्री मंदिर जी में चले गये। सामायिक के अनन्तर दो बजे से मध्याह्न में मुनिराज का धर्मोपदेश हुआ। सभी को बड़ा हर्ष हो रहा था।

वे मुनिराज थे — श्री 108 मुनि शान्तिसागर जी छाणी महाराज। हमें हर्ष है कि आज 70-75 वर्षों के बाद समाज बड़ी श्रद्धा के साथ उन्हें स्मरण कर रही हैं और उन्हीं प्रशममूर्ति आचार्य शान्तिसागर छाणी महाराज का स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित कर रही है। इसके सत्प्रेरक उपाध्याय श्री 108 मुनि ज्ञान सागर जी महाराज हैं, जिन्होंने उनका स्मरण कराया।

हम उनके चरण-कमलों में परोक्ष श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए बड़े गौरव का अनुभव कर रहे हैं वे वस्तुतः प्रशममूर्ति एवं शान्ति की मूर्ति थे। मंगल भूयात्।

बीना (म.प्र.) 7 अक्टूबर 1991, **(डॉ.) दरबारीलाल कोठिया, न्यायाचार्य**

श्रद्धाञ्जलि

प्रशममूर्ति परमपूज्य आचार्य श्री शान्ति सागर जी छाणी स्मृति ग्रंथ के लिए शुभ कामनाएं या श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मैं उनके श्री चरणों में आदर श्रद्धा और भक्ति सहित नमन करता हूँ, और इस ग्रंथ के द्वारा उनके जीवन का इतिहास प्रगट होगा और इतिहास सदैव ही प्रमाण और साक्षी माना जाता है। इतिहास संस्कृति का संरक्षक होता है, हमारे आराध्य देवशास्त्र गुरु हैं, आज हमें जो पूज्य मुनिवरों के चरण पूजन का, उनकी निकटता

पाने का और सान्निध्य में रहने का सौभाग्य मिला है, वह इन्ही महान् आत्माओं के त्याग, तपस्या का फल है, जिस वर्ष पूज्य शान्तिसागर जी महाराज छाणी को आचार्य पद की प्राप्ति हुई, संयोग से उसी वर्ष मैंने यह वर्तमान पर्याय पाई थी, बालक का नाम केवलदास सही रखा गया क्योंकि कालान्तर में उन्हें केवली का पद प्राप्त होना है, मेरा सौभाग्य है कि मैंने सन् 88 का और 89 में गढ़ी में हुई सभाओं में भाग लिया और उन प्राचीन मंदिरों के दर्शन किये, बांसवाड़ा और सागवाड़ा के विशाल मंदिरों के दर्शन और प्रवचन किये, इस ग्रन्थ के माध्यम से उनकी शिष्य परम्परा का ज्ञान जन-जन तक पहुँचेगा।

इस महान् ग्रन्थ के प्रेरणा स्रोत परम पूज्य उपाध्याय 108 मुनिवर ज्ञानसागर जी के चरणों का सान्निध्य सन् 1976 से जब वे क्षु. गुण सागर जी के रूप में थे सबसे अधिक हुआ है, उन दिनों की स्मृतियाँ लिखने बैठूँ तो एक पुस्तिका बन जायेगी, संयोग भी कैसे बनते हैं, 24 मई 90 को बुढ़ाना में अ.भा.दि. जैन शास्त्री का निर्विरोध अध्यक्ष निर्वाचित हुआ तब भी उन्हीं के चरणों का सान्निध्य प्राप्त हुआ था, कैसी स्मृतियाँ हैं, कैसे संयोग है, इस ग्रंथ के निमित्त को पाकर प. पू. आ. श्री शान्ति सागर जी के श्री चरणों में बारम्बार नमन करता हूँ।

६.७.६२ **सागरमल जैन**

सिद्धान्तपथानुगामी

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में जब उत्तर भारत में जैन मुनियों की परम्परा विच्छिन्न हो गयी थी, उस समय (सन् 1888) पानी छानकर पीने वालों की नगरी छाणी (छान-छानी-छाणी) में केवलज्ञान के दास केवलदास नामधारी भागचन्द और माणिक बाई की आंखों के तारे एक महापुरुष का अविर्भाव हुआ, जिसने सन् 1923 में दीक्षित होकर न केवल मुनि परम्परा को जीवन्त किया, अपितु समस्त जगत् को शान्ति का संदेश देते हेतु शान्तिसागर इस सार्थक नाम को प्राप्त किया।

यद्यपि सागर का जल खारा होता है और उसके पास आया प्राणी प्यासा ही रह जाता है, परन्तु शान्तिसागर एक ऐसा सागर था, जिसके पास आने

वाला प्राणी परम पवित्र अमृतरस का पान करके असीम शान्ति को प्राप्त कर लेता था। "पानी छानकर पीना चाहिए" इस संदेश को प्रसारित करने के लिए "छाणी" इस उपाधि को भी अपने नाम के साथ जोड़ लिया।

सदाविहारी, रत्नत्रयधारी, प्रशममूर्ति, अहिंसानुरागी, स्याद्वाद-अनेकान्त सिद्धान्तपथानुगामी शान्तिसागर से एक धारा सूर्यसागर की प्रकट हुई, जो अन्य अवान्तरधाराओं (मुनि परम्पराओं) में विभक्त होती हुई सुमति सागर के बाद ज्ञानसागर में समाहित हुई।

ऐसे शान्तिपथ प्रदर्शक आचार्य शांतिसागर जी से हमें भी सुदर्शन सम्यग्दर्शन के साथ परम शान्ति और केवल ज्ञान की उपलब्धि हो, एतदर्थ अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए अपने आप को धन्य समझता हूँ।

संस्कृत विभाग — **डॉ. सुदर्शन लाल जैन**
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

स्वानुभूतिक छाणी जी

आचार्य शान्तिसागर जी छाणी एक स्वयंभू दिगम्बर जैन तपस्वी थे, जिन्होंने विकट परिस्थिति में भी तीर्थंकर आदिनाथ की प्रतिमा के समक्ष स्वतः मुनि दीक्षा ग्रहण की और मई, 1944 तक निर्बाध स्वानुभूतिपूर्वक साधनारत रहकर आत्मकल्याण किया। उनकी प्रशान्त तेजस्विता और आभा ने राजस्थान, बिहार आदि प्रदेशों के अंचलों में जिस अध्यात्मरस को प्रवाहित किया, वह अपने आप में अनूठा रहा है। उनके समग्र योगदान का स्मरण करते हुए उन्हें हमारी विनम्र श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत है।

अध्यक्ष, पालि प्राकृत विभाग — **डॉ. भागचन्द जैन भास्कर**
नागपुर विश्वविद्यालय
नागपुर

दिव्यदृष्टा

परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर जी महाराज छाणी युगचेतना के प्रतीक दिव्यदृष्टा महामुनि थे। उन्होंने अवरुद्ध मुनिपरम्परा को पुनर्प्रवर्तित करने के लिए स्वतः मुनिदीक्षा लेकर स्वकल्याण के साथ–साथ परकल्याण भी किया। वे चारित्र के परिपालन में अत्यन्त दृढ़ आचार्य थे। स्मृतिग्रन्थ के प्रकाशन के अवसर पर उनके पावन चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

रीडर एवं अध्यक्ष – अर्थशास्त्र विभाग, **डॉ. सुपार्श्व कुमार जैन**
दि. जैन कालेज
बड़ौत (उ.प्र.)

सौम्यता एवं दृढ़ता की प्रतिमूर्ति

वीतरागता के वैभव से मण्डित आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज "छाणी" ने दिगम्बर जिनधर्म की महती प्रभावना की। उन्होंने संयम को अंगीकार कर मनुष्य जीवन को सार्थक बनाया। इस संसरण शील संसार में कुछ ही आत्माएं ऐसी होती हैं जो भौतिक जीवन के समाप्त होने पर भी समाप्त नहीं होती हैं। काल का आवरण उन्हें नहीं मिटा पाता। जिनकी स्मृतियाँ काल के आवरण से आवृत नहीं हो सकीं ऐसे आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज सम्पूर्ण मानव समाज के लिए आदर्श थे। उन्होंने अपने साहित्य एवं उपदेशों के द्वारा समाज को बहुत कुछ दिया। सम्प्रति उनके आचार-विचार की परम्परा प्रवहमान है। आचार-विचार का तादात्म्य सम्बन्ध है। आचार की शुद्धि विचारशुद्धि का कारण है और विचार शुद्धि आचार शुद्धि का कारण हैं। आचार्य श्री उभय विशुद्धियों से विशुद्ध थे।

आचार्य श्री का जीवन पवित्रता से ओत-प्रोत था। उनके विचार इतने

पवित्र एवं स्पष्ट थे कि उनसे जन-जन प्रभावित था। इसीलिए उन्होंने सम्पूर्ण बागड़ प्रान्त से प्रत्येक वर्ग के मानव को दिगम्बर जिनधर्म के प्रति श्रद्धावान् एवं विनयशील बना दिया था। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि मनुष्य जीवन की सार्थकता रागरंगो को पाकर भी इनसे अनासक्त रहने में है। अनियंत्रित विषय सेवन से शान्ति, क्रान्ति, स्मृति, बुद्धि, ज्ञान आदि गुणों का ह्रास होता है।

आत्म साधना के महान साधक आचार्य श्री शान्तिसागर "छाणी" के गुणों को शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता नहीं है। अतः संयम प्रतिष्ठित उन आचार्यवर्य के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हुआ यही भावना करता हूँ कि उनके आचार-विचार की अविरल धारा सतत प्रवाहित रहे।

महामंत्री – अ. भा. दि. जैन **डॉ. श्रेयान्सकुमार जैन**
शस्त्रि–परिषद
बड़ौत

संस्मरण

मानव का स्वभाव विस्मरणशील है। पूज्य 108 आचार्य शांतिसागर जी छाणी (राजस्थान) को जैन समाज भूल सा चुका था। उसे बुढाना (मु. नगर, उ.प्र.) का आभार मानना चाहिए, जहां के जैन समाज ने प्रस्तुत आचार्य श्री की स्मृति ताजी कर दी और इसके स्थायित्व के लिए आपके नाम से ग्रन्थ की माला स्थापित कर दी तथा तुरन्त ही प्रकाशन भी चालू कर दिया। प्रथम पुष्प के रूप में प्रकाशित प्रभाचन्द कृत आराधना कथा प्रबन्ध के प्रारम्भ में पू. आचार्य शान्तिसागर जी छाणी का सचित्र संक्षिप्त परिचय भी प्रकाशित किया गया है।

इन पंक्तियों के लेखक ने अपने बचपन में 108 आचार्य शान्तिसागर जी छाणी के दर्शन किये थे। उनकी छवि और भक्तों की अपार भीड़ अब तक मेरी चित्तभित्ति पर अंकित है। पैंसठ-सत्तर वर्षों से भी पहले की बात है। ललितपुर (उ.प्र.) में आपका चातुर्मास हुआ। आपके साथ दो मुनि और थे-अनन्त सागर जी और सूर्य सागर जी। आप तीनों को स्वाध्याय कराने के लिए सर सेठ हुकमचन्द जी ने इन्दौर से अपने विद्यालय के प्राचार्य

न्यायालंकार पं. वंशीधर जी को भेजा था।

उत्तर प्रदेश में इन तीन मुनियों के दर्शन पहली बार ही हुए थे। इनसे पहले मुनिराजों के दर्शन कभी किसी ने नहीं किए थे। उनके दर्शनों के लिए देश के कोने-कोने से प्रतिदिन हजारों की संख्या में जैन लोग वहाँ पहुंचते थे।

निम्नलिखित बातों से वहाँ की भीड़ का अनुमान लगाया जा सकता है–

1. एक खिड़की से टिकट देने में कठिनाई होने से स्टेशन के टिकट घर में दूसरी खिड़की बनवाई गई थी, जो वहां (ललितपुर में) अभी तक मौजूद है।

2. तीनों मुनिराज ललितपुर के दि. जैन मंदिर क्षेत्रपाल में, जो बहुत विशाल है-विराजमान थे। मंदिर के बगल में सेठ मथुरादास जी टड़ैया का बहुत बड़ा बगीचा था। वहीं से लोटों में पानी ले-ले कर लोग बाहर के मैदान में शौच जाते थे। हाथ और लोटा धोने-मांजने के लिए बाहर की जिस जमीन से लोग मिट्टी लेते थे, उसमें इतना बड़ा गड्ढा हो गया, जिसने छोटे तालाब का रूप ले लिया। उसमें केवल ज्येष्ठ को छोड़कर शेष ग्यारह मास तक पानी भरा रहता है।

3. बुन्देलखण्ड के तीर्थ क्षेत्रों के दर्शनों के लिए अनेक बसों की आवश्यकता पड़ी तो वहीं (ललितपुर) के मुसलमानों ने अनेक बसें खरीदीं। मुनिराजों के दर्शनों के साथ ही साथ आगुन्तकों को तीर्थ दर्शनों का भी लाभ लगातार चार माह तक होता रहा। जिन्होंने बसें खरीदीं थीं, उन्हें बसों के मूल्य के साथ और भी धन मिल गया था।

चौमासा आनन्दपूर्वक समाप्त हुआ। ललितपुर से तीनों मुनिराज भिन्न-भिन्न स्थानों की ओर विहार कर गये। अन्ततः आयु समाप्त होने पर आनन्दसागर जी का इन्दौर (म.प्र.) से विदेहवास हुआ था, आ. शान्तिसागर जी छाणी का सागवाड़ा (राजस्थान) से तथा आ. सूर्यसागर जी का डालमिया नगर (बिहार) से तीनों को सभक्ति नमन।

जैन विश्व भारती
लाडनूँ

अमृत लाल शास्त्री

अविस्मरणीय प्रभावक आचार्य

उन्नीसवीं शताब्दी में अवरुद्ध हो चुकी निर्ग्रन्थ-परम्परा को पुनः प्रारंभ करने वाले आचार्यद्वय में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (दक्षिण) के समान ही प्रशममूर्ति आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) का महनीय अवदान है। वर्ष 1990 के दशलक्षणप्रवास में व्यावर (राजस्थान) वासियों ने आचार्य श्री के चमत्कारी स्वरूप का जो अतिशय वर्णन मेरे समक्ष किया था, वह आज भी मेरे स्मृति पटल पर चित्रित है। अनेक विद्यालय एवं आश्रमों की स्थापना द्वारा उन्होंने उत्तर भारत पर जो अपना चिरस्थायी प्रभाव डाला, वह अविस्मरणीय है। ऐसे तपस्वी निर्ग्रन्थाचार्य को शत-शत वन्दन करते हुए मैं अपने को धन्य समझ रहा हूँ।

मुझे विश्वास है, इस स्मृति ग्रन्थ के माध्यम से कृतज्ञ जैन समाज उनका स्मरण करेगा तथा उनकी निर्दोष निर्ग्रन्थ परम्परा को आगे कायम रखेगा। स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन के अवसर पर मेरी विनम्र श्रद्धाञ्जलि।

261/3 पटेलनगर

डॉ. जयकुमार जैन
मुजफ्फरनगर

एक मार्ग-दर्शक महामुनि

दिगम्बर मुनियों/आचार्यों के इतिहास में आचार्य शान्तिसागर छाणी महाराज का नाम बीसवीं शताब्दी के मार्ग-दर्शक आचार्यों में गिना जायेगा। इस शताब्दी के दूसरे-तीसरे दशक में, जब दिगम्बर मुनियों का दर्शन प्रायः दुर्लभ था, तब जहां एक ओर आचार्य शान्तिसागर जी का दक्षिण-भारत में उदय हो रहा था, वहीं उत्तर-भारत में आचार्य शान्तिसागर जी छाणी का युग प्रारंभ हो रहा था।

सन् 1905 ईसवी में बनारस विद्यालय की स्थापना करके पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी ने जैन-विद्या की शिक्षा का जो श्री गणेश किया था, बीस

वर्ष बाद उसे बागड़ प्रदेश से लेकर दूर-दूर तक फैलाने में छाणी महाराज का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। उन्होंने जैन समाज की वास्तविक पीड़ा को पहचाना था। अशिक्षा और सामाजिक कुरीतियाँ ही उस समय अभिशाप के रूप में समाज को कैंसर की तरह खोखला बना रही थीं। परस्पर मालिन्य और फूट का कारण बन रही थीं।

स्वयं-प्रबुद्ध और स्वयं-दीक्षित छाणी जी ने अपनी साधना के लिये स्वयं का मार्ग-दर्शन तो किया ही, परन्तु जन-मानस में व्याप्त अनेक कुरीतियों से उबर कर शिक्षा, और खासकर नारी शिक्षा की ओर अग्रसर होने में समाज को भी बड़ी प्रेरणा दी। मांस-भक्षण का त्याग कराने के लिये भी उन्होंने बड़ा श्रम किया। यही कारण था कि उत्तर भारत में उनको बड़ी मान्यता मिली और उस समय के अच्छे-अच्छे विचारकों, विद्वानों और त्यागियों ने उन्हें अपूर्व सम्मान दिया।

छाणीजी के व्यक्तित्व को समग्र इतिहास में रेखांकित करने का यह प्रयास सराहनीय है। गुरू के प्रति अपनी कृतज्ञता घोषित करने के ऐसे प्रयत्नों में हर श्रावक को सहयोगी बनना चाहिये। यही उन मनीषियों के प्रति हमारी सच्ची आदरांजलि है।

सतना — नीरज जैन

वन्दों दिगम्बर गुरुचरण

पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से आज का मानव भौतिकवादी हो गया। भौतिक सुख वृद्धि के लिये उसे अर्थ चाहिए, हर जगह एक ही भावना दिखती है-खूब द्रव्य जोड़ो तातें जग यश छाए जात। द्रव्य संचय में न्याय अन्याय की कल्पना भी मानव भूल गया। हिंसा से, कपट से, छल से, झूठ से धन संचय की लालसा रहती है और धन पाकर और ज्यादा दुखी हो रहा है। आज विज्ञान का युग है। विज्ञान ने हमें भौतिक सुविधाएं तो खूब प्रदान की, लेकिन आत्मशांति तो लुप्त हो गई है। विज्ञान के युग में हर जगह अनैतिकता का वातावरण है। सद्‌गुणों की प्रतिष्ठा एकदम क्षीण होती जा रही है। मन

चंचल और अतृप्त है। इन्द्रियजन्य भोगों की प्रबल लालसा से हम मात्र नामधारी जैन होकर रह गये। जैनों के आचरण से हीन होते जा रहे हैं। पाप करने में भी भीरूता के भाव नष्ट होते जा रहे हैं। सत्य, संयम और सदाचरण की प्रतिष्ठा तिरोहित होती जा रही है। देह अन्न का कीट बन चुका है, इस वातावरण में भी 108 पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी जैसे प्रखर तपस्वियों की पवित्र दिगम्बर निर्दोष साधना आश्चर्य का विषय रही है। महाराज श्री के जीवन से जैन धर्म की महान् प्रभावना हुई। जन-जन का महान् उपकार हुआ है। आज जो कुछ भी यदा–कदा सामाजिक विकास और धार्मिक वातावरण दिखता है, इन्हीं संतों की कृपा का फल है, अगर ये महान सन्मार्ग दर्शक, रत्नत्रयी, प्राणी मात्र के हितैषी, परोपकारी न होते तो राष्ट्र, समाज और धर्म का और पतन हो जाता।

मैं परम पूज्य आ. शान्तिसागर जी छाणी के चरणों में हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

लखनादौन (सिवनी) **आध्यात्मप्रेमी पं. यतीन्द्र कुमार**

पावन स्मृति या पावन श्रद्धाञ्जलि

इस क्षण भंगुर संसार में कौन जन्म नहीं लेता अथवा कौन मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। जन्म-मरण तो संसार में लगा हुआ है। किन्तु जिनके उत्पन्न होने से वंश तथा समाज उन्नति को प्राप्त होता है, तथा जो विषय भोगों से विरक्त होकर रत्नत्रय से विभूषित होते हैं, उनका इस संसार में जन्म लेना सार्थक होता है। इसी प्रकार स्व. परमपूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर (छाणी) जी महाराज ने संसार भोगों से विरक्त होकर रत्नत्रय से विभूषित दिगम्बर दीक्षा को धारण कर अपनी आत्मा सिद्धि के लक्ष्य को प्राप्त किया।

मुझे स्मरण है कि मैं माता जी के साथ सन् 1958 या 1959 में कोडरमा (बिहार) पंचकल्याणक में गया था। माता जी सप्तम प्रतिमाधारी ब्रह्मचारिणी थीं। अपने स्वधन से चौका लगाती थीं। कोडरमा पंचाल्याणक में स्व. पू. श्री 108 मल्लिसागर जी विराजमान थे, जो स्व. आचार्य श्री शान्तिसागर छाणी के परम शिष्य थे। श्री मल्लिसागर महाराज श्री के पास स्व. आचार्य श्री

शान्तिसागर छाणी जी के प्रवचनों की पुस्तक थी, जो उन्होंने मुझे पढ़ने के लिये दी थी। मैं लगभग एक मास तक महाराज श्री के पास रहा। उनके प्रवचनों की छाप आज भी मेरे हृदय पर अंकित है।

स्व. आचार्य श्री शान्तिसागर जी (छाणी) की "प्रवचन" नामक पुस्तक का एक उदाहरण आज भी विद्यमान है जो निम्न प्रकार है :—

"प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक होती है। परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले धर्मों का एक ही वस्तु में होना अनेकान्त है और उस वस्तु स्वरूप को समझने की शैली स्याद्वाद है। उदाहरण की दृष्टि से एक ही वस्तु में अनेक धर्मादि किस प्रकार प्रतिबिम्बित होते हैं। जैसे :-रामचन्द्र जी राजा दशरथ के पुत्र हैं, सीता की अपेक्षा पति हैं, तथा लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की अपेक्षा भाई हैं। रामचन्द्र जी के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें इन अपेक्षाओं को समझना होगा और इसी अपेक्षाकृत कथन को स्याद्वाद कहते हैं।

स्याद्वाद शब्द स्यात्+वाद अर्थात् स्यात् का अर्थ है कथंचित् या अपेक्षाकृत और वाद का अर्थ है कथन करने की शैली अर्थात् अपेक्षाकृत वाक्य या कथन को स्याद्वाद कहते हैं।

एकान्त पक्ष से रामचन्द्र जी को पति ही मानें या पुत्र ही मानें तो बन्धुओं? विवाद की स्थिति खड़ी हो जायेगी।

(— आचार्य शान्तिसागर छाणी जी के "प्रवचन" से साभार)

पूज्य आचार्य श्री की वाणी अत्यन्त ही मृदु थी। वे जिस समय बोलते थे तो सारी सभा मंत्रमुग्ध की तरह उनकी तरफ आकर्षित हो जाती थी, चाहे प्रश्न कितना भी जटिल हो, वे विषय को समझकर बहुत ही सरलता से उसको समझा देते थे। जिस तरह कोयल अपनी वाणी से समस्त प्राणियों का मन वश में कर लेती है, उसी तरह आचार्य श्री की वाणी में मधुरता थी।

आचार्य श्री सिंह के समान निर्भीक थे। बड़वानी में अन्य लोगों के द्वारा मोटर आदि से महान उपसर्ग होने पर भी आप ध्यान में लीन रहे किंचित् भी विचलित नहीं हुए। मोटर आदि का उपसर्ग असफल रहा आप आत्मजयी हुए।

आपके गुणों का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाना है। इस समय में भी इस देश तथा समाज को आज जैसे त्यागी, तत्वज्ञ तथा उत्कृष्ट

आराधना वाले आत्माओं की आवश्यकता है।

ऐसे परम पवित्र प्रातःस्मरणीय आचार्यप्रवर — पू. शान्तिसागर महाराज (छाणी) धन्य हैं। मैं उनके चरणों में उनके गुणों की प्राप्ति हेतु अपनी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ तथा भावना भाता हूँ कि मैं भी भविष्य में उनके पथ का अनुसरण करके अपना कल्याण कर सकूँ।

श्रद्धा सुमन के साथ ....

झिंझाना **पं. जगदीश चन्द जैन शास्त्री**
मुजफ्फरनगर

विश्वबन्द्य चारित्रनायक

परम पूज्य अलौकिक गुणधारक — गुरूवर्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी (छाणी) महाराज मोक्ष मार्ग के अद्वितीय नेता, प्राणी मात्र के सुख के अभिलाषी, हितमित प्रिय वचन के अभ्यासी, सांसारिक पदार्थों की इच्छाओं से रहित थे। पहले दक्षिण भारत की ओर से श्री अनन्त कीर्ति जी महाराज का विहार उत्तर भारत में हुआ। इनके अतिरिक्त और भी मुनि महाराजों का उस समय दक्षिण भारत में होने का साहित्य से पता चलता है। 1927 ई. में आचार्य शान्तिसागर जी महाराज का संघ उत्तर भारत में आया। श्री शिखर जी भी पहुंचा और मुजफ्फरनगर आदि शहरों में होता हुआ दिल्ली पहुँचा।

दूसरा संघ आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी का था, जिसका उस समय चार्तुमास ईडर में हुआ था। श्री छाणी जी एकान्त में ध्यान करने के कारण प्रसिद्ध थे। वह उदयपुर निवासी दशा-हूमड़ जाति के रत्न थे। आपका बहुत ऊँचा संयम था। अंतरंग बहिरंग तप के अभ्यासी और एकान्त में ध्यान, अध्ययन में रत रहने वाले थे। आगम में जो गुरू का लक्षण बतलाया है, वे सब उत्तम लक्षण उनमें पाये जाते थे।

उन आचार्य श्री के चरणों में श्रद्धांजलि सादर समर्पित सहित शतशः नमोस्तु।

मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) **पं. सुमेर चन्द जैन**

ते रिसिवर मइ झाईया

श्रमण संस्कृति में युगों-युगों से अनेक ऐसे अवसर होते आए हैं, जिन्होंने अपने जीवन और दर्शन द्वारा जन-जन को प्रेरणा देने का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया। बीसवीं शताब्दी में आचार्य शान्तिसागर (छाणी) के रूप में ऐसे सूर्य का उदय हुआ, जिसने अपने अनुत्तर जीवन द्वारा जन-जन में जो ज्ञान और चारित्र की किरणें विकीर्ण कीं, वे युगों-युगों तक लोगों को आलोकित करती रहेंगीं। वे तपः शूर, परमसंयमी, ज्ञानी, ध्यानी, वैरागी एवं निस्पृही साधु थे। उन्होंने बीसवीं सदी में क्षीण होती हुई जैन श्रमण परम्परा को आगे बढ़ाने का गुरुत्तर दायित्व सम्पन्न किया। वे युगपुरुष थे। उनका जीवन चरित्र स्वयं में एक काव्य है। उस काव्य से प्रेरणा ग्रहण कर प्राणी जो अपूर्व रस का आस्वादन करता है, वह अनुपमेय है। उनका लोकोत्तर जीवन मेरे जीवन में भी नया प्रभात लाए तथा ऐसे ऋषियों का मैं निरन्तर ध्यान करता रहूँ, इसी भावना के साथ मैं उनके प्रति हार्दिक श्रद्धा अर्पित करता हूँ।

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग — **रमेश चन्द जैन**
बिजनौर (उ.प्र.) — वर्द्धमान कॉलेज

हार्दिक विनयाञ्जलि

बीसवीं शताब्दी में दिगम्बर मुनिपरम्परा के उन्नयन में आचार्य शान्तिसागर छाणी का महनीय अवदान है। उत्तर भारत में मुनि-मार्ग को पुनः स्थापित करने वाले, महान् उपदेष्टा पूज्य आचार्य श्री के चरणों में मेरी हार्दिक विनयाञ्जलि है।

अध्यक्ष संस्कृत विभाग — **डॉ. कपूरचन्द जैन**
के. के. जैन कालेज
खतौली (उ.प्र.)

संस्मरण

हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि-युवा मनीषी परम वीतरागी परम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज की सत्प्रेरणा से प्रशम मूर्ति आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है। इस सत् कार्य के लिये आपका अनुमोदन करते हुए अपने विचार व्यक्त करता हूँ कि :-

"प्रभावशाली व्यक्तित्व अनेक होते हैं किन्तु कुछ व्यक्ति स्वयं की प्रेरणा से जगत में अपना प्रभाव स्थापित करते हैं और कुछ व्यक्तियों का जीवन ही इतना सरल और सहज होता है कि दुनिया उनसे सहज प्रभावित होती है। उनमें-आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी प्रथम चरण के महान तपस्वी एवं दिगम्बराचार्य साधु थे। वे शिशुवत्, निर्विकार उन्मुक्त दीप्तिमान, अनुवन्ध दिव्य पुरुष थे।

वर्तमान बुद्धिप्रधान युग में जहां मानव अवनति के पथ पर गतिशील है। क्रोध, मान, माया, लोभ से सारा संसार भस्म हुआ जा रहा है, ऐसी स्थिति में उनका मार्ग-दर्शन निश्चित ही उन्नति का कारण होगा-उनकी दिव्य अमृतमयी वाणी-मार्गदर्शन प्रदान करे। यह हमारी भावना है।

हिन्दी पत्रकार **श्री भीकम शाह "भारतीय" जैन**
अजारी स्टेशन, **सिरोही रोड** (राज.)

शत-शत वन्दन

यह जानकर चित्त को अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि युवा मनीषी, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी दृढ़ मनोबली परम पूज्य 108 उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज की सत्प्रेरणा से प्रातः स्मरणीय प्रशान्त तपोनिधि आचार्य शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के रूप में स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित

हो रहा है। आचार्य श्री ने ऐसे समय में मुनि दीक्षा ली, जब मुनि के दर्शन ही दुर्लभ थे। आप बाल ब्रह्मचारी थे। आपने अपने आराधना काल में देश के कोने-कोने में दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्रभावना की, वह श्लाघनीय थी। आप घोर तपस्वी तथा विशेष व्यक्तित्व के धनी थे। आपने देश में भ्रमण करके मानव की सोई हुई चेतना को जगाया, जिसका परिणाम यह मिला कि आचार्य सूर्यसागर जी महाराज आपके प्रथम शिष्य बने, जिनकी तपस्या और दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सुगन्ध चारों ओर फैल गई।

आज भी आपकी शिष्य परम्परा में मासोपवासी तपोनिधि आचार्य सुमतिसागर जी महाराज, आचार्यकल्प सन्मति सागर जी महाराज तथा उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज (जो देश के लघु विद्यासागर जी के नाम से प्रसिद्ध हैं) सभी ज्ञान के प्रसार में लगे हैं तथा विशेष रूप से युवकों को सन्मार्ग पर लगा रहे हैं।

ऐसे परम तपोनिधि प्रातः स्मरणीय आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज के चरणों में शत-शत वन्दन, नमन।

आगरा **केवल चन्द शास्त्री**

श्रद्धाञ्जलि एवं संस्मरण

परम पूज्य तपोनिधि प्रशममूर्ति आचार्य श्री का जन्म बागड प्रदेश स्थित छाणी ग्राम में हुआ था। ग्राम छाणी के कारण उनके शुभनाम के आगे छाणी को जोड़ दिया गया ताकि उस ग्राम का भी पुण्य स्मरण होता रहे। आप सौभाग्यशाली श्री भागचन्द जी के घर उनकी धर्मपत्नी सौभाग्यशालिनी श्रीमती माणिक बाई की कुक्षि से केवलदास (जन्म नाम जो दीक्षित होकर शान्तिसागर के नाम से विख्यात हुये हैं) ही केवल ऐसे पुत्ररत्न हुए हैं, जिन्होंने अपनी जन्मस्थली छाणी को सुप्रसिद्ध करा दिया है, जिनका स्मरण युग–युगों तक किया जाता रहेगा।

यद्यपि उस समय जैन संत कई रहे होंगे। सर्वत्र सुलभ नहीं थे। फिर भी आपको अपने परिवार में दीर्घ काल से चलते आ रहे संस्कारों ने प्रभावित

किया था। ग्राम में ही अध्ययन किया, युवा हुए किन्तु सांसारिक भोगों से उदासीन रहे। संस्कार बढ़ते गये। आपने भरी जवानी में ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया। फिर भी आपको संतोष नहीं हुआ पुनः क्षुल्लक पद ले लिया और अन्त में आपने परम निःस्पृही वीतरागी दिगम्बर मुद्रायुक्त दिगम्बरी मुनि दीक्षा ली। तब आपको संतोष हुआ। अब आपने उग्र तपस्या करना प्रारंभ किया। उग्र तपस्वी बने और यत्र–तत्र विहार किया। आपकी अमृतमयी वाणी में कुछ ऐसा प्रभाव व आकर्षण था कि जहाँ भी आप प्रवचन करते थे, वहाँ की जनता उसे मंत्रमुग्ध होकर सुनती थी और कुछ न कुछ व्रत स्वयं ही ग्रहण करती थी। आपका कोई आग्रह नहीं होता था लेकिन आपका प्रवचन ही प्रभावक और वस्तुस्थिति को बताने वाला होता था। संयोगवश एक चार्तुमास पू. आचार्य श्री शान्तिसागर जी दक्षिण के साथ आ. 108 श्री शांतिसागर जी 'छाणी' का भी चार्तुमास व्यावर में हुआ था। उस समय सारे नगर में चतुर्थ काल जैसा वातावरण दिखता था। तभी मैंने उनके पुण्य दर्शन किये थे व उनके प्रवचन सुने थे। ऐसे महान् आचार्य श्री का समाधिमरण होने से उनका स्मरण भी कुछ-कुछ लुप्त सा हो गया था। लेकिन धन्य हैं वे परम पूज्य उपाध्याय मुनि ज्ञानसागर जी महाराज जिन्होंने प्रातः स्मरणीय आकर्षक व्यक्तित्व के धनी आचार्य शान्तिसागर जी महाराज छाणी के द्वारा किये हुए अनेक उपकारों के कृतित्व को पुनः आलोकित कर दिया है। उनके पुण्य स्मरण से न जाने कितने भव्य नर नारी मुक्ति के मार्ग का अनुसरण करेंगे और अक्षय सुख को प्राप्त होंगे। अन्त में हम परम पूज्य श्रद्धेय श्री शान्तिसागर महाराज के त्रिकालवन्द्य पवित्र चरणों में श्रद्धाञ्जलि तथा पूज्य उपाध्याय मुनि ज्ञानसागर जी महाराज के पावन चरणों में नमोस्तु करता हूँ।

नवाई **राजकुमार शास्त्री**

होनहार विरवान के होत चीकने पात

परम पूज्य प्रशान्तमूर्ति आचार्य 108 श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) का स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। यह जानकार परम प्रसन्नता हुई।

गया में हुई शास्त्री परिषद् के अधिवेशन से पूर्व मैं केवल एक ही आचार्य शान्तिसागर जी के बारे में जानता था या दोनों को एक ही मानता था। गया अधिवेशन में जब आचार्य शान्तिसागर जी के जीवन पर विचार सुने तब पता चला कि जैसे इस जम्बूद्वीप को दो सूर्य, दो चन्द्र प्रकाशित करते हैं, उसी तरह भारत में दक्षिण उत्तर के दो शान्तिसागर आचार्य हुए हैं, दोनों ने ही भारत भर में भ्रमण किया और दि. जैन परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए प्रयत्न किया।

मेरे हाथ में उसी अधिवेशन के समय प्रकाशित हुई आचार्य शान्तिसागर जी छाणी स्मारिका है, जिसके सम्पूर्ण लेखों का अध्ययन व अवलोकन मैंने किया और आचार्यश्री के सारे जीवन की घटनाओं एवं वैराग्य के कारण आदि के बारे में जानकारी प्राप्त की। हमारे बुन्देलखण्ड (म.प्र.) में भी आचार्य ससंघ पधारे थे, उस समय मैं तो बहुत छोटा था, लेकिन यहाँ के लोगों से उस समय की घटनाएं सुनीं तो आश्चर्य चकित रह गया। उस समय मुनियों का विहार बहुत काल बाद उधर हुआ था। उस समय के लोगों ने मुनियों के दर्शन सर्वप्रथम ही किए थे। आचार्यश्री का पर्दापण सुनकर लाखों की भीड़ उनके दर्शनों को उमड़ पड़ी थी। टीकमगढ़ मध्य प्रदेश का एक छोटा सा जिला है, श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र पपौरा जी के नजदीक है या यह कहूँ कि पपौरा जी का मुख्य दरवाजा टीकमगढ़ ही है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अतः हम लोगों को मुनि संघों के दर्शनों का लाभ अनायास ही हो जाया करता है। पपौरा जी की समतल भूमि पर गगनचुम्बी विशाल 108 मंदिरों के दर्शनार्थ मुनिसंघ पधारते रहते हैं। या बुन्देलखण्ड की धरा पर अनेक प्राचीन तीर्थ विद्यमान हैं, उनकी वंदना हेतु पधारे मुनि, आचार्यों के दर्शनों का लाभ हमें मिलता रहता है। उसी समय की एक घटना है आचार्य शान्तिसागर छाणी भी ससंघ टीकमगढ़ पधारे थे, उस समय भारत स्वतंत्र नहीं हुआ था। टीकमगढ़ एक छोटा सा राज्य था और महाराज प्रताप सिंह राज्य करते थे। उनके बगीचा में मुनिसंघ वृक्षों के तले ठहरा क्योंकि वहाँ

मकान नहीं बने थे। भारी भीड़ प्रवचन सुनने वहाँ पहुँचती थी। दो दिन के बाद संघ विहार करने की तैयारी में था, तब राजा के पास खबर पहुँची कि जैन मुनिसंघ आपके बगीचा में ठहरा था आज-विहार कर रहा है। राजा साहब ने एक सिपाही को भेजकर कहलवाया कि अभी संघ वहीं रुके, हमारे राजा साहब दर्शनों को आना चाहते थे। इस आज्ञा पर मुनिसंघ वहां रुका नहीं और वहां से विहार कर गया। आचार्यश्री ने कहा कि मुनि किसी की आज्ञा पर नहीं रुकते और न विहार करते अगर राजा किसी नगर का राजा है तो मुनि भी अपने मन और तन का राजा है। महाराजा प्रतापसिंह ने छह किलो मीटर पैदल चल कर मुनिसंघ के दर्शन किए, उनसे धर्म के बारे में अच्छी चर्चा की और बड़े प्रभावित हुए। उनकी निर्भीकता पर तो और भी प्रसन्न हुए।

टीकमगढ़ **पं. कमल कुमार शास्त्री**

निर्वस्त्र सौन्दर्य और निःशस्त्र वीरता

अगर किसी को निर्वस्त्र सौन्दर्य और निःशस्त्र वीरता देखना है तो दि. जैन मुनियों को देखिये। जिनके दर्शनों को लाखों की भीड़ उमड़ पड़ती है। और जो बिना शस्त्र लिए भारत भर में निर्भीक विचरण करते हैं। आचार्यश्री के जीवन वृत्त को पढ़कर जाना कि आपमें बचपन से ही विरागता के बीज पनप रहे थे, इसीलिए तो आपने छोटी अवस्था में ही आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया और दीक्षा लेने के विचार बना लिए थे। बाल्यकाल में ही भगवान् नेमिनाथ का जीवन चरित्र सुनकर वैराग्य पनपने लगा था। और उस उक्ति को चरितार्थ किया कि होनहार विरवान के होत चीकने पात तथा निर्भीक विचरण एवं ध्यान से विचलित नहीं हुये, ऐसी भी कई घटनाएं आपके जीवन में आयीं। एक घटना बड़वानी की भी है, ध्यान में बैठे आचार्य शान्तिसागर जी पर कुछ लोगों ने मोटर चलानी चाही, पर मोटर ही बिगड़ गई। महाराज जी ध्यान में बैठे रहे। ऐसी अनेक घटनाएं हैं, जिनसे महाराज जी की दृढ़ता कठोर तपस्या और समता के दिग्दर्शन होते हैं और अनायास ही आपके चरणों में श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है।

मैं उनके चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

टीकमगढ़ (म.प्र.) **पं. कमल कुमार शास्त्री**

इस युग के आदर्श संत

परमपूज्य प्रातः स्मरणीय 108 आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज छाणी इस युग के एक आदर्श संतशिरोमणि थे। उनके प्रारंभिक जीवन से ही पता चलता है कि उनको सांसारिक जीवन खींच नही सके, वे बाल ब्रह्मचारी रहे। उनके पिताजी ने विवाह जैसे बंधन में डालने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन वे इतने निश्चय के धनी थे कि उनकी वैराग्य भावनायें बढ़ती ही गईं और एक दिन उनका संत जैसा जीवन बन गया। संवत् 1990 में आपका सागवाड़ा राजस्थान में चार्तुमास था। क्षुल्लक अवस्था में थे। लेकिन उस अवस्था को भी आपने विकल्प रूप में देखा और श्री मंदिर में भगवान् आदिनाथ स्वामी के चरणों में जाकर उन्हीं जैसा आदर्श दिगम्बर जीवन अपनाकर अपने आपको कृतकृत्य बना डाला। आपके समय में मुनि जीवन प्रायः लुप्त हो गया था। इसलिए हम गौरव के साथ कह सकते हैं, कि परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर जी महाराज इस बीसवीं शताब्दी के प्रथम साधक संत थे। जिन्होंने विलुप्त मुनि परंपरा को जीवित किया-ऐसे महान आदर्श संत की स्मृति में ग्रन्थ प्रकाशन करने के लिए प्रेरणायें देकर परम पूज्य 108 श्री उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज ने विलुप्त इतिहास को जीवित करके एवं श्रमण संस्कृति के साधक संत के जीवन का अध्ययन करने के लिए अपूर्व अवसर दिया है। आचार्य श्री का आदर्श जीवन था। जहाँ तक मुझे याद है, एक बार आचार्य श्री के दर्शनों का सौभाग्य मुझे मिला था। मैं उस समय विद्यार्थी जीवन में था। महाराज श्री के मुखमण्डल पर अपूर्व तेज व वैराग्य भावनायें प्रकट होती थीं। वे रात्रि में एकांत साधना किया करते थे। उनके जीवन का लक्ष्य वीतरागता का प्रचार और प्रसार करना था, उनके शब्दों में बड़ा ओज था-उदार विचारधारा के संत थे। उन्होंने समाज को वे प्रेरणायें दीं, जिनसे लुप्त मानवता जीवित हो गई। यह उन्हीं के चरणों व आर्शीवाद का प्रभाव है जिनसे आज हमें दिगम्बर जैन संतों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त है। महाराज श्री के शब्दों में वह आकर्षण था, जिससे जैन ही नहीं, अपितु अजैन भी प्रभावित होते थे। कितने ही श्रावकों

ने अपना जीवन परिवर्तन करके जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। इनमें उल्लेखनीय नाम हैं –परमपूज्य 108 श्री आचार्य सूर्यसागर जी महाराज का। आचार्य सूर्यसागर जी महाराज आपके प्रथम पट्टाधीश शिष्य थे। आपका जीवन भी बड़ा आदर्शमय था। विचारों में उदारता, और हृदय में विशालता थी। मैंने स्वयं प्रत्यक्ष में देखा था-वे गांवों में छोटी से छोटी जाति को संबोधित करके मद्य, मांस और मधु का त्याग कराते थे। आपमें प्रदर्शन की भावना नहीं थी। रात्रि में भयंकर श्मशान भूमि में जाकर एकांत साधना किया करते थे। आपका आहार भी साधारण था, वही आहार ग्रहण करते थे जो श्रावक नित्य स्वंय के लिए बनाता था। आप कभी आहार में किसी भी फल विशेष को नहीं लेते थे। वे प्रवचन में कहा करते थे, जिस चीज का उपयोग श्रावक अपने भोजन में नहीं करते, कम से कम वे चीजें तो साधु को आहार में नहीं दें। साधु को वही आहार देना चाहिए जिससे उनका साधनामय जीवन बना रहे। महाराज श्री की परंपरा में ही आज हमें 108 श्री उपाध्याय ज्ञानसागर जी जैसे संतों के दर्शन हो रहे हैं, जिससे आज हम धन्य हैं। अंत में उन आदर्श सन्त परम पूज्य 108 श्री आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के चरणों में श्रद्धा अर्पित करता हुआ यही भावना भाता हूँ, कि हमें भी वह आदर्श जीवन प्राप्त हो।

उज्जैन **सत्यन्धर कुमार सेठी**

स्वयंबुद्ध महान् तपस्वी

आचार्य महाराज शान्तिसागर (छाणी) को मैं "स्वयंबुद्ध" मुनि मानता हूँ। अन्य दीक्षाचार्य के अभाव में तीर्थराज सम्मेदशिखर पर भगवान् पार्श्वनाथ के प्रतिबिम्ब को साक्षी बनाकर ब्रह्मचर्य व्रत लेना एवं बांसवाड़ा में विधान के समय 1008 श्री आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा के सामने क्षुल्लक दीक्षा लेना यह सब बिना आन्तरिक प्रेरणा व आत्मकल्याण की भावना के बिना नहीं हो सकता, फिर क्षुल्लक अवस्था में 30 दिन का उपवास बिना पूर्व परंपरा के रखना अपने आप में तत्कालीन अभूतपूर्व अद्वितीय घटना थी। जो आत्मकल्याण हेतु कठोर साधना की प्रतीक थी। लोकैषणा, लौकिकाभ्युदय की लेशमात्र भी चाह नहीं थी।

वैराग्य की यह बल्लरी स्वाध्याय एवं ज्ञानार्जन के विविध साधन रूपी जल से परिसिंचित तथा तपश्चरण, संयम से पोषित होती हुई वीतरागता के अंतिम चरण में प्रतिफलित हुई। — पूज्य महाराज जी ने एक वर्ष बाद ही आदिनाथ भगवान् की साक्षी को, आचार्य मान मुनि दीक्षा ली। इस प्रकार स्वयंबुद्ध मुनि बनकर विलुप्त हो रही मुनि परंपरा को आपने पुरुज्जीवित किया। मुनि पद धारण कर आपने देश के विभिन्न स्थानों में बिहार कर जन साधारण को आत्म साधना की ओर प्रेरित किया। आपके धर्मोपदेश से जैन धर्मानुयायियों की ही रुचि चारित्र में नहीं बढ़ी, अपितु सैकडों अन्य धर्मावलम्बियों ने भी मद्य, मांस, मधु तथा अन्य अभक्ष्य पदार्थों का त्याग किया। अनेक जमींदार, जागीरदारों ने अपने शासित प्रदेशों में दशहरा आदि के समय हिंसा को हमेशा के लिये बन्द कर दिया था। स्वयं भी सन्मार्ग के अनुयायी बने।

निःसन्देह यह सब अतिशय और प्रभाव आत्मशक्ति, त्याग, लोकैषणा के अभाव व जीवमात्र की कल्याण की भावना के बिना नहीं हो सकता। वैराग्य भावना से ओतप्रोत, लोकैषणा से रहित सांसारिक, सामाजिक किसी भी आयोजन से परे कुछेक दिगम्बर साधु ही स्व पर कल्याण कर सकते हैं। – पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी (छाणी) इसी प्रकार के साधुओं में से थे। यह उनके जीवन इतिहास से प्रमाणित होता है। सिवाय आत्म चिंतन, धर्मोपदेश, प्राणिमात्र के कल्याण की उद्दाम भावना के अतिरिक्त वे किसी लौकिक कार्य में नहीं उलझे। निःसंदेह वे पर्यायान्तर में मोक्ष के अधिकारी हैं। ऐसे मुनिपुंगव का स्मरण कर उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर स्वयं को धन्य मानता हूँ।

इन्दौर **धर्मचन्द शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य**

24वें तीर्थंकर के शासनकाल में

आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) ने छाणी गांव में संवत् 1945 में जन्म लिया था। भगवान महावीर स्वामी बाल ब्रह्मचारी थे, विवाह नहीं करवाया, स्वयं दीक्षित हो गये थे।

इसी प्रकार श्री छाणी जी बाल ब्रह्मचारी रहे विवाह के बारे में पिताजी ने चर्चा की तो कैसा उत्तर दिया-वह सुनने लायक है-इस संसार में अनन्त बार विवाह कर चुका हूँ तो भी मैं तृप्त नहीं हुआ, अब मैं ऐसा विवाह करूँगा जिससे भविष्य में विवाह करने की आवश्यकता ही न रहे। (मुक्ति रूपी लक्ष्मी से विवाह करूंगा) जो सदा के लिए सुखदायी होगा, अविनाशी होगा।

श्री छाणी जी ने श्री आदिनाथ जी के समक्ष ही क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की थी। श्री आदिनाथ जी के समक्ष ही मुनि दीक्षा ग्रहण करके भावी मुनिमार्ग को प्रशस्त या सुगम बना दिया, जो मुनि मार्ग कुछ समय से विलुप्त सा था।

मुनि के दर्शनों को तरसते-तरसते कई कविगण स्वर्गीय हो गए परन्तु हम सबका सौभाग्य आया, जबसे मुनि मार्ग छाणी जी ने प्रशस्त किया, तबसे आज तक मुनि धर्म की परम्परा बराबर चल रही है। यह उनकी बड़ी देन है-इस शताब्दी की।

श्री छाणी जी ने मुनि पद धारण करके घोर तपस्या की। 1-1 माह के उपवास करके आत्मा की शुद्धि का लक्ष्य बनाया। परिषह सहन करने में भी आपका लक्ष्य विशेष रहता था। अतः इनका जैन, अजैन जनता पर प्रभाव बहुत था। इनके उपदेश सुनकर जनता मुग्ध हो जाती थी। इनकी त्याग–तपस्या देखकर सभी जैन, अजैन स्वयमेव त्याग व्रत धारण कर लेते थे। इनका उपदेश अन्तरंग की विशुद्ध परिणति से होता था। अतः प्रभावपूर्ण होता था। ऐसे आचार्य श्री के चरणों में मेरा शत-शत नमन है।

दमोह (म.प्र.) **पं. अमृतलाल जैन शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य**

वसन छोड़ दिये तो वासनायें भी गला दीं

दिगम्बर जैन मुनि/आचार्य उद्दिष्ट आहार के त्यागी होते है। केवल मुनि के निमित्त से बनाया गया आहार, वे ग्रहण नहीं करते। मुनि के छह प्रकार के बाह्य तप में चार का सम्बन्ध मुनि की "आहार प्रविधि" में निरासक्त वृत्ति के लिए अभिप्रेत है।

जैनियों के घरों में चौके की पात्रता अब तो खोजनी या बनानी पड़ती है। किसी त्यागी/व्रती के लिए, हाथ की चक्की का आटा और कुएं का शुद्ध जल, नगरों की बात छोड़िये, गांव में भी खोजना पड़ता है। शोध की वैज्ञानिकता, मात्र बाहरी हाइजिनिक रह गई है, अहिंसात्मक नहीं। ऐसे माहौल में, मुनि आहार के लिए चौका एक विशेष तैयारी का उपक्रम बन गया है। खानपान की बिगड़ती स्थिति ने "जैन चौका" पर एक प्रश्न चिह्न लगा दिया है?

आज से 50 वर्ष पूर्व मुनि आहार किसी भी जैन परिवार के चौके के लिए एक सहज/सामान्य बात थी। उस समय मुनि भी "वृत्तिपरिसंख्यान" तप का कठोरता से पालन करते थे। क्योंकि हर गांव/नगर "आहार" के महत् पुण्य भाव को प्राप्त कर लेना चाहता था।

इस सन्दर्भ में पू.आ. शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) का एक अनोखा संस्मरण, मैंने बचपन में अपनी मां के द्वारा सुना था। ग्राम मड़ावरा (ललितपुर) लेखक का गृह गांव है। संवत् 1996 के पूर्व की घटना है। मुनि श्री का मड़ावरा ग्राम में पदार्पण हुआ था। मुनि श्री को विराजमान हुए यह चौथा दिन था। पूरा गांव इस कौतूहल में था कि आज मुनि शान्तिसागर जी के आहार ग्रहण करने की कौन सी प्रतिज्ञा है। गाँव की पूरी एक परिक्रमा हो गई, लेकिन आहार विधि का योग, किसी श्रावक के दरवाजे पर प्राप्त नहीं हो पा रहा है। जैन दम्पति/परिवार के अन्य सदस्य "पड़गाहन" के लिए अपने-अपने द्वार पर खड़े होकर अनेक प्रकार से योग मिला रहे हैं। कहीं 3 कन्याएं तो कहीं 5 कन्याएं खड़ी हैं। कहीं दम्पत्ति सफेद वस्त्रों में तो कहीं पीली धोती में। कई कलशों की संख्या बदली जा रही है, तो कहीं

भांति-भांति के सूखे फल थाल में लिए खड़े हैं। जितने लोग उतनी बातें। परन्तु मुनि श्री, कि आंख उठाकर नहीं देख रहे और गांव की तीन परिक्रमा करके वापिस मंदिर जी में सामयिक में विराजमान हो गये। पूरे दिन का उपवास।

दूसरे दिन फिर मुनिश्री पिच्छी कमण्डलु एक हाथ में लिए और दूसरे हाथ की अंजुलि कंधे पर टिकाए, आहार के लिए निकले। गाँव की एक परिक्रमा पूरी हो गई। लोग अवसाद में डूब गये कि ऐसी कौन सी कठिन प्रतिज्ञा मुनिवर ने ले ली है, जिसका योग/निमित्त नहीं मिल पा रहा है।

तीसरी परिक्रमा के लिए वे मुख्य बाजार से होकर निकले। तभी एक नुकीले सींगों वाला बैल बाजार से गुजरा। बाजार में एक गुड़ की दुकान लगी थी और गुड़ की भेली का ढेर लगाये दुकानदार बेचने की तैयारी में जुटा था। अप्रत्याशित रूप से वह बैल उस दुकान से होकर गुजरा और जब गुड़ की भेली मुँह से न उठा पाया होगा तो उसे अपने नुकीले सींगों में फंसा कर दौड़ पड़ा, एक दूसरे रास्ते से।

दैवयोग से मुनि श्री भी सामने से आ रहे थे और सींगों में गुड़ फंसा देखकर निकट श्रावक द्वार पर पड़गाहन के शब्द सुनकर रुक गये। लोगों की खुशी का पार नहीं रहा, जब उन्होंने मुनि श्री को श्रद्धा सहित पड़गाहन कर आहार दान का पुण्य लाभ लिया। आहार के पश्चात् लोगों ने बड़े आग्रह पूर्वक ली गई कठिन प्रतिज्ञा जानने की प्रार्थना की, जिसका दो दिन से योग नहीं मिल पा रहा था। मुनि श्री मुस्कराते हुए कहने लगे-योग तो साक्षात् आप सभी के सामने से गुजरा था। लोगों को बैल की घटना समझने में देर नहीं लगी।

कितनी दुर्लभ प्रतिज्ञा। लेकिन जैन तपस्वी/मुनि "आहार" को भी कर्मों की निर्जरा का निमित्त बनाते है। तौलते हैं अपने जीवन को, तथा जीवन के प्रत्येक पाये हुए क्षणों को। और धन्य हैं ऐसे तपस्वी जो अपनी तपस्या से क्षणों को भी कैद कर लेते हैं। दुर्द्धर्ष योग/प्रतिज्ञा को कितना सहज में लेकर सहज बना लेते हैं। आ. शान्तिसागर जी म० (छाणी) उन महामनीषी संतों की परंपरा के ज्वलंत उदाहरण रहे, जिन्होंने "वीतरागता" को जीवन का मूल मंत्र बनाया था। "वसन" छोड़ दिये तो सारी वासनाएं भी गला दी। संसार के उपक्रमों से उदासीन, आत्मस्थ, चैतन्य के आराधक उन महान संत आत्मा को शत शत श्रद्धा नमन हमारे।

बीना (म.प्र.) **प्रो. पं. निहालचन्द जैन,**

गरिमापूर्ण जीवन

परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर जी छाणी स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन का पत्र प्राप्त कर अत्यधिक प्रसन्नता हुई। आचार्य श्री परम दिगम्बराचार्य थे। स्वयं दीक्षित थे और देश के विभिन्न भागों में विहार करके समाज में अभूतपूर्व जागृति पैदा की थी। स्त्री शिक्षा की ओर उनका विशेष ध्यान था। उनका सम्पूर्ण जीवन आदर्श एवं गरिमापूर्ण था। वे जैन संस्कृति के प्रतीक थे।

मैं अपने सम्पूर्ण मनोभावों से उनके प्रति सादर श्रद्धाञ्जलि समर्पित करती हुई स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन की सफलता चाहती हूँ।

जयपुर **डॉ. कमला गर्ग**

स्त्री-जाति के महान् उद्धारक

आचार्य शान्तिसागर जी छाणी महाराज सामाजिक सुधारों में बहुत रुचि लेते थे और समाज में व्याप्त बुराईयों के उन्मूलन के लिये अपने प्रवचनों में खूब चर्चा किया करते थे। उन्होंने बाल विवाह, मृत्यु के पश्चात् महिलाओं द्वारा छाती कूटने की प्रथा, मृत्यु भोज जैसे अनेक सामाजिक बुराईयों को जड़ मूल से उखाड़ने में बहुत योग दिया। उनका पावन जीवन अत्यधिक शिक्षाप्रद एवं प्रेरणादायक है। ऐसे आचार्यों का स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन एक ऐसा शुभ कार्य है, जिसकी जितनी प्रशंसा की जावे, वही कम है।

मेरे उनके पावन चरणों में हार्दिक श्रद्धा सुमन अर्पित हैं।

महावीर नगर, जयपुर **शशिकला जैन, एम.ए.**

चारित्र के धनी

छाणी जैसे दूरदराज गॉव में उत्पन्न हुए आचार्य शान्तिसागर जी एक आत्मानुभूतिक महापुरुष थे, जिन्होंने पवित्र वीतराग मार्ग पर चलकर स्व-पर कल्याण किया और समाज को नया प्रतिबोध दिया। शिथिलाचार को दूर करने में उन्होंने जो नियम बनाये, वे आज भी मानदण्ड के रूप में स्वीकृत किये जा सकते हैं। उनके इस पुनीत स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन पर मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि व्यक्त करती हूँ।

नागपुर (महाराष्ट्र) **(डॉ.) श्रीमती पुष्पलता जैन**

श्रद्धाञ्जलि

भारतवर्ष एक अध्यात्म प्रधान देश रहा है, वैदिक संस्कृति में उपनिषदों के माध्यम से तथा जैन संस्कृति में तीर्थकरों व आचार्य कुन्दकुन्द जैसे महान् तपस्वी साहित्यकारों की लेखनी से जो अध्यात्म-रस की पावन गंगा वही, उसमें भारतीय जन मानस अवगाहन कर आज भी आत्मतृप्ति कर विशिष्ट सुख का अनुभव करता है। अध्यात्म जगत् के विशाल आकाश को निर्ग्रन्थ परम्परा के जिन अनेक उज्ज्वल नक्षत्रों ने प्रकाशित किया है, उनमें प्रशममूर्ति दिगम्बराचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) का नाम विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है।

दो दशकों से भी अधिक समय तक, देश के विविध भागों में इनके पद-विहार से धार्मिक जागृति का अपूर्व उत्साहपूर्ण वातावरण बना, जिससे जैन अहिंसक संस्कृति के इतिहास का गगनमण्डल सुवासित हुआ है। ऐसे महान् सन्त के उल्लेखनीय व्यक्तित्व व कृतित्व को यदि सर्वजन प्रकाश्य बनाने का प्रयास किया जाय तो यह एक महान् उपकारी कार्य होगा। इन महान निर्ग्रन्थाचार्य भव्य जनकमल-दिनकर परम पूज्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) के पुनीत चरण कमलों में मेरा श्रद्धातिरेकपूर्ण शत शत नमोस्तु।

614, चिराग, नई दिल्ली **दामोदर शास्त्री**

श्रद्धा-सुमन

श्रीमद् परम पूज्य प्रातः स्मरणीय त्रिकाल वन्दनीय योगीन्द्रतिलक श्रमणशिरोमणि धर्मसाम्राज्यनायक, मुनिपुंगव, समाधि, सम्राटचारित्र चक्रवर्ती आचार्य देव 108 श्री शान्तिसागर महाराज छाणी ने इस दुखम पंचम काल में मुनि बन कर आत्म कल्याण हेतु मोक्ष का मार्ग जो अवरुद्ध सा होने लगा था, उसे प्रशस्त किया तथा दिगम्बर साधु की चर्या का मार्ग प्रशस्त किया। यह जीव अनादि काल से इन्द्रिय सुख की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता रहा, पर यथार्थ सुख तो इन्द्रियों से नहीं आत्मा से सम्बन्ध रखता है। ऐसे आत्मिक सुख की पहिचान हेतु, आपने अपने वचनामृतों से भव्य जीवों को उपदेश दे सम्बोधन किया। कुछ वर्षों पहले दिगम्बर साधु दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। भूधरदास, द्यानतराय, पं. टोडरमल आदि विद्वान् जिन वाणी के माध्यम से दिगम्बर साधुओं के स्वरूप को जानते तो थे, परन्तु साक्षात् दर्शन नहीं होते थे और स्तुतियों में लिखते थे कि "कबमिलि हैं साधु वनोवासी कब मिलि हैं" इसलिये दिगम्बर साधुओं के चरणरज अपने मस्तक पर लगाकर आचार्य श्री के चरणों में श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूँ।

पं. लक्ष्मण प्रसाद जैन शास्त्री

पंथवाद से परे

बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण के महान तपस्वी दि. जैनाचार्य 108 श्री शान्तिसागर जी छाणी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को प्रकाश में लाने की सत्प्रेरणा देने वाले परमपूज्य 108 उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज का समस्त दि. जैन समाज उपकार मानती है, क्योंकि उन्होंने समाज को आचार्य श्री का जीवन दर्शन जानने हेतु स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन की प्रेरणा दी।

मैंने बचपन में आचार्य श्री के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त किया था-मैंने यह भी जाना था, कि आचार्य श्री शान्तिसागर जी शान्ति के सागर ही थे। एक बार दोनों आचार्य श्री मुरेना में कई दिनों तक एक साथ रहे। दोनों एक दूसरे की विनय करते थे। दक्षिण वाले आचार्य श्री की प्रसिद्धि समाज

में अधिक फैली, परन्तु छाणी वाले आचार्य श्री भी विद्वान् एवं तपस्वी थे। छाणी वाले आचार्य श्री तेरहपंथ परम्परा के अनुयायी थे और दक्षिण वाले आचार्य श्री बीसपंथ परम्परा के अनुयायी थे, तथापि दोनों में मतभेद नहीं था। जब दोनों आचार्य मुरेना से प्रस्थान करने लगे तब दोनों ने समाज को संदेश दिया था कि आज समाज के लोग चाहें बीसपंथ परम्परा को मानें चाहे तेरहपंथ परम्परा को। यह तो उपासना की पद्धतियाँ हैं। इससे सिद्धान्त में कोई अंतर नहीं पड़ता। अतः इन बातों को लेकर समाज में मतभेद या मनभेद नहीं होना चाहिए।

स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन के इस युग में आचार्य श्री के व्यक्तित्व और कृतित्व पर यदि कुछ न लिखा जाता तो यह दि. जैन समाज की एक बहुत बड़ी भूल होती। प्रशममूर्ति, शान्ति के सिन्धु 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी के श्री चरणों में, मैं विनयावनत होता हूँ।

सनावद (म.प्र.) **डॉ. मूलचन्द जैन शास्त्री**

उच्च आदर्श

आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) के सम्बन्ध में एक विशाल ग्रन्थ का प्रकाशन एक ऐसा अनूठा कार्य है, जो कुछ क्षणों के लिए हमें अपने हृदयों को टटोलने का अवसर प्रदान करता है और अहिंसा तथा त्याग के महान् आदर्श के महत्त्व को प्रकाशित करता है। दैनिक जीवन में अहिंसा और त्याग को एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में पूज्य आचार्य छाणी जी महाराज ने अपने जीवन में उतारा और जैन सिद्धान्त को सर्वत्र फैलाया तथा आध्यात्मिकवाद के बहुत ऊँचे आदर्शों को सामने रखा। आचार्य श्री एकान्त में ध्यान करने के कारण प्रसिद्ध हैं।

पूज्य छाणी जी महाराज के बारे में लोगों को बहुत कम जानकारी है। स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन से समाज को उनके बारे में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होगी और लोक मानस में उनकी प्रतिष्ठा स्थापित होगी। उन्होंने बांसवाड़ा के ठाकुर क्रूरसिंह जी साहब को जैन धर्म में दीक्षित करके एक आदर्श कार्य किया था।

ग्रन्थ प्रकाशन की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) **सुमेरचन्द जैन**

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

परमपूज्य प्रातः स्मरणीय, त्रिकालवन्दनीय, सिद्धान्तपारंगत, सम्यक्त्व–शिरोमणि, महान् तपस्वी, आध्यात्मिक सन्त, प्रशान्तमूर्ति, तपोनिधि आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) परम्परागत आचार्य परम्परा के पोषक थे। लौकिक व्यवहार और आध्यात्मिक विषयों के मर्मज्ञ थे।

आचार्य श्री महान् तपस्वी, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, महान् धर्मप्रभावक, वात्सल्य की प्रतिमूर्ति थे।

आपने मिथ्यात्व और पन्थवाद के विरुद्ध संघर्ष किया और परमपूज्य कुन्दकुन्द आचार्य द्वारा चली आ रही विशुद्ध परम्परा का स्वयं पोषण कर भारतीय दिगम्बर समाज को हमेशा-हमेशा मिथ्यात्व से बचने का उपदेश देकर असंख्य भव्यजीवों का उपकार किया।

मैं ऐसे तृतीय आचार्य परमेष्ठी को त्रिकाल मन, वचन, काय से नमस्कार करता हुआ उनके बताये हुये मार्ग पर चलने की कोशिश करता रहूँगा। मैं यदि उनके दिये गये उपदेश पर थोड़ा सा भी चल सका तो यही मेरी उनके प्रति सच्ची श्रद्धा-आस्था-भक्ति तथा श्रद्धाञ्जलि होगी।

हस्तिनापुर **पं. सरमनलाल जैन**

श्रद्धासुमन

जब हम वर्तमान शताब्दी के प्राचीन आचार्यों की चर्चा करते हैं और आचार्य शान्तिसागर जी छाणी महाराज का नाम आता है, तो उनके प्रति सहज श्रद्धा उमड़ पड़ती है। वे युग सन्त थे और अपने अलौकिक जीवन में कितने ही प्राणियों को सुपथ पर लगाया था। उनके शिष्य प्रशिष्यों में से परमपूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज चतुर्थ कालीन सन्त हैं। उन्होंने ही आचार्य श्री के विस्तृत व्यक्तित्व को पुनः उजागर किया है।

मैं आचार्य श्री के चरणों में अपने श्रद्धा–सुमन अर्पित करती हूँ।

सेठी कालोनी, जयपुर **डॉ. श्रीमती कोकिला सेठी**

युग के महान् सन्त

प्राचीन दिगम्बर जैनाचार्यों के जीवन का स्मरण निःसन्देह एक उत्तम कार्य है। उनकी पावन स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए स्मृति ग्रन्थों का प्रकाशन आवश्यक है।

आचार्य शान्तिसागर जी छाणी महाराज अपने युग के महान् सन्त थे। उनके पावन चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ।

बरकत नगर, जयपुर **श्रीमती तारा देवी कासलीवाल**

श्रद्धासुमन

हर सुबह उषारानी बालिका सुनहरा घड़ा लेकर जल भरती और छलकाती है, उस समय रात भर जागने के बाद तारे अलसाये हुए और उनींदे हो जाते हैं। रात बीतने पर तारों के डूबने और सूर्योदय के संधिकाल के समय पूज्य श्री 108 शान्तिसागर जी महाराज के चरणों में मैंने शीश झुकाया है।

जिस प्रकार सूर्य और रश्मियां, चन्द्रमा और चान्दनी, नदी और तरलता अन्योन्याश्रित होते हैं, वैसे ही हमारी श्रद्धा पूज्य मुनिराज से कभी दूर नहीं हो सकती है।

आपके अहिंसा के उद्बोधन हृदय पट खोलने वाले हैं। इसलिये हृदय में संतों के प्रति श्रद्धा पैदा करें। श्रद्धा एक तपश्चर्या है, एक साधना है, श्रृद्धाग्नि से गुजर कर ही तो पाषाण शुद्ध होता है, पवित्र होता है। गुरु श्रद्धा में डूबा हुआ ही मानव तो परमात्मा बनता है। ऐसे सद्गुरूओं के प्रति हम हृदय से श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं, और अपना मन भी उनके चरणों में समर्पित करते हैं।

लक्ष्मीपुरा, सागर (म.प्र.) **कु. किरण माला शास्त्री**

भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि

दर्शन ज्ञान चारित्र के परम नायक
त्याग तपस्या की प्रशम मूर्ति
जन-जन के उपकारक यतिवर।
ऐसे गुरूवर आचार्य श्री के चरणों में
मेरा शत्-शत् वंदन शत्-शत् वंदन।

आचार्य श्री के सदुपदेशामृत से विश्व में अहिंसा सिद्धान्त का प्रचार-प्रसार हुआ है। परम कल्याणकारी गुरुवर की पावन-वाणी आचन्द्रार्क दैदीप्यमान रहेगी। मंगल कामना के साथ सदुपदेष्टा गुरुवर के चरणों में विनम्र श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

रामपुरा, सागर — **पं. पन्ना लाल बजाज**

शत-शत नमन

विषयों की आशा नहीं जिनके,
साम्य भाव धन रखते हैं।
निजपर के हित साधन में,
जो निशदिन तत्पर रहते हैं।

उक्त भावना से पूरित चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री 108 श्री शान्तिसागर जी छाणी के श्री चरणों में मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हुआ शत्-शत् नमन करता हूँ।

छतरपुर — **योगाचार्य फूलचन्द जैन**

स्मृति के आलोक में

वर्तमान शताब्दी के प्रथम चरण में उत्तरी भारत के छाणी (उदयपुर-राजस्थान) से एक ऐसे महान् पुरुष का अभ्युदय हुआ, जिन्हें प्राप्त कर धरती निहाल हो गई। विलुप्त मुनि परम्परा को पुनर्जीवित करके वर्तमान शताब्दी में मुनि दीक्षा धारण करने का गौरव प्राप्त करने वाले छाणी के आचार्य, श्री शान्तिसागर जी महाराज चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (दक्षिण) के समकालीन थे। व्यावर (राजस्थान) में दोनों संघों का एक साथ चातुर्मास हुआ था। आचार्य श्री शान्तिसागर (छाणी) महान् तपस्वी प्रभावी संत थे। आचार्य श्री ने उस समय समाज में व्याप्त कुरीतियों को मिटाने हेतु श्रावक संस्था में नवीन चेतना जागृत की थी। सौम्य स्वभावी ,प्रशममूर्ति आ. श्री शान्तिसागर (छाणी) उपसर्ग विजेता थे।

कई बार हमें आचार्यश्री के चरण सान्निध्य में रहने का अवसर मिला। हमने अति निकट से उन्हें तपस्या करते हुए देखा और देखा कि उपसर्ग पर विजय प्राप्त करते हुए, उनकी परम्परा में प्रभावी संत हुए और आज भी जिन धर्म की महान प्रभावना करने वाले आचार्य, उपाध्याय आदि सन्त हैं।

स्मृति ग्रन्थ के नायक के श्री चरणों में शतशः वंदन। मुनि मार्ग को प्रशस्त करने में आ. शान्तिसागर जी (छाणी) का नाम भी अग्रगण्य है। वे महान् आचार्य थे।

ऋषभदेव (राजस्थान) **पं. मोतीलाल मार्तण्ड**

श्रद्धाञ्जलि

मुनि या श्रमण अवस्था जैन धर्म की चतुर्विध संघ व्यवस्था का प्रमुख घटक है और यही संघ व्यवस्था जैनों की समाज व्यवस्था का मूल आधार है। जैन परम्परा में चतुर्विध संघ मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका-की यह धारा प्राचीन काल से निरन्तर प्रवाहमान है।

मुनिगण जैन संस्कृति तथा परम्परा के संवाहक, प्रथम एवं महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। उक्त सुदीर्घ परम्परा के संवर्द्धन एवं विकास में दिगम्बराचार्य श्री शान्तिसागर महाराज (छाणी) का प्रमुख तथा अविस्मरणीय योगदान है।

छाणी स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन के सुमंगल अवसर पर मेरी सविनय श्रद्धाञ्जलि।

वाराणसी **डॉ. कमलेश जैन**

श्रमण-परम्परा के दीप

आ. शान्तिसागर जी छाणी इस युग के प्रमुखतम आचार्यों में थे। इस शताब्दी के प्रारंभ में श्रमण परम्परा को पुनर्जीवित करने में उनका बहुत बड़ा योगदान रहा। श्रमण परम्परा के दीप को इस शताब्दी में प्रज्वलित करने में उन्होंने जहां अपना योगदान दिया, वहीं दूसरी ओर उनकी इस ज्योति से अनेकों दीप प्रज्वलित हुए। उन प्रशम मूर्ति आचार्य के चरणों में मैं अपनी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ। उनके इस अभिनन्दन ग्रन्थ से उनके व्यक्तित्व व कृतित्व के बारे में समाज को जो अभी कम जानकारी है, उसकी पूर्ति हो सकेगी।

मैनपुरी, उ.प्र. **डॉ. सुशील चन्द जैन**

आगमज्ञाता

आचार्य शान्तिसागर जी छाणी परम पूज्य चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज दक्षिण वालों के समकालीन समय के साधु थे। उनका जन्म राजस्थान प्रान्त के अन्तर्गत ग्राम छाणी (बागड़ प्रदेश) में संवत् 1945 में हुआ। उनका जन्म नाम केवलदास, पिता का नाम भागचन्द और माँ का नाम माणिकबाई था। संवत् 1980 में मुनि दीक्षा ली और 1985 में आचार्य पद तथा 2001 में समाधि मरण हो गया। वे सरल स्वभावी, आगमज्ञाता दिगम्बराचार्य साधु थे। उन्होंने अहिंसा धर्म का प्रचार, किया तथा साथ ही साथ श्रावकों में श्रावक धर्म का प्रचार, अष्ट मूल गुण धारण कराना, अणुव्रतों का महत्व बतलाना, श्रावक के षट् कर्म आदि विषयों का उल्लेख उनका मुख्य लक्ष्य था। ऐसे साधु के चरणों में शत-शत वंदन।

सवाई माधोपुर **पं. लाडली प्रसाद जैन**

जिनमत के सच्चे आराधक

भारत श्रमणों का देश है। इसे विश्व में धर्मगुरू भी माना जाता है। प्रशममूर्ति आचार्य शान्तिसागर जी छाणी ऐसे समय में वीतराग मार्ग में प्रवृत्त हुए थे, जब मुनि परम्परा का अभाव था। साधु वर्ग की महान् परम्परा को अविस्मरणीय बनाने हेतु युवा मुनि श्री उपाध्याय ज्ञान सागर जी की सद्प्रेरणा से शान्तिसागर छाणी स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है। यह एक महान् कार्य है। आचार्य शान्तिसागर जी महाराज एक आदर्श श्रमण सन्त थे। उनके चरण संयम और तप के द्वारा सधकर सदाचरण में तत्पर रहते थे।

मैं उन महान् सन्त के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ। मेरी भावना है, कि त्याग और जिनमत के सच्चे आराधक, प्रशममूर्ति आचार्य शान्तिसागर जी हमारे जीवन पथ को ज्ञानालोक से प्रकाशित व प्रभावित करते रहें, ताकि हम सब सन्मार्ग की ओर अग्रसर होते रहें।

पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी के प्रति श्रद्धाभिभूत होकर स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहे हैं आप सबका यह शुभ संकल्प अत्यन्त उपयोगी एवं सामयिक है। अपने हार्दिक श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए शत-शत वंदन करता हूँ। पू. उपाध्याय ज्ञानसागर जी की प्रेरणा सामयिक है।

सम्पादक-सन्मति संदेश **प्रकाश हितैषी शास्त्री**
दिल्ली

दिगम्बरत्व का जागरण-काल और संस्मरण

बीसवीं सदी के प्रथम दशक में आचार्य श्री छाणी ने पद विहार करते हुए भारत की हृदय स्थली बुन्देलखण्ड की धरा को पवित्र किया तो जैन समाज धन्य हो गया और प्रथम दि. मुद्रा के दर्शन किए। यद्यपि आचार्य छाणी की शिष्य परम्परा अल्प रही पर दि. जैन संस्कृति के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान रहा। उनकी शिष्य परम्परा में उपाध्याय मुनि ज्ञानसागर जी महाराज को अपनी ज्ञान गरिमा से समाज को धर्मामृत का पान करा रहे हैं-वे आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी) के द्वारा किए गये उपकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापनार्थ एक स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन करा रहे हैं, यह बहुत उत्तम कार्य है।

महाराज श्री छाणी के उपदेशों की कुछ झलकियाँ :-

सन् 1924 से 27 के बीच की बात है, कि जब आचार्य छाणी का पदार्पण शिशुपाल की राजधानी चेड़ी (चन्देरी) नगरी में हुआ तो महाराज श्री ने पहिले ही दिन हिंसा-अहिंसा का विश्लेषण करते हुए सभामण्डप की पहली पंक्ति में बैठे हुए श्रेष्ठि लोगों को खड़ा किया और पूछा कि भाइयो! तुम्हारी कमीज, कुर्तों में लगे हुए ये बटन कैसे बनते हैं? महाराज जी यह हमें नहीं पता कैसे बनते हैं? किसके बनते हैं केवल चमकदार और कीमती होने के कारण हम लोग लगाते हैं, तब महाराज जी ने कहा भाइयो! ये बटन सीप के हैं, सीप एक जाति का कीड़ा है, जो नदियों में होता है, जब यह गर्भस्थ होता है, तभी इकट्ठा करके सीप के कीट बाहर न निकल पाएँ तभी मुलायम अवस्था में ही इन्हें चीर-काटकर बटन बना लिए जाते हैं। यह घोर पापमय हिंसाजन्य

पदार्थ हैं, इसका त्याग करो। तभी सभी जैन व अजैन लोगों ने अपनी-अपनी कमीज और कुर्तों व जाकेटों के बटन तोड़कर फेंक दिये और कभी न लगायेंगे, प्रतिज्ञा कर ली। अब आया नम्बर "फैल्ट कैप" का यह वह टोपी है जिसमें मुलायम क्रूम (चमड़े) की पट्टी लगाई जाती है, तब महाराज जी ने कहा, देखो अपनी-अपनी टोपियों को इसके भीतर क्या लगा है? महाराज श्री ने बताया यह जो पट्टी लगी है वह गर्भस्थ शिशु भेड़-बकरियों के गर्भ से ही प्राप्त मुलायम चमड़े की बनती है, यह घोर पाप का कारण है, अनेक सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति का कारण है, इस टोपी को लगाकर आप लोग मंदिर भी जाते हैं, रोटी भी खाते हैं, आप लोग कैसे अहिंसक हैं? तत्काल सभी प्रबुद्ध जैनों ने टोपियाँ उतारकर फैंक दीं और कभी "फैल्ट कैप" नहीं लगाने की प्रतिज्ञा कर ली, इसी प्रकार कमर में बांधे कमरपेटियों को भी निकलवा दिया और आजीवन चमड़े का परित्याग करा दिया।

आज का युग भोग विलास का युग है, लोग भौतिकी चकाचौंध में बहकर चमड़े की अटेची, सूटकेस, मनीबैग आदि का बड़े गौरव से प्रयोग करते हैं। यहाँ तक कि बालोंदार चमड़े के बने हुए गर्म स्वेटर आदि बड़े गर्व से पहिनते हैं, जूतों की तो बात ही अलग है, जो नहीं बर्तना चाहिए।

महाराज जी ने अपने प्रवचन में देवदर्शन करना, रात्रि भोजन, कन्दमूल आदि के त्याग की बात कही, तो एक बालक उठ कर कहता है कि महाराज जी हम लोग बिना देवदर्शन किए पानी भी नहीं पीते, न ही रात्रि को भोजन करते हैं, सूर्यास्त से पूर्व ही "अन्थऊ" कर लेते हैं ,फिर त्याग की क्या बात रही, कन्दमूल क्या है, हम नहीं जानते-तब महाराज श्री ने कन्दमूल की परिभाषा को समझाकर कन्दमूलों का त्याग कराया, त्याग की आवश्यकता को समझाते हुए रात्रि भोजन का त्याग कराया, देव दर्शन की प्रतिज्ञा दिलायी।

इसी क्रम में महाराज श्री ने कहा कि भाइयों! आप लोग जन्म से जैन हो। परम्परागत जैन संस्कारों को बड़ी मजबूती से पालते हो, पर आप लोग अभी जैन नहीं हो, जैन वे हैं, जो आठ मूलगुण को धारण करते हैं, वे आठ गुण-मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर फलों का त्याग करने से माने जाते हैं। इन मूलगुणों को पाले बिना जैन नहीं, श्रावक नहीं, तब हाथ उठाकर सब लोगों ने प्रतिज्ञा की और सच्चे जैन श्रावक बन गये।

इस प्रकार आचार्य श्री छाणी ने अपने साधुत्व जीवन काल से प्रत्येक

क्षण परोपकार में लगाते हुए अपने निर्मल चारित्र, संयम की छाप जन जन के मन में अंकित की। वे रत्नत्रयनिधि के स्वयं खजाना थे तथा दूसरों को रत्नत्रय का मार्ग दिखाते थे। त्याग तपस्या की प्रतिमूर्ति महाराज जहाँ जहाँ गमन करते थे, वहाँ के लोग आबालवृद्ध नंगे पैर भयंकर ग्रीष्म दुपहरी में भी विदाई और अगवानी करते थे। धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा थी, भक्ति थी, आज की तरह औपचारिकता नहीं थी, श्रावकों के प्रति भी महाराज श्री के वात्सल्यपूर्ण अनुग्रह के भाव थे।

ऐसी परम पूज्य आत्मा के पावन चरणों में अनंतबार नमन करता हुआ इस स्मृति ग्रन्थ के माध्यम से श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ और समाधिमरण की वाञ्छा। ॐ ह्री अनन्तानन्तपरमसिद्धेभ्यो नमो नमः।

शिवपुरी **राजवैद्य पं. भैय्या शास्त्री**

चरणों में नमोस्तु

दिगम्बर आचार्य प. पू. श्री शान्तिसागर (छाणी) की स्मृति में श्रद्धाञ्जलि देने के लिए स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन एक स्वागत योग्य उपक्रम है। महाराज श्री के दर्शन और चारित्र के योगदान से सभी फलीभूत हैं। हमारी श्रद्धापूर्वक विनयाञ्जलि अर्पित करने के लिए उनके चरणों में नमोस्तु :

देहली **अक्षय कुमार जैन**

श्रद्धाञ्जलि

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में जब दिगम्बर मुनि परम्परा की प्रचुरता का अभाव होता जा रहा था, तब आचार्य श्री शान्तिसागर जी छाणी ने इस वसुंधरा पर जन्म लेकर, दिगम्बर मुद्रा धारण कर जैन समाज को कल्याणकारी धर्मोपदेश दिया और प्रच्छन्न मुनिमुद्रा के दर्शन दिये। ऐसे परम पूज्य गुरू के चरणों में हमारी श्रद्धाञ्जलि समर्पित है।

शिवपुरी **सौ. सुनीता शास्त्री**
एवं सौ. शोभा शास्त्री

श्रद्धाञ्जलि

जिनका भौतिक शरीर आज हमारे बीच नहीं है, फिर भी उनकी पवित्र वाणी से निःसृत यम, नियम, व्रत, संयम का जनहितकारी उपदेश जन-जन के मन में दीपशिखा की भाँति बराबर प्रवाहित हो रहा है, उनकी शिष्य परम्परा के आचार्य, मुनिगण आज सर्वत्र विहार कर तत्वोपदेश देकर कल्याण कर रहे हैं, ऐसे पतितोद्धारक आचार्य शान्तिसागर जी छाणी के पुनीत चरणों में मेरी श्रद्धांजलि समर्पित है।

असीराजपुर — **डॉ. शरद चन्द शास्त्री**

विषय कषायों से रहित

अन्तरंग-बहिरंग विषय कषायों की वासना व परिग्रह से रहित, ज्ञान, ध्यान, तपस्या में संलग्न रहने वाले परम तपस्वी 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी के पावन चरणों में श्रद्धा सुमन सादर समर्पित हैं।

खरगौन — **शिखरचन्द जैन**

तारणतारण

त्रिकाल वन्दनीय, तरण तारण, परम दिगम्बर, तपोनिधि आचार्य शान्तिसागर जी छाणी के श्री चरणों में अनन्तबार नमन पूर्वक श्रद्धाञ्जलि सभक्ति अर्पित है।

शिवपुरी — **डॉ. अविनाश सिंघई**

श्रद्धाञ्जलि

जिन्होंने मुमुक्षु प्राणियों को मोक्ष मार्ग की दिशा बताई, ऐसे परम दिगम्बर मुनिराज शान्तिसागर जी (छाणी) के चरणों में मेरी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित है।

बामौरकला (शिवपुरी) **स. सि. नरेन्द्रकुमार जैन**

दीप-स्तम्भ

प्रातः स्मरणीय, सहजता, सरलता की प्रतिमूर्ति, परम पूज्य आचार्य श्री 108 श्री शान्तिसागर जी छाणी महाराज का व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों ही विस्मृति के अन्धकार में लगभग खो गये थे। उस प्रभावक व्यक्तित्व को उजागर करने का प्रशंसनीय कार्य परमपूज्य उपाध्याय 108 ज्ञानसागर जी महाराज ने किया।

आचार्य श्री ने स्वयं अपने आप में चारित्र रूपी दीपक को प्रज्वलित करते हुए, अनेकों साधकों के अबुझ दीपकों को आलोकित कर, समता रूपी प्रकाश से भर दिया। ऐसे मणितुल्य कांतिमान्, दीपस्तम्भ के पावन पुनीत चरणों में मैं अपनी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती हुई कोटिशः नमन करती हूँ।

सागर **कु. अनीता जैन**

अनोखा व्यक्तित्व

तरस रहे थे सभी सन्त दर्शन के लिये, तभी एक अनोखे व्यक्तित्व ने जन्म लेकर दिगम्बरत्व का दर्शन कराया, ऐसे उस प्रभावक व्यक्तित्व के दर्शनों का लाभ यद्यपि मुझे नहीं हो पाया, परन्तु जिनके नाम से ही जीवन झांकी स्वयमेव व्यक्त हो रही है, गुरु मुख से जिनकी सरलता, निस्पृहता, चारित्रिक दृढ़ता की चर्चा समय-समय पर सुना करती हूँ। ऐसे उन शान्त स्वभावी, चारित्र के धनी आचार्य श्री के चरणारविन्द में श्रद्धानवत होकर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती हूँ।

मुंगावली **कु. मंजुला मोदी**

श्रमण-संस्कृति के उन्नायक

20वीं शताब्दी में जब देश अज्ञान के गहन अन्धकार में डूबा हुआ था। निर्ग्रन्थ साधुओं के दर्शन भी दुर्लभ थे तथा श्रावक समाज में रूढ़ियाँ एवं कुरीतियाँ पनप रही थीं, जिससे वह वास्तविक धर्माचरण से बहुत दूर जा चुका था। ऐसे समय में राजस्थान के बागड़ प्रान्त में एक सूर्य का उदय हुआ, जो आ. शान्तिसागर जी के नाम से सर्वत्र समादृत हुए। आचार्य श्री ने सारे देश में विहार करके धर्म की अपूर्व अलख जगाई। निर्ग्रन्थ परम्परा को पुनर्जीवित किया। मुनिराजों की सिंहवृत्ति होती है। इसे अपने तपस्वी जीवन से कितनी बार सिद्ध किया। वे न उपसर्गों से विचलित हुए और न अन्य बाधाऐं उनका मार्ग रोक सकीं, ऐसे महान् आचार्य श्री को हम भुला बैठे, किन्तु जागृत करने के लिए स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन करा कर समय की बहुत बड़ी मांग को पूरा किया। इस प्रकार उन्होंने सभी मानव जाति को सही रास्ते पर चलने का आह्वान किया। मैं ऐसे आचार्य श्री के चरणों में अपनी सादर श्रद्धाञ्जलि समर्पित करती हूँ।

ललितपुर **कु. शशि रेखा**

सागर से सागर

लोक में यह देखा जाता है कि सागर के विशाल गर्भ में रत्नों की विपुलराशि शोभायमान रहती है। सागर रत्नों को जन्म दे सकता है। पर सागर, सागर को नहीं, पर यह कर दिखाया पूज्य आचार्य 108 श्री शान्तिसागर जी छाणी महाराज जी ने।

रत्नत्रय को स्वयं में प्रकटाते हुए एक नहीं अनेकों सागरों को जन्म दिया। उनके द्वारा जन्मे सागरों ने भी अनेकों सागरों को जन्म दिया, जैसे श्री सूर्य सागर जी, आ. विजय सागर जी, श्री आ. विमलसागर जी, आ. सुमति सागर जी, आ. कल्प सन्मति सागर जी, उपाध्याय ज्ञान सागर जी। इस प्रकार अनवरत रूप से अनेकों सागरों और रत्नराशि को उत्पन्न किया, लेकिन जब जैन समाज इन सागरों के उत्पादक स्रोत को विस्मरण कर बैठा तो ऐसे विस्मृत अपरिचित व्यक्तित्व के परिचय हेतु तथा उनके द्वारा किये गये उपकारों के स्मरणार्थ स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन की आवश्यकता पड़ी, जिसके प्रेरणा स्रोत बने, पूज्य उपाध्याय ज्ञान सागर जी महाराज।

आ. शान्तिसागर जी का पार्थिव शरीर आज हम सभी के बीच में नहीं है, किन्तु उनके द्वारा प्रवाहित धर्म रूपी धारा हम सभी के बीच है। महान् निर्ग्रन्थ आचार्य श्री के पुनीत चरणों में असीम श्रद्धा भाव से शत-शत नमोस्तु।

ललितपुर **ब्र. रेखा जैन.**

श्रद्धा-सुमन

यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि परम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज की सत्प्रेरणा से प्रशममूर्ति आचार्य श्री शान्तिसागर जी (छाणी) स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन का निर्णय लिया गया है।

प्रातःवन्द्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज श्री का पावन-जीवन

अनवरत त्याग, तपस्या और उत्कृष्ट साधना का जीवन्त निदर्शन रहा है। उनकी स्वतः स्फूर्त साधना–प्रवृत्ति साधकों का सम्बल है। अन्तरंग के उत्कृष्ट वैराग्य की भावना से युक्त मनीषी ही स्वयं ही दीक्षा-शिक्षा का अधिकारी होता है। ऐसे सिंहवृत्ति वाले निर्ग्रन्थ मुनिराजों के लिए नीतिकार ने कहा :-

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते मृगैः।।
विक्रमार्जित सत्त्वस्य, स्वयमेव मृगेन्द्रता।।

आचार्य श्री की साधना सिंहवृत्ति जैसी रही। ब्रह्मचर्य व्रत, क्षुल्लक दीक्षा, मुनि दीक्षा ये सब उनकी आत्म सम्बल की स्वतः प्रेरित शक्ति रही है। एकलव्य के द्रोणाचार्य की प्रतिमा के सदृश जिनेन्द्र प्रतिमा ही आचार्य श्री के साधना मार्ग की सम्बल-रही।

यह निश्चित है कि उत्तर भारत में विलुप्त मुनि-परम्परा को पुनर्जीवित करके वर्तमान शताब्दी में प्रथम मुनिराज बनने का श्रेय आपको ही है। अपने 20 वर्ष के निर्ग्रन्थ रूप में आचार्य श्री ने उत्तर भारत में विभिन्न ग्रामों एवं नगरों में पाद-विहार करके जन-सामान्य को सन्मार्ग की ओर उन्मुख किया। अपनी प्रभावी त्याग-तपस्या से एवं उपदेशों से जैनेतर समुदाय को अहिंसक जीवन-यापन का संदेश दिया। अनेक सामाजिक कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का निवारण किया। ऐसे परमवीतरागी, मोक्ष-मार्गी आचार्य श्री की पावन स्मृति में उनके पावन व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचायक "ग्रन्थ" सभी का सम्बल बनें। उन पावन महान् आत्मा को शतशः नमन!!!

जयपुर **डॉ. प्रेमचन्द रावंका**

शत-शत वन्दन

तेरह पंथ परम्परा में आचार्य शान्तिसागर जी छाणी का वही स्थान है, जो बीस पंथ परम्परा में आचार्य शान्तिसागर जी महाराज दक्षिण वालों का है। दोनों की परम्परा में अनेकानेक प्रसिद्ध आचार्य पदधारी व साधु संत हुए हैं। पंथ परम्परा तो उपासना पद्धति की भिन्नता के कारण हुई है। सैद्धान्तिक दृष्टि से दोनों में कोई अन्तर नहीं। दोनों ही आचार्यों ने समाज को त्यागी, व्रती बहुसंख्या में दिये, जिनके परिणामस्वरूप आज समाज में

लगभग 150 साधु सन्त दृष्टिगोचर हो रहे हैं। एक समय था पं. टोडरमल जी, भूधरदास जी, बुधजन की, द्यानतराय जी, भागचन्द जी आदि मुनि के दर्शनों के लिए तरसते थे और एक हम हैं जो मुनिजनों का सान्निध्य होते हुए भी उन्हें द्रव्यलिंगी कहकर अपूज्य मानकर नरक–निगोद के पात्र बने रहे हैं। "धिक् दुःखमा कालरात्रिम्।" ब्यावर में दोनों आचार्यों का प्रेमपूर्वक मिलन हमें यह संदेश देता है कि विचार भेद होने पर भी हम सब अनेकान्त दृष्टि सम्पन्न होने के कारण एकतापूर्वक प्रेमभाव से रह सकते हैं। आचार्य शान्तिसागर जी छाणी की तपस्या अद्वितीय थी। तीस दिन के लगातार उपवास आत्मशुद्धि के साधन थे। बड़वानी में उनके साथ हुई घटना का मुझे स्मरण है। वे संत पुरुष थे उनके मन में सब समान थे,

संत हृदय नवनीत समाना,
कहा कविन्ह पै कहा न जाना।

निज संताप द्रवै नवनीता, परसंताप संत सुपुनीता" तुलसीदास के इस कथन को हम आचार्य महाराज के जीवन में पूर्णतः पाते हैं। उनके श्री चरणों में मेरा शत-शत वंदन।

सनावद (म.प्र.) — **डॉ. मूलचन्द जैन शास्त्री**

विनम्र श्रद्धाञ्जलि

श्रमण संस्कृति के परम उन्नायक, वीतराग धर्म प्रवर्तक, परमपूज्य 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी (छाणी) को जीवन में व्रत धारण करने के पूर्व अपने परिवार से संघर्ष करना पड़ा था। संत स्व कल्याण के साथ-साथ भव्य जीवों के कल्याणार्थ सदुपदेश देकर पावन ज्ञान गंगा प्रवाहित करते हैं। आज विश्व भौतिकता की चकाचौंध में धर्म की आभा को धूमिल करना चाहता है। सन्तों के प्रभाव से संसार कभी भी अछूता नहीं रहा है, अन्यथा इस जगत् की भयावह स्थिति की कल्पना नहीं की जाती।

कहा भी है :-

आग लगी संसार में

झर झर गिरत अंगार।

जो न होते संत जन

तो जल जाता संसार।

जब-जब संसार में अत्याचार, अनाचार में वृद्धि होती है, तब-तब महापुरुष पृथ्वी पर व्याप्त अत्याचार और अनाचार को समाप्त कर जन-जन में सुख और शान्ति का वातावरण निर्मित करते हैं। उत्कृष्ट चरित्र के धनी, तपोनिष्ठ, ज्ञान दिवाकर, विश्व हितैषी, मूर्तिमान् अहिंसक 108 आचार्य श्री के चरणारविन्द में हम कोटिशः वंदना करते हुए अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर स्वतः को कृतकृत्य मानते हैं।

बताशा वाली गली रामपुरा, **शीतलचन्द जैन व्याख्याता**
सागर

श्रद्धाञ्जलि एवं शुभकामनाएं

परम पूज्य आचार्यवर्य श्री 108 शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) वर्तमान युग के उग्रोग्र तपस्वी एवं दिगम्बराचार्य थे। महाराज श्री की दैनिक चर्या बहुत कठोर थी। ये मासोपवासी एवं सच्चे वीतरागी मुनिवर थे। क्रमशः आचार्य पद प्राप्त कर धर्मोपदेश के द्वारा समाज को जागृत करते थे। महाराज श्री के पावन उपदेशामृत पीकर जैनाजैन लोग अपने को धन्य मानते थे। महाराज श्री ने अपने जीवन काल में हजारों एवं लाखों जीवों का उद्धार किया। आपके तप प्रभाव से सारा उपसर्ग निवृत्त हो जाता था। आपकी तपो महिमा को देखकर लोग धन्य-धन्य की आवाज से सराहना करते थे।

ऐसे महान साधु का स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन करना अत्यन्त आवश्यक है। अतः मैं महाराज के प्रति भक्ति भावना के साथ श्रद्धाञ्जलि एवं शुभकामनाएं समर्पित करता हूँ।

मद्रास **मल्लिनाथ जैन शास्त्री**

शुभकामना

युगप्रमुख, दिगम्बर जैनाचार्य, उपसर्ग-विजेता, स्याद्वाद/अनेकान्त प्रणेता आचार्य पुंगव स्व. श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) की स्मृति में प्रकाशित यह "स्मृति ग्रन्थ" एक अद्वितीय ग्रन्थ होगा जो सर्वजनों को प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेगा।

—पूज्य आचार्य श्री ने इस शताब्दी में प्रथम मुनि दीक्षा धारण कर, विलुप्त मुनि परम्परा को पुनः जीवनदान देने का अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

यद्यपि आचार्य श्री आज हमारे बीच नहीं हैं, तथापि उनकी वैदुष्य पूर्ण लेखनी से उनकी अद्वितीय प्रतिभा के साक्षात् दर्शन होते हैं।

— परम पूज्य आचार्य श्री के चरण कमलों में, मैं शतशः सादर विनयाञ्जलि/श्रद्धाञ्जलि/प्रणामाञ्जलि समर्पित करते हुए, सम्पादक मण्डल के इस अविश्रांत परिश्रम एवं सराहनीय कार्य के लिए साधुवाद व्यक्त करता हूँ।

यह स्मृति ग्रन्थ सदैव सर्वजन हिताय, प्रज्ञा-चक्षु एवं दीर्घ दीपशिखावत् कार्य करेगा, यही हमारी शुभ मंगल कामनाएं हैं।

रुड़की (उ.प्र. **नरेन्द्र कुमार शास्त्री**

करुणासागर

परम पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज ने इस शताब्दी के प्रारम्भ में लुप्त होती हुई साधु-परम्परा को पुनरुज्जीवित किया है, साथ ही टूटते हुए नैकित सिद्धान्तों, गुम होते हुए आदर्शों, विलुप्त होती धार्मिक, सामाजिक मर्यादाओं तथा मरणासन्न जीवन मूल्यों में पुनः प्राण प्रतिष्ठा कर नवचेतना का संचार किया है तथा मानव समाज को दीक्षा देकर सही दिशा दी है। संयमित, मर्यादित जीवन शैली देकर भूलों-भटकों को प्रशस्त पथ दर्शाया है और शिष्ट जीवन जीने की प्रेरणा दी है। इस तरह धार्मिक,

सामाजिक मूल्यों और परम्पराओं की रक्षा, उनका व्यवस्थापन एवं संवर्धन में आचार्यश्री का अमूल्य योगदान है।

उनकी तपस्या, साधना, चर्या-क्रियाशीलता, दया-करुणा, समता-सहिष्णुता, बड़ी अद्भुत, प्रेरक, प्रभावी और दिशाबोध देने वाली थी। प्रशममूर्ति, करुणासागर आचार्यश्री का हृदय सिन्धु की तरह गम्भीर और विशाल था। उनके अन्तस् में जन-जन और प्राणिमात्र का हित निहित था।

स्व-पर कल्याण करते हुए उन्होंने अपनी मानव पयार्य को सार्थक किया। ऐसे पुत्ररत्न को जन्म देकर उनके माता-पिता (माणिक बाई और भागचन्द) भी धन्य हुए। वर्तमान साधु-परम्परा भी उस महान सन्त की परम ऋणी है, कि जिन्होंने लुप्तप्राय श्रमण परम्परा को पुनरुज्जीवित कर आगे का पथ प्रशस्त किया।

उस महान् आत्मा की स्मृति में मैं अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए शत-शत नमन करता हूँ।

नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!

बीना (म.प्र.) **अभय कुमार जैन**

दिगम्बर मुनि के केश-लोंच : एक संस्मरण

भारत वसुन्धरा आदिकाल से ऋषि-महर्षियों की ध्यान–स्थली रही है यह भारत भूमि श्रमण संस्कृति का केन्द्र रही है और आज भी है, इसी वसुंधरा पर ऐसे-ऐसे महान सन्त हो चुके हैं, कि जिनके ऊपर भोग-विलासों की छाया तक नहीं पड़ी है, जिन्होंने भोग विलास और समस्त विभूतियों, राज्य सम्पदाओं को नश्वर मानकर आजीवन ब्रह्मचारी रहकर जन हित की व स्वयं के कल्याण की भावना से गृहस्थाश्रम को त्याग दिया और आत्म साधना में संलग्न हो गये।

इसी ऋषि परम्परा के तारतम्य में आचार्य शान्तिसागर जी छाणी का नाम बड़े गर्व से लिया जाता है। ये ऋषिराज स्वयं बुद्ध होकर, संसार के जाल में न फंसकर, आत्महित की भावना से, श्रीमद् जिनेन्द्र देव के चरणों में बैठकर, उनसे ब्रह्मचर्य व्रत से लेकर क्षुल्लक व दिगम्बरी दीक्षा धारण कर

भारत भ्रमण को निकल पड़े और प्राणी मात्र को मोक्ष का उपदेश-देकर मोक्ष मार्ग में लगाया, वर्तमान में विलुप्तप्राय मुनि मार्ग के दर्शन कराए।

दैगम्बरी दीक्षा में केशलोंच का बहुत बड़ा महत्त्व बताया, केशों को अपने हाथों से उखाड़ कर ही दीक्षा ली जाती है, यह भी दिगम्बर साधु की एक प्रकार की कायकलेश नामा व्रत के अर्न्तगत कठिन तपस्या का रूप है, जो इस कठिन कार्य में खरे उतरते हैं, वे ही दि. मुनि बन पाते हैं। आचार्य शान्तिसागर जी छाणी ने भी ब्रह्मचर्य व्रत लेते समय सम्मेदाचल के स्वर्णभद्र कूट पर भगवान पार्श्वनाथ के समक्ष भगवान से प्रार्थना की मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दो और यह कह कर केशों को उखाड़ फेंका। साधारण एवं सीमित वस्त्रादि की प्रतिज्ञा कर सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर दिया और दि. मुनि की कठोर तपस्या का अभ्यास करने लगे। कालान्तर में बांसवांडा ग्राम में निर्वेग को प्राप्त हो भगवान आदिनाथ के सामने क्षुल्लक दीक्षा ले ली। थोड़े से कालोपरान्त बांसवाडा में चार्तुमास किया। 30 दिन के निर्जल उपवास किए। उपवास के बाद समस्त जैन समाज के सामने केशों को लोंच करके संसारोच्छेदनी दैगम्बरी दीक्षा भगवान् आदिनाथ के सामने ग्रहण कर ली।

आत्म साधना में लगकर, नगर-नगरान्तर-ग्रामों में पदविहार कर, अहिंसा धर्म का प्रचार करते हुए बुन्देलखण्ड के बीना नगर में पधारे, अलोकिक तेज से देदीप्यमान महान् दि. मुनि के दर्शन कर जन-जन मुग्ध हो गया, वहीं पर ऋषिराज के "केशलोंच' का निश्चय हो गया और समाज द्वारा ग्रामान्तरों, नगरों को चिट्ठियां पहुंचा दी गईं। निश्चित समय और केशलोंच के दिन बीनानगर में जैन समाज का जमघट लग गया, केशलोंच हुए और अपार जन समूह ने सर्वप्रथम दि. मुनि के, तथा उनकी कठिन साधना, तपस्या का दर्शन किया और अपने आपको धन्य माना। जय जय ध्वनि से आकाश ध्वनित हो उठा।

उस समय अंग्रेजों का राज्य था, बीना जंक्सन रेलवे की सबसे बड़ी स्टेशन थी। आज भी है। कुछ अंग्रेज रेल को रुकवाकर जल्से को देखने आये थे। अंग्रेज भाईयों ने कैमरे फोटो भी खींचे और एक अंग्रेज इतना प्रभावित हुआ, कि मुनि चरणों में आकर बैठ गया और अपने कल्याण की भिक्षा मांगी, सभी लोग बड़ी दिलचस्पी से देख रहे थे, महाराज ने उसे अहिंसा की परिभाषा बताई और मांस न खाने की प्रतिज्ञा दिलाई। मुझे याद नहीं कितने अंग्रेजों

ने नियम लिये पर एक अंग्रेज ने जीवन भर को मांस खाना छोड़ दिया था बाकी अंग्रेज भाई खुशी मनाते हुए वापिस चले गये।

धन्य है बीना जैन समाज, जिसने केशलोंच का महान यज्ञ कराया। हजारों भाइयों को भोजन आदि की अपूर्व व्यवस्था ही नहीं, बल्कि बैलगाड़ियों के बैलों को, घोडों और ऊंटों को भी दाना-पानी और चारे आदि की पूर्ण व्यवस्था की, कैसा वात्सल्य हमने देखा, वह जीवन में अब तक नहीं दिखा, पिचासी दीवालियाँ देख चुका हूँ।

हजारों नर-नारियों ने दिगम्बर मुनि और उनकी कठिन चर्या केशलोंच तपस्या को देखा, समस्त नर-नारी आचार्य श्री की जय और जैन धर्म की जय-जयकार बोलते हुए अपने-अपने ग्रामों को चले गये।

जिन्होंने विलुप्त मुनि परम्परा को जन्म देकर दि. मुद्रा के दर्शन दिए, उन आचार्य शान्तिसागर जी छाणी के श्री चरणों में बारम्बार नमन है।

बामौर कला **पं. रतनचन्द शास्त्री**

शुभकामना

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि प्रातः स्मरणीय परमपूज्य 108 उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज की सत् प्रेरणा से स्वर्गस्थ प्रशममूर्ति आचार्य श्री 108 शान्तिसागर जी (छाणी) महाराज के स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है।

इस महान् ग्रन्थ के माध्यम से अवनितल पर दीर्घकाल तक निरन्तर रत्नत्रय एवं उनके धार्मिक उपदेश का प्रचार-प्रसार होता रहेगा।

मैं पावन स्मृति ग्रन्थ की सफलता हेतु हार्दिक शुभकामना करता हूँ।

अमोल जिला, शिवपुरी **चन्द्रभान शास्त्री**

जिनवाणी के अनन्य भक्त

प्रशान्तमूर्ति आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज जिनवाणी एवं सरस्वती के कीर्तिमान् स्मारक थे। जन मानस पर आचार्य श्री के उपदेशों/प्रवचनों का ऐसा जादू होने लगता था, जिससे एक/अनेक गांवों/शहरों में पाठशालाओं/विद्यालयों/औषधालयों के निर्माण ने धूमधाम मचा दी। ये संस्थाएं आज भी महाराज श्री के कीर्ति-स्मारक बने हुए हैं। जो उनकी याद को आज भी तरो-ताजा कर देते हैं।

महाराज श्री "जिनवाणी" के अनन्य भक्तों में से थे। जन-जन पर उनकी मधुर वाणी, हृदय स्पर्शी शैली की छाप नजर आती है। उनका उपदेश था कि "जिनवाणी" पर विश्वास करो। "जिनवाणी" के एक-एक शब्द द्वारा मोक्ष पा सकते हो। ॐ अक्षर को धारण करने से जीवों का कल्याण होता है।

आचार्य श्री आज के युग के लिए करुणा के सागर थे। ऐसी महान् आत्मा के चरणों में मैं श्रद्धापूर्वक नत स्तक हूँ।

भोपाल- (म.प्र.) पं. रतन चन्द जैन "अभय"

द्वितीय खण्ड

आचार्य शान्तिसागर छाणी और उनकी परम्परा

सच्चे साधु : सच्चे गुरू : सच्चे श्रमण

प्रशममूर्ति, दिगम्बराचार्य श्री 108 शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) इस युग के वे अप्रतिम सन्त हुए, जिन्होंने विलुप्तप्रायः दिगम्बरत्व के वैभव को स्वयं के द्वारा प्रकाशवान, प्रभावान बनाया। "साध्यनिसहजमवं प्राकृतिक वेषं वा स्वीकारोतति साधु", अर्थात् जो अपने स्वभाव को साधते हुए अधिकृत (प्राकृतिक) वेष का धारक हो, वह साधु हैं। साधु की इस परिभाषा को सार्थकता देते हुए दिगम्बर साधु के रूप में "गुरू" संज्ञा को भी सार्थक किया। "क्षत्रचूड़ामणि" में गुरू की परिभाषा निम्नवत् है :

रत्नत्रयं विशुद्धः सन्, पात्रस्नेही परार्थकृत।
परिपालितधर्मो हि, भवाब्धेर-तारकाः गुरूः।।

अर्थात् जो रत्नत्रय से विशुद्ध हैं, पात्र है, वात्सल्य प्रदान करने वाले हैं, परोपकारी हैं, स्वयं धर्म का पालन करते हैं तथा दूसरों से कराते हैं, संसार समुद्र से पार करते हैं, वे गुरू कहलाते हैं। आचार्य श्री ने अपने गुरुत्व को समझा और जीवनपर्यन्त कठोर साधना करते हुए प्राणीमात्र को धर्मामृत का पान कराकर सन्मार्ग पर लगाया। उनके शिष्य-प्रशिष्य भी संख्यात्मक दृष्टि से कम नहीं हैं। वर्तमान में दिगम्बराचार्य श्री 108 सुमतिसागर जी, श्री 108 निर्मलसागर जी, श्री 108 स्याद्वाद विद्याभूषण सन्मतिसागर जी, श्री 108 उपाध्याय ज्ञानसागर जी जैनागम के ऐसे पथ प्रदर्शक आपकी परम्परा के शिष्य-प्रशिष्य हैं, जिन पर वर्तमान पीढी तो गर्व करती ही है, आगे आने वाली पीढ़ियाँ भी गर्व करेंगी।

सांसारिक अशान्ति के बीच आपका शान्तभाव, भौतिकता की आंधी के बीच आपका निर्वेद (वैराग्य) भाव, विरोधी के प्रति वात्सल्य, छली के प्रति निश्छलभाव, कुगुरु-कुदेव-कुशास्त्र की मान्यताओं के बीच आपकी जिनेन्द्रदेव, जिनप्रणीत शास्त्र और वीतरागी गुरुओं के प्रति प्रगाढ़ आस्था आचार्य कुन्कुन्दस्वामी की इस श्रमणत्व कसौटी पर खरी उतरती हैं —

समसन्तु बंधुवग्गो सम सुहदुक्खो पसंसणिंद समो।
सम लोट्ठकंचणोपुण, जीविदमरणे समो समणो।।

अर्थात् जो शत्रु और मित्र में, सुख और दुख में, प्रशंसा और निन्दा में, मिट्टी और स्वर्ण में तथा जीवन और मरण में समभाव रखता है, वही श्रमण है।

सर्प जैसे कुटिल प्राणियों को भी जिनसे वात्सल्य मिला हो, जिनके दयाभाव से प्राणियों के गले पर रखे आरे उतार लिए गये हों, जो सामने आ रही मौत के बीच भी अडिग-अकम्प रहा हो, ऐसे महान् व्यक्तित्व का नाम "शान्तिसागर" सार्थक ही है। मैं उन महान् साधक के व्यक्तित्व और कृतित्व को प्रणाम करता हुआ अपनी श्रद्धाञ्जलि व्यक्त करता हूँ।

बुरहानपुर (म.प्र.) डॉ. सुरेन्द्र जैन "भारती"

श्रद्धा-सुमन

अनादिनिधन णमोकारमंत्र का स्मरण/ध्यान करते समय जब "णमो लोए सव्वसाहूणं" इस पद का उच्चारण होता है तब ध्यान जाता है, कि जिनमुद्रा अनादि काल से है, क्योंकि इस मुद्रा के बिना समस्त कर्मों का क्षय करने वाला ध्यान नहीं होता, इसको समीचीन पालने के लिए 28 मूल-गुण पालन किये जाते हैं।

मूलगुण आत्मसिद्धि के लिए आवश्यक हैं। साधु इनका निरतिचार पालन कर भावों की निर्मलता करते हैं, और शुक्लध्यान को प्राप्त करता है, क्योंकि शुक्लध्यान प्राप्त किये बिना किसी को भी मोक्ष/निवार्ण की प्राप्ति नहीं होती, अतएव मुक्ति प्राप्ति के लिए मुनिमुद्रा आवश्यक है।

जिन्हें आत्मकल्याण की भावना हुई, वही इस मार्ग के पथिक बनें, जब मुनिमार्ग प्रायः लुप्त जैसा था तब एक प्रकाशमान किरण का उदय हुआ, सं. 1945 (सन् 1888) कार्तिक कृष्णा 11 को बागड़ प्रदेश राजस्थान के छाणी ग्राम में श्रीपिता भागचन्द जी, माता माणिकबाई ने पुत्ररत्न उत्पन्न किया और केवल दास नाम रखा। जन्मस्थान पर ही सामान्य शिक्षा प्राप्त की। भगवान् देवाधिदेव नेमिनाथ स्वामी की वैराग्य घटना को सुनकर संसार की असारता पर चिंतन प्रारम्भ हुआ, उसी रात्रि में स्वप्न देखे 1. सम्मेदशिखर जी की वन्दना 2. भगवान् बाहुबली की अष्ट द्रव्य से पूजा करने के भाव, इन स्वप्नों से सुप्त आत्मा में कल्याण करने वाली भावना का दिवाकर प्रकाशमान हुआ, तो क्षेत्रराज श्री सम्मेदशिखर जी के स्वर्णभद्र कूट पर केशलुंचन कर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत, सं. 1972 में गढ़ी (बांसवाड़ा) में श्री 1008 भगवान आदिनाथ के समक्ष-क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। नाम शान्तिसागर रखा गया, वैराग्य भाव निरंतर वृद्धिगत होता गया और सं. 1980 में आदिनाथ जी के समक्ष सिंह वृत्ति स्वरूप मुनिमुद्रा धारण कर ली और अनेक देशों में विहार कर मानव मात्र के कल्याण की भावना का प्रचार-प्रसार करते हुए सं. 1985 में आचार्य पद से विभूषित हुए। अनेक उपसर्ग आने पर भी विचलित नहीं हुए और साधना करते हुए मुनिमार्ग को प्रकाशमान किया।

ऐसे महान् उपसर्गविजेता आचार्य श्री के चरणों में सादर श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ।

टीकमगढ़ **पं. गुलाबचन्द जैन पुष्प**

शतशः नमन

30 वर्ष की भरी जवानी में जिनके संयम एवं वैराग्य का बीज, आजीवन ब्रह्मचर्य प्रगट हुआ। जो वृद्धिगत रहा तथा पूर्ण दिगंबरत्व तक पहुंचा। विवाह प्रसंग को यह कहकर ठुकरा दिया कि यह अनंत वार कर चुका हूँ, अब मुक्तिवधू का वरण करूँगा। निसंदेह यह सब उनके दृढ़संकल्प, अविचल श्रद्धा और सम्यक्त्व का द्योतक है। ऐसे परम पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी के चरण कमलों में इसी पथ की कामना सहित शतशः नमन।

ललितपुर (उ.प्र.) **पं. जीवनलाल शास्त्री आचार्य**

विनयाञ्जलि

परमपूज्य आचार्य 108 श्री शान्तिसागर जी महाराज राजस्थान की मरूभूमि में सर्वप्रथम संयम साधना कर उदित हुए। जैसा कि पढ़ने में आया था कि आपने देवसाक्षी और आत्मसाक्षी पूर्वक ही संयम ग्रहण किया था और अपने आत्मबल के आधार पर ही आचार्य पद पर आरूढ़ हुए।

मेरे अजमेर में बसने के पूर्व ही यहाँ जनता के मुख से यह सुन पाया था, कि परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज का अजमेर में विहार हुआ और बाद में व्यावर में श्री रा. व. सेठ चम्पालाल जी रामस्वरूप जी के बगीचा में दोनों आचार्य संघ ने चातुर्मास किये थे। बड़ा उत्साह रहा। श्री राव धर्मवीर सेठ टीकमचन्द्र जी सोनी प्रतिदिन आहारार्थ व्यावर जाते थे।

गत वर्ष पर्युषण में व्यावर जाने का अवसर प्राप्त हुआ, तो वहाँ रानी वाला परिवार के वयोवृद्धों से वहाँ की वह घटना सुनने को मिली। यह एक अपूर्व ऐतिहासिक घटना रही। जब राजस्थान में ऐसा अविस्मरणीय और अकल्पनीय समारोह सम्पन्न हुआ। इस धर्म कथा को सुनकर आज भी आश्चर्य होता है। कहां तो मुनिधर्म दर्शन ही नहीं होता था और कहाँ दो संघो का एक साथ योग।

ऐसा भी प्रामाणिक रूप से सुनने में आया कि इसके पूर्व श्री चन्द्रसागर जी महाराज नामक कोई मुनि सर्वप्रथम झालरापाटन में आये थे।

आचार्य शान्तिसागर छाणी शान्त स्वभावी, पंथ व्यामोह रहित, सरल स्वभावी, निर्ग्रंथ साधु रहे और कई वर्षों तक अपनी धर्मदेशना से राजस्थान में धर्मोद्योत करते रहे। निर्ग्रंथ साधुओं का हम पर परम उपकार है।

उनकी स्मृति में ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है, यह प्रसन्नता की बात है। दिवंगत आचार्य मोक्ष पथानुगामी हों यही मेरी विनम्र विनयाञ्जलि है। नमोस्तु गुरुचरणेषु।

अजमेर **हेमचन्द जैन शास्त्री**

सद्गुरु के पावन चरणों में मेरा शतबार नमन है

परम आध्यात्मिक सभा पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी सम्पूर्ण भारत के तीर्थों की बंदना करते हुए आज से ७० वर्ष पूर्व बुन्देलखण्ड भूमि पर पधारे थे। वह भव्यों को मधुर प्रभावी, सारगर्भित, सदुपदेशों से अनुप्राणित करते हुए कट्टरतापूर्वक 28 मूल गुणों का पालन करते थे। वह आदर्श संयमी, मोक्ष मार्ग के प्रशस्त साधक थे, समाज के प्रति किया गया उपकार इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा। पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी उन्हें गुरु तुल्य मानकर सदैव मार्गदर्शन प्राप्त करते रहे। ऐसे महान आचार्य के जीवन को बहुआयामी रूप में लाने का जो लोकोत्तर श्रेय उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी ने किया, यह बहुत बड़ा कार्य है। ऐसे युगद्रष्टा आचार्य श्री के पावन चरणों में मैं अपनी श्रद्धाञ्जली समर्पित करता हूँ।

मडावरा, **ललितपुर** **सिं. पं. जम्बूप्रसाद जैन शास्त्री**

शत-शत बार नमन है...

प्रातः स्मरणीय परमपूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी शताब्दी के आरंभ में एक महान् सन्त हुए हैं। इन्होंने ही इस शताब्दी में चारित्र प्रवर्धन की एक ऐसी अक्षुण धारा प्रवाहित की, जिससे अनेक भावी पीढ़ियाँ धन्य हो गईं। वह उस युग में प्रशांतमूर्ति के रूप में ख्यात थे। चा. च. आचार्य श्री शान्ति सागर जी महाराज (दक्षिण) के साथ सन् 1933 में

ब्यावर में चातुर्मास किया। दोनों समकालीन आचार्य थे। आपने कुरीतियों, अंधविश्वासों, मिथ्या मान्यताओं का उन्मूलन कर शुद्धाम्नाय का सम्यक् पोषण एवं सम्वर्द्धन किया। श्रमण संस्कृति के सजग प्रहरी बनकर जगह–जगह विद्यालय पाठशालाऐं, गुरुकुलों की स्थापनाऐं करा कर महान् उपकार किया। आपके पावन चरण-कमलों में श्रद्धा-विनय-भक्तिपूर्वक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

टीकमगढ़ (म.प्र.) **डॉ. सर्वज्ञ देव जैन सोंरया**

श्रद्धा विनय समेत आपके चरणों में प्रणाम...

बीसवीं सदी के आरंभ में प्रथम चरित्रनायक समाधिसम्राट्, घोर तपस्वी, शुद्ध आम्नाय प्रवर्त्तक, अनुभवी सन्त, प्रखर वक्ता, शान्तस्वभावी, सौम्यमूर्ति, युगद्रष्टा, उपसर्गविजेता, परमपूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज छाणी ने सम्पूर्ण भारत की जैन समाज को श्रामण्य का पाठ पढ़ाया। विलुप्त दिगम्बर जैन मुनि परम्परा को पुनजीवित करने का महान् श्रेय प्राप्त किया है। ऐसे महान् सन्त की पावन स्मृति में प्रकाश्य ग्रंथ का वन्दनीय श्रेय युग पुरुष महान् सन्त उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी को है। उनके पावन चरणों में मैं श्रद्धाभक्ति पूर्वक अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

टीकमगढ़ (म.प्र.) **अर्हंतशरण जैन**

काव्याञ्जलियाँ

1. श्री हजारीलाल काका, झांसी
2. श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ, जयपुर
3. जीवनलाल शास्त्री, ललितपुर
4. पं. विमलकुमार जैन सौंरया, टीकमगढ़
5. डॉ. शेखरचन्द, अहमदाबाद
6. वैद्य प्रभुलाल कासलीवाल, जयपुर
7. पं. शिखरचन्द्र जैन, सागर
8. डॉ. दयाचन्द साहित्याचार्य, सागर
9. पं. पवनकुमार शास्त्री दीवान, ललितपुर
10. पं. बाबूलाल फणीश, पावागिरि
11. मूलचन्द शास्त्री, टीकमगढ़
12. पं. नेमीचन्द जैन, वाराणसी
13. पं. शिवचरन लाल, मैनपुरी
14. पं. लक्ष्मणप्रसाद जैन
15. कु. रजनी जैन शास्त्री, टीकमगढ़
16. कुसमलता, पं. पवनकुमार
17. बालेश जैन, शाहपुर
18. वर्द्धमान कुमार जैन, सोंरया

वन्दन-अभिनंदन है

कार्तिक वदी ग्यारस के दिन जिनका हुआ जनम है,
आचार्य शांतिसागर छाणी का वंदन अभिनन्दन है,
राजस्थानी जिला उदयपुर छाणी ग्राम सुहाना
माणिकबाई की गोदी में हुआ स्वर्ग से आना
संवत् उन्नीस सौ पैंतालिस की शुभ बेला आई,
पिता भागचन्द जी के घर में बजने लगी बधाई,
पंडित ने आकर के देखी इनकी जनम लगन है,
श्री आचार्य शांतिसागर का वंदन अभिनंदन है।।
पंडित ने बतलाया बालक घर पर नहीं रहेगा,
भारत भर में घूमघाम जग का कल्याण करेगा,
शादी नहीं करेगा बालक ये भी ध्यान में लाना
केवल दास नाम रखकर पंडित हो गया रवाना
पुण्य योग से ही मिलती ऐसी शुभ घड़ी लगन है,
श्री आचार्य शांतिसागर का वंदन अभिनन्दन है।।
शिक्षा से लेकर अल्प समय में घर का काम संभाला,
शादी का संदेश आया साफ मना कर डाला,
क्षेत्र शिखर पर पार्श्वनाथ से ब्रह्मचर्य व्रत लाये।
ग्राम गढ़ी में आदिनाथ ढिग क्षुल्लक जी बन आये।
क्षुल्लकश्री शांतिसागर को सौ सौ बार नमन है
श्री आचार्य शांतिसागर का वंदन अभिनंदन है।।
उस युग में उत्तर भारत में मुनि दर्शन दूभर था,
दक्षिण में भी यदा कदा ही मुनि दर्शन होता था,
तब ऋषभदेव के समक्ष सागवाड़ा में मुनि दीक्षा ली,
सिंहवृत्ति से मुनिवर की सारी क्रियाएँ पाली,
स्वयं दीक्षाधारी बन कर्मों का किया शमन है,
श्री आचार्य शांतिसागर का वंदन अभिनंदन है।।

उन्नीस सौ पच्चासी में श्री आचारज पद धारा,
गिरीडीह में मचा उस समय भारी जय जयकारा,
दक्षिण में भी एक संत आचार्य शांतिसागर थे,
दोनों बड़े उदार वास्तव में शांतिसागर थे,
दोनों ही संतों को कवि काका का कोटि नमन है,
श्री आचार्य शांतिसागर का वन्दन अभिनन्दन है।।
परम्परा दोनों संतों की भारत भर में छाई,
दो हजार एक की दसवीं जेठ वदी की आई,
मुनि नेमिसागर के द्वारा हुआ समाधि मरण है,
ज्ञान, ध्यान, तप, त्याग की इनने जग में धूम मचाई,
नगर सागवाड़ा में समाधि लेकर सुर पदवी पाई,
आचार्य शांतिसागर छाणी का वंदन अभिनन्दन है।।

झांसी **हास्यकवि हजारीलाल काका**

छाणी के श्री शांतिसिंधु को बारंबार प्रणाम है

राजस्थान प्रान्त में स्थित
बागड़ देश महान है
उसमें छाणी ग्राम मनोहर
जिनका जन्म स्थान है।
पिता भागचन्द माँ माणिक के सुत केवल अभिराम है।।1।।
वातावरण धार्मिक घर का
शिक्षा पायी ग्राम में
चिंतन, मनन, अध्ययन निशदिन
लगे रहे शुभ काम में
उदासीन हो अल्प आयु में छोड़ दिया आराम है।।2।।
बहनोई से घटना सुनकर
नेमिनाथ वैराग्य की
जान लिया संसार रूप को

पलटी रेखा भाग्य की
"ऋषभ देव" "केशरिया" अपि जन जन श्रद्धा धाम है।।3।।
श्रेष्ठ मार्ग निर्ग्रन्थ जान ली,
ब्रह्मचर्य व्रत आखड़ी
हुए अचंभित सभी कुटुम्बी
बात ब्याह की ना बैठी
जा पहुँचे सम्मेद शिखर जी सिद्ध क्षेत्र ललाम है।।4।।
पार्श्वनाथ की टोंक वंदना
करके निश्चय ठान ली
छोड़ परिग्रह केश-लौंच कर
दीक्षा की विधि जान ली
आदिनाथ के सम्मुख क्षुल्लक बने "गढी" शुभ गाम है।।5।।
संवत् था उन्नीसौ अस्सी
वृषभदेव के सामने
नगर सागवाड़ा में ले ली
मुनि की दीक्षा आपने
बने प्रथम आचार्य दिगम्बर जिनका छाणी नाम है।।6।।
पिच्छी और कमण्डलु लीए
आप स्वयं ही हाल में
गांव-गांव में पैदल घूमे
चले गृहस्थी साथ में
पान कराया धर्मामृत का और नहीं कुछ काम है।।7।।
ज्ञान ध्यान तल्लीन तपस्वी
सागर से गंभीर हैं
सत्य, अहिंसा, स्याद्वाद के
उपदेशक अति धीर हैं।
सहन किये उपसर्ग अनेकों सर्दी वर्षा धाम हैं।।8।।
पशु बलियों की प्रथा मिटायी
शांति मूर्ति गुरूदेव ने
त्याग कराया सप्तव्यसन का

घर-घर जा स्वयमेव से
रूढ़ि, अंध विश्वास हटाकर लिया कहीं विश्राम है।।9।।
"दक्षिण" छाणी शांति सिंधु द्वय
मिलकर बैठे पास में
चातुर्मास नगर व्यावर था
धन्य हुआ इतिहास में।
जैन धर्म की कीर्ति पताका पहरी जगह तमाम है।।10।।
सूर्य लाभ औवीर सिंधु मुनि
जिनके शिष्य प्रधान थे
धर्म प्रचार-प्रसार हेतु जो
अति उद्भट विद्वान थे
छाणी के श्री शांति सिंधु का किया उजागर नाम है
छाणी के शांति सिंधु को बारंबार प्रणाम है।।11।।

जयपुर — अनूपचन्द न्यायतीर्थ

शांतिसिन्धुं नमामि तं

छाणीग्रामं सुखदधामं शान्तरूपं सुशोभितं।
न्यायप्रियं कुलोत्पन्नं धार्मिकं मदवर्जितं।
विद्याविभवसंपन्नमनिन्द्रियसुखमाप्तवान्।
शमदमादिगुणैर्युक्तं शान्तिसिन्धुं नमामि तं ।।1।।

चन्द्रवद्यस्य कीर्तिः स्यात् त्रिभुवनव्यापिनीम ता।
दुर्वारमारजित स्वान्तं निशल्यं भयाकुलं।
निर्भयं शंकयायेतं दयार्द्रमार्जवं च यत्।
ज्ञानध्यानरतो साधुं शान्तिसिन्धु नमामि तं ।।2।।

युक्तितर्काभ्यां व्याप्तं प्रवचनं सिंहगर्जनं।
श्रुत्वा यम्मदवर्जन्ति मिथ्यात्वादादी जनाः।
रागद्वेष-विभाववर्जितंमतिं सालोक गोस्वामिनं।
दयासिन्धुं जगद्वंधुं शान्तिसिन्धुं नमामि तं ।।3।।

त्यागाय जीवनं यस्य सत्याय मितभाषणं।
रत्नत्रयोऽपवर्गाय संयमं तपसाधनम्।
स्वाध्यायैवाशनं पानं ध्यानं सामायिकं तथा।
सूर्यसिन्धुः शिष्यो यस्य शान्तिसिन्धुं नमामि तम् ।।4।।

काले कलौ चले चित्ते देहे चान्नादिकीटके।
एतच्चित्रं चमत्कारं जिनरूपं त्वया धृतम्।
भवत्प्रशान्तमुद्राऽपि मुक्तिपथानुप्रेरिका।
स्थितप्रज्ञमनासक्तं शान्तिसिन्धुं नमामि तं।।5।।

सिंहवृत्तिं दधानः यः हस्तिवत्स्वाभिमानिनं।
वृषभेव भद्रशोभा मृगेव सरलं मनः।
निरीह वृत्तिं तेजस्विं चन्द्रवत् शमशीतंद।
गम्भीरमनियतवासं शान्तिसिन्धुं नमामितं ।।6।।

जय जय जय श्री शान्तिसागर मुनि
अपजय मम स्वान्तध्वान्तं भय-भ्रम कारणं यः
नय नय नय भज स्वामिन शान्तिसुधासरः
नहि नहि मम त्राता ज्ञानसंयमात् परः ।।7।।

प्राचार्य-श्री स्याद्वाद सिद्धान्त संस्कृत महाविद्यालय **जीवन लाल शास्त्री**
ललितपुर (उ.प्र.)

प्रणमाञ्जलि

निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा का पाया जिनने उपहार,
आत्म तेज से ज्ञानज्योतिका किया जगत उपकार।
सम्यक्ता का अलंकरण जिनके अन्तस् में छाया,
और साधना से साधकता का गौरव पद पाया।

क्षमा ह्रदय मार्दव मन जिनका सत्य स्वयं के साथ,
आर्जव अन्तस् बना शौच का बाना जिनके पास।।
संयम की सुगन्ध थी जिनमें तप का तेज प्रकाश,
और सत्य की ऊंचाई पर था जिनका विश्वास।।

प्रशम मूर्ति आचार्य शान्तिसागर छाणी सा ऋषिवर,

युग युग का इतिहास उन्हें जीवित रक्खेगा घर घर।
भू मण्डल पर दीप्तवान हैं सोम और रवि सागर,
तब तक उनकी परम्परा के दीपक रहें उजागर।।

आत्म साधना में रत जिनका ब्रह्मचर्य भगवान।
ऐसे सन्त शिरोमणि के चरणों में कोटि प्रणाम।।

प्रतिष्ठाचार्य **टीकमगढ़** (म.प्र.) **पं. विमल कुमार जैन, सोंरया,**

तुमको नमन शत वार है

शांति के सागर मुनि तुमको नमन शतवार है।
धर्म-ज्योतिर्धर तुम्हें वंदन मेरा शतवार है।।

(1)

भूमि राणा की पुनः कृत्यकृत्य पा तुमको हुई।
भूमि छाणी ग्राम की पाकर तुम्हें पुलकित हुई।।
भाग्य जागे पिता के जो स्वयं भागचन्द्र थे।
माणिक माँ के धन अमोलक रूप में तुम इन्द्र थे।
नाम 'केवल' सार्थक तुमने किया निज कर्म से।
आत्मा केवल चिरंतन जान पाये धर्म से।
धर्म-धारक चरण में लो वंदना उपहार है।
शांति के सागर मुनि तुमको नमन शतबार है।।

(2)

घर में रहकर भी कभी घर से नहीं नाता रहा।
धन-कुटुंब के साथ रिश्ता पंक-पंकज-सा रहा।
नेमि प्रभु का चरित सुनकर दीप आतम के जगे।
मोह के बादल छँटे जब सत्य के सूरज जगे।
मैं नहीं हूँ देह, मैं हूँ आत्मा शाश्वत अमर।
देह भी रोमावलि से फूटते थे यही स्वर।
सोचते थे मरण-जीवन यहाँ बारंबार है।

शांति के सागर मुनि तुमको नमन शतबार है।।

(3)

स्वप्न में भी शिखरजी की वंदना करते रहे।
बाहुबली के दर्श पाकर प्रेरणा लेते रहे।
तीर्थ केशरिया में पा दर्शन जिनेश्वर 'आदि' के।
यम-नियम में बँध गये व्रत ले लिए ब्रह्मचर्य के।
पिता ने चाहा कि बेटा ब्याह कर वधू लायेगा।
कहा बेटा ने वधू ऐसी वो लेकर आयेगा
मोक्ष लक्ष्मी वधू का जो बन गया भरतार है।
शांति के सागर मुनि तुमको नमन शतबार है।

(4)

मन प्रफुल्लित हो गया निर्वाण भूमि दर्श पा।
व्रत लिया ब्रह्मचर्य का लुंचन किया निज केश का।
आत्म-प्रक्षालन के संग पथ धर्म का उज्ज्वल किया।
आदि जिनके चरण में क्षुल्लक का व्रत धारण किया।
उन्हीं प्रभु के चरण में धारा दिगंबर वेश है।
शांतिसागर बनके केवल पार गया निजवेश है।
सिंह वृत्ति धारकों को नमोस्तु शतवार है।
शांति के सागर मुनि तुमको नमन शतबार है।।

(5)

एक सागर शांति का मरुभूमि में लहरा गया।
दूजा सागर शांति का दक्षिण को पावन कर गया।
उत्तर से दक्षिण तक फिर से धर्म-ध्वजा लहराई।
सत्य-अहिंसा परम धर्म की गूँज उठी शहनाई।
पशु-बलि देने वालों के अन्तर ही बदल दिए।
क्रूर-हृदय में पुष्प-प्यार के तुमने खिला दिए।
दानव के द्वारे बाँधे मानवता बंधनवार है
शांति के सागर मुनि तुमको नमन शतबार है।

(6)

मुनि विहार पर लगी रोक को निर्भयता से तोड़ा।

वेश दिगंबर धर, विहार कर जन-जन का मुख मोड़ा।
मिथ्यादृष्टि जीवों ने उपसर्ग किए थे भारी।
पर, समता से सहा सभी थी दृढ़ता की बलिहारी।
उपदेशों की पावन गंगा बहने लगी धरा पर।
जन-जन पल्लवित हुआ तुम्हारे दर्शन से हे ऋषिवर।
मरणसमाधि लेकर कीन्हा निज आत्म का उद्धार है।
शांति के सागर मुनि तुमको नमन शत्‌बार है।

अहमदाबाद — डॉ. शेखरचन्द जैन

मैं नमन करूँ अति भावपूर्ण

आचार्य शांतिसागर छाणी का नाम सुना है।
चलते फिरते वे चैत्यालय थे जन समूह का नाद सुना है।।
समभावी थे वीतराग थे निजस्वरूप के ज्ञाता थे यह गान सुना है।
करूँ नमन मैं भावों से उनके गुण पाने भाव बना है।
श्री भागचन्द के भाग्योदय से मणिक बाई ने लाल जना था।
निर्वाण वीर के दिवस चार थे शेष तभी वह लाल जना था।
लालन पालन का मधुर रूप पाकर वह रहा सदा हर्षित था।
यौवन पाकर भी वह वीर ना चालित हुआ था।।
ब्रह्मचर्य व्रत धार बन वे क्षुल्लक मुनि पद धार।
चिन्तन तत्वों का किया जगत का रूप विचार
वे सदा रहे निर्मोह बने आचार्य धर्ममय जीवनधारा।
गांवों-गांवों में घूम धर्म का चक्र प्रसार।

उपदेश तत्व का देते थे वह अति ही प्रभाव होता था।
उनका अभाव है फिर भी उनकी स्मृति का वह कारण था।
प्रभु करे नमन उनको मन से उनके गुण उतरे जीवन में।
उनकी स्मृति ना व्यर्थ बने यदि गुण फैले जन मानस में।

ध्याऊँ गाऊँ उनके गुण मैं अरू मूर्ति बसे उनकी मन में
मैं निश्चित उनके गुण पाऊँ चरित्र करूँ निश्चित मन में
मैं करूँ स्तुति जिनवर की मैं भी उनके सम रूप धरूँ।
मैं नमन करूँ अति भाव पूर्ण मैं शान्ति सुधारक पान करूँ।।

जयपुर — प्रभुदयाल कासलीवाल

शत-शत नमन हमारा है

"शान्तिसागर छाणी मुनिवर को, शत शत नमन हमारा है"

(1)

धन्य भागचन्द माँ मणिका सी, माता विरली धन्य हुई हैं।
छाणी की अगणित गाथायें, शांति जन्म से धन्य हुई हैं।
केवलदास बना जिनवर का, दास प्रभु की शरण गही जब,
ब्रह्मचर्य धारा जीवन में, नेमिनाथ की कथा सुनी जब।
आदि प्रभु के परमधर्म का, मर्म सदा ही माना है,
शांतिसागर छाणी मुनिवर को, शत शत नमन हमारा है।

(2)

मर्त्यलोक में धर्मराज्य के, झंडे अपने आप झुके,
स्वप्न बालयोगि केवल के, दोनों ही साकार हुये।
मर्त्यलोक में धर्म पिता की, देह चिता पर जलती है,
स्वर्गलोक में अमर आत्मा, शांति छाणी की गलती है।
दिव्य छटा शांतिसागर की, जिनवर की शुभ धारा है।
शांतिसागर छाणी मुनिवर को, शत शत नमन हमारा है।

(3)

उपसर्गजयी मुनिवर महान थे, सभी कुरीति दूर हुई थीं।
उपदेशों से कई विरोधी, मानव मन की कलख धुली थी।
संयम सदाचार की धारा, निर्मल जिसने सदा बहाई।
सुखद शांति दायक सुबोध की, अमल अखंडित ज्योति जलाई।
अगम ज्ञान भंडार धनी को, सब जग शीश झुकाता है,
शांतिसागर छाणी मुनिवर को, शत शत नमन हमारा है।

(4)

दीक्षित शोभित मुनिवर सारे, ज्ञान सुमति अरू सूर्यसमी हैं,
विमल ज्ञान के सिन्धु युवा, गरिमा गर्वित अन्य सभी हैं।
अध्यात्ममार्ग में अर्पित हैं, अरू शिवपुर पथ परिचायक हैं,
भावी सन्तति मंगल जीवन की, अध्यात्म कथा उपदेशक हैं।
बने विरोधी भी अनुयायी, मिथ्यातम दूर भगाया है,
शांतिसागर छाणी मुनिवर को, शत शत नमन हमारा है।

(5)

करपात्री अरू वेश दिगम्बर, हित चिन्तन नित करते थे,
कल्याण मार्ग परिचायक थे, शाश्वत निधियों के आगर थे।
प्रशममूर्ति मुनि छाणी जग में, आकर फिर दर्शन दे डालो,
भक्तों की अनुपम आशाओं में, सोऽहम ही भर डालो।
स्वयं सचेती दृष्टि बदौलत, बदला जीवन सारा है,
शांति सागर छाणी मुनिवर को, शत शत नमन हमारा है।

सागर (म.प्र.) **पं. शिखरचन्द जैन**

श्रीशान्तिसागर चम्पूखण्ड-काव्यम्

नमःश्रीशान्तिवीराय, ब्रह्मचर्यव्रतात्मने।
संयतसंघनाथाय, जनोद्बोधनकारिणे।।1।।

यज्जन्मना राजसुदेशछाणी—
क्षोणीति भागः जगति प्रसिद्धः।
पित्रोःप्रसिद्धिर्हिः यदीयनाम्ना
धन्योऽभवद् भारतराष्ट्रभागः।।2।।

अथाविद्यातिमिरनिवृत्तये केवलदासेन राजस्थानीय विद्यालये सुरीत्या गुरुसानिध्ये स्वप्रतिभामाध्यमेन विद्याभ्यासःकृतः। किञ्च—

लोके हि अन्ये मानवाः जागृतदशायामेव स्वबुद्ध्या धार्मिकाचारविचारं कुर्वन्ति, परं भागचन्द्रात्मजः केवलदासः स्वकीयसंस्कारबलेन पवित्रमनोवचन-कायप्रभावेण च शयनदशायामपि श्रीसम्मेदशिखर वन्दन बाहुबलिपूजनादि-

शुभकर्मणां संकल्पं स्वप्नेऽकार्षीत्। इतिविशेषः।

पुण्योदये तीर्थसमेदशैलं
प्रपूज्य योगेन हि पंचवारम्।
श्रीपार्श्वकूटे प्रतिमां विदध्रे
सुब्रह्मचर्यां स विरक्तदासः ।।3।।

तदनन्तरं व्यतीते समये 1979 वैक्रमाब्दे गढ़ी (बांसवाड़ा) स्थाने श्रीसिद्धचक्रविधानमहोत्सवबेलायां श्री भगवतः-ऋषभनाथस्य परमसानिध्ये पंचेन्द्रियविषयविरक्तचित्तः सन् स केवलदासः क्षुल्लकदीक्षां विधृत्य नव्यजीवनं सम्प्राप्तवान्। ततश्च जन्माभिधानशोभितः स केवलदासः क्षुल्लकः शान्तिसागरः-इति पवित्राख्येन विख्यातो भारतेऽस्मिन्।

तदनन्तरं सागवाड़ा (राजस्थान) नगरे 1980 वैक्रमाब्दे भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां तिथौ श्री 1008 आदिनाथ दि. जैनमन्दिरे पूर्वतोऽपि वैशिष्ट्येन सह विषयकषाय-निवृत्तस्वान्तः केवलदासः (भागचन्द्रात्मजः) दैगम्बरीय दीक्षामात्मसात्कृतः क्षुल्लकः, केवलदासः (केवलज्ञानोपासकः) तदा प्रथमःशान्तिसागरो मुनिराजोऽभूदिति महच्चित्रम्।

विलुप्ततापस्यपरम्परां तां
उज्जीव्यं शिष्यानवबोध साधुः।
आचार्यधामं परिधृत्य शान्तिः
धर्मोपदेशं नगरे चकार।।4।।

लोके खलु वृत्तमेतत्प्रसिद्धं, यदेकस्मिन् काले क्षेत्रे च सूर्यद्वयस्योदये न संभवति। परमाश्चर्यं दृश्यते, यत् 1933 ईशाब्दे व्यावरनगरस्य प्रांगणे वर्षायोगे मार्तण्डद्वयस्य पश्चिमदिशि संवृत्तः उदयः—(1) श्रीशान्तिसागरः (दक्षिणः), (2) श्रीशान्तिसागरः (छाणी)। उभयोः वैशिष्ट्यं प्रदर्श्यते :—

लोकसूर्यः लोकध्वान्तं निराकृत्य प्रकाशं करोति स्म। शान्तिभानुः मानवाज्ञानतिमिरं दूरीकृत्य प्रकाशं (ज्ञानं) करोति स्म।

लोकसूर्यस्य सघनमेघैराच्छादनं बभूव, परं शान्तिसूर्यस्य केनापि समाच्छादनं नैवाभूत्।

लोकसूर्यः पश्चिमदिशि अस्तंगतः, परं शान्तिसूर्यः कस्यामपि दिशि नाभूदस्तंगतः।

किं च-भुवनभानुः राहुणा ग्रस्तोऽभूत्। शान्तिमार्तण्डस्तु केनापि राहुणा

(शत्रुणा) विपद्ग्रस्तो नाभवत्।

लोकरविः दिनमणिः कथ्यते, शान्तिसूर्यस्तु ज्ञानप्रकाशकत्वात् नक्तंदिवामणिः प्रसिद्धः। इत्येवं लोकसूर्यापेक्षया शान्तिसूर्यस्य प्रकृष्टमहत्त्वं बभूव।

शान्तिसूर्यद्वयेनैष, लोकसूर्यः पराजितः।
भुवने लज्जितो भूत्वा, पश्चिमे दिशि निर्गतः ।।5।।
पंचचामरवृत्तम्
यस्य शिष्य संघवीरमल्लि भिक्षुधीनभिः।
ज्ञानसागरश्च पाठको हि सूरिपूजकः।
यस्य सत्कृपावशेन जायतेऽभिनन्दनम्
भक्तिपुष्पमाल्यकैः प्रशस्तिकं समर्प्यते।।6।।

प्राचार्य—श्री गणेश दि. जैन. **डॉ. दयाचन्द्र साहित्याचार्य**
संस्कृत महाविद्यालयः
सागर

शान्ति सिन्धु जी तुम्हें नमन

(1)

"परम दिगम्बर मुद्रा धारी, शान्ति सिन्धु जी तुम्हें नमन।
तारण-तरण जहाज गुरूवर, परम तपस्वी तुम्हें नमन।।
धन्य हुई वह पुण्य भूमि जो, 'छाणी' नाम को पाया है।
पिता भागचन्द जी मातु माणिक बाई, जग में यश फैलाया है।।
बाल्यकाल की लीलाओं से, जिन जग में अचरज डाल दिया।
केवलदास की संज्ञा पाकर, केवल निज पाने का यत्न किया।।
नेमि वैराग्य सुना बहनोई से, वैराग्य बीज तब फूट पड़ा।
उसी रात्रि दो स्वप्न देखकर, लिया आदि प्रभु से ब्रह्मचर्य भला।।
देखे जो दो स्वप्न केवल जी, सुनो ध्यान से सभी स्वजन।
सम्मेद शैल की करूं वंदना, श्री बाहुबली मंगल अर्चन।।
पिता कहें श्री केवलदास से, करो ब्याह तुम मेरे लाल।

कहें लाल तुम सुनो पिताजी, मुक्ति रमा को करूँ बहाल।।
जब पहुँचे यह तीर्थराज पर, श्री पार्श्व प्रभु सन्मुख मूरत।
कर केशलोंच जी ब्रह्मव्रत दिक्षा, और परिग्रह परमाण वरत।।
जिला बांसवाड़ा में गढ़ी ग्राम की, पुण्य भूमि तब हुई पावन।
क्षुल्लक दीक्षा ली श्री आदि प्रभु से, नाम पाया श्री शांतिसागर।
कर उग्रतपस्या तीस दिवस की, अनशन तप गुरूवर कीना।
जब हुआ प्रबल वैराग्य आपका, सागवाडा में मुनिव्रत ले लीना।।
प्रखर क्षयोपशम सम्यग्ज्ञान का भक्तों ने जब गुरूवर में देखा।
कर आचारज पदवी से संयुत, धन्य हुई वह भाग्योदय रेखा।।
ग्राम-ग्राम में नगर-नगर में, श्री गुरूवर उपदेश दिया।
जो जन वंदन करता उनका, पाता अनुपम शान्ति हिया।।
पुण्य बेला वह ब्यावर नगरी, जब मिले परस्पर शांतिसागर।
हुआ वर्षा योग जब एकहि भूमि, भरली प्यासों ने गागर।।
धर्म अहिंसा, जीवदया, पियो छनाजल, निशि भोजन न भूल करो।
दें उपदेश श्री गुरूवर जी, तप स्वाध्याय तुम खूब करो।।
शिष्य परम्परा जिनकी देखो, वीर नमि श्री मल्लिसागर।
जयवन्त रहें कल्याण करें, करूँ नमन उपाध्याय ज्ञान सागर।।
स्मृति ग्रन्थ की पुनीत वेला में, हम शत शत वंदन करते हैं।
जो चलते उनके ही पथ पर, मुक्ति रमा को वरते हैं।।

(2)

परम पूज्य आचार्य प्रवर श्री ज्ञानतपोनिधि गुण आगर।
जनमन हारक भवि उद्धारक शांति सिन्धु शान्तिसागर।।
बाल ब्रह्मचारी वैरागी, दृढ़ संवेग विवेक लिए।
चऊ मंगल लोकोत्तम शरणहि, धर प्रतीति उद्रेक लिए।।
आत्म प्रबोधो, जग संबोधो, परम भाव उद्वेग किए।
मोक्ष प्रचारक जय-जय कारक, परम शांति संदेश दिए।।
परम दिगम्बर तज आडम्बर, भेष धार मुनिमार्ग किये।
ज्ञान उधारो धर्म प्रचारो, वीतराग सन्मार्ग किए।।
चऊ आराधन परमाराधन, मनोकामना परम प्रिये।
निज गुणसाधित पूर्णअवाधित, साधुमार्ग परशस्त किये।।

आत्म प्रबोधो जग संबोधो, परमभाव उद्वेग किए।
मोक्ष प्रचारक जय-जय कारक, परम शांति संदेश दिए।।
नित उद्बोधित जिय सम्बोधित, परम तपस्वी धीर हुए।
परमावश्यक षट् आवश्यक, पाल गुप्ति गंभीर हुए।।
भवोदधि तारक शिवमगकारक, दे उपदेश प्रवीण हुए।
ममता हारक समता धारक, करत सुतप तन क्षीण हुए।।
आत्म प्रबोधो ....
दर्शन ज्ञान चरित्र प्रधानी तप संयम गुण शील सने।
पद परमोत्तम धर्मजगोत्तम, आचारज परमेष्ठि बने।।
नमन हमारा सौ-सौ बारा, सविनय हर उल्लास किए।
भरे भावना करें कामना, जन-जन का परमार्थ किए।।
आत्म प्रबोधो जग संबोधो ....
जैन जैन हम एक वृक्ष पर, पात पात बहुजाति किए।
मिलें परस्पर भविप्रेम से, बिखरे ना संताप किए।।
बने हमारी बुद्धि सुभावी, वात्सल्य सम भाव किये।
समकित धारे चरित संभारे, श्रावक धर्म प्रतीति किए।।
आत्म प्रबोधो जग संबोधो, परम भाव उद्वेग किए।
मोक्ष प्रचारक जय जय कारक, परम शांति संदेश दिये।

ललितपुर **पं. पवन कुमार शास्त्री "दीवान"**

शत-शत श्रद्धा से नमामि है

प्रशम मूर्ति आचार्य प्रवर शान्तिसागर छाणी को प्रणाम है।
परम दिगम्बर वीतराग ऋषिवर की, शत शत श्रद्धा से नमामि है।।

(1)

राजस्थान बागड़ प्रदेश में छाणी ग्राम था चमकाया
सम्वत् उन्नीस सौ पैंतालीस में पावन दिन पावन बन आया
कार्तिक वदि एकादश दिन जब बड़े भाग्य से भागचन्द ने पाया।।
माँ "माणिकबाई" के उर से जब केवल मणिसा सुत पाया।
नाम रखा जब केवलदास का किया गजब का काम है।
ज्ञानमूर्ति श्री शान्तिसागर को, श्रद्धा सुमन नमामि हैं।।

(2)

"केवलदास" ने लाड़ प्यार से शैशव जीवन पाया।
तरूण अवस्था में जब आये वीतराग ज्ञान से मोह भगाया।।
प्रभु नेमिनाथ के वैराग्य दृश्य से अपना लक्ष्य बनाया।
कौटुम्बिक ममता छोड़ छाणी ने अपना लक्ष्य बनाया।।
श्री सम्मेद शिखर बाहुबलि यात्रा से पूजन का धर ध्यान है।
प्रशम मूर्ति श्री शान्तिसागर छाणी मुनि को श्रद्धा चरण नमामि है।

(3)

मातृ-पितृ की ममता जागी केवल के व्याह रचाने की
पर केवलदास ने मन में सोचा सिद्धातम पद पाने को।।
केशरिया नाथ में केवल आकर ब्रह्मचर्य व्रत पालन को।
आदि प्रभु की शरणागत या जीवन सफल बनाने को
अनन्तबार मैंने व्याह रचाये, मन में धर मुनि पद का काम है।
सम्मेद शेखर प्रभु पार्श्व चरण में केशलोंच धर कर ध्यान है।।

(4)

आत्म साधना के पथ पर चल केवल ने परिग्रह त्यागा।
सन् उन्नीस सौ उन्नीस में क्षुल्लक दीक्षा ले आत्म बोध जागा।
परम पूज्य श्री सागवाड़ा में मुनि दीक्षा ले जीवन ध्याया।
अठ्ठाईस मूल गुणों में तत्पर अन्तर बाहर ममकार हटाया।।
उपाध्याय पद से मुनि घोषित किया निजातम ज्ञान है।
विषय कषाय से निर्लिप्त होकर निरग्रन्थ मुनीश्वर नाम है।।

(5)

जगह-जगह चातुर्मास प्राप्त कर सिंह वृत्ति से महकाया।
ग्राम-ग्राम में नगर-नगर में चलती फिरती तीर्थ काया।
महावीर का सन्देश लिये जब घर घर में चमकाया।
स्याद्वाद और अनेकान्त से धर्मामृत पिलवाया।
और अनेकों रूढ़िवाद को अहिंसाधर्म से चमकाया।
आचार्य श्री शांतिसागर ने बतलाया पथ अम्लान है।
प्राणी मात्र को धर्म बताकर किया जगत कल्याण है।

(6)

इस बीच सदी के मुनिवर आपने सप्त तत्व का ज्ञान कराया
सत्य अहिंसा मानवता का जग को पाठ पढ़ाया
देव दर्शन, रात्रि भोजन, जल गालन संदेश दिया।

हिंसक पालक मानव ने भी मानवता का पाठ लिया।
मूलाराधन आगम दर्पण को रच प्रश्नोत्तर माला नाम है।
परम तपस्वी ज्ञान ज्योति को शत शत बार नमामि है।

(7)

श्रमण संस्कृति के अध्येता चलते फिरते तीर्थ थे।
सर्वोदय की परम भावना ले, परम शांति गंभीर थे
सर्दी, गर्मी, वर्षा ऋतु में बाधायें सह धीर वीर थे
गुण गौरवता के प्रतीक बन रत्नत्रय धारी शमशीर थे।।
सम्वत् दो हजार एक में जब समाधि ले सुरपुर धाम है।
परम तपस्वी श्री शांतिसागर छाणी जी को नत "फणीश" ललाम है।

ऊन, पावागिरि — पं. बाबूलाल 'फणीश'

वन्दे शान्तिसागरम्

(१)

माणिक बाई कुक्षिजं भागचन्द्रात्मजम्
"छाणी" ग्राम वासिनम् वीरभूसुरत्नकम्।
बालब्रह्मचारिणम् प्रशान्तरूपधारिणम्
भेदविज्ञानिनं वन्दे शान्तिसागरम्।।
कर्मरिपुघातकम् स्वात्मगुणप्रकाशकम्
क्षान्तिशान्तिधारकं शिवरत्नाभिलाषिकम्
स्वात्मरसरसज्ञकं मोहविध्वंसकम्
मोक्षमार्गे स्थितम् वन्दे शान्तिसागरम्।।

(2)

आचार्यवर्यः श्रीशान्तिसिन्धुः
"छाणीति" नाम्ना प्रथितः पृथिव्याम्।
यस्य स्मृतिर्भवतु नः सौरव्यप्रदायी
दूरी करोतु मे संसृतिजन्यतापम्।।

मेवाड़भूमिः खलु यं प्रसूय

जाता जगत्याम् यदि वीरमाता।
तत्पुत्ररत्नं किल कर्महन्ता
स्वात्मस्थितः कामजयी प्रसिद्धः।।
बाल्यात्प्रभृति यस्य मनः विरक्तं
ब्रह्मव्रतं यो मनसा बभार
तीर्थाटने यस्स मनःप्रवृत्तिः
व्यक्तीकरोति हृदयस्थिततीर्थभक्तिं
सः केवलः केवलीदासो भूत्वा
चकार भूमौ प्रखरां तपस्यां।
समभावसहितः यः जहौ शरीरम्।
भूयात् ममेप्सितकरः भुवि शं प्रदाता।।

टीकमगढ **शास्त्री मूलचन्द्र जैन**

मस्तक हमें झुकाना है

जो मात्र पेट भर लेते हैं, अर जग में पेट भरें सबका।
अपने तप संयम से जगका, जो रोज मिटाते हैं खटका।।
अपने अनुभव से जो जाना, वह जग को ही तो बाँट दिया।
चारित्ररूप में ज्ञाननिधि को, बस अपने ही साथ लिया।।
ऐसे मुनिवर के चरणों में, यह मस्तक हमें झुकाना है।
करके कुछ काम अरे, भैया, हमको मुक्ति में जाना है।।

वाराणसी **पं. नेमीचन्द जैन**

श्री शान्तिसूरि स्तुति

जिनालये सुतीर्थकृत-
ऋषभपदे स्वदीक्षितम्।
स्वभावगुणसमाहितं
नमामि शान्तिसागरम्।।1।।

व्यतीत्य वर्षपञ्चकं
सुसूरिपदविभूषितम्।
अग्रन्थपदप्रचारकं
नमामि शान्तिसागरम्।।2।।
सदैव ब्रह्मव्रतधरं
स्वनामधन्यकेवलम्
छाणीयसंघनायकं
नमामि शान्तिसागरम्।।3।।
सुभागचन्दसुतवरं
माणिक्यमात्रपुत्रकम्।
बागड़प्रदेशगौरवं
नमामि शान्तिसागरम्।।4।।
सूर्यस्य पूज्यगुरूवरं
ज्ञानादिशिष्यधारकम्
मुमुक्षु-निस्पृहं गणी
नमामि शान्तिसागरम्।।5।।

मैनपुरी **पं. शिवचरण लाल जैन**

मंगल गान

धर कवच समय उग्र ध्यान कठोर असि निज हाथ ले।
व्रत समिति सुगुप्ति भावन वीरभट भी साथ ले
पर चक्र रागद्वेष हनि स्वतंत्र निधि पाते हुए।
वे स्वपर तारक गुरू तपोनिधि मुक्ति पथ जाते हुए।
मंगलमयी गाथा सुभानुसार मुक्ति मार्गदर्शी
प्रशममूर्ति शान्ति सुधारस पाथेय पंथी।।
माया मोह, विकल्प जाल बन्धन विमुक्त योगी।
चतुर्विधाराधना आराधक परम अध्यात्म योगी
आचार्यश्री शांतिसागर जी महामुनि (छाणी) के
चरणारविन्दों में श्रद्धावनत सुमन श्रद्धांजलि।

मड़ावरा **पं. लक्ष्मणप्रसाद जैन**

छाणी वाले बाबा

छाणी छाड़ि एक न मानी
हुए दिगम्बर वीरा
श्री शान्ति सिंधु गंभीरा
मेवाड़ भूमि के वरद पुत्र
माता माणिक ने जाये।
आतम हित के हेतु जिन्हें
संसार भाव नहीं भाये।।
बालपने में ही दुर्धर व्रत
ब्रह्मचर्य धर लीना।
बाल ब्रह्मचारी होकर के
प्रभु भक्ति चित दीना।
तीर्थराज सम्मेद शिखर की
यात्रा कर हर्षाये।
पार्श्वनाथ की टोंक पर आकर
आतम भाव जगाए।।
दृढ़ संकल्प तभी कर लीना
मुनि व्रत धारण कीना।
करी तपस्या कर्म हनन को
समता रस भरलीना।।
जगह-जगह पर भ्रमण करत रहे दिए उपदेश घनेरे।
आतम हित के हेतु तुम्हें, मैं नमन करूँ चित पेरे।।

टीकमगढ़ (म.प्र.) **कु. रजनी जैन "शास्त्री"**

पावन होने लगा धरती का कण-कण

जब दिया जलता है तो आंधियाँ परीक्षा लेने आ जाती हैं। लेकिन :—

फानूस बनके जिसकी हिफाजत हवा करे।
वो शमा क्या बुझेगी, जिसे रोशन खुदा करे।।

ऐसा ही एक दीपक जला-आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी)
अन्धकार में डूबा मुक्ति-मार्ग, पुनः आलोकित हो उठा।
रत्नत्रय की आभा से, प्रकाश में देखा
अनेकों दिये रखे हैं, जलने को उत्सुक
भव्य आत्मायें, चलने को उत्सुक
सन्मार्ग पर, मुक्ति-पथ की ओर।
दिगम्बर मुनि मुद्राओं के, दर्शन से पुनः
धन्य-धन्य होने लगे, जन-जन/मन-मन
और पावन होने लगा धरती का कण-कण।।

शाहपुर — बालेश जैन

धरा धन्य हो गई तुम्हें पा...

धन्य धन्य सौ बार धन्य वह मात पिता अरु नगर जहान,
उचित हुआ मंगलमय रविकर मिटा मोह माया अज्ञान।
राजस्थान वागड़ प्रदेश में छाड़ी मंगल ग्राम महान,
सम्वत् उन्नीस सौ पैंतालीस कार्तिक वदि एकादश जान।।

धन्य धन्य उन शान्ति सिन्धु को कोटिक कोटि नमन है,
पिता धन्य हैं भागचंद्र माँ मणिका हुई चमन है।
केवलदास सुहाना जिनका नाम हुआ हितकारा है,
नेमिनाथ की गाथा सुनकर जिसने संयम धारा है।।

प्रशममूर्ति जग जिनको करता आत्मनिधि के आगर थे,
उपसर्ग विजेता तपः साधना समता गुण के सागर थे।
उपदेशों से सदाचार की संयम धार बहाई है,
सदाचरण मय सुखद ज्ञान की मंगल ज्योति जलाई है।।

कोटुम्विक ममता को त्याग सिद्धातम पद पाने को,
चलते फिरते युग के अर्हत तुम्हें नमन सुख पाने को।
जब तक नभ में दीप्त दिवाकर भू पर सागर लहराऐं,
युग युग के श्रावक जन नितप्रति तव चरणन झुक सुख पाऐं।।

वीतरागवाणी मासिक कार्यालय **पं. बर्द्धमान कुमार जैन सोंरया**
टीकमगढ़ (म.प्र.)

सविनय नमोस्तु

आज से सौ साल पहले तक उत्तर भारत में दिगम्बर मुनि-परम्परा का प्रायः अभाव- सा हो गया था, दूर-दूर तक कहीं भी दिगम्बर मुनि का अस्तित्व सुनने में भी नहीं आता था। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम चरण उत्तर भारत के लिये मुनि-परम्परा का सूत्रपात करने वाला समय सिद्ध हुआ। सन् 1872 ईसवी में चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज का जन्म हुआ और 15-16 वर्षों के अंतराल से सन् 1888 में आचार्य शान्तिसागर जी छाणी महाराज का जन्म हुआ। इन दोनों आचार्यों ने अपनी तपस्या से साधु-संघों को गौरवान्वित किया और अपने मंगल-विहार से उत्तर-भारत में दिगम्बर मुनि-परम्परा की पुनर्स्थापना का ऐतिहासिक कार्य किया। इन दोनों आचार्यों की सुदीर्घ शिष्य-परम्परा भी चली, जिसने समूची बीसवीं शताब्दी को प्रभावित किया है।

प्राचीन काल से ही ऐसी पद्धति रही है कि हमारे आचार्यों और मुनिराजों का विधिवत इतिहास न लिखा गया, न संकलित किया गया। यही कारण है कि आज हमारे महान आचार्यों का कृतित्व तो उपलब्ध है परन्तु प्रायः उन सबके प्रामाणिक जीवन-वृत्त से हम वंचित ही हैं। पता नहीं क्यों, हमारे आचार्यों और मुनिराजों ने एक ओर जैन-साहित्य में अपनी क्षमता के अनुसार अभिवृद्धि तो की परन्तु दूसरी ओर अपने गुरू का जीवन-वृत्त लिखने का प्रयास प्रायः उन्होंने नहीं किया। इतिहास के प्रति हमारे संतों की यह उदासीनता वर्तमान संत-समुदाय में भी वैसी ही दिखाई देती है।

हमारा सौभाग्य है कि चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के संदर्भ में जीवन-वृत्त की कोताही नहीं रही। इसका कारण शायद यह रहा कि उनके जीवनकाल में ही उनकी शिष्य-मण्डली में मुनियों, त्यागियों और विद्वानों का एक अच्छा समुदाय तैयार हो चुका था, जिन्होंने अपने गुरू का जीवन-वृत्त यत्र-तत्र लिपिबद्ध कर दिया। बाद में आचार्यश्री के जीवनीकार पं. सुमेरुचंद्रजी दिवाकर ने उस सारी सामग्री को संकलित और व्यवस्थित करके एक वृहद् ग्रन्थ के रूप में निबद्ध किया और उस महान् जीवनी को "चारित्र-चक्रवर्ती" नाम देकर जैन साहित्य की स्थायी सम्पदा बना दिया।

यह और बात है कि आज वह पावन जीवनी अनेक वर्षों से

अनुपलब्ध है। साधक के लिये जिसमें प्रेरणाओं का अनन्त स्रोत भरा है, ऐसी वह जीवनी, जिसे हर साधक के पास सबसे पहले होना चाहिये, आज ग्रन्थागारों में भी ढूँढे नहीं मिलती। बड़े-बड़े स्वरचित ग्रन्थों के प्रकाशन की अनुमति देनेवालों का ध्यान अपने गुरु की जीवनी पर नहीं जाता। इसे क्या कहा जाये? संतोष की बात है कि आचार्यश्री के कुछ संक्षिप्त जीवन-परिचय यदा-कदा निकलते रहते हैं। महासभा ने पूज्य. विशुद्धमती माताजी से लिखाकर ऐसा एक संस्करण अभी इस वर्ष निकाला है। ऐसे प्रयास स्तुत्य हैं और होते रहने चाहिए।

एक और महापुरुष श्री गणेश वर्णी

इन दो महान आचार्यों के समकालीन एक और महापुरुष का जन्म बुन्देलखण्ड में हुआ, जिसका नाम था "गणेशप्रसाद वर्णी"। सन् 1874 में जन्म लेकर 1961 में समाधि-पर्यन्त अपना दीर्घ जीवन पूज्य वर्णीजी ने सामाजिक-कुरीतियों के उन्मूलन, शिक्षा-प्रसार और ज्ञानाराधना के लिये समर्पित कर दिया था। युवावस्था में गृह तथा वाहन का त्याग करके पूरे उत्तर भारत में पद-यात्रा द्वारा उन्होंने अपना संदेश जन-जन तक पहुँचाने का प्रयत्न किया और उसमें ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।

वर्णीजी के जीवन की एक विशेषता यह रही कि उन्हें भी अपनी राह स्वयं बनानी पड़ी। युवावस्था में ही वे विद्यार्जन की पिपासा लेकर देशाटन के लिये निकल पड़े। रूढ़ियों के जाल में फँसी हुई और अशिक्षा के अंधकार में डूबी हुई समाज की दुर्दशा को उन्होंने स्वयं देखा और अनुभव किया था। समाज की इस व्यथा से पीड़ित होकर उसी आयु से वे विद्या-प्रसार के काम में जुट गये। उन्हें आयु भी अच्छी प्राप्त हुई। अठासी साल की आयु में सन् 1961 में सल्लेखना-पूर्वक ईसरी के आश्रम में उनका समाधि-मरण हुआ। इस प्रकार उन्हें साठ-पैंसठ वर्षों का अत्यंत सक्रिय कार्यकाल प्राप्त हुआ, जिसमें उन्होंने ज्ञान और चारित्र की अनवरत आराधना की। आयु समाप्त होने के पचास-पचपन वर्षों पूर्व ही वे बुन्देखण्ड में, और क्वचित् उसके बाहर भी अनेक जैन विद्यालयों, पाठशालाओं और कन्या-पाठशालाओं की स्थापना कर चुके थे। उनके द्वारा सन् 1905 ई. में स्याद्वाद महाविद्यालय, बनारस और सन् 1908 में श्रीगणेश संस्कृत महाविद्यालय, सागर की स्थापना हुई। इस प्रकार अपने दिंव्य-अवदान के

रूप में, जैन-विद्या के राष्ट्रीय-स्तर के ये दो सर्वोत्तम संस्थान, भारत की दिगम्बर जैन समाज को, पूज्य वर्णीजी इस शताब्दी के प्रथम दशक में ही प्रदान कर चुके थे।

वर्णीजी का जीवन भी बहुत घटना-प्रधान रहा। उनके जीवन-प्रसंग भी जन-सामान्य के लिये बहुत प्रेरक और आदर्श जैसे रहे। इसलिये कुछ शिष्यों के अनुरोध पर उन्होंने स्वयं अपना जीवन-वृत्त विस्तार से, आत्म-कथ्य के रूप में लिपि-बद्ध कर दिया। उनकी यह आत्म-कथा "मेरी जीवनगाथा" के रूप में विख्यात है। उसकी अनेक आवृत्तियाँ हो चुकी हैं और एक संक्षिप्त-संस्करण भी प्रकाशित हो चुका है।

आचार्य शान्तिसागर जी छाणी : एक प्रभावक आचार्य

पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी छाणी महाराज का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही विस्मृति के अंधकार में लगभग खो गये थे। प्रसन्नता की बात है कि उनकी शिष्य परम्परा के गुरु-भक्त साधक पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी मुनिराज ने छाणी महाराज की जन्म शताब्दी के अवसर पर उनके प्रेरक जीवन-वृत्त को उद्‌घाटित करके पुनः प्रकाश में लाने का शुभ-संकल्प किया। यह एक साधक-संत की अपने गुरु के प्रति, और अपने पूर्वज आचार्यों के प्रति निष्ठाभरी कृतज्ञता का ही प्रतीक है।

सन् 1990 में शाहपुर (मुजफ्फरनगर, उत्तरप्रदेश) के चातुर्मास में वहाँ की समाज के कुछ संवेदनशील युवकों ने उपाध्यायश्री के संकल्प को साकार करने का प्रति-संकल्प किया। फिर इस दिशा में जो प्रयास प्रारम्भ किये गये, उनके फलस्वरूप "प्रशान्तमूर्ति आचार्य 108 श्री शान्तिसागर महाराज छाणी स्मृति-ग्रन्थ" की रूपरेखा तैयार की गई, ग्रन्थ की पूर्व-पीठिका के रूप में एक सुन्दर स्मारिका प्रकाशित की गई, जिसमें आचार्य महाराज से सम्बन्धित प्रायः सारी उपलब्ध सामग्री को रेखांकित कर दिया गया। श्री तीर्थ-क्षेत्र ऋषभदेव के पं. महेन्द्रकुमार "महेश" शास्त्री ने आचार्यश्री का एक जीवन-परिचय लिखा जो इस स्मारिका में प्रकाशित है। नवम्बर 91 में गया चातुर्मास के समय उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी के सान्निध्य में उत्सव-पूर्वक इस स्मारिका का विमोचन भी सम्पन्न हो चुका है।

इसी पृष्ठभूमि में आचार्य शान्तिसागरजी छाणी महाराज की एक

संक्षिप्त, सूचनात्मक जीवनी लिखाने का अभिप्राय उपाध्यायश्री ने व्यक्त किया। अधिकृत सामग्री और सूचनाओं के अभाव में यह कार्य अत्यन्त कठिन था। इतिहासरत्न डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल ने इस दुरूह कार्य को सम्पन्न करने का निश्चय किया और भारी परिश्रम के बाद यह संक्षिप्त जीवनी उन्होंने लिखकर तैयार की। प्रसन्नता की बात है कि डॉ. कासलीवाल के परिश्रम से छाणी महाराज के विस्मृत प्रायः जीवन-वृत्त की बिखरी कड़ियों ने एक सुन्दर माला का रूप ग्रहण कर लिया है। विश्वास किया जाना चाहिए कि डॉ. कासलीवाल का यह परिश्रम बहुतेरे साधकों के लिए दीर्घ समय तक प्रेरणा का स्रोत बनता रहेगा।

स्मारिका का विमोचन होने के उपरान्त भी सामग्री की शोध-खोज बराबर चलती रही और अभी भी उसके प्रयास जारी हैं। सौभाग्य से छाणी महाराज के एक सुधी-शिष्य ब्रह्मचारी भगवानसागरजी द्वारा पैंसठ वर्ष पूर्व लिखा हुआ आचार्यश्री का अधूरा जीवन-चरित किसी शास्त्र-भण्डार से ढूँढ निकाला गया। यह जीवनी एक छोटी पुस्तिका के रूप में गिरिडीह के ब्र. आत्मानन्दजी ने सन् 1927 ई. में लखनऊ के शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस से छपवाकर प्रकाशित की थी। आचार्यश्री के जन्म से लेकर उनके आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जाने तक की प्रामाणिक जानकारी इस पुस्तक में अंकित है। इस छोटी सी जीवनी के माध्यम से ऐसे अनेक प्रसंगों की जानकारी मिलती है, जो छोटे होकर भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यदि यह पुस्तिका डॉ. कासलीवाल और पं. महेन्द्रकुमारजी "महेश" के सामने होती तो निश्चित ही इन दोनों विद्वानों का लेखन अधिक विस्तृत होता। यह जीवनी आज भी पूर्णतः प्रासंगिक है।

महापुरुषों के जीवन की कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं जो तात्कालिक रूप से छोटी या महत्त्वहीन लगती हैं परन्तु उनके प्रभाव दूरगामी होते हैं। कठिनाई यह है कि ऐसी घटनाओं का जीवन्त अंकन कोई समकालीन लेखक ही कर सकता है। बाद के लेखक उसे वैसे प्रभावक ढंग से नहीं लिख सकते। यदि वह समकालीन लेखक शिष्य या भक्त हो तब तो कहना ही क्या है। ब्र. भगवानसागर जी छाणी महाराज के ऐसे ही समर्पित भक्त और शिष्य थे इसलिये उनके लेखन में प्रमाणिकता के साथ-साथ आख्यान जैसी रोचकता भी है। वह छोटी सी पुस्तिका उनकी गुरु-भक्ति का ज्वलंत प्रमाण है।

काश, आज का शिष्यवर्ग ऐसे उदाहरणों से कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सके और गुरु-दक्षिणा के रूप में ही क्यों न हो, अपने गुरु का गुणानुवाद करने का प्रयास करे तो अनेक पूज्य-पुरुषों के जीवन के अनेक प्रेरक-प्रसंग जन-सामान्य के समक्ष उद्‌घाटित होकर उसकी प्रेरणा का अजस्र स्रोत बन सकते हैं। इस सन्दर्भ में एक यह तथ्य भी ध्यान में रखा जाना चाहिये कि सुयोग्य शिष्य क्षमता के अनुरूप यदि अपने गुरु के संस्मरण लिखकर अपनी कृतज्ञता-ज्ञापन नहीं करता, तो उन महापुरुष के जीवन की घटनाएँ सदा के लिये अनावृत्त ही रह जायेंगी, क्योंकि साक्षात्-शिष्य के बाद की पीढ़ी यह कार्य कर ही नहीं सकेगी। घटनाओं का जीवन्त चित्रण तो अनुभवन के आधार पर ही किया जा सकता है। मात्र सुनकर वैसा प्राणवान् लेखन सम्भव नहीं होता। छाणीजी के जीवन-चरित की भूमिका में बाबू कामताप्रसादजी ने लिखा था—"अंत में हमारी हार्दिक भावना है कि जिस तरह ब्र. भगवानसागरजी ने मुनि शान्तिसागरजी का चरित्र लिखा है, वैसे ही अन्य विद्वान् दूसरे मुनि महाराजों के चरित्र रचकर जैन साधुओं की महत्वशाली जीवनी का परिचय सर्व-साधारण को कराकर पुण्योपार्जन करें।" इतिहास साक्षी है कि पैंसठ साल में भी बाबू कामताप्रसादजी की भावना की बेल में फल-फूल लगने अभी प्रारम्भ नहीं हुए हैं।

यह आलेख लिखते समय मेरी कठिनाई यह है कि मुझे आचार्यश्री के दर्शनों का सौभाग्य नहीं मिला। उनके बारे में पढ़कर और सुनकर ही मैंने कुछ थोड़ी सी जानकारी प्राप्त की। मैं देखता हूँ कि यही कठिनाई अग्रज बाबू कामताप्रसादजी के समक्ष उस समय थी, जब वे 1927 में महाराज की जीवनी की भूमिका लिख रहे थे। अन्तर केवल यह है कि उस समय यदि बाबूजी चाहते तो जाकर महाराज का दर्शन कर सकते थे, परन्तु आज मेरा ऐसा भी भाग्य नहीं है, फिर भी मैं अपनी इस विवशता को समाधान देने के लिये, प्रथम जीवनी की भूमिका में से स्व. बाबूजी के ही शब्द उद्धृत करके अपने आपको स्पष्ट करने का प्रयत्न करता हूँ। उन्होंने लिखा था—

—"श्री शान्तिसागर जी महाराज के प्रस्तुत चरित्र के लेखक ब्र. भगवानसागरजी ने मुझसे इस पुस्तिका के लिये "आदि के दो शब्द" लिख देने का विशेष अनुरोध किया है। किन्तु मैं मुनि शान्तिसागरजी के जीवन सन्दर्भों से परिचित नहीं हूँ, यहाँ तक कि अभी तक मुझको उनके दर्शन करने

का भी सौभाग्य नसीब नहीं हुआ है। इस हालत में मेरी उनके जीवन चरित्र के विषय में सहसा कुछ लिखना प्रायः असंगत ही है। पर ब्रह्मचारीजी ने जो कुछ जीवन घटनाएँ इन साधु महाराज के इस जीवन चरित्र में लिखी हैं, उनके अवलोकन से इस असंगतपने का भय दूर हो गया है।"

—"मुझे यह कहने में भी कुछ संकोच नहीं है कि शान्तिसागरजी महाराज इस काल में एक साधु-रत्न हैं। उनसे धर्म की प्रभावना है और वे हमारे हित-चिन्तक हैं। उनकी भक्ति और विनय करके हम पुण्य का उपार्जन इस पंचमकाल में भी कर सकते हैं। जिन दिगम्बर मुनिराजों की कथाएँ हम पुरातन ग्रन्थों में ही पढ़ते थे, उनके प्रत्यक्ष दर्शन करने का सुअवसर आज प्राप्त हो गया है, यह हमारा अहो-भाग्य है।"

मेरा आग्रह है कि बाबू कामताप्रसादजी की उपरोक्त पंक्तियों को ही मेरे इस आलेख की प्रस्तावना के रूप में पाठक स्वीकार करें।

देश-काल के परिप्रेक्ष्य में उनका जीवन-दर्शन

आचार्य शान्तिसागरजी छाणी की जीवनगाथा वास्तव में आस्था, निष्ठा, साहस और दृढ़ संकल्पों की गाथा है। उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं को समझने के लिये हमें उनके जीवन की हर घटना को तात्कालिक समय और समाज के परिप्रेक्ष्य में ही समझना होगा। इस दृष्टिकोण से विचार करें तो हम पायेंगे कि छाणी महाराज का प्रत्येक निर्णय अडिग-आस्था और अदम्य-साहस के साथ अपिरिमित आत्म-विश्वास से भरा हुआ होता था।

प्रायः छाणी महाराज के व्यक्तित्व को उनके समकालीन चारित्र-चक्रवर्ती पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के साथ तुलना करके देखा जाता है। इस प्रकार की दृष्टि से न तो इतिहास को समझा जा सकता है और न ही किसी के व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन सम्भव हो सकता है। इसलिये दोनों महात्माओं का, एक दूसरे से निरपेक्ष और निष्पक्ष मूल्यांकन करके ही उन्हें समझना चाहिए, तभी उनके वंदनीय-व्यक्तित्व का सही दर्शन हो सकेगा। फिर भी सही जानकारी के लिए दोनों पुण्य-पुरुषों के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ हमारी दृष्टि में रहना भी आवश्यक हैं।

समकालीन दो आचार्य शान्तिसागर

चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी (दक्षिण) यद्यपि आयु में आचार्य शान्तिसागरजी छाणी से पन्द्रह वर्ष बड़े थे, परन्तु दोनों के दीक्षा संस्कारों

में अधिक अन्तर नहीं था। एक दृष्टि में यदि हम जानना चाहें तो उनका उद्‌भव इस प्रकार हुआ था—

	जन्म ईस्वी	क्षुल्लक दीक्षा	मुनि दीक्षा	आचार्य पद	समाधि प्राप्ति
आचार्य शान्तिसागरजी दक्षिण	1872	1915	1920	1924	1955
आचार्य शान्तिसागरजी छाणी	1888	1922	1923	1926	1944

इतना विशेष है कि आचार्य शान्तिसागरजी दक्षिण ने क्षुल्लक दीक्षा के थोड़े दिन उपरान्त गिरनार पर्वत पर वस्त्र-खण्ड त्याग कर ऐलक पद अंगीकार कर लिया और बाद में कई वर्षों तक उसी वेष में वे विहार करते रहे। यह भी ध्यान में रहना चाहिये कि यद्यपि उन्हें "चारित्र-चक्रवर्ती" की उपाधि से कई वर्षों बाद विभूषित किया गया था, पर कालान्तर में वह "चारित्र-चक्रवर्ती" सम्बोधन उनके लिए रूढ़ हो गया और उस नाम से ही उनकी पहिचान होने लगी।

इस प्रकार साधना के क्षेत्र में चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी, आचार्य छाणी महाराज से हर पद पर वरिष्ठ थे। छाणी महाराज ने उनकी इस वरिष्ठता को सदा उदारता पूर्वक सम्मान दिया। दोनों आचार्यों में एक दूसरे के लिए संत-सुलभ वात्सल्य और आदर का भाव था।

उत्तर-भारत में विचरित प्रथम दिगम्बर मुनिराज

छाणी महाराज को उत्तर-भारत में विहार करने वाला प्रथम दिगम्बर आचार्य कहा जा सकता है। परन्तु इसमें इतना ध्यान रखना होगा कि उनके मुनि दीक्षा लेने के सात-आठ वर्ष पूर्व, सन् 1914 या 15 में, दक्षिण के एक और मुनि श्री अनन्तकीर्तिजी निल्लीकर सम्मेदाचल की वन्दना के लिये आ चुके थे। उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ तथा आगरा आदि नगरों में रुकते हुए वे मुरेना पहुँचे थे। उनका उत्तर में प्रवास बहुत ही थोड़े दिनों का रहा। मुरेना में दुर्घटनावश पैर का कुछ भाग जल जाने के कारण उन्होंने अत्यन्त दृढ़तापूर्वक सल्लेखना धारण करके वहीं अपना शरीर त्याग दिया। वे अपने प्रति एकदम निर्मम और कठोर तपस्वी थे।

वास्तव में तो छाणी महाराज ही ऐसे प्रथम मुनिराज थे, जिन्होंने उत्तर

भारत के नगरों में दूर-दूर तक पद-यात्रा करके दिगम्बर साधु के विहार का मार्ग प्रशस्त किया। उनके जीवन-वृत्त से ज्ञात होता है कि सन् 1927 में, जब चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी दक्षिण का संघ सम्मेदाचल की वन्दना का ध्येय बनाकर कुम्भोज से नागपुर की ओर प्रस्थान कर रहा था, जब जनवरी 1927 तक पूज्य मुनि शान्तिसागरजी छाणी महाराज राजस्थान के अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए, और इन्दौर तथा ललितपुर में अत्यन्त प्रभावक चातुर्मास व्यतीत करते हुए, पूरे मालवा, बुन्देलखण्ड और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में विहार कर चुके थे। इस बीच मालवा के हाटपीपल्या में उन्होंने अपने प्रथम शिष्य के रूप में ऐलक सूर्यसागरजी को मुनिदीक्षा प्रदान की।

शिखरजी की यात्रा

मुनि श्री छाणी महाराज ने सन् 1926 ई. में अपने संघ सहित कानपुर, लखनऊ, गोरखपुर, अयोध्या और वनारस आदि उत्तर प्रदेश के प्रमुख नगरों में विहार करते हुए अनादि सिद्धक्षेत्र श्रीशिखरजी की यात्रा के लिए विहार किया। पिछली अनेक शताब्दियों के ज्ञात इतिहास में यह पहली घटना थी, जब कोई दिगम्बर मुनि दूर से भ्रमण करते हुए, अपने संघ के साथ पर्वतराज की वन्दना के निमित्त वहाँ तक पहुँच रहे थे। ब्र. भगवानसागरजी ने छाणी महाराज की इस अभूतपूर्व यात्रा का अपनी पुस्तक में सरस वर्णन किया है। वह इस प्रकार है—

—"मुनिजी के आगमन के समाचार सुनकर श्रीशिखरजी बीसपंथी कोठी के मुनीम और हजारीबाग के जैनी शिखरजी से हाथी लेकर मुनिजी की आगवानी के लिये उनके पास आये। जब मुनिजी ने पूछा कि—"हाथी क्यों लाये हो?" तब कहने लगे कि—"प्रभावना के निमित्त खुशी में लाये हैं, क्योंकि आज तक, कोई मुनि महाराज, सौ-डेढ़ सौ वर्षों के बीच में यहाँ नहीं आये हैं। इसलिये धर्म-प्रभावना को बढ़ाने के लिये हम श्रावकों का जो कर्तव्य था सो ही हमने किया है।"

मुनि महाराज शिखरजी आये और दूसरे दिन तीन बजे मुनिजी और वीरसागरजी दोनों ने श्रीशिखरजी पर्वत की वन्दना के लिये प्रस्थान किया। कुछ कूटों की वन्दना की, फिर सामायिक का समय देख जल-मंदिर में ठहर

गये। "प्रभात उठ सामायिक के पश्चात् शेष पर्वत कूटों की वन्दना करके नीचे उतर कोठी में आये। दूसरे दिन धर्मोपदेश हुआ, फिर तीसरे दिन चतुर्दशी को दस बजे बाहर मुनिजी का केश-लोंच हुआ।

उस समय पण्डित जयदेवजी और भगतजी कलकत्तावाले तथा पण्डित शिवजीराम पाठक राँची वाले आये थे। केश-लोंच के बाद व्याख्यान हुए, फिर मुनि मुनीन्द्रसागरजी के भी केश-लोंच हुए। यहाँ श्रीशिखरजी में आठ दिन रहकर गिरीडीह चातुर्मास करने को चले गये।"

ब्रह्मचारी भगवानसागरजी छाणी महाराज के शिष्य थे। वे इस यात्रा में साथ ही थे। शिखरजी की यात्रा के बाद संघ का गिरीडीह में चातुर्मास हुआ। सन् 1926 के उसी चार्तुमास में ब्रह्मचारीजी ने अपने गुरु की अब तक की जीवनी लिखी और जनवरी 1927 में उसे प्रकाशित करके वितरित करा दिया। यह बहुत महत्वपूर्ण है कि "वीर" के उपसम्पादक बाबू कामताप्रसादजी ने इस पुस्तिका के लिये सुन्दर प्रस्तावना लिखी। उनके जैसे मनीषी की भूमिका सहित छपने से पुस्तक की प्रामाणिकता बढ़ी और वह जैन इतिहास का एक अध्याय बन गई। "वीर" और बाबू कामताप्रसाद दोनों ही समाज की कुरीतियों और ढकोसलों के खिलाफ कड़ी और बेबाक आलोचना के लिये प्रसिद्ध रहे हैं। उन्होंने उस समय अपनी लेखनी से छाणी महाराज के व्यक्तित्व का जो मूल्यांकन किया है वह उनके चरित्र की एक "वस्तु-परक व्याख्या" ही माननी पड़ेगी। गुरु के प्रति अंध श्रद्धा-भक्ति से प्रेरित अतिशयोक्ति वह नहीं है। वह एक आस्थावान साधक की निस्पृह और निरपेक्ष साधना का तटस्थ मूल्यांकन है, जो समय की कसौटी पर अंकित है।

अपनी इस धारणा की पुष्टि में मैं बाबू कामताप्रसाद जी द्वारा 11 जनवरी 1927 को लिखी गई भूमिका में से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ-

"श्री शान्तिसागरजी महाराज के पवित्र जीवन से वैसे तो हम और भी शिक्षाएँ ले सकते हैं, परन्तु उनमें चारित्रिक-दृढ़ता का जो एक गुण है, वह हमारे हृदय को विशेष रूप से अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। गृहस्थावस्था से ही आप में एक अजीब ही दृढ़ता मालूम देती है। इसी दृढ़ता के बल पर आप "अपने भाग्य के स्वयं विधाता" हैं। अपने ही दृढ़ निश्चय और उपायों

के बल, अथवा यूँ कहिये कि "निसर्गज-सम्यक्त्व" की महिमा से, एक सामान्य और साधारण-शिक्षित ग्रामीण गृहस्थ से आप "जगत्-पूज्य" अवस्था को पहुँच चुके हैं। हृदय की सच्ची दृढ़ता और विशुद्ध लगन मनुष्य को "रंक से राव" बना देती है, यह श्री मुनिमहाराज के चरित्र से प्रकट है।"

'गृह-त्याग करके आपने जैन समाज के सच्चे-ज्ञान के प्रचार के लिये जो उपाय किये हैं, वे भुलाये नहीं जा सकते। ऐसा मालूम होता है कि आपने भगवान् ऋषभदेव के दिव्य चरित्र में, उनको अपनी पुत्रियों ब्राह्मी और सुन्दरी को ही सर्वप्रथम विद्यावान बनाने की घटना से यह स्पष्ट समझ लिया था कि मानव समाज की दशा तब से सम्हल सकती है, तब ही धर्म का समुचित पालन हो सकता है, जब स्त्रियों को सच्चे ज्ञान से विभूषित किया जायेगा।

"शायद इसी निश्चय के अनुसार आपके उपदेश से कई स्थानों पर श्राविकाश्रम और कन्या-पाठशालाएँ खुल गई हैं। आज धर्म-अर्थ-काम पुरुषार्थ के समुचित पालन के लिये जैन समाज की स्त्रियों का ज्ञानवान होना बहुत जरूरी है।

संघ के अनुशासन के बारे में उन्होंने लिखा—

"अब आपने एक प्रकार से अपने संघ की व्यवस्था नियमित कर ली है। उसके हर सदस्य को संस्था आदि के लिये रुपये माँगने की मनाही कर दी है। यह ठीक है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि आपके संघ का कोई भी सदस्य, ब्रह्मचारी, क्षुल्लक या मुनि, समाज-हित की संस्थाओं की स्थापना और सम्हाल करने का उपदेश ही नहीं देंगे। नहीं, वे विद्यादान का महत्व श्रावकों को अवश्य बतायेंगे। उनमें वात्सल्य-भाव की वृद्धि करायेंगे। यह तो धर्म के अंग हैं और इनका पालन उनके द्वारा अवश्य ही होगा, क्योंकि आप्त द्वारा निर्मित जो आगम-ग्रन्थ हैं, उनमें यह सब बातें विशेष हैं। निर्ग्रन्थ मुनियों की सिंह-वृत्ति है, उन पर केवल आप्त-वाक्य अपना प्रभाव ला सकते हैं।"

आगम-ग्रन्थों के मुद्रण सम्बन्धी आन्दोलन और उसके विरोध के बारे में आचार्यश्री के निर्णय की सराहना बाबू कामताप्रसादजी ने इन शब्दों में की—

"मुनिजी ने जो छपे ग्रन्थ न छूने का नियम लिया है, वह और किसी

भाव को न लेकर, आजकल के छापाखानों में हिंसामयी पदार्थों का संसर्ग होने की वजह से ही लिया प्रतीत होता है। तब ही तो उन्होंने छपे ग्रन्थों को दूसरे के हाथ से पढ़ना अनिवार्य रखा है। वास्तव में छपे और लिखे ग्रन्थ एक समान हैं। छपे ग्रन्थों में भी वही आप्त-वाक्य हैं, जो लिखे हुए ग्रन्थों में हैं, इसलिये उनसे परहेज किया ही कैसे जा सकता है? परन्तु उस निमित्त जो हिंसा कार्य हो, तो वह अवश्य ही धर्मात्मा लोगों के लिये असह्य है। क्या ही अच्छा हो कि उन सिद्धान्त-ग्रन्थों की पवित्रता के साथ प्रकाशन के लिये अनेक छापाखाने स्थापित हो जायें।

दीक्षार्थी की पात्र-परीक्षा के बारे में आचार्यश्री के निर्णय की सराहना बाबूजी ने इन शब्दों में की थी—

—"मुनि महाराज ने जो मुमुक्षु-श्रावकों को मुनि-दीक्षा देने के पहले एक वर्ष तक अपने संघ में 'अभ्यासी' के तौर पर रखने का नियम करके जो दूरदर्शिता का कार्य किया है, वह सर्वथा आजके योग्य है। हमारी तो यही भावना है कि आपके समान अनेक मुनिजन इस मही को पवित्र करें और श्रीसमन्तभद्राचार्य एवं अकलंकस्वामी की तरह देश-विदेशों, ग्रामों-नगरों और सभा-भवनों अथवा राज-सभाओं में जैन-धर्म का यश विस्तृत करें। श्रीमाघनन्दि मुनि के समान प्रतिदिन पाँच मिथ्यात्वी जीवों को जैन-धर्म में दीक्षित करने में दत्त-चित्त रहें। इतना ही क्यों, श्रीजिनसेनाचार्य की तरह गाँव के गाँव को जैनी बनायें। वह दिन शुभ होगा जिस दिन पुनः मुनिजनों का बाहुल्यता से पवित्रकारी विहार भारत के कोने-कोने में होने लगे।"

यहाँ कुछ अन्य तथ्य भी ध्यान देने योग्य हैं—

विक्रम संवत् 1983 : सन् 1926 ई. में शिखरजी की वन्दना करने तक शान्तिसागरजी छाणी "मुनि" ही थे। यहाँ से चलकर इसी वर्ष गिरीडीह के चातुर्मास में उन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

इस समय तक छाणी महाराज के सदुपदेशों से समाज में बहुत काम हो चुका था। उनके प्रभाव से राजस्थान में हिंसा और बलि का त्याग करने वाले अजैनों की संख्या सैंकड़ों तक पहुँच चुकी थी। मांसाहार और मद्यपान तथा हुक्का-तम्बाकू का त्याग तो हजारों की संख्या में लोग कर चुके थे। कन्या-विक्रय और छाती पीटकर रुदन-विलाप करने की प्रथा कई जगह बन्द

हो चुकी थी। उनके नाम पर अनेक स्थानों में कन्या-विद्यालय, जैन पाठशालाएँ, छात्रावास तथा सरस्वती-भवन आदि स्थापित हो चुके थे। जहाँ भी उनका विहार होता, वहाँ ऐसी संस्थाएँ जन्म ले रही थीं।

इतिहास की आँखों से देखा जाय तो समाज-सुधार और शिक्षा-प्रसार का जो आन्दोलन श्री गणेशप्रसाद वर्णी ने पच्चीस-तीस साल पहले बुन्देलखण्ड में चलाया था, और जिसकी बेलें अन्य अनेक प्रदेशों तक फैल चुकी थीं, मुनिराज श्री शान्तिसागर जी छाणी महाराज ने वैसा ही आन्दोलन तीस के दशक में राजपूताने में चलाया था। इतिहास यह भी प्रमाणित करता है कि इस आन्दोलन में छाणी महाराज को उल्लेखनीय सफलता मिली थी/मिल रही थी।

मुनिश्री के जीवनी लेखक ब्र. भगवानसागरजी उन्हीं के शिष्य थे। गोरखपुर के पंचकल्याणक में महमूदाबाद, जिला सीतापुर निवासी भगवानदास अग्रवाल को सातवीं प्रतिमा के व्रत प्रदान कर मुनिजी ने ही उन्हें ब्र. भगवानसागर बनाया था। भगवानसागरजी अच्छे लेखक थे। इस जीवनी के बाद उन्होंने महाराज की एक और जीवनी लिखी थी जिसमें अग्रहायण शुक्ला एकम् संवत् 1983 से लेकर आश्विन शुक्ला पूनम संवत् 1985 तक के दो वर्षों का वृत्त संकलित किया गया था। सागर निवासी, ईडर प्रवासी पं. शान्तिकुमार जैन शास्त्री ने इस जीवनी की भूमिका लिखी थी। चौबीसठाणा चर्चा, शान्तिधर्म संग्रह और मुनि शान्तिसागर पूजन के साथ इस जीवनी का प्रकाशन गिरीडीह में फर्म सेठ हजारीलाल किशोरीलाल के बाबू किशोरीलाल रामचन्द्र जी ने कराया था।

ब्र. भगवानसागरजी ने और भी पुष्कल साहित्य की रचना की थी। आपके द्वारा रचे गये—1. भाषा-पूजन अठत्तरी, 2. समवशरण पाठ सचित्र, 3. श्री शिखर-सम्मेद पाठ, 4. श्री पंचकल्याणक पाठ, 5. श्री त्रिलोकसार पाठ वचनिका, 6. नेमिचन्द्रिका, 7. पाताल-दृश्य, 8. सिद्धान्त-प्रदीपिका, 9. शान्ति धर्म प्रकाश, और 10. श्री शान्ति जैन शतक—इन दस ग्रन्थों की सूचना ब्रह्मचारीजी के चित्र के साथ इन दूसरी जीवनी में छपी है। वहीं यह भी

सूचित किया गया है कि इनके ग्रन्थों का प्रकाशन अभी आरम्भ हो रहा है।

चारित्र-चक्रवर्ती आचार्यश्री का उत्तर भारत में विहार

छाणी महाराज की शिखरजी यात्रा के अगले वर्ष सन् 1928 में चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी के संघ का शिखरजी में आगमन हुआ। उस अवसर पर संघपति ने मधुबन में विशाल स्तर पर पंचकल्याणक महोत्सव कराया। इस प्रकार डेढ़-दो सौ वर्षों के उपरान्त, इन दो वर्षों के भीतर, दिगम्बर आचार्यों के दो संघों ने सम्मेदाचल की वन्दना करके उत्तर भारत में तीर्थ-भक्ति की गंगा ही प्रवाहित कर दी।

शिखरजी की यात्रा के उपरान्त चारित्र-चक्रवर्ती आचार्यश्री के संघ ने भी प्रायः दस वर्षों तक उत्तर भारत में विहार किया। कटनी, ललितपुर, मथुरा, दिल्ली, जयपुर, व्यावर, उदयपुर, गोरला और प्रतापगढ़, ऐसे नौ चातुर्मास उन्होंने यहीं व्यतीत किये। प्रायः ये सभी चातुर्मास एक से एक बढ़कर शानदार और प्रभावक हुए।

एक साथ दो-दो मुनिसंघों के विहार से उत्तर भारत के हजारों गाँव तथा सैकड़ों नगर और कस्बे पवित्र हो गये। साधु-संघों के इस देशाटन से धर्म की महती प्रभावना हुई। चारित्र ग्रहण करने के प्रति लोगों में उत्साह बढ़ा और सर्वत्र त्यागियों-व्रतियों की संख्या बढ़ती गई। हर जगह लोगों में संघ को अपने गाँव तक लाने की होड़ लगी रहती थी। उन वर्षों में शायद ही ऐसा कोई अभागा जैनी रहा होगा, जिसने आस-पास कहीं जाकर दिगम्बर मुनियों का दर्शन न किया हो, उन्हें आहार न दिया हो, या उनकी चरण-सेवा न की हो।

दोनों पूज्य आचार्यों की चर्या में अनेक समानताएँ थीं। दोनों के आचरण आगमानुसारी थे। संसार, शरीर और भोगों के प्रति दोनों के मन में प्रारम्भ से ही विरक्ति के भाव थे। दोनों ने अपने आपको गृहस्थी के जाल में फँसाया ही नहीं था। यद्यपि चारित्र-चक्रवर्ती शान्तिसागरजी की बाल्यावस्था में उनका विवाह हुआ था, परन्तु कुछ ही महीनों में, ससुराल आने के पूर्व, उस बालिका की मृत्यु हो गयी थी।

व्रत और उपवास को दोनों आचार्यों ने आत्म-शुद्धि का बलवान निमित्त स्वीकार किया था। जीवन भर दिन में एक बार भोजन का नियम तो व्रती

बनते ही दोनों ने दीक्षा के पूर्व से ही ले लिया था।

चारित्र-चक्रवर्ती महाराज के लम्बे-लम्बे उपवास और अंत में बारह वर्ष की सावधि-सल्लेखना से उनकी साधना तो अद्वितीय रही परन्तु छाणी महाराज भी बहुत उपवास करते थे। दस या सोलह उपवास तो उन्होंने कई बार किये। ब्रह्मचारी अवस्था में गोरेला में सोलहकारण के 17 उपवास और अगले वर्ष ईडर में भाद्रपद के 32 उपवास वे कर चुके थे। इस बीच में पाँच-सात दिनों के अन्तराल से मात्र जल लेते थे। यद्यपि अन्त में अधिक समय तो उन्हें नहीं मिला, फिर भी जब जीवन का अन्त निकट लगा तब, निष्प्रमाद होकर यम सल्लेखना भी उन्होंने अंगीकार कर ली थी।

यह विचित्र संयोग है कि आचार्यश्री ज्ञानसागरजी और एक-दो आचार्यों की सल्लेखना को छोड़कर प्रायः बाद में आचार्यों को यम-सल्लेखना का सुयोग नहीं मिल पाया। कई उदाहरण सामने आ चुके हैं कि अन्त तक आचार्य पद का त्याग किये बिना, और सल्लेखनापूर्वक, यम रूप से आहार आदि का त्याग किये बिना ही आचार्य भगवन्तों का समाधि-मरण प्रायः हुआ है। जबकि इसके विपरीत मुनि पद से अनेक महाराजों ने उत्तम सल्लेखना-मरण प्राप्त किया है। इस सन्दर्भ में इन दोनों पूज्य आचार्यों ने जो उदाहरण सामने रखे थे, ऐसा लगता है कि उन्हें विस्मृत कर दिया गया है।

व्यावर का अविस्मरणीय चौमासा

दोनों संतों का साक्षात्कार तो शायद दो-तीन बार हुआ है, परन्तु राजस्थान की व्यावर नगरी में संवत् 1990 (सन् 1933) में दोनों संघों का एक साथ जो सम्मिलित चातुर्मास सम्पन्न हुआ, उससे दोनों आचार्यों की वन्दनीय महानता की छाप इतिहास पर पड़ी है।

व्यावर का अनोखा चातुर्मास वास्तव में बीसवीं शताब्दी के जैन-संस्कृति के इतिहास का एक दुर्लभ पृष्ठ है। दक्षिण के साथ उत्तर भारत का, कन्नड़ और मराठी के साथ हिन्दी और मेवाड़ी का, तथा बीसपंथ के साथ तेरापंथ का, जैसा अद्भुत, अनाग्रही, और आत्मीयता-पूर्ण समन्वित स्वरूप जैनाजैन जनता ने उस चौमासे में साक्षात् देखा, वैसा अतिशयकारी रूप उसके पूर्व, या उसके पश्चात् कभी, कहीं देखने को नहीं मिला।

चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर स्मृति-ग्रन्थ में व्यावर के प्रमुख श्रावक नगरसेठ श्रीमान् सेठ तोतालाल हीरालाल रानीवाला ने अपने संस्मरण लिखते हुए याद किया है–

–"परमपूज्य चारित्र-चक्रवर्ती आ. शान्तिसागरजी महाराज के दर्शन करने का सौभाग्य सर्वप्रथम हमें सन् 1927 में तीर्थाधिराज सम्मेद शिखरजी पर प्राप्त हुआ, जब हम पूरे परिवार के साथ वहाँ गये थे। तभी हमारे सारे परिवार की यह भावना हुई कि यदि आचार्य महाराज का विहार हमारे प्रान्त में हो और व्यावर में चातुर्मास का सुयोग प्राप्त हो, तो हम लोगों का जीवन कृतार्थ हो जाये। "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" की नीति के अनुसार हम लोगों की भावना सफल हुई और वि. सं. 1990 में आचार्य महाराज के संघ का चातुर्मास व्यावर में हुआ। उस समय हमारा सारा परिवार आनन्द विभोर हो गया, जब पूरे चौमासे भर हमें महाराजश्री के चरणों के समीप बैठने, उनका उपदेशामृत पान करने और सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उस समय के कुछ संस्मरण इस प्रकार हैं–

–"इस चातुर्मास की सबसे बड़ी उल्लेखनीय बात तो यह थी, कि आचार्य महाराज के संघ के साथ ही आचार्य श्रीशान्तिसागरजी छाणी के संघ का भी चातुर्मास व्यावर में ही हुआ था और दोनों संघ हमारी नसियाँजी में एक साथ ही ठहरे थे। छाणीवाले महाराज बड़े महाराज को गुरुतुल्य मानकर उठते-बैठते, आते-जाते, उपदेशादि देने में उनके सम्मान-विनय आदि का बराबर ध्यान रखते थे, और बडे महाराज भी उन्हें अपने जैसा ही मानकर उनके सम्मान का समुचित ध्यान रखते थे। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि छाणीवाले महाराज अवसर पाकर प्रतिदिन बड़े महाराज की नियमित रूप से वैयावृति करते थे।"

–"हमारे नसियाँजी में पूजन, अभिषेक आदि तेरह पंथ की आम्नाय से होता है और आचार्यश्री के अधिकांश व्यक्ति तथा दक्षिण से आने वाले दर्शनार्थी बीसपंथी आम्नाय से अभिषेक पूजनादि करते हैं, तब अपने संघ को एवम् दक्षिण से आनेवाले लोगों को लक्ष्य करके श्री आचार्य महाराज कहा करते थे कि, जहाँ जो आम्नाय चली आ रही हो, वहाँ उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये और सबको अपनी-अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार यह कार्य करना चाहिये।

—यहाँ के चौमासे के समय आचार्य महाराज को दूध के सिवाय सभी रसों का और हरित मात्र का त्याग था। उनके जैसी दृढ़ता, शान्तता और वीतरागता के दर्शन अन्यत्र बहुत ही कम दृष्टिगोचर हुए।"

—आचार्य शान्तिसागर जन्मशताब्दी स्मृतिग्रन्थ पृ. 108-9

वे सभी लोग निश्चित ही बड़े सौभाग्यशाली थे, जिन्होंने उस चातुर्मास को निकट से देखा और उन दुर्लभ क्षणों को अपनी स्मृति में बंदी बना लिया। जिसे भी उस अपूर्व घटना के बारे में बोलने-लिखने का अवसर मिला उसने सर्वथा अलग ही ढंग से अपने अनुभव व्यक्त किये हैं।

स्मृति-ग्रन्थ में चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज की जीवनी लिखते हुए डॉ. सुभाषचन्द्र अक्कोले ने उस पावन-प्रसंग की एक अंतरंग झाँकी इन शब्दों में प्रस्तुत की है—

—"ब्यावर का चातुर्मास सांस्कृतिक इतिहास का एक सुवर्णपत्र हो सकता है। आचार्यश्री 108 शान्तिसागरजी छाणीवालों का भी चातुर्मास योगायोग से ब्यावर में हुआ। दोनों संघों का एकत्र रहना यह विशेषता थी। छाणीवाले महाराज की परंपरा तेरापंथ की थी, जब कि आचार्य महाराज की परंपरा बीस पंथ की थी, फिर भी दोनों में परस्पर पूरा मेल रहा। जहाँ पर जिस प्रकार के व्यवहार का चलन हो उस प्रकार की प्रवृत्ति चलने देनी चाहिए उसमें अन्य परंपरा वालों को किसी मात्रा में भी ठेस नहीं पहुँचनी चाहिए, सहिष्णुता का भाव होना ही चाहिए, इस प्रकार का संकेत संघस्थ सबको बराबर दिया गया था।

जातिलिंगविकल्पेन येषां च समयाग्रहः।
तेऽपि न प्राप्नुवंति परमं पदमात्मनः।।

अर्थात् जाति और वेश-परिवेश का विकल्प साधना में पूरा बाधक एवं हेय होता है। इसी प्रकार तेरह पंथ या बीसपंथ में विकल्पों से आत्मसाधना अर्थात् परमार्थभूत धर्मसाधना अत्यंत दूर होती है। धर्मदृष्टि के अभाव का ही यह परिणाम है। टंकोत्कीर्ण धर्मसाधना लुप्तप्राय होती जा रही है और तेरह-बीस के झगड़े दृढ़मूल बनाए जा रहे हैं, और उन्हें धर्माचार का रूप दिया जा रहा है। समाज में आज भी जो भाई तेरह और बीस पंथ के नाम से समय-समय पर वितंडा उपस्थित करते हैं, और समाज के स्वास्थ्य को ठेस पहुँचाते हैं, उनकी उस प्रवृत्ति को जो समाज के लिए महारोग के

समान हैं, हम समझते हैं। आचार्यश्री का सामंजस्य दूरदृष्टिता का व्यवहार एक अद्‌भुत कल्याणकारी अमृतोपम रसायन हो सकता है।"

—"नगरसेठ श्रीमान् चंपालालजी रानीवालों ने और उनके सुपुत्रों ने संघ का जो प्रबंध किया वह अपनी शान का उदारतापूर्ण अलौकिक ही था।"

—आ. शान्तिसागरजी जन्मशताब्दि स्मृतिग्रंथ, पृष्ठ 33-34

"भक्ति की शक्ति" और "संकल्प की दृढ़ता"—

जीवन के प्रारम्भ से ही आचार्य शान्तिसागरजी छाणी के सामने वैराग्य की साधना के लिये प्रेरित करनेवाला अथवा दिशा-निर्देश देनेवाला कोई जीवन्त आदर्श नहीं था। यहाँ तक कि उन्हें चारित्र-चक्रवर्ती आचार्यश्री की तरह कोई दीक्षा-गुरु भी उपलब्ध नहीं हुये। भगवान् महावीर ने कहा था—'अप्प दीवो भव' : स्वयं अपना दीपक बनो। शायद यह निर्देश छाणी महाराज को अपने आप पर चरितार्थ करना था। परन्तु अपनी यात्रा में वे एकदम असहाय भी नहीं थे। उनके अंतरंग में उमड़ती वैराग्य की लहरें इतनी प्रचण्ड थीं कि उनके मन की सारी दुविधाएँ उन लहरों के आघात से छिन्न-भिन्न होती चली गईं और एक निष्कम्प व अडिग आत्म-विश्वास वहाँ उत्पन्न होता गया। वस्तुतः जो व्यक्ति साधना के क्षेत्र में स्वयं अपना मार्ग दर्शक बनने की ठान ले, उसे किसी अन्य के सहारे की आवश्यकता ही कहाँ रह जाती है? फिर तो उसका "स्वावलम्बन" ही उसका सबलतम-सम्बल होता है और भगवान् अरहन्त स्वयं उसके आदर्श होते हैं।

यहाँ इतना ध्यान रखना होगा कि छाणी महाराज का, अरहन्त भगवान को साक्षी बनाकर, स्वयं दीक्षित होने का पुरुषार्थ, किसी भी प्रकार गुरु की अवहेलना या तिरस्कार का कदम नहीं था। वह तो गुरु चरणों की शरण प्राप्त नहीं होने की दशा में, बाध्य होकर, अपने भीतर ही अपना गुरु तलाशने की एक विवशता-भरी प्रक्रिया थी। युग के परिप्रेक्ष्य में इस साहसिक कदम की प्रशंसा की जानी चाहिये परन्तु वर्तमान में गुरु की शरण उपलब्ध होते हुए भी, निरंकुशता-पूर्वक, इस युग में स्वतः दीक्षा आदि लेने की आगम-विरुद्ध प्रवृत्ति की किसी भी प्रकार सराहना नहीं की जानी चाहिये।

वैराग्य की उत्कटता में, भगवान की साक्षी-पूर्वक आगे बढ़ने पर छाणी महाराज के भीतर जो आत्म-विश्वास स्वतः उपजा था, उसकी दृढ़ता के दर्शन

हमें उनके जीवन में पग-पग पर होते रहते हैं। मन की यही दृढ़ता अनपढ़ युवक केवलदास को एक दिन सिद्धक्षेत्र की यात्रा के लिये बलात् संचालित करती है और पारसप्रभु के पादमूल में बैठकर त्यागी जीवन अपनाने की हिम्मत दे देती है। मन की यही दृढ़ता उनके सारे सांसारिक मोह-व्यामोह का परिहार करती है और तरह-तरह से यही दृढ़ता उन्हें अकम्पित पगों से, एक-एक सीढ़ी चढ़ाती हुई, श्रावक से मुनि; मुनि से आचार्य और आचार्य से सल्लेखना-निरत क्षपक के पद तक पहुँचा देती है। उनके जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग उपस्थित होते रहे हैं, जब उनकी संकल्पशीलता और उनकी आस्था को जनमानस की कसौटी पर अपनी स्वर्णरेखा अंकित करनी पड़ी है। समय और समाज दोनों ने उन्हें हर परिस्थिति में, हर ओर से परखकर ही अपने सिर पर बिठाया था। अपने निर्धारित लक्ष्य के प्रति ऐसी एकान्त समर्पण-भावना, और अपने आराध्य के प्रति ऐसी उत्कृष्ट भक्ति उन्हें किसी के उपदेश से नहीं मिली थी। आत्मानुभूति के निसर्गज-संस्कारों के बल पर, स्वयं अपने आप में वैसी पात्रता प्रगट करके ही उन्होंने ये गुण अर्जित किये थे।

आजीवन ब्रह्मचर्य का संकल्प कर लेने पर सातवीं प्रतिमा के व्रत धारण करने के पूर्व पर्वतराज सम्मेदाचल की हर टोंक पर जाकर, हर तीर्थंकर भगवन्त को अपने संकल्प का साक्षी बनने के लिये निमन्त्रित करना, और पारस-प्रभु के पादमूल में बैठकर अपने भविष्य के प्रति प्रतिबद्ध होना, उनकी इसी सहज और समर्पित भक्ति-भावना को रेखांकित करता है।

''अनाग्रही दृष्टि'' और ''व्यावहारिक निर्णय''

स्वयं प्रेरित और स्वयं दीक्षित छाणी महाराज को हर प्रसंग में अपने अनुभवों से ही सीखना था। अपने आप अपनी प्रगति का आकलन करके पग-पग पर अपने आप को नियंत्रित करना था। यही कारण था कि समय-समय पर स्वयं अपनी समीक्षा करके उन्होंने अपनी भूलों का परिमार्जन किया। उन्हें जब जैसा उचित लगा, अपनी चर्या में वैसा परिवर्तन करने में उन्होंने कभी संकोच या प्रमाद नहीं किया। अपनी किसी भी धारणा के प्रति आग्रह उनके मन में कभी नहीं रहा। उनकी इस सरलता को प्रमाणित करने वाली एक-दो घटनाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं—

ऐसा लगता है कि प्रारम्भ में आचार्यश्री मुमुक्षु-जनों को व्रत और दीक्षा आदि देने में कुछ उदार थे। संयोग से उन्हें पात्र भी अच्छे मिलते गये। परन्तु गिरीडीह के चातुर्मास में ब्र. सुवालालजी जब उनसे मुनिदीक्षा लेकर मुनि ज्ञानसागर बने और शिथिलतावश मुनिपद से भ्रष्ट होकर, वस्त्र धारण करके, प्रायश्चित लेने की भावना से मधुबन में पुनः उनकी शरण में आये, तब आचार्यश्री को दीक्षा के पूर्व "पात्र-परीक्षा" के महत्व का भान हुआ। ज्ञानसागर को उन्होंने कड़ा दण्ड देकर प्रायश्चित पूर्वक ही संघ में प्रवेश दिया। पहले उन्हें नन्दीश्वर व्रत कराया जिसमें 108 दिन तक "एक पारणा-एक उपवास" करना होता है। इसमें 56 उपवास और 52 पारणा ऐसे कुल 108 दिन की साधना करनी होती है। इसके बाद उन्हें पहले क्षुल्लक बनाया फिर ऐलक बनाकर तब बाद में मुनि-दीक्षा प्रदान की।

फिर उसी समय आचार्यश्री ने यह निर्णय कर लिया कि—"अब आगे जिसे दीक्षा दी जायेगी, पहले उसकी अच्छी तरह जाँच कर ली जायेगी। यदि योग्य होगा, मुनिसंघ में रहकर आज्ञा-पालन करेगा और शास्त्र प्रमाण प्रवर्तेगा, तो दीक्षा दी जायेगी। जिसे दीक्षा लेने की इच्छा होगी वह उपरोक्त बातों का पालन करेगा।" यह भी नियम बनाया गया कि-"कोई मुनि गुरु की आज्ञा के बिना संघ छोड़कर एकाकी विहार नहीं करे, तथा अपने दीक्षा गुरु की आज्ञा का निरन्तर पालन करे। आज्ञा का उल्लंघन करने वाले को, और शास्त्र-विरुद्ध आचरण करने वाले को भी दण्ड मिलेगा। जो दण्ड को नहीं मानेगा उसे संघ से निष्कासित कर दिया जायेगा।"

उस समय वे किन्हीं संस्थाओं को दान भेजने का उपदेश करते थे, उसे भी कार्तिक शुक्ला पूनम के पश्चात् श्रीशिखरजी की यात्रा करके त्याग कर दिया।

उन दिनों आगम ग्रन्थों को छापाखाने में छापने का आन्दोलन कुछ लोगों ने प्रारम्भ किया था। अपवित्रता तथा अविनय के डर से यदा-कदा विरोध भी हो रहा था। आचार्यश्री ने अपने आपको इस विवाद से सर्वथा पृथक् रखा और यह निर्णय कर लिया कि—"मुनि अपने हाथ में लेकर छपे हुए शास्त्रों का स्वाध्याय न करे, किन्तु अवसर पड़ने पर दूसरे के हाथ में लिये ग्रन्थ को वह पढ़ सकेगा।" इस प्रकार हम पाते हैं कि जब भी कोई ऐसा अवसर आया जब आचार्यश्री ने विवाद में पड़ने या किसी एक पक्ष को

प्रश्रय देने के स्थान पर उपयोगी और व्यावहारिक निर्णय लेकर समता से स्वयं अपना मार्ग प्रशस्त कर लिया।

विद्वानों का समागम और आचार्यश्री की ज्ञानाराधना—

आचार्यश्री शान्तिसागरजी छाणी के जीवन-प्रसंगों का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि ज्ञान के प्रति उनके मन में आजीवन अनन्त पिपासा बनी रही। सामान्य अक्षर-ज्ञान की नगण्य पूँजी लेकर उन्होंने मोक्षमार्ग पर पहला पग रखा और चारित्र की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ज्ञान की पूँजी में भी समान्तर वृद्धि करते रहे। इन्दौर चातुर्मास में उन्हें स्वाध्याय कराने के लिये सरसेठ हुकमचंदजी साहब ने विद्वानों की नियुक्ति की। अन्यत्र जहाँ भी विद्वानों का सम्पर्क मिला और अवसर मिला, वहीं-वहीं आचार्यश्री की ज्ञानाराधना चलती रही। सागवाड़ा वाले पं. बुधचन्दजी ने उन्हें आलाप-पद्धति और गोम्मट्सार का अभ्यास कराया।

उस समय के प्रायः सभी व्रतियों और विद्वानों का सम्पर्क आचार्यश्री को प्राप्त हुआ। पूज्य ऐलक पन्नालालजी, पूज्य बाबा गणेशप्रसादजी वर्णी, कलकत्ता के भगतजी, ब्र. शीतलप्रसादजी, पं. वंशीधरजी न्यायालंकार, पं. खूबचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री, पं. देवकीनंदनजी तर्क-तीर्थ, पं. झम्मनलालजी कलकत्ता, पं. शिवजीराम पाठक राँची, पं. माणिकचन्दजी मुरैना, पं. लक्ष्मीचन्दजी लश्कर, पं. जयदेवजी और पं. नन्दनलालजी ईडर आदि गणमान्य त्यागीव्रती और विद्वान्, जिसे जब जहाँ अवसर मिला तब, बार-बार छाणी महाराज के दर्शनों के लिये आये या अपने स्थानों पर समागम मिलने पर उनके सम्पर्क का लाभ लिया। इनमें से बहुतों ने तो पूज्य महाराजश्री को आगम-ग्रन्थों के स्वाध्याय में सहयोग भी किया। ये विद्वान् प्रायः आचार्यश्री की धर्मसभा में बोलते थे और देव-शास्त्र-गुरु की उपयोगिता तथा वन्दनीयता का उपदेश समाज को देते थे। समाज में प्रचलित व्यसन और कुरीतियों के निवारण में भी वे महाराज के सहायक बनते थे।

मालवा प्रान्तिक महासभा के उपदेशक पं. कस्तूरचंदजी ने अनेक स्थानों पर जाकर आचार्यश्री की प्रेरणा से स्थापित संस्थाओं के लिये द्रव्य एकत्र किया। बम्बई प्रान्तिक दिगम्बर जैन सभा के सदुपदेशक और तार्किक विद्वान् कुँवर दिग्विजयसिंह तो छाणी महाराज की त्याग-तपस्या से इतने

प्रभावित हुए कि उन्होंने आचार्यश्री से स्वयं याचना करके सातवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। इन सभी त्यागियों-विद्वानों ने स्थान-स्थान पर महाराजश्री की भक्ति और वैय्यावृत्ति की तथा उनके तपश्चरण की सार्वजनिक रूप से सराहना करके पुण्य-लाभ लिया।

मुनियों-आचार्यों के पास विद्वान् तो आते हैं, परन्तु यह आचार्यश्री की निरभिमान ज्ञान-पिपासु प्रवृति का ही फल था कि अपने समीप आये हुए प्रायः हरेक विद्वान् से उन्होंने कुछ न कुछ लेने का प्रयास किया। इसी का तो यह सुफल था कि एक दिन रत्नकरण्ड-श्रावकाचार पर पण्डित सदासुखजी की वचनिका जिसे दूसरे से पढ़ाकर सुननी पड़ी थी, उसी साधक ने, केवल स्वाध्याय के बल पर, सात साल के अल्पकाल में, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, गोम्मट्टसार, ज्ञानार्णव आदि छोटे-बड़े साठ-सत्तर ग्रन्थों का स्वाध्याय पूर्ण कर लिया। उन्होंने उस युग के पारंगत विद्वानों से महीनों तत्त्व-चर्चा करके उनका मन मोह लिया और शास्त्रीय-समाधान में कुशलता प्राप्त कर ली।

आगमानुसारी आचरण

इन तथ्यों से एक बात और प्रगट होती है कि ऐसे सूक्ष्मदर्शी और परीक्षा-प्रधानी विद्वान् दौड़-दौड़ कर जिसके पास आते रहे, जिसके साथ चर्चा करके गौरवान्वित होते रहे, उस साधक के पास अपनी भी अवश्य कोई निधि रही होगी। निश्चय ही आचार्य शान्तिसागरजी छाणी महाराज की वह निधि थी—उनका आगम के अनुकूल आचरण, उनका निरभिमानी व्यक्तित्व, उनकी गुण-ग्राहकता और विद्वानों के प्रति उनका सहज वात्सल्य। उनके पास आने वालों में कई ऐसे स्पष्टवक्ता और तेजस्वी विद्वान भी थे, जो दिगम्बर मुनि की चर्या में किसी भी प्रकार की शिथिलता को कभी नजर-अंदाज नहीं कर सकते थे। यदि उन्हें आचार्यश्री में भी आगम-विरुद्ध परिणति दिखाई देती तो वे उनकी खरी आलोचना करते और कभी दुबारा उनके दर्शनों के लिये नहीं आते थे।

अब यह सिद्ध करने के लिये अन्य किसी साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है कि समय के सर्वोत्तम विद्वानों द्वारा वंदित आचार्य छाणीजी महाराज पूर्णतः आगमोक्त चर्या में प्रवर्तन करने वाले, अत्यंत मंद-कषाय वाले, उत्कृष्ट साधक थे। पिच्छी की मर्यादा का उन्हें पूरा ज्ञान और ध्यान था। उस मर्यादा

की रक्षा के लिये वे दीक्षा-काल से लेकर समाधि-काल तक निरन्तर सावधान रहे। इस युग में दिगम्बरी दीक्षा लेकर उत्तर भारत में विचरण करने वाले वे प्रथम आचार्य थे। उन्होंने अपनी निष्ठावती साधना से दिगम्बर मुनि-परम्परा की पुनर्स्थापना में ऐसा महत्वपूर्ण योगदान दिया जिसे भुलाया नहीं जा सकता। उनकी पावन स्मृति में सविनय नमोस्तु।

सतना   नीरज जैन

आचार्य श्री शान्तिसागर (छाणी) महाराज का प्रभावक जीवन

भगवान् महावीर निर्वाण के पश्चात् जब क्रमशः श्रुतकेवलियों का भी अभाव हो गया तब आचार्य ही जैनधर्म के प्रमुख प्रवक्ता माने जाने लगे। आचार्य कुन्दकुन्द को उस दृष्टि से प्रथम मंगलस्वरूप आचार्य स्वीकृत किया गया। उनके पश्चात् वट्टकेर, शिवार्य, कार्तिकेय, गृद्धपिच्छ, समन्तभद्र, सिद्धसेन, पूज्यपाद, पात्रकेशरी, जोइंदु, मानतुंग, रविषेण, अकलंक, वीरसेन, जिनसेन, विद्यानन्दि, महावीराचार्य (9वीं शताब्दी) अमृतचन्द्राचार्य (10वीं शताब्दी), प्रभाचन्द्र (10वीं शताब्दी), आ. शुभचन्द्र (11वीं शताब्दी) जैसे प्रभावक आचार्य हुए, जिन्होंने जैनदर्शन, साहित्य एवं संस्कृति को पल्लवित पुष्पित करने में अपना अपूर्व योगदान दिया। आचार्यों की यह परम्परा 13वीं शताब्दी तक अनवरत चलती रही।

दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास भट्टारक परंपरा का उद्‌भव हुआ। काल दोष से धीरे-धीरे मुनि पद की साधना कठिन होती गई और वीतरागी, निरारम्भी, अपरिग्रही दिगम्बर मुनियों-आचार्यों का दर्शन दुर्लभ होता गया। यह भट्टारक परम्परा 14वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक अपने चरमोत्कर्ष पर रही और इस परम्परा में भट्टारक, प्रभाचन्द्र, पद्‌मनंदि, सकलकीर्ति, शुभचन्द्र, जिनचन्द्र, प्रभाचन्द्र (द्वितीय), चारुकीर्ति, सोमकीर्ति जैसे अनेक भट्टारक हुए जिन्होंने चार-पाँच सौ वर्षों के उस मुगल-काल में अपने प्रभाव से जैनधर्म को अनेक संकटों से बचाए रखा, जैन साहित्य की सुरक्षा एवं संग्रह करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया और नवीन साहित्य भी रचा। इस प्रकार जैन संस्कृति एवं साहित्य के संरक्षण में भट्टारकों का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है।

मुगलकाल में मुनियों के दर्शन ऐसे दुर्लभ हो गये कि कविवर भूधरदास, द्यानतराय जैसे कवियों को "वे मुनि कब मिलि हैं उपकारी" जैसे पदों की रचना करनी पड़ी। महाकवि बनारसीदास को भी निर्दोष निर्ग्रन्थ मुनि के दर्शन नहीं हो सके। पं. टोडरमलजी ने भी अपने ग्रन्थ में मुनि की दुर्लभता का उल्लेख किया है।

19वीं शताब्दी के तृतीय चरण के अंत में भारतीय जन-मानस पर अंग्रेजी शासन की पकड़ मजबूत हो चुकी थी। देश अंग्रेजी शिक्षा की ओर बढ़ रहा था। समाज में भी वैचारिक क्रांति का सूत्रपात होने लगा था। उत्तर भारत में विशेष कर राजस्थान में श्रीमहावीर जी, नागौर और अजमेर की भट्टारक पीठों की प्रतिष्ठा समाप्त हो रही थी। भट्टारकों का प्रभाव नगण्य हो गया था और उनका स्थान स्थानीय पंचायतों ने ले लिया था। जैन पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हो चुका था और सन् 1888 से पूर्व समाज में 10 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा था। सन् 1992 में जम्बूस्वामी चौरासी मथुरा में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा की स्थापना हुई। इस प्रकार समाज के नेताओं में सामाजिकता की भावना बढ़ने लगी थी। समाज के कार्यकर्ताओं, श्रेष्ठियों एवं पंडितों में नेतृत्व की क्षमता जाग्रत होने लगी और वे पुरानी निरर्थक रूढ़ियों एवं परम्पराओं को त्यागने में भी पीछे नहीं रहे।

राजस्थान की भूमि वीरों की भूमि रही है। जिस प्रकार यहाँ के रणबांकुरों ने अपनी जन्मभूमि की रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति देने में अपने आपको आगे रखा उसी प्रकार यहाँ सैकड़ों संत भी हुए, जिन्होंने साहित्य, संस्कृति एवं धर्म की भावना को सदैव जीवित रखा और अपने त्याग एवं तपस्या से धर्म की अभूतपूर्व प्रभावना की। जिस प्रकार देश की रक्षार्थ चित्तौड़ एवं रणथम्भौर जैसे दुर्गों का निर्माण हुआ उसी तरह जैन संतों ने नागौर, अजमेर, आमेर, जयपुर, पाटन जैसे नगरों में साहित्य के बड़े-बड़े भण्डार स्थापित करके साहित्य की सुरक्षा के लिये सार्थक और सराहनीय पुरुषार्थ किये।

राजस्थान में उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ के राज्य बागड़ प्रदेश के नाम से जाने जाते हैं। इस प्रदेश में हूमड़, नागदा, नरसिंहपुरा जैसी जैन जातियों का विशेष प्रभाव है। तीनों ही जातियाँ अपनी धार्मिकता एवं अपने साधु-स्वभाव के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। बागड़ प्रदेश में विशाल मंदिर हैं, और डूंगरपुर, सागवाड़ा, प्रतापगढ़ आदि के मंदिरों में विशाल शास्त्र भंडार हैं। ये मंदिर एवं शास्त्र भंडार दोनों ही साहित्य एवं संस्कृति के ऐसे सुरक्षित दुर्ग हैं जिनके कारण बागड़ प्रदेश में जैनधर्म एवं जैन-संस्कृति की रक्षा हो सकी। सागवाड़ा एवं प्रतापगढ़ में अधिकांश मंदिर मुख्य बाजारों

में हैं, जिससे पता चलता है कि इस क्षेत्र में सदैव जैनों का अच्छा प्रभाव रहा है।

बीसवीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण घटना

विक्रम की बीसवीं शताब्दी निर्ग्रन्थ परम्परा के पुनरुत्थान के लिये महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। इस शताब्दी में (सन् 1972) में आचार्य शांतिसागर सागर जी (दक्षिण) का, सन् 1888 में आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी) का एवं संवत् 1923 (सन् 1866) में महाराष्ट्र के अंकलीकर ग्राम में आचार्य आदिसागर जी का जन्म हुआ। ये तीनों ही आचार्य प्रायः समकालीन हुए। वर्तमान निर्ग्रन्थ परम्परा के विकास में तीनों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। तीनों ही आचार्यों का जीवन साधनामय अद्भुत चमत्कारी, निर्मल एवं आत्म साधकों के लिये प्रेरणास्पद रहा है। तीनों ही आचार्यों की परम्परा में होने वाले वर्तमान में भी अनेक मुनिराज एवं आचार्य हैं लेकिन आश्चर्य इस बात का है कि परमपूज्य चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी दक्षिण (दक्षिण) के अतिरिक्त उक्त दोनों आचार्यों को भुला दिया गया।

विगत दो-तीन वर्षों से इन विस्मृत आचार्यों को पुनः याद किया जा रहा है और इस दृष्टि से आचार्य सन्मति सागर जी महाराज ने आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर के जीवन पर अपनी धर्म सभाओं में प्रकाश डाला है तथा "अंकलीकर" शीर्षक से एक पत्रिका एवं लघु पुस्तक का भी प्रकाशन कराया है। आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर की परम्परा में उनके उपरान्त आचार्य महावीर कीर्ति जी आचार्य हुए जिनके शिष्य आचार्य सन्मति सागर जी वर्तमान में अंकलीकर परम्परा के आचार्य हैं।

उपाध्याय १०८ श्री ज्ञानसागर महाराज वर्तमान युग के युवा साधु हैं, जिन्होंने आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी) के प्रभावक व्यक्तित्व को उजागर करने का प्रशंसनीय कार्य किया हैं, जिनकी सद्प्रेरणा से अब तब आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी) की स्मृति में अनेक समारोह आयोजित किये जा चुके हैं तथा आचार्य शान्तिसागर जी छाणी स्मारिका भी प्रकाशित हो चुकी है। 10 नवम्बर 1991 को दि. जैन समाज, गया (बिहार) द्वारा इस स्मारिका के विमोचन के लिए एक भव्य समारोह का आयोजन हुआ। इसके अतिरिक्त आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना को साकार

रूप दिया जा रहा है। तथा आचार्यश्री की जीवनी जन-जन तक पहुँचाने के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी) महाराज का जन्म सन् 1888 में उदयपुर रियासत के छाणी ग्राम में हुआ। आपने 35 वर्ष की आयु में सन् 1923 में मुनि दीक्षा धारण कर ली। सन् 1926 में आपको आचार्य पद दिया गया और बीस वर्ष तक देश में विभिन्न भागों में विहार करते हुए सन् 1944 में आपने समाधिमरण पूर्वक शरीर त्याग दिया। इस प्रकार साधना काल कुल इक्कीस वर्ष का रहा।

प्रारम्भिक जीवन

जन्म स्थान—आचार्य शान्तिसागर जी 'छाणी' इसी उपनाम से जाने जाते हैं। एक ही समय में शान्तिसागर जी नाम वाले दो आचार्य हुए इसलिये दक्षिण भारत में होने वाले चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी के नाम से आगे "दक्षिण" और राजस्थान प्रदेश के छाणी ग्राम में होने के कारण इनके नाम के आगे "छाणी" शब्द जुड़ गया और धीरे- धीरे वे इसी नाम से प्रसिद्ध हो गये।

छाणी राजस्थान के उदयपुर क्षेत्र का एक छोटा सा ग्राम हैं, पहिले उदयपुर राजस्थान की एक प्रमुख रियासत थी जिसके शासक महाराणा कहे जाते हैं। इतिहास-पुरुष महाराणा प्रताप इसी उदयपुर मेवाड़ के शासक थे जिन्होंने अपनी वीरता के कारण विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त की। इसी स्टेट का छाणी नाम भी एक जागीरदारी गाँव था जिसके शासक "ठाकुर" कहलाते थे। आचार्य शान्तिसागर जी के जन्म के समय छाणी ग्राम के जागीरदार मनोहर सिंह जी थे। छाणी उस समय बहुत छोटा सा गाँव था, जिसमें अधिकांश मकान कच्चे, मिट्टी के बने हुए थे जिन पर घास फूस की छान पड़ी रहती थी। छानों का गाँव होने से इसे छाणी कहा जाने लगा। गाँव बहुत छोटा था लेकिन उस छोटे गाँव में भी जैनों की बस्ती थी। सभी घर दशा हूमड़ जैन समाज के थे। हूमड़ समाज दो भागों में विभक्त है—दशा और बीसा। दोनों ही समाजों के अपने-अपने केन्द्र हैं। उदयपुर से केवल 55 कि.मी. दूरी पर स्थित होने के कारण तथा भारत प्रसिद्ध जैन तीर्थ ऋषभदेव केशरिया जी से केवल 15 कि.मी. दूर होने के कारण उदयपुर एवं ऋषभदेव

तीर्थ का प्रभाव गाँव पर था और यहाँ का छोटा सा जैन समाज भी जैन संस्कारों का धनी था।

इसी गाँव में दशा हूमड़ जैन समाज का एक ही घर श्रावक भागचंद जैन का था, जो गाँव में ही अपने छोटे-मोटे व्यवसाय से अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। उनकी पत्नी माणिक बाई धार्मिक संस्कारों से परिपूर्ण थीं। दोनों पति-पत्नी शान्तिपूर्वक जीवन यापन करते थे। गाँव के पास ही भगवान महावीर का जैन मंदिर हैं, मंदिर की प्रसिद्धि होने के कारण दूर-दूर से जैन बन्धु सपरिवार दर्शनाथ आते रहते हैं। श्रेष्ठी भागचन्द एवं उनकी धर्मपत्नी माणिकबाई भी इसी मंदिर में दर्शनार्थ जाते और नित्य पूजा-पाठ करते थे। इस प्रकार भागचन्द जैन के परिवार की समाज में प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। विवाह के कुछ वर्षों पश्चात् माणिकबाई ने एक पुत्र एवं पुत्री को जन्म दिया, जिनका नाम खमजी भाई एवं फूलबाई रखा गया। माता माणिकबाई ने कार्तिक वदी 11 संवत् 1945 (सन् 1888) में अपनी तीसरी संतान के रूप में फिर एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र का जन्म होते ही सारे गाँव में आनन्द छा गया। घर में मंगल गीत गाये जाने लगे। माता-पिता की खुशी की कोई सीमा नहीं रही और चारों ओर सुख शान्ति व्याप्त हो गई।

"आनन्द भयो तब पुर मझार, घर-घर मंगल गावे सुसार"

भागचन्द जी का यह दूसरा बालक जब 40 दिन का हुआ, तब उसने प्रथम बार जिनदर्शन किये। उसके कानों में णमोकार मंत्र के शब्द सुनाये गये। शिशु का नाम केवलदास रखा गया। बालक द्वितीया के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा। लुभावनी आकृति, मधुर भाषण एवं विनयशीलता के कारण चारों ओर केवलदास की प्रशंसा होने लगी।

अध्ययन

केवलदास ने गाँव की पाठशाला में ही पढ़ना लिखना सीखा। यहीं पहाड़े सीखे। जोड़-बाकी गुणा और भाग सीखा और इस प्रकार कुछ ही वर्षों में बालक केवलदास "पढ़े लिखे" की गिनती में आ गये। उनकी मातृभाषा बागड़ी या गुजराती मिश्रित हिन्दी थी। वही बोलचाल की भाषा थी। केवलदास को बचपन से ही लोगों को शिक्षा की बातें सुनाने में आनन्द आता था।

वह आज से लगभग 100 वर्ष पहिले का युग था। छोटे गाँव की बात

छोड़िये बड़े-बड़े गाँवों एवं कस्बों में भी कोई व्यवस्थित स्कूल या विद्यालय नहीं था। महाजन के बेटे के लिये महाजनी सीख लेना तथा हिसाब-किताब कर लेना और अधिक से अधिक पूजा-पाठ की पुस्तक पढ़ लेना ही पर्याप्त शिक्षा मानी जाती थी। बालक केवलदास ने यह सब सीख लिया था। वह जिन-दर्शन करने मंदिर जाता था तो स्वयं स्वाध्याय भी करता और दूसरे दर्शनार्थियों को भी बॉचकर सुना देता था। बालक तो था ही, लोगों को उसके बोल मधुर लगते और सुनकर सब प्रसन्न हो जाते। धीरे-धीरे केवलदास में स्वाध्याय के प्रति सम्मान बढ़ने लगा।

जब केवलदास पन्द्रह वर्ष के हुए तो कमाने खाने की चिन्ता सताने लगी। उन्होंने नौकरी भी कर ली और अपना रोजगार भी करने लगे। व्युत्पन्न मति थे, इसलिये कभी असफलता हाथ लगने का प्रश्न तो था ही नहीं।

इनके एक बहनोई बाकाँनेर (गुजरात) में रहते थे। नाम था गुलाबचन्द पानाचन्द। वे कभी-कभी छाणी गाँव आया करते थे। उनकी भी स्वाध्याय में गहरी रुचि थी। इसलिये घर पर धार्मिक पुराण लेकर स्वाध्याय करते थे। केवलदास की रुचि जानकर उसे भी पुराणों की बातें सुनाया करते थे। केवलदास उनकी बातों में गहन रुचि लेते। एक बार वे नेमिनाथ पुराण का स्वाध्याय कर रहे थे। नेमिनाथ के वैराग्य की घटना उन्होंने केवलदास को सुनाई। उससे केवलदास के हृदय में संसार से विरक्ति के भाव पैदा होने लगें, इस घटना का शशिप्रभा जैन शशांक आरा ने शान्तिसागर वन्दन में निम्न शब्दों में वर्णन किया है–

नेमीश्वर की जग असारता का चरित्र सुन्या केवल।
ना ही सार है जग में कोई, मोही क्यों मन है पागल।।

केवलदास के बहनोई तो जब कभी छाणी आते ही रहते थे। ये श्री केवलदास को पुराण की कथायें सुनाते तथा विरक्ति परक कथाओं को विस्तार से कहते रहते। केवलदास को ये सभी आख्यान अच्छे लगते और जगत् की असारता का जब कभी वर्णन करते तो वह उसे मन लगाकर सुनते रहते। नेमिनाथ के तोरण द्वार से वैराग्य की ओर मुड़ने की इस घटना ने तो केवलदास का जीवन ही बदल दिया। उसने भगवान जिनेन्द्र के अतिरिक्त किसी अन्य देवता के आगे सिर नहीं झुकाने की प्रतिज्ञा ले ली और रात्रिभोजन का भी त्याग कर दिया। केवलदास का यह त्याग वैराग्य की

ओर प्रथम कदम था। इसके पश्चात् तो उनका जीवन ही बदलने लगा।

केवलदास नौकरी भी करते। स्वयं का रोजगार भी करते और स्वाध्याय के लिए भी समय निकाल लेते इस प्रकार छोटी अवस्था में वे अत्यधिक व्यस्त रहते और घर में रहते हुए भी जल में कमल के समान निर्लेप भाव से सारी क्रियायें करते रहते। उनकी कुशाग्र बुद्धि एवं व्यवसाय के प्रति लगाव देखकर गाँव के लोग उनके पिता को बालक के अच्छे भविष्य की आशा बँधाते और उसे घर का दीपक कहकर बालक केवलदास का भी उत्साह बढ़ाते। केवलदास शास्त्र स्वाध्याय में अधिक मन लगाते थे। वे स्वयं तो स्वाध्याय करते ही थे किन्तु जब दूसरे व्यक्ति शास्त्र स्वाध्याय करते तो उनकी सभा में भी श्रोता बनकर बैठ जाते। कहते हैं, एक बार जब उसी गाँव के पं. रूपचन्द पंचोली नियमित स्वाध्याय करते थे तब युवा केवलदास उनसे प्रभावित हुए और वहाँ जाकर प्रतिदिन शास्त्र सुनने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे आपका ज्ञान बढ़ने लगा और वे विरक्ति की ओर बढ़ने लगे। तीर्थ वन्दना की ओर भी उनकी इच्छा होने लगी और पास ही के तीर्थ केशरियाजी जाने का निश्चय कर लिया। केशरियाजी में भगवान ऋषभदेव की भव्य प्रतिमा के दर्शन करके अपने भाग्य को सराहने लगे। वे दर्शनों में तन्मय हो अपने जीवन की ओर झाँकने लगे। उन्हें लगा कि गृहस्थ जीवन मनुष्य के लिए भार स्वरूप है। स्त्री, पुत्र सभी संसार बढ़ाने वाले हैं। उनसे जो सुख मिलता है, वह तो क्षणिक सुख है, जिसका कभी भी विनाश हो सकता है। इस प्रकार चिन्तन में डुबकी लगाकर केवलदास ने वहीं आजन्म विवाह नहीं करने तथा दिन में एक बार ही भोजन करने का नियम ले लिया।

वैराग्य की ओर उनका यह पहिला कदम था। जब केवलदास भगवान् ऋषभदेव के दर्शन करके घर पर लौटे तो वह प्रसन्नचित्त थे, मानो उनके ऊपर से गृहस्थी का सारा भार उतर गया हो।

जब उनके माता-पिता को अपने पुत्र द्वारा ली गई प्रतिज्ञा की जानकारी मिली तो सभी सन्न रह गये और भविष्य में गृहस्थी की गाड़ी कैसे चलेगी इस पर विचार करने लगे। उन्होंने अपने पुत्र को तरह-तरह से समझाया, डाँटा-डपटा, भला-बुरा कहा तथा माँ-बाप के आदेश की अवहेलना के लिए भी दोषी ठहराया लेकिन केवलदास पर उनके कहने-सुनने का कोई असर नहीं हुआ। आखिर माता-पिता रो-धो कर रह गये। उन्होंने आजन्म अविवाहित

रहने का जो नियम लिया था वह और भी पक्का हो गया। इसके अतिरिक्त दिन में एक बार भोजन करने के नियम ने तो सारे घर को ही विचलित कर दिया। माता-पिता भाई बहन सभी दो बार, तीन बार खाते रहें और सुकुमार बेटा एक ही बार खाये, यह सबके लिए असहनीय था। दो-दिन बाद सबने एक बार भोजन करने का डर दिखाया तथा भूखे भी रहे लेकिन केवलदास ने कहा कि भगवान के सामने लिये हुए नियम मैं कैसे तोड़ सकता हूँ? दिन में एक ही बार खाने से शरीर पर कोई असर नहीं पड़ता। आखिर सभी को केवलदास की बात माननी पड़ी।

सम्मेद-शिखरजी की यात्रा

केशरियानाथ की यात्रा करने के पश्चात् केवलदास का झुकाव तीर्थ यात्रा की ओर अधिक हो गया। शिखरजी की यात्रा का महत्व तो त्रिकालवर्ती है। "एक बार वंदे जो कोई ताहि नरक पशु गति नहीं होई।" इस पंक्ति ने तो सम्मेदशिखरजी के प्रति अद्‌भुत श्रद्धा का संचार कर दिया था। केवलदास ने यात्रा की बात पिताजी से कही। पिताजी ने सहज हो कहा कि "यदि वह शादी करते की बात मान ले तो उसे सम्मेदशिखर जी जाने के लिये खर्चा दिया जा सकता है।" पर विवाह की बात केवलदास को स्वीकार न थी। वे अपने जीवन का लक्ष्य कुछ और ही निर्धारित कर चुके थे।

इस युवावस्था में भले ही केवलदासजी के पास शास्त्र-ज्ञान की पूँजी नहीं थी, परन्तु गृह-त्याग की उनकी विकलता और उनके संकल्प की दृढ़ता को देखकर लगता है कि 'स्व-पर विज्ञान' का सूर्योदय उनके अन्तस्तल में पूरी तेजस्विता के साथ प्रारम्भ हो चुका था। अपने भावी जीवन के बारे में एक सुस्पष्ट और स्वाधीन कल्पना उन्होंने कर ली थी।

हमारा सौभाग्य है कि श्री केवलदासजी के गृह-त्याग से लेकर मुनि-दीक्षा और आचार्य-पद प्राप्ति तक का सारा वृत्तान्त उसी समय उनके एक शिष्य ब्र. भगवानदास जी ने विस्तार से लिखकर तैयार कर लिया। यह "जीवन-चरित्र' आज से पैंसठ वर्ष पूर्व, सन् 1927 में ही प्रकाशित भी हुआ। उसी पुस्तिका में से श्री केवलदासजी की प्रथम शिखरजी यात्रा का प्रसंग नीरज जी ने भूमिका लिखते समय यहाँ जोड़ना चाहा है।

केवलदासजी ने विवाह नहीं किया और न गृहस्थी हुए। इनका जन्म

कार्तिकवदी 11 सम्वत् 1945 हस्त नक्षत्र में हुआ था। 15 वर्ष तो बाल्यावस्था में व्यतीत हुए फिर कुछ साधारण कार्य-रोजगार तथा नौकरी की। 29 वर्ष की उम्र में इनकी माताजी का स्वर्गवास हुआ। इस उम्र में केवलदास को दो स्वप्न हुए, एक तो श्रीसम्मेदशिखरजी की यात्रा करने का और दूसरा स्वप्न 4 बजे प्रभात को हुआ उसमें श्री बाहुबलीजी की प्रतिमा के समक्षपूजन कर बहुत सी सामग्री चढ़ाते अपने को देखा। तत्पश्चात् श्रीनेमिनाथ का विवाह सुनकर कुदेवों के पूजने और निशाहार का त्याग किया और श्रीभगवान के दर्शन करने का नियम लिया।

केवलदास के धर्म भाव उत्तरोत्तर बढ़ते गये, इनको इनके सम्बन्धी बम्बई वाले लल्लूभाई लक्ष्मीचन्द चोकसी व प्रेमचन्द मोतीचन्द की धर्मपत्नी चम्पाबाई के लड़के रतनचन्दजी ने एक-एक प्रति 'विषापहार', आलोचना पाठ और 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' की दीं। इनको पाकर केवलदास जी को इन्हें पढ लेने का बडा चाव हुआ। वे इनको दूसरे पढे हुए जैनी भाइयों से पूछ कर पढ़ने लगे। फिर छाणी गाँव के पछोरी रूपचन्द भाई श्रीहरिवंश पुराण का स्वाध्याय करते थे, उनके सुनने के लिये केवलदास जी नित्य जाते थे। आपके हृदय में शास्त्र स्वाध्याय की लगन घर कर गई थी।

एक दिन शास्त्रजी सुनकर वहीं से श्रीकेशरियानाथ जी की यात्रा को चले गये। वहाँ श्रीआदिनाथ भगवान के दर्शन करके विवाह नहीं करने का नियम लिया, मानो कामान्ध वृद्ध साधर्मी भाइयों को ब्रह्मचर्य का प्रगट उपदेश ही दिया, आपके पिताजी ने विवाह के हित बहुत कुछ आग्रह किया पर आपने सर्वथा इन्कार कर दिया और कहा कि "मैंने आदिनाथ स्वामी के समक्ष विवाह नहीं करने का नियम लिया है।" तब पिताजी निराश हो गये।

एक दिन केवलदास जी शास्त्र सुन रहे थे, उसमें श्रीनन्दीश्वरद्वीप व्रत विधान का कथन आया, सो उसको भली-भाँति विधि सहित सुनकर मिती मार्गशीर्ष वदी 14 के दिन श्रीमंदिर जी में जाकर श्रीनन्दीश्वरजी का 108 दिन का व्रत–(एक उपवास, एक पारणा तथा एक बेला बीच-बीच में, जिसमें 56 उपवास, 52 पारणा (एकाशना) होगी, करने का नियम लिया। इस अवस्था से ही आपका धार्मिक जीवन प्रारम्भ हो गया। 'होनहार पूत के पाँव पालने' में ही नजर पड़ गये।

इसी समय आपने पिताजी से श्रीशिखरजी की यात्रा करने के निमित्त

आज्ञा माँगी। आपके पिताजी ने इन्कार किया और कहा कि "मैं यात्रा करने के लिये खर्चा नहीं दे सकता हूँ, हाँ यदि तुम विवाह करने को राजी हो तो मैं रुपया खर्च कर सकता हूँ।" उस पर आपने विचार किया कि "पिताजी हमको संसार में फँसाना चाहते हैं।" तब पिताजी से उजागर किया कि "पिताजी! मैं इस संसार में अनन्त बार विवाह कर चुका हूँ, पर तो भी विषयों से तृप्त नहीं हुआ, इसलिये अब मैं संसारी स्त्री में न फँसकर मोक्ष रूपी स्त्री से ही विवाह करना चाहता हूँ। मैं श्रीसम्मेदशिखरजी की यात्रा करने अवश्य ही जाऊँगा।" इतना कहकर वह वहाँ से अपने सम्बन्धियों से मिलने के हित में चल पड़े।

उस केवलदासजी (मुनिजी) ने सब सम्बन्धियों के कुटुम्बियों से क्षमा माँगते हुए कहा कि मैं इस संसार से भयभीत होकर आप लोगों से क्षमा माँगता हूँ, क्योंकि अब फिर मेरा आना इधर न होगा। यह कहकर आप वहाँ से अपने घर लौट आये और पिताजी से विनयपूर्वक निवेदन किया कि—"आप आज्ञा नहीं देंगे, तब भी मैं श्रीशिखरजी जाऊँगा।" इस बात को सुनकर पिताजी ने सोचा कि "अब यह घर में रहने वाला नहीं है, इसलिए आज्ञा प्रदान की। तब घर में भोजन करके सब गाँव वाले भाइयों और अपने कुटुम्बियों से मिलकर सभों से क्षमा मांगी और अपने पूज्य पिताजी से भी क्षमा माँगी। उस समय पिताजी ने सिर्फ पाँच रुपये दिये। अब खर्च के अर्थ उनके पास कुल बाईस रुपये हो गये। यह रुपये लेकर वह केशरियाजी आये। यहाँ दर्शन करके उदयपुर गये। उदयपुर से रेल द्वारा अजमेर, अजमेर से मथुरा, मथुरा से वनारस, वनारस से ईसरी, और ईसरी से श्रीशिखरजी पहुँच गए।

दूसरे दिन श्रीशिखरजी की यात्रा करते ही उनका यह भाव हुआ कि "यहाँ भगवान के निकट रह जाना ठीक है", पर थोड़े ही समय के पश्चात् वह भाव पलट गया, तब पहाड़ से उतरकर नीचे आये। फिर दूसरी वन्दना की, तब भी वहाँ नहीं रहे। जब तीसरी वन्दना को गये तब अज्ञानता से सब कूटों पर सब भगवन्तों से विनय करते गये कि मैं आज श्रीपार्श्वनाथजी के कूट पर ब्रह्मचारी की दीक्षा लूँगा, आप सब वहाँ पधारिये। यदि यह निपट अज्ञानता थी तो भी भाव बड़े ही शुद्ध थे। फिर श्रीपार्श्वनाथ भगवान के कूट पर जाकर सब सन्तों की स्तुति की, और कहा कि "सब भगवान् मुझको ब्रह्मचारी की दीक्षा देवें। उसी समय श्रीपार्श्वनाथ भगवान की साक्षी में

श्रीपार्श्वनाथ भगवान को गुरु मान करके, मस्तक व चोटी के कुछ बाल उखाड़कर, जो कपड़े पहिने थे उसमें से थोड़े से माली को दे दिये और आप 1 जनवरी सन् 1919 में ब्रह्मचारी के वस्त्र धारण कर पर्वत से नीचे आये। जो कपड़े पास में थे सब गरीबों में बाँट दिये। अपने पास सिर्फ दो धोती रक्खीं, इस तरह आपका त्यागमय जीवन प्रारम्भ हो गया।

उस समय उनके पास खर्च को सिर्फ तीन रुपये रह गये थे। तब डेढ़ रुपये बड़ी कोठी से लेकर पावापुरीजी गये। पावापुरीजी की यात्रा करके राजगृही गये। राजगृही में खर्च कम पड़ गया तब चार आने मुनीमजी से लेकर वनारस का टिकट लिया। वहाँ श्री स्याद्वाद महाविद्यालय भदैनी में जाकर ठहरे। इस समय इनके पास केवल एक पैसा था। किन्तु आप इस कठिन आर्थिक स्थिति में भी अपनी यात्रा करने के पुण्यमयी भाव से विचलित नहीं हुए और इसी दृढ़ निश्चय के अनुरूप सब ही तीर्थों की वन्दना करने में सफल हुए।

वनारस के स्याद्वाद महाविद्यालय में आप छः दिन रहे। वहाँ विद्यालय के मंत्री ने एक घुस्सा ओढ़ने को दिया और पन्द्रह रुपये देकर बम्बई का टिकट दिलवा दिया। 'विश्वासो फलदायकः' की नीति आपके विषय में सोलह आने चरितार्थ हो गई। आप वनारस से चलकर बम्बई पहुँचे। वहाँ सेठ माणिकचन्दजी, पानाचन्दजी, प्रेमचन्द मोतीचन्दजी के बँगले में ठहरे और तीन दिन रहे। वहाँ लल्लूभाई लखमीचन्द ने आपको आहार देकर पाँच रुपये टिकट को दिये और चम्पाबाई ने दो धोती और दो रुपये मार्ग खर्च को दिये। वहाँ से वह अहमदाबाद आये, यहाँ उनके पास सिर्फ तीन रुपये थे, सो दो रुपये की एक पछेवड़ी ले ली। आपने पहले ही श्रीशिखरजी में नियम लिया था कि "अपने पास पाँच रुपये से अधिक न रखेंगे।" पर यात्रा खर्च की छूट रक्खी थी। वहाँ से वह ईडर आये। ईडर में पहाड़ के ऊपर श्रीमंदिरजी में जाकर दर्शन किये।

ईडर से गोरेला आये, गोरेला में श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ का दर्शन किया, वहाँ से बाँकानेर आने बहनोई के ग्राम गये। यहाँ चार दिन श्रीमंदिरजी में ठहरे फिर वह और उनके सम्बन्धी पानाचन्द जी दोनों छाणी गए। सो वह तो ग्राम के बाहर श्रीमहावीर स्वामी के मंदिर में ठहर गये और पानाचन्दजी ग्राम में गये। उन्होंने ग्राम में जाकर सब श्रावकों से कहा कि "केवलदास

श्रीशिखरजी से सातवीं प्रतिमा के धारी ब्रह्मचारी होकर आये हैं।" ग्राम के सर्व जैनी भाई गाजा-बाजा सहित आकर के विनती कर उनको ग्राम के मंदिरजी को ले गये। अपने वात्सल्यभाव का उन्होंने परिचय दिया। कुछ दिनों पहले के अपने एक साधारण साधर्मी भाई को ब्रह्मचारी पदधारी देखकर के सब बड़े हर्षित हुए।

दूसरे दिन छाणी में पचोरा रूपचन्द जी के यहाँ आहार हुआ। आहार कराकर उन्होंने बड़ी टीका वाला रत्नकरण्डश्रावकाचार भेंट दिया। पर ब्र. केवलदास अर्थात् हमारे चरितनायक तो उसको पढ़ नहीं सकते थे, तब आठ-दस दिन रूपचन्द भाई ने उनको पढ़ाया। यहाँ से आपने आस-पास के 14 ग्रामों में विहार किया। उस समय सभी ने आपको भेंट की तब श्रीगिरिनारजी की यात्रा को गये। इनके साथ पिताजी भी यात्रा करने के हित गए। उनके पिताजी कुछ मिथ्यात्वी थे। वह भगवान के दर्शन तक नहीं करते थे, सो यह स्वयं समझा-बुझा के साथ ले गये। पुण्यवान जीव स्वयं अपना तो भला करते ही हैं, परन्तु अपने सम्बन्धियों का भी बड़ा हित कर डालते हैं। श्रीगिरिनारजी की यात्रा करके उन्होंने पिताजी का सप्तव्यसन और रात्रि भोजन का त्याग कराया और भगवान के दर्शनों का नियम लिवाया, मानो यह घोषित कर दिया कि भविष्य में हम जगद्गुरु होंगे। वहाँ से श्रीशत्रुंजयजी की यात्रा को गये, वहाँ से ईडर आये। यहाँ से चोरीवार चले आये, तब इन्होंने पिताजी से कहा कि "आप घर चले जाइये, हम यहाँ ही विहार करेंगे।" तब आपके पिताजी तो घर चले गये और आप चोरीवार से गोरेला गये।

गोरेला में पन्नालालजी ऐलक आये। ऐलकजी के साथ वह दक्षिण बारामती शोलापुर की तरफ चले गये। और एक महीना ऐलकजी के साथ में रहे, पर कुछ विद्या का लाभ नहीं हुआ। तब लौटकर गोरेला चले आये। यहाँ आकर चातुर्मास किया। यहाँ भाद्रपद में उन्होंने 17 उपवास किये। इस अन्तर में सिर्फ तीन बार पानी लिया था। यह कोई सरल कार्य न था, पर धर्मात्मा जीवों के लिये यह मुश्किल नहीं है। फिर अष्टाह्निका में 8 उपवास किये। आत्मानुभवी प्राणी को इन उपवासों के करने में बड़ा आनन्द आता है। इन्द्रियों को वश में करने के अचूक उपाय हैं।"

सन् 1927 में प्रकाशित पुस्तिका के इस उद्धरण से पता चलता है

कि केवलदास जी जब संसार से विराग हुआ तभी से परिग्रह के प्रति उनकी आसक्ति बहुत कम हो गई थी। वे परिग्रह को साधना की सबसे बड़ी बाधा मानने लगे थे। यही तो कारण था कि रेल-मोटर से यात्रा करते समय भी कभी आवश्यकता से अधिक द्रव्य का संकलन नहीं किया। यात्रा खर्च के प्रसंग को छोड़कर उन्होंने अपने पास पाँच रुपये से अधिक राशि नहीं रखने का नियम ले लिया था। वास्तव में गृहस्थाश्रम की ऐसी निष्पृहता ही उन्हें अपनी दीर्घ साधना में सहायक होती रही।

अब वे ब्रह्मचारी केवलदास हो गये थे। उन दिनों दिगम्बर साधुओं का एकदम अभाव था। न कहीं मुनि थे और न क्षुल्लक, ऐलक। इसलिये ब्रह्मचारी बनना ही बहुत बड़ी बात मानी जाती थी। उसके अतिरिक्त ब्रह्मचारी बनने से उनको प्रवचन करने का अधिकार मिल गया। केवलदास यद्यपि अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे लेकिन स्वाध्याय के बल पर उन्हें जैन सिद्धान्त का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो गया था। उन दिनों गम्भीर चर्चा का तो कोई प्रश्न भी नहीं था, इसलिये केवलदास के मुख से धर्म की चार बातें सुनकर लोग प्रसन्न हो जाते। इससे समाज में ब्रह्मचारी जी को सम्मान भी खूब मिलने लगा और एक बार भोजन नियम होने से समाज में उनके प्रति श्रद्धा जागृत हो गई। सम्मेदशिखरजी में ब्रह्मचारी की दीक्षा लेकर वहाँ से कितने ही गाँवों में धर्मोपदेश देते हुये वे वापिस केशरियानाथ ऋषभदेव आ गये।

केवलदास ऋषभदेव में कुछ दिन ठहर कर सागवाड़ा की ओर चल पड़े। सागवाड़ा तो उनका प्रिय नगर था। जो प्राचीन मंदिरों का नगर तथा भट्टारकों का केन्द्र स्थान था। सागवाड़ा का जैन समाज भी आपसे परिचित था क्योंकि इसके पहिले भी यहाँ कितने ही बार आ चुके थे और समाज के बीच में दो-चार ज्ञान की बात सुना भी चुके थे। इसलिये जब ब्रह्मचारी बनकर आये तो और भी श्रद्धास्पद बन गये। सागवाड़ा में कुछ ठहरने के पश्चात् आप गढ़ी जा पहुँचे। वहाँ की समाज ने आपका अच्छा स्वागत किया। प्रतिदिन प्रवचन होने लगे। समाज पर आपका प्रभाव जमने लगा। पूजा-पाठ होने लगे और फिर अढ़ाई द्वीप का मंडल माँड़कर उस पर पूजा होने लगी। अच्छा खासा मेला भरने लगा। आसपास के समाज के लोग भी आने लगे। एक पंथ दो काज होने लगे। पूजा की पूजा और ब्रह्मचारी जी का प्रवचन। गढ़ी गाँव वाले भी फूले नहीं समाये। चारों ओर ब्रह्मचारी जी की प्रशंसा होने लगी।

ब्रह्मचारी केवलदास अपने वर्तमान पद से सन्तुष्ट नहीं थे। उनके क्षुल्लक दीक्षा लेने के भाव हो रहे थे। अतः अढ़ाई द्वीप मंडल-विधान पूजा समापन के दिन ब्र. केवलदास जी ने उपस्थित जनसमूह को अपने क्षुल्लक दीक्षा लेने के भावों की जानकारी दी। ब्रह्मचारी जी के भावों को सुनकर जन मानस प्रसन्नता से भर गया। गढ़ी गाँव के लिये भी वह शुभ दिन माना गया, क्योंकि इसके पूर्व इस छोटे से गाँव में किसी ने दीक्षा नहीं ली थी। परन्तु वहाँ कोई निर्ग्रन्थ गुरु नहीं था। इसलिये क्षुल्लक दीक्षा कौन दे, इसका निर्णय नहीं हो सका। ब्र. केवलदास जी ने प्रार्थना की, कि मैं देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान् के समक्ष, सम्पूर्ण उपस्थित समाज की अनुमति से स्वयं ही क्षुल्लक दीक्षा धारण करना चाहता हूँ। इसके पश्चात् शास्त्रोक्त विधि से ब्रह्मचारी के कपड़ों को त्याग कर मात्र एक लंगोटी लगाकर एक चादर ओढ़ ली। शेष सब परिग्रह छोड़ दिये। उन्होंने स्वयं अपना नाम शान्तिसागर रख लिया। चारों ओर क्षुल्लक शन्तिसागर जी महाराज की जयजयकार होने लगी। समाज में अपूर्व आनन्द छा गया।

बागड़ प्रदेश में यह प्रथम अवसर था जब किसी पुण्यात्मा ने क्षुल्लक दीक्षा ली हो। आसपास के लोग उनके दर्शनों को आने लगे। वे जहाँ भी जाते दर्शकों की भीड़ लग जाती थी, क्योंकि इसके पूर्व किसी साधु का उधर विहार नहीं हुआ था। अब उनकी प्रवचन सभाओं में जैनों के अतिरिक्त जैनेतर समाज भी आने लगा। लोग अपनी सामान्य बोली में प्रवचन सुनकर अपने भाग्य की सराहना करते। क्षुल्लक जी महाराज भी आस-पास के गाँवों में विहार करके सभी को अपने प्रवचनों से लाभान्वित करने लगे। बागड़ प्रदेश को ही उन्होंने अपना मुख्य केन्द्र बनाया।

क्षुल्लक अवस्था में उन्होंने अपना प्रथम चातुर्मास परतापुर कस्बा में किया। परतापुर बाँसवाड़ा जिले का एक छोटा किन्तु अच्छा कस्बा है। जहाँ जैन घरों की भी अच्छी संख्या थी, जिनमें गुरुओं के प्रति आदर सत्कार की भावना गहरी थी। आहार देने के प्रति वे बहुत जागरूक रहते थे। समाज में आपस में सामंजस्य था। चार महीने तक परतापुर जैन समाज धन्य हो गया। उसे ऐसा पहिले अवसर कहाँ मिल पाता था। क्षुल्लक जी महाराज अहिंसा धर्म के पालन पर बहुत जोर देते थे। जैनेतर समाज को मांस-भक्षण

तथा मदिरा-पान छुड़ाते थे। शिकार खेलना छुड़ाते थे। वे सबको सदाचारी बनने तथा गुरु का भक्तिपूर्वक नाम-स्मरण पर जोर देते।

चातुर्मास समाप्ति पर एक बड़ा समारोह मनाया गया, जिसमें बाहर के भी सैकडों व्यक्तियों ने भाग लिया। क्षुल्लक शान्तिसागर जी ने परतापुरा से आगे विहार किया और छोटे-छोटे गाँवों की जनता को सम्बोधित करते हुए अर्थुना पहुँच गये। यहाँ भी एक प्राचीन मंदिर है। जैन समाज के अच्छे घर है। अब क्षुल्लक जी का व्यक्तित्व उभरने लगा। समाज की गतिविधियों से वे अवगत होने लगे। उस समय दक्षिण भारत में क्षुल्लक शान्तिसागर नाम के एक दूसरे क्षुल्लक जी थे। जिन्होंने दक्षिण भारत में धार्मिक चेतना जाग्रत की थी। हमारे विचार से तो दोनों क्षुल्लक एक दूसरे के नाम से परिचित अवश्य होंगे, क्योंकि सन् 1921-22 तक जैन पत्र-पत्रिकायें निकलने लगी थीं और उनमें सामाजिक समाचार प्रकाशित हो रहे थे।

क्षुल्लक शान्तिसागरजी लोगों से मांस व मदिरा का त्याग कराते थे। वे ज्यादातर जैनेतर समाज में घूमते और उनको पूर्ण शाकाहारी बना कर, मदिरा सेवन भी छुड़ा देते थे। महाराज श्री के प्रभाव से इन नियमों का दिन दूना और रात चौगुना प्रचार होने लगा। बागड़ प्रान्त को उन्होंने अपनी कर्मभूमि बनाया और प्रारम्भ के दिनों में वहीं विहार करते रहे। उनको क्षुल्लक बने हुए अभी एक ही वर्ष हुआ था। विहार करते हुए वे लोग ग्राम छाणी आये। कहाँ युवा केवलदास और कहाँ क्षुल्लक शान्तिसागर? नाम, पहनावा, रहन-सहन सभी कुछ तो बदल गया था। उनकी साधना की कीर्ति गाँव में उनसे पहिले ही पहुँच चुकी थी। छाणी गाँव वालों को आनन्दानुभूति हुई और उन्होंने क्षुल्लक जी का जोरदार स्वागत किया। उनके प्रति गाँव वालों की सहज श्रद्धा उमड़ पड़ी। उनके प्रवचन में सभी जातियों एवं धर्मों के लोग आते थे। उनका प्रवचन अहिंसा प्रधान होता था और सभी से अहिंसक जीवन अपनाने पर बल देते थे। छाणी में आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर गाँव वालों ने एक सरस्वती भण्डार की स्थापना की, जिससे लोगों में ज्ञान का प्रचार-प्रसार हो सके। छाणी में आपके प्रभाव में भारी वृद्धि हुई और कितने ही गाँवों के श्रावक समाज उन्हें अपने-अपने गाँवों में विहार करने का अनुरोध करने लगी। आखिर सागवाड़ा समाज की प्रार्थना स्वीकृत हुई और उन्होंने संवत् 1980 (सन् 1923) का चातुर्मास सागवाड़ा में करने का निर्णय

कर लिया।

छाणी से विहार करके वे बागड़ प्रदेश में घूमते रहे और लोगों को धर्मोपदेश का पान कराते रहे। संवत् 1980 में (सन् 1923) का चातुर्मास सागवाड़ा करने के पूर्व उन्होंने प्रायः तीन वर्ष बागड़ प्रदेश में ही व्यतीत किये और तत्कालीन समाज को बहुत लाभान्वित किया। गोरेला और ईडर उनके मुख्य कार्यक्षेत्र रहे। इस समय उनकी आयु 34-35 वर्ष की होगी। वे बड़ी मीठी भाषा में अपना प्रवचन करते और जन सामान्य पर गहरा प्रभाव छोड़ जाते।

सागवाड़ा तो उनका जाना पहिचाना गाँव था। वे पहले ब्रह्मचारी के रूप में वहाँ गये थे और अब क्षुल्लक के रूप में। दोनों में दिन रात का अंतर था। क्षुल्लक जी महाराज ने महिलाओं की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उनको धार्मिक शिक्षा देते और साथ ही कभी-कभी संसार के दुःख-सुख की भी चर्चा करते। उनके प्रवचन का पुरुष समाज एवं महिला समाज दोनों पर गहरा असर हुआ और उसी वर्ष वहाँ सागवाड़ा में शान्तिसागर दिगम्बर जैन श्राविकाश्रम की स्थापना की गई। इस श्राविकाश्रम में महिलाओं को शिक्षित करने का अभूतपूर्व कार्य किया। आश्रम में सधवा और विधवा सभी बहिनें आतीं और धार्मिक शिक्षा लेकर अपने जीवन को सफल बनाती। यद्यपि वर्तमान में यह श्राविकाश्रम निष्क्रिय हो चला है लेकिन इसने अतीत में समाज को बहुत लाभ दिया। सैकड़ों महिलाओं को धार्मिक संस्कार दिये हैं।

उनको गृह त्याग किये हुए चार वर्ष हो गये। इन चार वर्षों में उन्होंने अपने शरीर को सब तरह से परीषह, उपसर्ग और अन्तराय आदि सहने योग्य बना लिया। उनकी पूर्ण निर्ग्रन्थ साधु मुद्रा धारण करने की तीव्र भावना बढ़ने लगी। सागवाड़ा चातुर्मास में भाद्रपद मास का आगमन हुआ। पर्युषण पर्व आया। पूजापाठ होने लगे। क्षुल्लक जी का नियमित प्रवचन होता था। धर्म की नदी बह रही थी। इसमें जिसने जितना धर्म बाँध लिया। क्षुल्लक जी के मन में मुनि बनने का विकल्प आने लगा।

अनन्त चतुर्दशी की धर्म सभा में जब सारा समाज एकत्रित था, धर्म की चर्चा हो रही थी, तभी अचानक क्षुल्लक जी उठ खड़े हुए और मुनि दीक्षा लेने का अपना दृढ़ निश्चय सुना दिया। उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया था।

सब लोग एक बार फिर खुशी से झूम उठे। आदिनाथ स्वामी की विशाल प्रतिमा के सम्मुख उन्होंने अपने मुनि दीक्षा लेने के भावों को दोहराया। स्वयं केशलोंच किया और भगवान से प्रार्थना की कि हे देवाधिदेव मैं आपकी सहमति से जैनेश्वरी दीक्षा लेना चाहता हूँ, आप मुझे आशीर्वाद दीजिये। णमोकार मंत्र का जाप किया और सारे वस्त्र उतारकर दिगम्बर मुनि बन गये। कपड़े उतारते ही चारों ओर जयजयकार होने लगी। यह बागड़ प्रदेश के इतिहास में प्रथम अवसर था। जब किसी ने मुनि दीक्षा ली थी। जनता के लिये उत्सुकता का विषय था। आस-पास के लोग नवदीक्षित मुनि के दर्शनार्थ उमड़ पड़े। यद्यपि आदिसागर जी अंकलीकर ने आठ-नौ वर्ष पहले संवत् 1971 में मुनि दीक्षा ले ली थी, लेकिन वे महाराष्ट्र में ही विहार कर रहे थे और उत्तर भारत में अभी उनका विहार नहीं हुआ था।

सागवाड़ा-चातुर्मास-सन् 1923/संवत् 1980 मुनिदीक्षा

मुनिपद धारण करने के बाद शान्तिसागरजी का वह चातुर्मास तो दीक्षा नगरी सागवाड़ा में ही पूर्ण हुआ। सागवाड़ा आपके उपदेशों का केन्द्र बन गया। मुनि श्री शान्तिसागरजी महाराज ने अहिंसा धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ समाज में व्याप्त कन्या विक्रय जैसी कुरीति पर खूब प्रहार किया। अपने प्रवचनों में जब भी सामाजिक सुधार की बात आती, आप कन्या विक्रय से बचने के लिए अवश्य कहते। आपने अपने प्रवचनों में कहा कि कन्या विक्रय का पैसा लेना मांस खाने के बराबर है इसलिये समाज में ऐसी बुराई का होना घातक बीमारी है। महाराजश्री के प्रवचनों का समाज पर पूरा प्रभाव पड़ा और सारे बागड़ प्रदेश से कन्या विक्रय जैसी बुराई सदा के लिये समाप्त हो गई। बागड़ प्रदेश के जैनों की बस्ती वाले गाँवों में दाहोद, लेमड़ी, जालह, रामपुर, गलियाकोट, अरथोना, ओजनबोरी, गड़ीडडूक, परतापुर, तलवाडा, बाँसवाड़ा, खार, मारगादोल, नरवारी, गुमाण, घरियावद, परसोला, गामड़ी, सबरामेर, बराबोड़ी गाँव, छोटी कोडी गाँव, बडोरा, आसपुरा, बराड़ा, पाडवा, कुकापुर, सागवाड़ा, भीलोडी, मेतवाला, सरोदा, ओर्वरा, आंतरी, वेसीवाड़ा, दयोर, शाणी, नकागाँव, बाकलावाडा, छोडादर, भाणदु, जवास, भुदर, केसरियानाथ, धुलेब, वोरपाल के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

सागवाड़ा चातुर्मास के पश्चात् आप छोटे-छोटे गाँवों में विहार करने

लगे और खरमरा, चीतरी, गलियाकोट जैसे गाँवों में एक नई लहर पैदा करने में सफलता प्राप्त की। राजस्थान के एवं मध्यप्रदेश के गाँवों में विहार करते हुए आप धर्म नगरी इन्दौर पहुँचे।

इन्दौर चातुर्मास-सन् 1924/संवत् 1981

छाणी महाराज ने मुनि अवस्था का अपना पहला चातुर्मास इन्दौर में किया। किसी निर्ग्रन्थ मुनि का चातुर्मास होना इन्दौर के लिये भी वह प्रथम घटना थी। सेठों का नगर, औद्योगिक नगर, समाज की दृष्टि से भी मालवा के सबसे बड़े समाज से सुशोभित इन्दौर नगर ने आपके विहार का हार्दिक स्वागत किया। उन दिनों इन्दौर में सरसेठ हुकमचन्दजी का एक छत्र राज्य था। सरसेठ भी मुनिश्री के दर्शन करने आते, उनका प्रवचन सुनते और महाराज श्री की जीवन चर्या के विषय में दो शब्द भी कहते। महाराजश्री ने वहाँ के पण्डितों से भी धार्मिक शांस्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया और ज्ञान के प्रति अपनी उत्कृष्ट भावना का परिचय दिया। इन्दौर का चातुर्मास सफल होने का अर्थ सारा मालवा महाराजश्री का भक्त बन गया और उनके पीछे-पीछे दौडने लगा। यहाँ आसोज शुक्ला 10 संवत् 1981 को श्री हजारीमल पोरवाल ने आपके पास ऐलक दीक्षा ली। उनका नाम सूर्यसागरजी रखा गया।

मुनि श्री शान्तिसागरजी का 31 अक्टूबर, 1923 को सागवाड़ा में प्रथम बार केशलोंच हुआ। जैन मित्र के 15 नवम्बर सन् 1923 के अंक में इस केशलोंच के विस्तृत समाचार पत्र प्रकाशित हुए। जैन मित्र में लिखा है कि 31 अक्टूबर को महाराज श्री ने पाँच हजार जैन-अजैन जनता के समक्ष बड़ी दृढ़ता से केशलोंच किया। मुनि बनने के पश्चात् यह उनका प्रथम समाचार था।

आचार्य श्री सागवाड़ा में 30 अक्टूबर से 14 नवम्बर 1923 तक रहे। इन 15 दिनों में उनकी 32 सभायें हुईं, जिनमें 11 शास्त्र सभायें, बीस सार्वजनिक व्याख्यान सभायें और दो शंका-समाधान की सभायें हुईं। सार्वजनिक सभाओं के सभापति अजैन ब्राह्मण, पोस्ट-मास्टर एवं डाक्टर आदि बनाये गये।

मुनिश्री के धर्मोपदेश से सागवाड़ा में कन्या-विक्रय बन्द हो गया और बाल, वृद्ध विवाह में भी कुछ सुधार हुआ। उक्त समाचार से पता चलता है

कि मुनिश्री का व्यक्तित्व उभर रहा था और जैन पत्र-पत्रिकायें मुनिश्री के समाचारों को अच्छा स्थान देते थे। उस समय समाज में जैन गजट, जैन मित्र, जैन बोधक, दिगम्बर जैन, जैन महिलादर्श, वीर एवं जैन जगत् जैसे साप्ताहिक एवं मासिक पत्र निकलते थे। इन अधिकांश पत्रों में महाराजश्री के समाचार प्रमुखता से छपते थे।

ललितपुर चातुर्मास-सन् 1925/संवत् 1982

इन्दौर से विहार करते हुए छाणी महाराज हाटपीपल्या पहुँचे। वहाँ मुनिश्री ने सूर्यसागरजी को मुनि दीक्षा प्रदान की। उस दिन मंगसिर वदी एकादसी, संवत् 1981 का शुभ दिन था। मुनि श्रीशान्तिसागरजी महाराज के द्वारा यह प्रथम मुनि दीक्षा थी। हाटपीपल्या मालवा प्रदेश का अच्छा कस्बा है। जैनों की भी वहाँ अच्छी बस्ती है।

इन्दौर में सफल चातुर्मास के कारण मुनि शान्तिसागरजी छाणी की प्रसिद्धि एवं कीर्ति चारों ओर फैल गई थी। इन्दौर से कितने ही गाँवों एवं नगरों को अपनी चरण रज से पावन करके तथा प्रवचनों से सभी को लाभान्वित करते हुए उन्होंने बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया और ललितपुर जैसे नगर में चातुर्मास स्थापित किया। ललितपुर अपने प्राचीन एवं विशाल मंदिरों तथा विशाल जैन समाज के कारण प्रसिद्ध रहा है। ललितपुर में उस समय 300 जैन परिवार रहते थे, जिनकी जनसंख्या 1200 के करीब थी।

बाद में बुन्देलखण्ड की यात्रा करते हुए मुनिश्री लखनऊ आये और वहाँ से गोरखपुर को विहार किया। यहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन आप ही के सानिध्य में निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। यहाँ तपकल्याणक के दिन मुनिश्री ने फिरोजपुर निवासी एक क्षुल्लक को उनकी प्रार्थना पर ऐलक दीक्षा दी। गोरखपुर से आप ससंघ सम्मेदशिखरजी की ओर मुड़ गये। सम्मेदशिखरजी की आपकी यह दूसरी यात्रा थी। इसके पूर्व वे युवावस्था में गिरिराज की वन्दना कर चुके थे। सम्मेदशिखरजी में कुछ दिन ठहर कर गिरीडीह चले गये। गिरीडीह समाज के निवेदन को ध्यान में रखकर आपने अगला चातुर्मास वहीं करने का निर्णय लिया।

गिरीडीह चातुर्मास और आचार्य पद-सन् 1926 : संवत् 1983

गिरीडीह बिहार प्रान्त में एक औद्योगिक नगर है। अभ्रक का यहाँ सबसे बड़ा कारखाना है। यहाँ का जैन समाज राजस्थान से गया हुआ है। वर्तमान में यहाँ 85 घर एवं दो मंदिर हैं। यहाँ के निवासी धार्मिक स्वभाव के हैं। अब तो उनके संघ में मुनि, त्यागी, क्षुल्लक एवं ब्रह्मचारी आदि सभी थे। चातुर्मास के मध्य में गिरीडीह जैन समाज ने एक स्वर से आग्रह पूर्वक मुनि शान्तिसागरजी (दक्षिण) एवं आचार्य शान्तिसागरजी (छाणी) के नाम से दोनों आचार्यों के साथ दक्षिण एवं छाणी उपनाम अलग पहचान हेतु लगा दिये। चातुर्मास के पश्चात् यहाँ आचार्यश्री ने ब्रह्मचारी सुवालालजी को मुनि दीक्षा दी, जिनका नाम ज्ञानसागर रखा गया।

विहार

गिरीडीह में चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् आचार्यश्री ने अपने संघ के साथ, जिनमें मुनि ज्ञानसागरजी, मुनि वीरसागरजी, मुनि मुनीन्द्रसागरजी भी थे, पुनः सम्मेदशिखरजी की ओर विहार किया और मन्दारगिरी, भागलपुर, चम्पापुर, पावापुर, राजगृही आदि सिद्धक्षेत्रों को वन्दना की। राजगृही में विहार करके कुण्डलपुर क्षेत्र की वंदना की। यहाँ के जमींदार ने आचार्यश्री से अपनी शंकाओं का निराकरण करके आजीवन पशुओं की बलि न देने की प्रतिज्ञा की तथा पानी छानकर पीने का नियम लिया। उक्त समाचार को जैन मित्र ने 27 जून, सन् 1926 के अंक में विस्तार से प्रकाशित किया।

राजगृही में गया जैन समाज के प्रतिनिधियों ने आचार्यश्री को गया में पधारने के लिय नारियल चढ़ाकर निवेदन किया। आचार्यश्री संघ के साथ गया पधारे। उसके पश्चात् यहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आचार्यश्री के सानिध्य में बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुई। हजारों भाई-बहिनों ने प्रतिष्ठा में भाग लिया। फल्गु नदी की रेती में पांडाल बनवाया गया। आचार्यश्री का कितनी ही बार प्रवचन हुआ। आचार्यश्री के कारण मेला उत्साहपूर्वक सम्पन्न हुआ। कहते हैं कि मंदिर को नब्बे हजार की आय हुई थी। गया से 14 दिन के बाद विहार करके महाराज अपने संघ के साथ रफीगंज आये और वहाँ आठ दिन ठहरे। वहाँ से अनेक गाँवों में विहार करते हुए तथा अपने प्रवचनों से सबको लाभान्वित करते हुए संघ वाराणसी पहुँचा। वहाँ पर भदैनी, भेलूपुरा,

सिंहपुरी, चन्द्रपुरी तीर्थों के दर्शन किए। समाज को अपने प्रवचनों से लाभान्वित किया और इलाहाबाद की ओर बढ़ गये। इलाहाबाद में आचार्यश्री पाँच दिन ठहरे। एक बड़ी आम सभा हुई, जिसमें अनेक विद्वानों ने भाग लिया। सभा में ही विद्वानों एवं आर्यसमाजियों ने आपसे कितने ही प्रश्न किये, जिनका उचित समाधान पाकर सभी ओर आपकी विद्वता की प्रशंसा होने लगी।

इलाहाबाद के पश्चात् आचार्यश्री बाराबंकी होते हुए करनी नगर में आये। मार्ग में ही ज्ञानसागरजी महाराज वापिस इलाहाबाद चले गये और वीरसागरजी सहित आगे बढ़ते रहे। करनी नगर में आपने एक अग्रवाल बन्धु को जैनधर्म पालने का नियम दिया। साथ ही घर में चैत्यालय बनाने, रात्रि में भोजन नहीं करने एवं पानी पीने का भी नियम दिलाया। इटावा में आचार्यश्री का अहिंसा पर विशेष प्रवचन हुआ। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर एक कहार ने मछली मारना, मांस मदिरा खाना-पीना छोड़ दिया और महाराजश्री के समक्ष मछली फँसाने का जाल भी तोड कर फेंक दिया। इसी तरह कानपुर में एक हलवाई को रात्रि में मिठाई नहीं बनाने तथा दिन में भी पानी छानकर काम में लेने का नियम दिलाया।

इसके पश्चात् संघ बांरा आया। यहॉ भी आपके कई प्रवचन हुये। उसके पश्चात् मऊरानीपुर, बरुआसागर होते हुए भी झाँसी आये। बुन्देलखण्ड आने के पश्चात् आपने प्रवचनों की अमृत वर्षा करते हुए छोटे-बड़े गॉवों में विहार किया। करेरा ग्राम में आपने एक धार्मिक पाठशाला की स्थापना कराई। अमोल गॉव में वहाँ के ठाकुर को मांस नहीं खाने एवं मद्यपान नहीं करने के नियम दिलवाये। वहाँ से कोलारस शिवपुरी होते हुए गुना आ गये। गुना शहर जैन समाज का केन्द्र है। यहाँ पर आचार्यश्री ने अपने प्रवचनों से सबको प्रभावित कर लिया और कुछ दिनों तक ठहरने के पश्चात् वहाँ से बजरंगगढ़ आये। बजरंगगढ़ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है जहाँ शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ की 15 फिट की खड्गासन प्रतिमायें हैं। बजरंगगढ़ में वीरसागर जी महाराज रुक गये और आचार्य श्री शेष संघ के साथ हटवाई, व्यावर होते हुए सारंगपुर आये। सारंगपुर में आपके प्रवचनों से अच्छी धर्मप्रभावना हुई। एक ब्राह्मण वकील ने पूर्णतः जैनधर्म स्वीकार किया।

आचार्य श्री अपने प्रवचनों में अहिंसा, रात्रि भोजन निषेध, मद्य-मांस का त्याग तथा अभक्ष्य भक्षण के त्याग पर बहुत जोर देते थे। साधारण भाषा में वे अपनी बात कहते जो सबको अच्छी लगती। जो व्यक्ति तर्क से समझाना चाहते, उन्हें तर्क से समझा देते। स्वयं भी अपनी चर्या में पूरी सावधानी रखते और जरा भी शिथिलता नहीं आने देते। उनकी यही हार्दिक इच्छा रहती थी कि जैन बंधु सच्चे अर्थों में जैन बनें तथा देश में अहिंसा का प्रचार हो और मद्य-मांस का कोई सेवन न करे।

महाराजश्री ने मक्सी पार्श्वनाथ जाने के पश्चात् विहार करते हुए उज्जैन में प्रवेश किया। आपके आगमन से जैन समाज की खुशी का पार नहीं रहा। यहाँ आप घासीलाल कल्याणमल धर्मशाला में ठहरे और विहार करते हुए बड़नगर आये। उस समय यहाँ जैनों के 100 घर थे। जैनों की जनसंख्या 450 थी। दो मंदिर हैं। यहाँ का जैन औषधालय प्रदेश भर में प्रसिद्ध है। बड़नगर से विहार करते हुए रतलाम आये। यहाँ भी आचार्यश्री के विहार से अच्छी धर्मप्रभावना हुई रतलाम से आप बागड़ प्रदेश की ओर मुड गए और पुनः बॉसवाडा में प्रवेश किया। बाँसवाड़ा खाँदू ग्राम में भी बहुत से परिवार आ गये थे इसलिये यहॉ की जैन परिवार संख्या अच्छी थी। वहाँ के मंदिर में आपका केशलोंच हुआ, फिर यहाँ से चलकर परतापुर होते हुए सागवाड़ा पहुँच गए।

परतापुर चातुर्मास-सन् 1927/संवत् 1984

उत्तर प्रदेश एवं मालवा के विभिन्न नगरों एवं गाँवों को अपनी चरण-रज से पवित्र करते हुए तथा अपने दिव्य संदेश से अहिंसा का प्रचार करते हुए आचार्यश्री का राजस्थान में पदार्पण हुआ और उन्होंने परतापुर (प्रतापपुर) में अपना चातुर्मास स्थापित किया। इसके पूर्व सागवाड़ा, इन्दौर, ललितपुर एवं गिरीडीह में चातुर्मास हो चुके थे। परतापुर तो आपका जाना पहचाना गाँव था। गाँव वाले जैन बन्धु एवं जैनेतर बन्धु आपके त्याग, तपस्या एवं साधना से परिचित थे। इसलिये जैसे ही आपके चातुर्मास की खबर गाँव में पहुँची, सभी आपकी जय बोलने लगे। चातुर्मास में गाँव की काया ही पलट गई। अधिकांश गाँव वाले मद्य-मांस का त्याग करके शाकाहारी बन गये। जैन युवकों ने भी रात्रि में भोजन त्याग, जिन दर्शन करने एवं अभक्ष्य पदार्थ

नहीं खाने का नियम ले लिया। चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् आचार्यश्री ने अपने संघ के साथ गुजरात की ओर विहार किया।

ईडर (गुजरात) चातुर्मास-सन् 1928/संवत् 1985

जैसे ही आचार्यश्री ने ईडर की ओर विहार किया। वहाँ की समाज ने बड़ी प्रसन्नता के साथ आपसे चातुर्मास के लिए निवेदन किया। वहाँ के समाज की भक्ति देखकर आपने चातुर्मास की स्वीकृति दे दी। आचार्यश्री का गुजरात में यह प्रथम चातुर्मास था। आचार्यश्री गुजराती एवं हिन्दी दोनों ही अच्छी तरह बोल लेते थे इसलिये आपको चातुर्मास में प्रवचन करने में कोई कठिनाई नहीं आयी। चातुर्मास के मध्य अनेक प्रकार के विधानों का आयोजन होता रहा, जिससे पूरा समाज धार्मिक कार्यों में लगा रहा। आपके प्रवचनों में सभी जातियों और धर्मों के अनुयायी आते थे और शान्तिपूर्वक उपदेश सुनकर अपने जीवन को सफल बनाते थे। चातुर्मास के मध्य यहाँ की समाज में आचार्य शान्तिसागर दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला के नाम से एक संस्था स्थापित की, जिसके माध्यम से जैन ग्रन्थों का प्रचार होने लगा।

सागवाड़ा चातुर्मास-सन् 1929/संवत् 1986

गुजरात के कितने ही गाँवों को अपने उपदेशों से लाभान्वित करते हुए आपने राजस्थान की धरती पर पुनः अपने चरण रखे और चातुर्मास के पूर्व सागवाड़ा पहुँच गये। नगर में गंगा स्वयमेव आ गई यह जानकर सब प्रसन्नता से झूम उठे और आचार्यश्री से चातुर्मास के लिय निवेदन किया। आचार्यश्री ने भी सागवाड़ा जैन समाज की भावना को लेकर चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान की। सागवाड़ा चातुर्मास में आपने सामाजिक सुधारों पर विशेष बल दिया। कन्या विक्रय, मृत्युभोज, भक्ष्य-अभक्ष्य सेवन व मृत्यु पश्चात् होने वाले रोने-पीटने आदि बुराइयों को जड़-मूल से उखाड़ने का आपका विशेष योग रहा।

इन्दौर चातुर्मास-सन् 1930/संवत् 1987

सागवाड़ा से चातुर्मास समाप्ति करने के पश्चात् आपने मालवा की ओर विहार किया। त्याग और तपस्या से आपका शरीर सोने के समान चमकने

लगा। जो भी एक बार आपके दर्शन कर लेता वही कृतकृत्य हो जाता। गाँवों में विहार करते हुए आप बड़वानी क्षेत्र पर पहुँचे और वहाँ धर्मोपदेश कर कितने ही प्राणियों का जीवन सुधार दिया। बड़वानी में जब आप सामायिक में लीन थे तो कुछ विरोधी अजैन लोगों ने महाराज पर मोटर चलाकर मारना चाहा किन्तु महाराज ध्यान मग्न रहे। तनिक भी विचलित नहीं हुए। मोटर महाराज के शरीर पर तो चली नहीं और स्वयमेव रुक कर खराब हो गई। इस चमत्कार से सब विरोधी झुक गये और महाराजश्री के चरणों में पड़कर क्षमा माँगने लगे। महाराज ने भी इनको क्षमा कर दिया। इस उपसर्ग विजय से आचार्यश्री की ख्याति चारों ओर फैल गई। सर सेठ हुकमचन्दजी ने विरोधियों पर मुकदमा चलाना चाहा पर महाराजश्री ने मना कर दिया।

महाराजश्री ने इन्दौर में चातुर्मास स्थापित किया। इससे पूर्व भी एक बार इन्दौर में आपका चातुर्मास हो चुका था। सारा इन्दौर महाराजश्री के दर्शनों के लिये एवं प्रवचन सुनने के लिए उमड़ पड़ता था। चारों ओर महाराजश्री के प्रभाव एवं त्याग-तपस्या की चर्चा होती रहती थी, सर सेठ हुकमचंदजी प्रायः महाराजश्री का प्रवचन विशेष रूप से आकर सुनते थे।

ईडर चातुर्मास सन् 1931/संवत् 1988 एवं तारंगा हिल का मेला–

आचार्यश्री तारंगा हिल भी गये जहाँ चैत्र शुक्ला 11 से 15 तक बड़ा भारी मेला भरता है। यहाँ चैत्र शुक्ला 14 को शान्तिकुंज में आचार्यश्री का केशलोंच हुआ और धर्म की बड़ी प्रभावना हुई। उसी समय वहाँ 'शान्तिसागर आत्मोन्नति भवन' का उद्घाटन हुआ और भी दूसरे उत्सव आयोजित हुए। इसके पश्चात् पुनः ईडर में आपका चातुर्मास हुआ और उस बहाने आपने भव्य जीवों को धर्मोपदेश देकर उन्हें सन्मार्ग पर लगाया। ईडर बहुत प्राचीन शहर है, जहाँ उस समय जैन समाज के 100 घर एवं तीन जैन मंदिर थे। यहाँ का शास्त्र भण्डार पूरे देश में प्रसिद्ध है।

ईडर से आचार्यश्री ने अपने जन्मस्थान छाणी की ओर विहार किया, तथा गोडाकर, बावलवाड़ा होते हुए खाणदरी पधारे। खाणदरी ऋषभदेव स्वामी का अतिशय क्षेत्र है जिनके दर्शनार्थ दूर-दूर से लोग आते हैं और मनोवांछित फल प्राप्त करते हैं। यहाँ से भाणदा ठहरते हुए नवागाँव आये। यहाँ आचार्यश्री का केशलोंच हुआ, जिसमें आसपास के लोग पर्याप्त संख्या में पधारे। भाणदा होते हुए आचार्यश्री ने पुनः अपने जन्म स्थान छाणी में

प्रवेश किया। पूरे गाँव वालों ने आचार्यश्री का जोरदार स्वागत किया। यहाँ का ठाकुर मानसिंह महाराज का परम भक्त था। उसने आचार्यश्री की प्रेरणा पाकर दशहरे पर होने वाली भैंसे की बलि बन्द करा दी। छाणी में कुछ दिनों तक ठहरने के पश्चात् और भी कितने गाँवों में विहार किया।

आचार्यश्री नागफणी पार्श्वनाथ भी गये। यह स्थान प्राकृतिक शोभा से युक्त भगवान पार्श्वनाथ का अतिशय क्षेत्र है जिसमें भगवान् पार्श्वनाथ की तथा धरनेन्द्र पद्मावती की अतिशय युक्त प्रतिमाये जिन मंदिर में विराजमान हैं। यहाँ पहाड़ के भूगर्भ से प्रतिमा के नीचे पानी बहता है। तीन कुण्ड एवं गोमुखी बनाये गये हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि प्रतिमा के नीचे से बहने वाला पानी यात्रियों के बढ़ने से बढ़ जाता है और यात्रियों के कम होने पर कम हो जाता है। यहॉ कभी पानी का ह्रास नहीं होता।

इसके पश्चात् आचार्यश्री ने बागड़ प्रदेश को छोड़कर राजस्थान के पश्चिमी भाग में विहार करने का मानस बनाया। इस भाग में अब तक किसी भी मुनि के चरण नहीं पड़े थे। आचार्यश्री चित्तौड़ होते हुए नसीराबाद पहुँच गये और उसी नगर में अपना चातुर्मास स्थापित किया।

नसीराबाद चातुर्मास-सन् 1932/संवत् 1989

नसीराबाद उन दिनों अजमेर मेवाड राज्य का अंग था। नसीराबाद फौजी केन्द्र था, जिससे यह नसीराबाद छावनी कहलाता है। उस समय वहाँ दिगम्बर जैन समाज के 50 घर थे तथा तीन मंदिर थे। सारा समाज अजमेर जैन समाज से जुड़ा हुआ था, क्योंकि यह अजमेर के पास में ही हैं। नसीराबाद में आचार्य श्री का बहुत ही शानदार चातुर्मास हुआ। उन दिनों मुनियों का जयपुर, अजमेर आदि क्षेत्रों में विहार होने लगा था। दूसरे आचार्य चारित्र-चक्रवर्ती श्रीशान्तिसागरजी (दक्षिण) भी अपने संघ के साथ इसी क्षेत्र में विहार कर रहे थे।

व्यावर चातुर्मास-सन् 1933/संवत् 1990

नसीराबाद में चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् आचार्यश्री इधर-उधर विहार करते रहे। जिस गाँव में भी एक बार आपका आगमन हो जाता, वहाँ के निवासी आपको जाने ही नहीं देते थे। इसलिये नसीराबाद से व्यावर पहुँचने में संघ को आठ महीने लग गये। व्यावर में चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य

शान्तिसागर (दक्षिण) भी संसघ विराज रहे थे। उनका पिछला चातुर्मास जयपुर में हुआ था। उनके संघ में साधुओं की संख्या अधिक थी। व्यावर में इन दोनों महान आचार्यों के संघ का मिलन जैन समाज के इतिहास में एक ऐतिहासिक एवं चिरस्मरणीय घटना है। दोनों आचार्यों के चातुर्मास का श्रेय सेठ चम्पालाल रामस्वरूप रानीवालों को था। वे बड़े धार्मिक प्रवृत्ति के थे। पूरे चातुर्मास भर उनके सारे परिवार ने साधुओं की अविस्मरणीय सेवा की थी।

चारित्र-चक्रवर्ती आ. शान्तिसागरजी स्वयं छाणी महाराज को विशेष सम्मान देते थे। सभा में दोनों आचार्यों का समान आसन सबके सामने रहता था। संघ के सब साधु परस्पर में यथायोग्य विनय नमोऽस्तु कहकर बैठते थे। इस चातुर्मास में चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी को भी छाणी महाराज की त्याग, तपस्या एवं साधना ने प्रभावित किया। इसलिये दोनों आचार्यों का एक स्थान पर वात्सल्य एवं प्रभावना पूर्वक चातुर्मास सम्पन्न हो गया। उसके बाद भी दोनों संघ अजमेर तक एक साथ रहे। व्यावर में दोनों संघ के मिलने के सम्बन्ध में जैन-मित्र में निम्न प्रकार समाचार प्रकाशित हुये :—

"आचार्य शन्तिसागर छाणी का संघ 11 जून सन् 1933 को व्यावर पहुँचा। अच्छा स्वागत हुआ, आचार्य शान्तिसागरजी छाणी के सभापतित्व में आचार्यश्री शान्तिसागर जी दक्षिण की हीरक जयन्ती मनायी गयी। कई प्रभावक प्रवचन हुए। तत्पश्चात् एक धर्म धुरन्धर जी के गायन में आचार्य शान्तिसागर महाराज को साक्षात् महावीर जैसा बतलाया।

सागवाड़ा चातुर्मास-सन् 1934/संवत् 1991

आचार्यश्री के प्रति बागड़ प्रदेश वालों का विशेष लगाव हो गया था। वहाँ के प्रमुख लोग आचार्यश्री के पास रहते और उनसे अपने वहाँ विहार करने का अनुरोध किया करते थे। व्यावर चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री अजमेर आये। अजमेर में कुछ दिनों तक ठहरने के पश्चात् भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़ होते हुए पुनः सागवाड़ा पहुँचे और वहाँ उन्होंने पुनः चातुर्मास किया। सागवाड़ा आपके चातुर्मास के कारण जैन समाज का केन्द्र बन गया। राजस्थान, गुजरात, मालवा आदि से दर्शनार्थी आते और आचार्यश्री के दर्शन करके एवं प्रवचन सुनकर अत्यधिक प्रसन्नता व्यक्त करते थे।

उदयपुर चातुर्मास-सन् 1935/संवत् 1992

सागवाड़ा के पश्चात् आप बागड़ प्रदेश के कितने ही गाँवों में विहार करते हुए उदयपुर में आपने चातुर्मास स्थापित किया। उदयपुर में आपका यह प्रथम चातुर्मास था। आपके प्रति समाज का पहिले से ही सहज आकर्षण एवं भक्ति थी। इसलिये यह चातुर्मास भी उल्लास पूर्वक समाप्त हुआ और धर्मवृद्धि हुई। समाज में सामंजस्य बढ़ा। आचार्यश्री जिन नियमों का पूर्ण रीति से पालन करते थे और जो उनके व्यक्तित्व को प्रभावक बनाने की दिशा में सहायक सिद्ध हुये वे इस प्रकार हैं :—

1. केशलोंच के समाचार किसी से प्रगट नहीं करना और अपना मूलगुण पालन करने के लिए एकान्त-स्थल में बैठकर केशलोंच कर लेना।
2. केशलोंच करते समय केशलोंच सम्बन्धी या पीछी-कमण्डलु और शास्त्र अर्पण करने की बोली बोलने की अनुमति नहीं देना।
3. किसी भी संस्था के लिये न चन्दा कराना और न कहीं पर भिजवाना, दान का उपदेश सुनकर कोई कुछ त्याग करे तो वह धन वहाँ की विद्या संस्थाओं, शास्त्रालयों के लिये उपयोग करें, अथवा जहाँ उचित समझें, विद्यालयादि स्थानों को दें, यह दातार की स्वेच्छा पर छोड़ देना।
4. अपने साथ सवैतनिक नौकर न रखना।
5. कोई भी चन्दा कराने वाले मुनि ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिका, ब्रह्मचारी-जनों को अपने साथ नहीं रखना। यदि कोई साथ रहकर गृहस्थ से किसी भी प्रकार की द्रव्यादि वस्तुओं की याचना करे तो उसे संघ से पृथक् कर देना।
6. पात्र-परीक्षा पूर्वक ही दीक्षा या व्रत-नियम देना।
7. अपने साथ चटाई आदि न रखना और न उन पर सोना, बैठना।
8. जिसके घर पर आहार होगा, उससे किसी प्रकार के दान का आग्रह नहीं करना। यथा सम्भव किसी मेले आदि में जहाँ नर-नारियों का आधिक्य हो वहाँ पर नहीं जाना।

यद्यपि उक्त नियम स्वयं ने ही बनाये थे लेकिन उनको अपने ऊपर पूरी तरह लागू करते थे। इन नियमों के कारण समाज ने आपमें एक आदर्श मुनि का रूप देखा, जिसे वह कभी नहीं भुला सकी। उदयपुर में खण्डेलवाल, अग्रवाल जैनों के साथ नरसिंहपुरा, नागदा, हूबमड़ आदि का भी अच्छा स्थान है। सभी ने आपके चातुर्मास से लाभ लिया।

जयपुर **डॉ. कासलीवाल**

आचार्य श्रीशान्तिसागर (छाणी) महाराज की परम्परा के समर्थ आचार्य

आचार्यश्री शान्तिसागरजी छाणी महाराज के चातुर्मास

ब्रह्मचारी बनने के उपरान्त विक्रम संवत् 1976-77 एवं 78 तदनुसार ई. सन् 1919-20 और 21, इन तीन वर्षों तक केवलदासजी गोरेला और ईडर के आस-पास ही भ्रमण करते रहे। चातुर्मास में एक जगह रहने के बाद वे भ्रमण ही करते थे। किसी एक स्थान पर बँधकर अधिक समय फिर वे नहीं रहे। इसी अवस्था में चौथे वर्ष संवत् 1979 सन् 1922 का चातुर्मास परतापुर में हुआ, जहाँ उन्होंने क्षुल्लक का पद अंगीकार कर लिया। अगले चातुर्मास में सागवाड़ा में उन्होंने स्वतः प्रेरित मुनि-दीक्षा प्राप्त कर ली। यह संवत् 1980-सन् 1923 की बात है। इसके बाद निर्ग्रन्थ अवस्था में उनके बीस चातुर्मास और हुए जिनकी तालिका इस प्रकार है—

क्र.	विक्रम संवत्	ईस्वी सन्	चातुर्मास का स्थान
1.	1981	1924	इन्दौर
2.	1982	1925	ललितपुर
3.	1983	1926	गिरीडीह (आचार्य पद प्राप्त)
4.	1984	1927	परतापुर (बाँसवाड़ा)
5.	1985	1928	ईडर
6.	1986	1929	सागवाड़ा
7.	1987	1930	इन्दौर
8.	1988	1931	ईडर
9.	1989	1932	नसीराबाद
10.	1990	1933	व्यावर
11.	1991	1934	सागवाड़ा
12.	1992	1935	उदयपुर
13.	1993	1936	ईडर
14.	1994	1937	गलियाकोट
15.	1995	1938	पारसोला
16.	1996	1939	भिण्डर

17.	1997	1940	तालोद
18.	1998	1941	ऋषभदेव
19.	1999	1942	ऋषभदेव
20.	2000	1943	सलुम्बर

इस प्रकार संवत् 1980 में आपने भादवा सुदी 14 की मुनि दीक्षा ली। संवत् 1981 से लेकर संवत् 2000 तक आपने देश के विभिन्न नगरों में चातुर्मास किये। इन दो दशकों तक आपने पूरे उत्तर भारत की जैन एवं जैनेतर समाज को एक नई दिशा प्रदान की और निर्ग्रन्थ मुनि मार्ग को प्रशस्त बनाया। संवत् 2001 में चातुर्मास के पूर्व ही आपका समाधिमरण हो गया।

उक्त चातुर्मासों की विशिष्ट घटनाओं का यत्र-तत्र वर्णन मिलता है। आचार्यश्री 3 जनवरी 1940 को सागवाड़ा (राज. में विहार करके पाडवां, नमराडा आदि मार्गों से होकर 14 जनवरी 1940 को पीठ ग्राम पधारे। आपके उपदेशों से 7 भीलों और 4 राजपूतों ने अष्ट मूलगुणों को धारण किया।

श्री तारंगा में जिन पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय आचार्यश्री शान्तिसागर आदि चतुर्विधसंघ ने मिलकर परम विद्वान मुनिश्री कुन्थुसागरजी को आचार्य पद प्रदान किया। आप इस पद को अपने गुरु चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी दक्षिण की आज्ञा के बिना स्वीकार नहीं करते थे, लेकिन आचार्य शान्तिसागरजी छाणी ने अधिकार पूर्वक कहा कि मैं आपके गुरु को यह संदेश पहुँचा दूँगा कि आपकी अनुपस्थिति में आपका कार्य मैंने किया है। कुन्थुसागरजी रचित ज्ञानामृत का प्रकाशन शुभारंभ आचार्य शान्तिसागरजी छाणी के हस्त से उस मौके पर हुआ। (जैन मित्र 11 मई, 1939)

पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी छाणी एवं आचार्य कुन्थुसागरजी महाराज अपने-अपने संघ सहित एक साथ विराजमान हैं। प्रतिदिन युगल आचार्यों का धर्मोपदेश होता है। अभी ऋषभदेव जन्मोत्सव के समय अनेक श्वेताम्बर साधुओं ने भी दिगम्बराचार्यों से मुलाकात की थी। दिनांक 14 मार्च, को आचार्यश्री शान्तिसागर व मुनि अजितसागर जी महाराज का केशलोंच हुआ। युगल आचार्य विराजने से यहाँ दिगम्बर जैन समाज में खूब उत्साह एवं धर्म प्रभावना हो रही है।

(जैन संदेश 26 मार्च, 1942)

समाधिमरण

कुहाला (बांसवाड़ा) में दिनांक 24 अप्रैल, 1944 से 5 मई 44 तक जिन पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आचार्य शान्तिसागरजी छाणी एवं आचार्य कुन्थुसागरजी दोनों के सानिध्य में सानन्द सम्पन्न हुआ था। समापन के दिन आपने केशलोंच किया, तब तक आपका स्वास्थ्य उत्तम था। उसके पश्चात् आपने कुहाला से सागवाड़ा की ओर विहार किया। पाटोदा, सारोदा होते हुए महाराजश्री 12 मई 1944 को सागवाड़ा बोर्डिंग में पधारे। महाराज श्री को मार्ग में ही बुखार आ गया था और शरीर में कमजोरी आ गई थी। 13 मई को आचार्य श्री ने अल्पाहार किया। महाराज श्री की इच्छानुसार क्षुल्लक धर्मसागरजी को तार देकर बुलाया, किन्तु तार तीन दिन बाद मिलने से वे समय पर नहीं पहुँच सके। लेकिन गलियाकोट से मुनि नेमिसागर जी खबर मिलते ही सागवाड़ा पधारे तथा आचार्य श्री को दशभक्ति आदि सुनाई। 15 मई को आचार्य श्री ने चतुर्विध आहार का त्याग कर दिया और आत्मध्यान में लीन हो गये। 17 मई, 1944 को मध्यान्ह 1.15 बजे णमोकार मंत्र बालेते-बोलते आत्मोत्सर्ग किया। समाधिमरण के समय मुनि नेमिसागरजी, ब्र. नानालाल जी, पं. कस्तूरचंद देवडिया, पं. जिनचन्द्रजी, पं. धनकुमार जी आदि उपस्थित थे। हजारों नर-नारी बोर्डिंग में एकत्रित हो गये थे। वे जयघोष कर रहे थे। अष्टद्रव्य से पूजा की गई। देह को विमान में विराजमान करके शहर में जुलूस निकाला गया। जुलूस शहर से बाहर नशियाँजी गया। वहाँ मुनि नेमिसागरजी ने भूमि शोधन किया फिर विधिपूर्वक चन्दन, कपूर और श्रीफल से निर्मित चिता पर उनके शरीर का अंतिम संस्कार किया गया।

आचार्य श्री के समाधिमरण के समाचार सुनते ही सारे देश में शोक छा गया। जिसने भी समाधिमरण के समाचार सुने, वही शोक विह्वल हो गया। गाँव-गाँव एवं नगर-नगर में सभायें हुई। सारा बागड़ प्रदेश शोक-स्तब्ध हो गया। जिन आचार्यश्री के सानिध्य में प्रदेश के सारे धार्मिक समारोह सानन्द होते थे, जिनकी प्रेरणा से कितने ही विद्यालय खुले, बोर्डिंग हाउस खुले, सामाजिक बुराईयों को जड़ से उखाड़ दिया, महिलाओं को कितनी ही कुरीतियों से बचाया गया, उनकी शिक्षा के लिये विद्यालय खुलवाये गये, वे परमगुरु आज सबको रोता-बिलखता छोड़कर चले गये थे। अनेक पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें उनके सानिध्य में हुईं और छाणी ग्राम, उसके तो

मानो वे धर्म गुरु थे। जागीरदार से लेकर गाँव का छोटा से छोटा व्यक्ति उनका अनुयायी बना हुआ था। ऐसे महात्मा के समाधिमरण के पश्चात् किसे दुख नहीं होगा? उस दिन उनके वियोग में सब दुखी थे।

सभी जैन पत्रों में आचार्यश्री के समाधिमरण के विस्तृत समाचार प्रकाशित हुए। 'जैन-मित्र' के सम्पादकीय में आचार्यश्री को महामानव का रूप बतलाया गया। 'दिगम्बर जैन' ने अपने सम्पादकीय में उन्हें 'बागड़-प्रान्त का गौरव' लिखा। समाज के सभी नेताओं ने उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की और उनके स्वर्गवास को समाज के लिये अपूरणीय क्षति बतलाया गया। साहू श्रेयांसप्रसाद जी, साहू शान्तिप्रसादजी आदि द्वारा श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं। अनेक जैन शिक्षा संस्थाओं में अवकाश रखा गया।

व्यक्तित्व

आचार्य शान्तिसागरजी छाणी विशाल व्यक्तित्व के धनी थे। अपने 21 वर्ष के मुनि एवं आचार्य जीवन में उन्होंने समाज को देखा, परखा और उसे अपनी इच्छानुसार ढालने का प्रयास किया। जब उन्होंने मुनि धर्म को अंगीकार किया उस समय इस क्षेत्र में अकेले थे। उनके सामने कोई दूसरा मुनि नहीं था, इसलिये उन्होंने जिस तरह मुनि जीवन को जनता के सामने प्रस्तुत किया, उसकी तुलना किसी अन्य मुनि से नहीं की जा सकती थी। लेकिन जब उन्होंने समाधिमरण लिया उस समय 4-5 आचार्य एवं पचास के करीब मुनि उत्तर भारत में विहार कर रहे थे। चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज थे। छाणी महाराज के शिष्य सूर्यसागरजी भी आचार्य बन चुके थे। आचार्य कुंथुसागरजी को छाणी महाराज ने ही आचार्य पद दिया था। लेकिन इन सबके बीच छाणी महाराज की पहचान अलग ही थी।

आचार्यश्री अपने प्रवचनों में समाज सुधार की बात करते थे। कन्या-विक्रय को वे मांस खाने के बराबर कहते थे, इसलिये बागड़प्रदेश को इस बुराई से पूरी तरह मुक्ति मिल गई थी। वे अपने प्रवचनों में मांस, मदिरा सेवन को घातक आचरण बतलाते थे तथा उसको छोड़ने के लिये जैन एवं जैनेतर सभी का आह्वान करते थे। उनके उपदेशों से प्रभावित होकर कितने ही धीवरों ने मछली पकड़ना छोड़ दिया। यहाँ तक कि मछली पकड़ने के जाल भी फैंक दिये। हलवाई ने बिना छने पानी से मिठाई बनाना छोड़ा और पानी

छानकर पीने का नियम लिया।

आचार्यश्री किसी भी आचार्य के साथ रह लेते थे। व्यावर में वे और चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी दक्षिण पूरे चातुर्मास साथ-साथ रहे लेकिन कभी कोई विचार भेद नहीं हुआ। दोनों एक दूसरे आचार्य का सम्मान करते थे। उसी तरह आचार्य कुंथुसागरजी के साथ अपने संघ सहित ऋषभदेव में एक साथ रहे। प्रतिदिन दोनों आचार्यों का साथ-साथ धर्मोपदेश होना, उनमें सह-अस्तित्व की भावना को प्रदर्शित करता हैं। आचार्यश्री जैन संघ को जोड़ने की भावना से ओतप्रोत थे इसलिये वे समाधिमरण के पूर्व तक उसी विचारधारा के समर्थक रहे। एक कवि ने उनके व्यक्तित्व पर निम्न पंक्तियों में प्रकाश डाला है —

कोटि-कोटिशः नमन तुम्हें है ये गुरु जग के हितकारी,
अपने सूक्ष्म महाचिन्तन से मुनि प्रथा जिन विस्तारी,
आँखों में सागर है वे शान्ति दिवाकर छाणी के,
मन वीणा चमत्कृत हो उठती, अर्चन कर वाणी के।

जब उनका समाधिमरण हुआ तो चारों ओर दुख छा गया। विभिन्न कवियों ने कविताओं के माध्यम से उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। एक गुजराती कवि हीराचन्द उगरचन्द शाह ने निम्न पंक्तियों में अपने श्रद्धासुमन अर्पित किये—

श्री शान्तिसागर जे दीपक उज्ज्वल हतो मेवाड़या
वे छोडी ने कीर्ति सु उज्ज्वल सीधाल्या के स्वर्गमां।
शान्तिसागरजी आवलो एवी अरज करना हमें
अति अष्टद्रव्यो भावली पूजा प्रभू भणीए अमे।।

इसी तरह एक अन्य कवि ने लिखा है कि —

अस्त सूर्य हुआ हमारा, प्रकाश बिन हम क्या करें।
कैसे बतायें गये गुरुवर, राह में हम भूले परे।
बीच समुद्र में डूबे हुये थे, खड़कवासी हम सभी।
नक्षत्र बनकर तारते थे, नाव हमारी डूब गई।।

क्षुल्लक धर्मसागरजी महाराज ने एक भजन उनकी स्मृति में लिखा था। उसकी चार पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सागवाड़ा के मध्य में आदिनाथ अवतार।
जिन दीक्षा को धार के कीनों देश सुधार।

मेवाड़ बागड़ देश में कीनों आप उद्धार।
खड़क गुजरात के महि ने, विद्या को कियौ प्रचार।।

दो कवियों ने हिन्दी में आचार्यश्री की पूजायें लिखीं, जिनमें उनके विशाल व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। जयमाला में उनके जीवन की झलक दिखाई देती है। एक पूजा 1941 में आचार्यश्री के चातुर्मास के समय लिखी गई। दूसरी पूजा को निबद्ध करने का सौभाग्य प्राप्त किया श्री भगवानदासजी ने जिन्हें उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान किया था। कवि ने आचार्यश्री द्वारा ब्रह्मचारी अवस्था में एवं क्षुल्लक अवस्था में जो अलग-अलग पाँच-पाँच स्वप्न देखे थे, उनका भी इस पूजा में वर्णन किया गया। इस प्रकार दोनों पूजाओं की जयमाला ही ऐतिहासिक घटनाओं से युक्त हैं, जिनसे आचार्यश्री के जीवन का भी कुछ परिचय प्राप्त किया जा सकता है। पं. महेन्द्रकुमार जी 'महेश' शास्त्री मेरठ का भी आचार्यश्री से काफी सम्पर्क रहा। एक बार आचार्यश्री ने उनके पिताजी से कहा था 'आपका पुत्र बहुत होशियार है। आचार्यश्री की बात सोलह आना सच निकली। आज पं. महेन्द्रकुमारजी 'महेश' अच्छे विद्वान बनकर समाज की सेवा में संलग्न हैं। उन्होंने आचार्य शान्तिसागर महाराज (छाणी) स्मारिका में उनके जीवन पर बहुत ही सुंदर ढंग से प्रकाश डाला है।

आचार्य श्री का कृतित्व

आचार्यश्री का जितना विशाल एवं अगाध व्यक्तित्व था उनका कृतित्व उससे भी अधिक विशाल है। उन्होंने आचार्य दीक्षा, मुनिदीक्षा ऐलक, क्षुल्लक एवं ब्रह्मचारी दीक्षा देकर उनके जीवों का महान उपकार किया। उनके द्वारा दीक्षित शिष्य एवं प्रशिष्यों की एक बहुत बड़ी सूची है।

आचार्य शान्तिसागर जी छाणी के शिष्य-प्रशिष्य

आवार्य शान्तिसागरजी महाराज छाणी के मुनि ज्ञानसागरजी, मल्लिसागरजी, सूर्यसागरजी, आदिसागरजी, नेमिसागरजी एवं वीरसागरजी एवं क्षुल्लक धर्मसागरजी आदि दीक्षित शिष्य थे। छाणी महाराज की एक पूजा में शिष्यों के अर्घ में निम्न नामों को गिनाया है :—

प्रथम शिष्यश्री सूर्य हैं, दूजा ज्ञान भंडार।
तीजा मुनिश्री मल्लि हैं, वीर महावीर गुनधीर।।

धर्म आदि क्षुल्लक त्यागी, निज निधि करे विचार।
ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी, संघ चतुर्विध धार।।

छाणी महाराज की स्मारिका में उनके द्वारा दीक्षित साधुओं के नामों में मुनिश्री ज्ञानसागरजी, मुनिश्री आदिसागरजी, मुनि नेमिसागरजी, मुनिश्री वीरसागरजी, आचार्य सूर्यसागरजी, मुनिश्री मल्लिसागरजी एवं क्षुल्लक धर्मसागरजी के नाम गिनाये जाते हैं। दिगम्बर साधु परिचय ग्रन्थ में आ. शान्तिसागरजी छाणी द्वारा दीक्षित साधुओं में मुनि ज्ञानसागरजी, मुनि आदिसागरजी, मुनि नेमिसागरजी, मुनि वीरसागरजी, एवं आचार्य सूर्यसागरजी का नाम ही गिनाया गया है। जो भी हो आचार्य शान्तिसागरजी महाराज ने जिन साधुओं को दीक्षित किया था उनमें प्रमुख निम्नप्रकार हैं :–

1. आचार्य सूर्यसागर जी

आचार्य शान्तिसागरजी छाणी के शिष्यों में आचार्य सूर्यसागरजी विशेष ख्याति प्राप्त माने जाते हैं। उनको कुछ विद्वान पट्ट शिष्य भी कहते हैं। लेकिन छाणी महाराज के समाधिमरण के पश्चात् उनको विधिवत् पट्टाचार्य पद नहीं दिया गया और न छाणी महाराज ने उनको पट्टशिष्य घोषित किया। फिर भी उनकी विद्वत्ता, चारित्र-निर्मलता, एवं संघ-दक्षता के कारण वे स्वयमेव अघोषित पट्टशिष्य कहलाते थे। आचार्य सूर्यसागरजी महाराज का जन्म कार्तिक शुक्ला 9 विक्रम सं. 1940 मे हुआ, उनका जन्म नाम हजारीलाल था। 41 वर्ष की आयु में संवत् 1981 (सन् 1924) में उन्होंने आचार्य शान्तिसागरजी छाणी से इन्दौर में मुनि दीक्षा ली। संवत् 1985 में आचार्य पद प्राप्त किया। उन्होंने 24 चातुर्मास किये और दिनांक 14 जुलाई, 52 को संवत् 2009 में 69 वर्ष की आयु में समाधिमरण प्राप्त किया। संवत् 1990 (सन् 1936) में जब उन्होंने जयपुर में चातुर्मास किया, तब उस समय लेखक को भी उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे समाज के ऐक्य के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे। जयपुर समाज में वर्षों से चले आ रहे वैमनस्य को उन्होंने दूर किया। जयपुर ही नहीं अन्य भी कितने ही गाँवों में उन्होंने एकता स्थापित की।

आचार्य सूर्यसागरजी महाराज के दीक्षित साधुओं में आचार्य विजय सागरजी, आनन्दसागरजी, पद्मसागरजी, क्षुल्लक पूर्णसागरजी, क्षुल्लक चिदानन्दजी के नाम उल्लेखनीय हैं।

साहित्यिक क्षेत्र में भी आचार्य सूर्यसागरजी की महान सेवायें हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार उन्होंने 33 ग्रन्थों की रचना की, जिनमें 'संयम प्रकाश' के 10 भागों का प्रकाशन हुआ था। इसमें एक-एक भाग में मुनिधर्म एवं श्रावकधर्म के विषयों का विस्तृत वर्णन है। हिन्दी भाषा में उस प्रकार के बहुत कम संकलन मिलते हैं। आचार्यश्री के समय में संयम प्रकाश ग्रंथ की बहुत प्रसिद्धि थी, लेकिन उनके समाधिमरण के पश्चात् संयम प्रकाश का नाम वर्तमान और अतीत की टकराहट में अदृश्य हो गया। आचार्यश्री ने "स्वभाव-बोध-मार्तण्ड" की रचना भव्य जीवों के कल्याण की भावना से की थी। इस प्रकार उनकी विशाल संख्या में रचनायें होने पर भी स्वाध्याय प्रेमियों के लिये उपलब्ध नहीं होना अथवा उनका विलुप्त हो जाना एक आश्चर्यजनक घटना है। एक बात अवश्य है कि बहुत से ग्रन्थ तो निःशुल्क भेंट किये गये थे, इसलिये जिनके भी पास गये वे वहाँ ही समाप्त हो गये। इसके अतिरिक्त विगत 50 वर्षों में होने वाले आचार्यों, मुनियों एवं विद्वानों द्वारा निर्मित साहित्य का अभी मूल्यांकन भी नहीं हो पाया है। आशा है आने वाली पीढ़ी इनके विशाल साहित्य का सही मूल्यांकन एवं अन्वेषण करेगी।

आचार्य विमलसागरजी भिण्डवाले

मुनिश्री विमलसागरजी महाराज ही बाद में आचार्य विमलसागरजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपको भिण्डवाले महाराज भी कहते हैं। साहित्य प्रकाशन में आपकी बहुत रुचि थी। वे स्वयं लिखते, पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों का संपादन करते, विभिन्न उपयोगी पाठों का संग्रह करते और फिर उन्हें श्रावकों को प्रेरित करके प्रकाशित करवाते थे। लेकिन अभी तक उनकी कृतियों का कोई व्यवस्थित मूल्यांकन नहीं हो पाया है।

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि ज्ञानपुंज उपाध्यायश्री ज्ञानसागरजी महाराज ने आचार्य शान्तिसारगजी छाणी एवं उनकी शिष्य परम्परा का विस्तृत इतिहास की खोज के लिये युवकों को तैयार किया है और थोड़े से समय में ही अच्छी सामग्री एकत्रित कर ली है। मुनि विमलसागरजी महाराज की अब तक श्रावक धर्म, श्राविका बोध, अध्यात्म-संग्रह, तत्त्वार्थ बोध एवं नियमसार ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ एकत्रित करवा ली हैं। नियमसार उनका प्रकाशित ग्रन्थ है। तत्त्वार्थ बोध एवं अध्यात्म-संग्रह सम्पादित कृतियाँ हैं। श्रावकधर्म

मुनिश्री की प्रथम कृति है, जिसे उन्होंने 28 अप्रैल, 1928 को लिखकर समाप्त की थी।

आपका गृहस्थ नाम किशोरीलाल था। विक्रम संवत् 1998 (सन् 1941) में आपने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। तीन वर्ष पश्चात् आचार्य विजयसागरजी ने आपको मुनि पद से अलंकृत किया। सन् 1973 में आपको हाड़ौती दिगम्बर जैन समाज द्वारा आचार्य पद पर प्रतिष्ठापित किया गया था।

आचार्य विमलसागरजी द्वारा दीक्षित साधुओं में आचार्य निर्मलसागरजी, आचार्य सुमतिसागरजी, मुनिश्री कुन्थुसागरजी एवं क्षुल्लक धर्मसागरजी के नाम उल्लेखनीय हैं।

आचार्य निर्मलसागरजी

वर्तमान आचार्यों में निर्मलसागरजी महाराज का विशिष्ट स्थान माना जाता है। गिरनार सिद्धक्षेत्र की तलहटी में "निर्मल ध्यान-केन्द्र" की स्थापना आपके सदुपदेशों में सुफल है। आप अच्छे वक्ता, लेखक एवं प्रभावक व्याख्याता हैं।

आपका जन्म मगसिर वदी 2 संवत् 2003 में लिजा एटा के पहाड़ीपुर ग्राम में हुआ। आपके पिताश्री बोहरेलाल जी, माता श्रीमती गोमावती ने आपको पाकर आनन्द का अनुभव किया और अपना पूरा स्नेह आप पर उड़ेल दिया। आपका बचपन का नाम रमेशचन्द था। वैराग्य भावना तो आपके हृदय में प्रारम्भ से ही घर कर गई थी। आचार्य विमलसागरजी से आपने दूसरी प्रतिमा धारण की। 19 वर्ष की अल्प आयु में संवत् 2022 में आपने मुनिश्री सीमंधरस्वामी से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। इसके दो वर्ष पश्चात् आचार्य विमलसागरजी महाराज भिण्ड वालों से निर्ग्रन्थ दीक्षा लेकर आत्मसाधना के मार्ग पर बढ़ते गये। आपके द्वारा दीक्षित साधुओं में मुनिश्री निर्वाणसागरजी, सन्मतिसागरजी अजमेर वाले, शान्तिसागरजी हस्तिनापुर वाले, वर्धमानसागरजी, दर्शनसागरजी, विवेकसागरजी आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। आचार्यश्री कल्याणसागरजी महाराज, आचार्य दर्शनसागरजी महाराज भी आपके शिष्य हैं। वर्तमान में आप निर्मल ध्यान केन्द्र को ही अपनी साधना का प्रमुख केन्द्र बनाकर प्राणीमात्र के कल्याण में लगे हुए हैं।

आचार्य सुमतिसागरजी

आचार्य सुमतिसागरजी महाराज का गृहस्थ जीवन अत्यधिक रोमांचक था। वि. सं. 1974 में जन्म, 1994 में विवाह और विवाह के दो सप्ताह पश्चात् डाकुओं द्वारा अपहरण। डाकुओं के चंगुल से मुक्ति, निवृत्ति मार्ग में बढ़ने के लिये धर्मपत्नी की पहल एवं आचार्य विमलसागरजी महाराज को आहार देने की प्रेरणा आदि जीवन की प्रमुख घटनायें हैं। इसके पश्चात् आचार्य विमलसागरजी महाराज भिण्ड वालों से ही ऐलक एवं मुनि दीक्षा ग्रहण करके आप निर्ग्रन्थ साधना पथ पर अग्रसर होते गये। मुनि दीक्षा के पश्चात् आपका नाम सुमतिसागरजी रखा गया। वर्तमान में आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हैं, और विशाल संघ के आचार्य हैं। आपके द्वारा अब तक 33 मुनि, 16 आर्यिकायें, 9 ऐलक, 28 क्षुल्लक, आठ क्षुल्लिकायें दीक्षित हो चुकी हैं। वर्तमान में उपाध्याय ज्ञानसागरजी महाराज, आचार्यकल्प सन्मतिसागरजी महाराज, आचार्य श्रेयांससागरजी, आचार्य अजितसागरजी, ऐलाचार्य शान्तिसागरजी, ऐलाचार्य भरतसागरजी महाराज के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

आचार्य सुमतिसागरजी महाराज साधना एवं तपश्चरण की प्रतिमूर्ति हैं। जहाँ भी विहार करते हैं, अपनी साधना एवं अमृत वाणी से सबको प्रभावित कर लेते हैं।

आचार्यकल्प सन्मतिसागरजी महाराज

आचार्यकल्प सन्मतिसागरजी महाराज से मेरा परिचय जब वे क्षुल्लक अवस्था में थे तथा आचार्य देशभूषणजी महाराज के संघ में थे, तभी से है। जयपुर पंचकल्याणक में उनका योगदान उल्लेखनीय रहा। इसके पश्चात् तीन मूर्ति बोरीबली बम्बई में उनकी कार्यशैली देखने का अवसर प्राप्त हुआ। जब वे आचार्यकल्प बन गये तब सागर में उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपका व्यक्तित्व एवं वक्तृत्व-शैली दोनों ही प्रभावक हैं। विद्वानों के प्रति आपका सहज अनुराग है तथा स्याद्वाद सिद्धान्त शैली से प्रचार-प्रसार में व्यस्त रहते हैं।

उपाध्याय ज्ञानसागरजी महाराज

आचार्य सुमतिसागरजी महाराज के शिष्यों में वर्तमान में उपाध्याय ज्ञानसागरजी महाराज का स्थान विशेषतः उल्लेखनीय है। आपकी साधना, तपश्चरण, उपदेश-शैली, सभी प्रभावक हैं। आपने मुनि एवं उपाध्याय जीवन के केवल चार वर्षों में पावन विहार से विशेषतः पश्चिमी जिन-जिन ग्रामों

एवं नगरों को लाभान्वित किया है, वहाँ की समाज को एवं विशेषतः उत्तरप्रदेश के बाद सन् 1991 में श्री सम्मेदशिखरजी तथा गया (बिहार) एवं इसके आस-पास के युवकों को अपनी ओर विशेष आकृष्ट कर लिया है। आपको श्रावकगण कभी-कभी "लघु-विद्यासागरजी" के नाम से संबोधित करते हैं। आपकी साधना चिन्तन एवं मनन को देखकर सभी चकित हो जाते हैं। सर्दी–गर्मी वर्षा सभी ऋतुयें आपके लिये समान हैं। प्रशान्तमूर्ति आचार्य शान्तिसागरजी छाणी महाराज के जीवन से आप विशेष प्रभावित हैं। ज्ञानाराधना की ओर आप विशेष प्रयत्नशील रहते हैं। विद्वानों को आपका सदैव आशीर्वाद रहता है।

इस प्रकार आचार्य शान्तिसागरजी छाणी महाराज की शिष्य-प्रशिष्य साधु परम्परा वर्तमान में भी अत्यधिक प्रभावक बनी हुई है और अपने सदुपदेशों से सबको लाभान्वित कर रही है। हम आचार्यश्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का जितना स्मरण करेंगे उतना ही अपने भावों को निर्मल बना सकेंगे।

आचार्य शान्तिसागरजी की साहित्यिक सेवा

आचार्यश्री छाणी महाराज को साहित्य से बड़ा लगाव था। वे स्वयं भी साहित्यिक क्षेत्र में कार्य करते और अपने शिष्य-प्रशिष्यों को भी इस दिशा में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। अब तक उनके लिखित एवं सम्पादित कृतियों में निम्न कृतियों के नाम उल्लेखनीय हैं :–

1. मूलाराधना
2. श्री शान्तिसागर सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला
3. शान्ति सवैया शतक
4. आगम दर्पण

उक्त सभी कृतियाँ आचार्यश्री के अगाध ज्ञान के द्योतक हैं। आचार्यश्री का सैद्धान्तिक ज्ञान उनकी सतत् ज्ञानाराधना का प्रतिफल थां। उसी ज्ञान को उन्होंने अपनी रचनाओं में उड़ेल दिया है।

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के गुणानुवाद में अनेक कवियों एवं विद्वानों ने पूजा, स्तवन, भजन एवं आरती लिखकर उनके महिमामय जीवन को प्रस्तुत किया है। ऐसे कवियों में विष्णु कवि, पं. महेन्द्रकुमार जी, शशिप्रभा जैन शशांक, पं. महेन्द्रकुमार जी "महेश" शास्त्री, हीराचन्द उगर चंद शाह, कडियादरा, फूलचंदजी "मधुर" सागर, क्षु0 धर्मसागरजी के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

आचार्य शान्तिसागर छाणी महाराज के मुनि जीवन के प्रारम्भिक वर्ष

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजस्थान में आचार्य शान्तिसागरजी छाणी हुए जिन्होंने मुनि मार्ग को प्रशस्त करने में सबसे अधिक योगदान दिया। इतिहास के पृष्ठों को जब हम उलटते हैं तो उनमें आचार्यश्री के व्यक्तित्व पर स्वर्णिम पृष्ठ लिखे हुए मिलते हैं जिन्हें हम समय के प्रभाव से भुला बैठे हैं और आज जब हम स्वर्णिम पृष्ठों को पुनः पढ़ने लगते हैं तब हम उनके विशाल व्यक्तित्व के सामने नत मस्तक हो जाते हैं। आचार्य श्री ने 70 वर्ष पूर्व मुनि जीवन को अपना कर, दिगम्बर धर्म की विशेषताओं से, देश एवं समाज को अवगत कराया तथा सुषुप्त मुनि जीवन को फिर से जागृत किया।

आचार्यश्री का जन्म, राजस्थान के उदयपुर जिले के छाणी ग्राम में कार्तिक वदी 11 संवत् 1945 (सन् 1888) में हुआ। आपके जन्म के समय रियासतों का जमाना था। छाणी ग्राम मेवाड़ स्टेट का एक जागीरदारी ग्राम था। ठाकुर सा. का नाम मनुहारसिंह था। छाणी ग्राम में दिगम्बर जैन समाज के 25 घर थे। दो मंदिर थे जिनमें एक गॉव में तथा दूसरा गाँव के बाहर था। दोनों ही मंदिर विशाल एवं मनोज्ञ प्रतिमा से सुशोभित थे। गाँव वाले मंदिर में संभवनाथ स्वामी की तथा गाँव के बाहर वाले मंदिर में महारवीर स्वामी की प्रतिमा है। आचार्य श्री का जन्म नाम केवलदास था जिनके पिता का नाम भागचन्द एवं माता का नाम श्रीमती माणिकबाई था। श्री भागचन्द जी हूंबड जातीय श्रावक थे। सामान्य पढ़े लिख थे तथा धार्मिक संस्कारों से शून्य थे। केवलदास के एक भाई एवं दो बहिने और थीं।

बालक केवलदास विशेष शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके और अत्यधिक सामान्य शिक्षा से ही सन्तोष करना पड़ा। 15 वर्ष की आयु में ही नौकरी करने लगे। लेकिन विरक्ति के भाव इनमें प्रारम्भ से ही थे जब इन्होंने बीकानेर के अपने बहनोई गाड़िया गुलाबचन्द पानाचन्द से नेमिनाथ के विवाह वर्णन को सुना तो केवलदास में विरक्ति के भाव और भी दृढ़ हो गये। जब वे 29 वर्ष के थे तभी माताजी का स्वर्गवास हो गया। इससे उनके जीवन में

उदासीनता आने लगी। तभी उनको दो स्वप्न दिखलायी दिये। एक स्वप्न सम्मेदशिखरजी का यात्रा करने का था तथा दूसरा स्वप्न गोमटेश्वर बाहुबली की प्रतिमा के सामने पूजन करते हुए सामग्री चढ़ाते हुए अपने आपको देखा। इससे केवलदास के धार्मिक विचारों में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। उन्होंने रात्रि भोजन त्याग कर दिया एवं कुदेवों की शरण में नहीं गये। इन्हीं दिनों उन्हें अपने संबंधियों से विषापहार स्तोत्र रत्नकरण्डश्रावकाचार, आलोचना पाठ आदि पुस्तकें प्राप्त हुई। अपने ही छाणी ग्राम में जहां हरिवंश पुराण की शास्त्र स्वाध्याय होती थी, केवलदास वहां भी जाने लगे।

केशरियानाथ की यात्रा

एक दिन उनके मन में ऋषभदेव केशरियानाथ के दर्शनों की इच्छा हुई और वे तत्काल केशरियानाथ जी की यात्रा के लिये अकेले ही चल पड़े। भगवान ऋषभदेव के दर्शन करके कृत्य कृत्य हो गये और भाव विभोर होकर भविष्य में विवाह नहीं करने की प्रतिज्ञा कर लीं। घर आने पर यात्रा की खुशी में एक वर्ष तक एक ही समय भोजन करने का भी नियम ले लिया और इस प्रकार केवलदास घर में रहते हुए विरक्ति का जीवन व्यतीत करने लगे। इनके पिता को अपने पुत्र के आचार-विचार देख कर बहुत चिन्ता होने लगी और उनके विवाह करने का आग्रह करने लगे। लेकिन उन्होंने केशरियानाथ के सामने ली हुई प्रतिज्ञा की दुहाई दी। एक दिन उन्होंने शास्त्र प्रवचन में नन्दीश्वर द्वीप व्रत विधान का विस्तार सहित वर्णन सुना तो वे उससे इतने प्रभावित हुए कि मंदिर में जाकर मंगसिर सुदी 14 को, 108 दिन के व्रत का नियम ले बैठे। अब वे एक उपवास, एक पारणा एवं बीच बीच में तेला भी करने लगे। जिसमें उन्होंने 56 दिन के उपवास एवं 52 दिन का पारणा (एकाशना) करके अपनी धार्मिक मनोवृत्ति को और भी दृढ़ बना लिया।

कुछ समय पश्चात् आपने पिताजी से सम्मेद शिखरजी की यात्रा करने की अनुमति चाही लेकिन पिताजी ने कहा कि जब तक वह विवाह करने की स्वीकृति नहीं देगा तब तक शिखर जी जाने की आज्ञा नहीं मिल सकती। केवलदास ने सोचा कि पिताजी तो मुझे संसार में फँसाना चाहते हैं। उन्होंने अपने पिता से कहा कि "हे पिताजी ! मैं इस संसार में अनन्त बार विवाह कर चुका हूँ, पर तो भी विषयों से तृप्त नहीं हुआ इसलिये अब मैं संसारी

स्त्री में न फंस कर मोक्षरूपी स्त्री से विवाह करना चाहता हूँ।" आपने पिताजी से कहा कि चावे आप जाने की स्वीकृति दे या न दें मैं तो अवश्य शिखरजी की यात्रा पर जाऊँगा। फिर कहा कि मैंने अनन्त भवों में विवाह किया है और उससे कभी भी तृप्ति नहीं मिली। इसलिये अब वह संसारी स्त्री में न फंस कर मोक्ष रूपी स्त्री से ही विवाह करना चाहूँगा। इसके बाद केवलदास अपने संबंधियों से मिलने चल दिये। मार्ग में 'कणावरा' ग्राम आया। वहाँ एक सरकारी कोठरी में ठहर गये। उन्होंने रात्रि को स्वप्न में दो पुरुष देखे जिन्होंने बताया तुम संसार में फिर क्यों डूबते हो तुम्हारा जन्म तो आत्म उद्धार के लिये हुआ है। इतना कहकर कर वे गायब हो गये। आँख खुलने पर देखा कि प्रभात काल हो गया तो वे सामयिक करने बैठ गये। वहां से आगे 6 मील पर वन में स्थित श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर में जाकर दर्शन किये। उस दिन नन्दीश्वर द्वीप व्रत का उपवास रखा। अपने बहनोई से स्वप्न का फल पूछा और उन्होंने शास्त्र देखकर स्वप्न को लाभकारी बतलाया।

शिखर जी की यात्रा

वे अपने सभी संबंधियों से मिलते गये। सभी ने उन्हें एक-एक रुपया बिदाई का दिया। उस समय केवलदास जी ने सब संबंधियों से क्षमा मांगी और कहा कि मेरा फिर इधर आना नहीं होगा। वापिस घर आकर यात्रा की तैयारी करने लगे। पिताजी से कहा कि आप आज्ञा देंगे तब भी मैं शिखरजी जाऊँगा और आज्ञा ना देंगे तब भी जाऊंगा। पिताजी ने पूरी बात सोचकर उसे शिखर जी जाने की आज्ञा दे दी। और उन्हें सिर्फ 5 रु. दिये। केवलदास के पास 22 रुपये हो गये। रुपया एवं सामान लेकर उन्होंने केशरिया जी आकर दर्शन किये। और वहॉं से उदयपुर चले गये। वहां से रेल द्वारा अजमेर, अजमेर से मथुरा, मथुरा से बनारस, बनारस से ईसरी और ईसरी से सम्मेद शिखरजी पहुँच गये। शिखर जी की एक एक करके तीन वन्दना की। तीसरी वन्दना में सब टोकों पर सब भगवानों से विनय करते चले गये और फिर पार्श्वनाथ की टोकं पर जाकर सब भगवानों से स्तुति की और कहा, कि सब भगवान मुझे ब्रह्मचारी की दीक्षा देवें। उस दिन 1 जनवरी सन् 1919 था। उस समय उनकी आयु 31 वर्ष की थी। वे मस्तक व चोटी के कुछ बाल उखाड़ करके ब्रह्मचारी के वस्त्र धारण कर पहाड़ से नीचे आये। यह

उनके त्यागमय जीवन की प्रथम यात्रा थी। जिसने भी केवलदास को देखा वही आश्चर्यचकित हो गया और बालक के साहस की प्रशंसा करने लगे। अब तक 18 रुपये खर्च हो चुके थे और केवल 3 रुपये बचे थे।

आगे की यात्रा

ब्र. केवलदास शिखरजी से पावापुरी के लिए रवाना हुए। वहाँ कोठी से 211) रुपया और लेकर राजगृही चले गये। वहाँ की यात्रा करके बनारस के लिये रवाना हो गये। और वहीं पर स्थित स्याद्वाद महाविद्यालय में आकर ठहर गये। उनके पास मात्र एक पैसा बचा था लेकिन वे जरा भी विचलित नहीं हुए। वे स्याद्वाद महाविद्यालय में 6 दिन तक रहे। आपकी त्यागमयी वृत्ति को देखकर विद्यालय के मंत्री ने एक ओढने के लिए घुस्सा एवं बम्बई तक का 15) रुपया देकर टिकट कटवा दिया। वहीं पर आपको स्वप्न में एक सोलह वर्षीय कन्या ने कहा कि यह पुस्तक ले लो तुम्हें बहुत विद्या आवेगी। बनारस से केवलदास बम्बई आ गये और सेठ मणिकचन्द पानाचन्द जी, प्रेमचन्द मोतीचन्द जी के बंगले में ठहर गये। बम्बई में वे केवल तीन दिन रहे और वहाँ से वे अहमदाबाद आ गये। वहां उन्होंने 2) रुपये की एक पछेवडी (दुपट्टा) देख लिया। शिखरजी जी में आपने यात्रा को छोड़कर अधिक से अधिक 5) रुपया रखने का नियम लिया था। अहमदाबाद से वे ईडर आये और वहाँ पर पहाड़ पर स्थिति मंदिर के दर्शन किये।

छाणी ग्राम में स्वागत

ईडर से ब्र. केवलदास ने गोरेला आकर चिन्तामणि श्री पार्श्वनाथ के दर्शन किये। वहाँ से बीकानेर में अपने बहनोई के पास आ गये। यहाँ वे 4 दिन मंदिर में ही ठहरे। इसके पश्चात् पानाचन्द उनको साथ लेकर छाणी ग्राम गये। सर्व प्रथम वे गांव के बाहर महावीर स्वामी के मंदिर में ही ठहर गये। पानाचन्द जी ने गांव में जाकर समाज से कहा कि 'केवलदास शिखरजी से सातवीं प्रतिमा के धारी ब्रह्मचारी होकर आये हैं' समाचार सुनकर गांववालों को बड़ी प्रसन्नता हुई और उनको गाजे बाजे के साथ गांव के मंदिर में ले गये। सभी को केवलदास को ब्र. केवलदास के रूप में देखकर अतीव प्रसन्नता हुई। अब ब्रह्मचारी केवलदास के प्रति गांव वालों की श्रद्धा बढ़ गयी। सर्व

प्रथम उनका आहार पचोरा रूपचन्द जी के यहां हुआ। उनको रत्नकरण्ड-श्रावकाचार की बड़ी टीका वाला ग्रंथ भेंट में दिया। ब्रह्मचारी जी इतने पढ़े-लिखे तो थे नहीं कि उस ग्रंथ का स्वाध्याय करते इसलिये बिना हिचक के 8-10 दिन तक रूपचन्द भाई से ग्रन्थ को पढ़ा। उनके समय में समाज में ब्रह्मचारियों का भी बहुमान था इसलिये ब्रह्मचारी केवलदास अपने गाँव को छोड़कर अन्य गाँवों में विहार करने लगे। ब्र. भगवानदास के अनुसार उन्होंने आसपास के 24 गाँवों में विहार किया। सभी ने आपको यथायोग्य भेंट में दिया।

विभिन्न स्थानों में विहार

ब्र. केवलदास का अपने पिताजी पर भी प्रभाव पड़ा और वे अपने पुत्र के त्याग को देखकर उनका सम्मान करने लगे। ब्रह्मचारी जी अपने पिताजी को अपने साथ गिरनार की यात्रा में ले गये और वहाँ उन्होंने अपने पिता से सप्त व्यसन का त्याग कराया, प्रतिदिन देवदर्शन का नियम दिलाया तथा रात्रि भोजन त्याग कराया। पिताजी ने अपने पुत्र को गुरु के रूप में स्वीकार किया और एक नये जीवन में प्रवेश किया। गिरनार की यात्रा करके उन्होंने शत्रुंजय जी की यात्रा सम्पन्न की और वहाँ से ईडर होते हुए चोरीवार गाँव में आ गये। यहाँ उन्होंने अपने पिता को वापिस छाणी भेज दिया और स्वयं गोरेला चले आये जहाँ ऐलक पन्नालालजी आये हुये थे। उन दिनों समाज में ऐलक पन्नालाल जी का बडा प्रभाव था। वे उनके साथ एक महिना रहे तथा वारामती शोलापुर की ओर गये। ब्र. केवलदास को ऐलक जी के एक महीना साथ रहने पर भी स्वाध्याय का कोई विशेष लाभ नहीं हुआ इसलिये फिर वे गोरेला चले आये और वहाँ ब्रह्मचारी अवस्था का प्रथम चातुर्मास किया। उन्होंने भाद्रपद मास में 17 उपवास किये और इस अन्तर में केवल तीन बार जल ग्रहण किया एवं अष्टह्निका में 8 उपवास किये और आत्मानुभव एवं आत्म शुद्धि की ओर बढ़ने लगे।

सर्प की प्राण रक्षा

कार्तिक कृष्णा 11 थी। ब्र. केवलदास जी का उपवास था। सामयिक करने के पश्चात् जैसे ही वे तख्त पर लेट रहे थे तो देखा कि एक बड़ा

सर्प और उसके पीछे कुत्ता दौड़ता हुआ आ रहा है। उन्होंने कुत्ते को हाथ के इशारे से भगा दिया। सर्प आकर उनके तख्ते के नीचे बैठ गया। कुछ देर के पश्चात् सर्प स्वयमेव वहाँ से चला गया। ब्रह्मचारी जी तख्ते पर बैठे रहे। इस घटना से गाँव वालों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और निर्भयता एवं सर्प की प्राण रक्षा करने की प्रशंसा होने लगी। चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् आपके नेतृत्व में गाँव वालों ने श्री गोम्मटेश्वर की यात्रा सम्पन्न की। यात्रा के पश्चात् आपने आसपास के गाँवों में विहार किया और समाज को आत्म लाभ देते रहे।

दूसरा चातुर्मास

ब्र. केवलदास ने ईडर में दूसरा चातुर्मास किया। वहाँ पं. नन्दनलाल जी थे जिनसे उन्होंने ग्रंथों का स्वाध्याय किया। पूरे चातुर्मास में 32 उपवास करके आत्म शुद्धि की। यहाँ पर उनको चतुर्दशी को फिर दो स्वप्न दिखायी दिये। एक स्वप्न में बहुत से स्त्री पुरुष देवों के समान दिखायी दिये। उन्होंने ब्रह्मचारी जी को मुनि अवस्था में बाजार में जब जाते हुए देखा तो इन पर पुष्प वृष्टि की और जयजयकार किया। दूसरे स्वप्न में उन्होंने देखा कि ईडर के भट्टारक जी भ्रष्ट हो जावेंगे और जैन बन्धुओं द्वारा उनके हाथ पकड़कर पीटते हुउ दिखायी दिया। प्रातः होते ही उन्होंने दोनों स्वप्नों को पंडित नन्दनलालजी एवं समाज को सुनाया। दूसरा स्वप्न एकदम सही निकला। ईडर के भट्टारकजी एक स्त्री को लेकर चले गये। चातुर्मास के पश्चात् वहां की समाज द्वारा यात्रा के लिये खर्च का प्रबन्ध कर दिया।

तीर्थ यात्रा

सर्वप्रथम आप आबू पहाड़ पर गये। वहाँ आपको ब्र. शीतलप्रसाद जी एवं देहली का संघ मिल गया। आबू के मंदिरों के दर्शन करके खड़ी घाट आ गये और संघ के साथ तारंगाजी चले गये। वहाँ की वन्दना करके आप संघ के साथ गिरनार चले गये। पहाड़ की वन्दना करके सहस्त्र वन होते हुए जूनागढ़ की धर्मशाला में आ गये। दूसरे दिन शत्रुंजय की वन्दना की। जूनागढ़ निवासी भाई धर्मचन्द जी के डेरे में दो दिन आहार करने के पश्चात् अहमदाबाद होते हुए पावागढ़ आ गये और वहाँ की यात्रा की। पावागढ़ में

तीन दिन रहे। वहाँ से बड़ौदा शहर आ गये। वहाँ केवल एक दिन ठहरने के पश्चात् सूरत गये वहाँ के मंदिरों के दर्शन किये और बम्बई आ गये और हीरा बाग में जाकर ठहर गये। यहाँ दिल्ली वाले सेठ हुकमचन्द के यहां आहार किया। वहाँ से पूना आ गये और वहाँ से सीमोगा तक रेल यात्रा की और फिर मोटर में बैठकर तिरथली चले आये। वहाँ से आगम ग्राम आ गये। फिर वहाँ से हमाड ग्राम आ गये और वहाँ के तालाब में स्थित मंदिर के दर्शन करके मोटर द्वारा मूडबिद्री आ गये।

मूडबद्री तो तीर्थ स्थान है इसलिये वहाँ तीन दिन ठहर कर सभी मंदिरों के दर्शन किये। वहॉ के भट्टारकजी ने 32 नवरत्नों की प्रतिमाओं के दर्शन कराये तथा जयधवला, महाधवला ग्रंथों की ताडप–त्रीय प्रति के प्रथम बार दर्शन किये। बड़ा आनन्द आया। जीवन सफल हो गया। वहॉ से कारकल आये। ब्रह्मचारी जी का वहाँ खूब मन लगा। आठ दिन तक ठहरे। यहाँ बाहुबली स्वामी की 27 फुट ऊँची प्रतिमा का दर्शन कलशाभिषेक था। बहुत से भाई एकत्रित हुए थे। आठ दिन तक बड़ा आनन्द आया। माघ शुक्ला पूर्णिमा को 1008 कलशों से बाहुबलि स्वामी की प्रतिमा के कलशाभिषेक देखे जीवन सफल हो गया। वहॉ से मूडबद्री होते हुये बेणूर गये। वहाँ पर नदी किनारे पर स्थित बाहुबली स्वामी की 17 फुट ऊँची प्रतिमा के दर्शन किये। मूडबद्री जाकर रत्नों की प्रतिमाओं के दर्शन किये। फिर मंगलौर, बंगलौर होते हुए मैसूर आ गये। वहॉ के मंदिरों के दर्शन करके श्रवणबेलगोला चले गये। वहॉ पर बाहुबली स्वामी की 52 फुट ऊँची मनोहारी प्रतिमा के दर्शन किये। यहाँ पांच दिन तक ठहरे। यहाँ पर कलकत्ता के सेठ लक्ष्मीनारायण जी मिल गये। उन्होंने ब्रह्मचारी जी को टिकट का खर्च देकर अपने साथ ले लिया। आरसीकेरी होते हुए हुबली आ गये। यहाँ फिर ऐलक पन्नालाल जी मिल गये। ऐलक जी के केशलोंच में अढ़ाई लाख व्यक्ति एकत्रित हुए। वहॉ के जप यात्रा के स्थान के लिये 27000 टेक्स के दिये। वहाँ से सोलापुर आ गये। दो दिन तक ठहरने के पश्चात् कुन्थलगिरि आ गये। वहाँ आठ दिन ठहर कर महाराज कुलभूषण देशभूषण की यात्रा की। फिर वहॉ से पूना से नासिक आये। यहाँ गजपन्था के दर्शन किये। फिर मोटर से मांगीतुंगी की यात्रा की। साथ में पं. झम्मनलाल जी कलकत्ता वाले थे। वहाँ से फिर गजपन्था आये।

वहाँ से ब्र. केवलदास अकेले देहली आये। कलकत्ता वालों ने आपको टिकट के 20)रु. दिये थे। सभी मंदिरों के दर्शन के पश्चात् हस्तिनापुर चले गये। वहाँ दो दिन तक ठहरकर दर्शन किये। इसके पश्चात् देहली आये। धर्मशाला में ठहरे। बलदेव लाला ने 4) रु. कानपुर के टिकट के दिये फिर कानपुर चले गये। वहाँ महासभा का अधिवेशन हो रहा था। पूरा अधिवेशन देखा तथा समाज के नेताओं से मिलने का अवसर प्राप्त कर बडा आनन्द आया। समाजोद्धार की चर्चा चलती थी। अधिवेशन में और भी त्यागीव्रती थे। कानपुर से बनारस और वहाँ से शिखरजी आ गये। इस बार तीन वन्दना की। फिर गिरिडीह आये। तेरापंथी धर्मशाला में ठहर कर हजारीलाल किशोरी लाल के यहां आहार किया। वहाँ से कलकत्ता चले गये। वहाँ बेलगच्छिया में ठहरे। छह दिन तक ठहर कर शान्तिपूर्वक मंदिरों के दर्शन किये यहाँ पर पन्ना लाल बैनाडा ने 15) रु. टिकट खर्च के लिये दिये फिर चम्पापुरी आकर सिद्ध क्षेत्र के दर्शन किये। वंहा से नवादा होकर गौतमस्वामी के दर्शन करते हुए पावापुरी आ गये। यहाँ तीन दिन तक ठहरे फिर कुण्डलपुर के दर्शन करके रेल द्वारा तीर्थ की वन्दना के लिये राजगृही पहुँचे। तीन दिन तक पंच पहाड़ी की वन्दना की। वहाँ से बनारस आये और श्रेयान्सपुरी चन्द्रपुरी के दर्शन किये। फिर अयोध्या जाकर वहाँ की वन्दना की। वे जहाँ भी जाते जैन बन्धु टिकट की व्यवस्था कर देते। इसके पश्चात् कानपुर, झांसी होते हुए सोनागिर पहुँचे। वहाँ की आनन्दपूर्वक वन्दना की। वहाँ से मथुरा आ गये तथा चौरासी में जम्बूस्वामी के दर्शन किये। इसके बाद आप जयपुर चले आये। वहां कितने ही मंदिरों के दर्शन किये। फिर वहाँ से अजमेर आ गये। यहाँ तीन दिन तक ठहरे। यहाँ पर 108 मुनि चन्द्र सागरजी एवं ऐलक पन्नालाल जी के पुनः दर्शन हो गये। अजमेर से चार रुपये का टिकट लेकर अहमदाबाद चले गये और प्रथानी औरान आदि विभिन्न गाँवों से ईडर आ गये। वहाँ से केशरियानाथ गये और वहाँ से फिर ईडर आ गये। ईडर में आकर चातुर्मास किया। दशलक्षण पर्व में दस दिन के उपवास किये। चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् अहमदाबाद आ गये। वहाँ कांग्रेस अधिवेशन चल रहा था। देशोद्धार एवं आजादी की चर्चा में सारे नगर का वातावरण देखा। महात्मा गांधी को पास से देखा। जिनके पास असहयोग आन्दोलन का भार था। वहाँ

पं. मक्खनलाल पीताम्बरदास का साथ हो गया। फिर आस-पास के गाँवों में 6 महीने तक विहार करते हुए नागफणी पार्श्वनाथ के दर्शन किये फिर महावीरजी के दर्शन करके कुणदणी में आदिनाथ स्वामी की मनोज्ञ प्रतिमा के दर्शन किये। वहां से केसरियानाथ आये और दर्शन करके देवलग्राम आये। वहाँ आपने अपने मामाजी मामीजी को जैन संस्कारों से युक्त किया। डूंगरपुर आकर अपनी बहिन के यहाँ आहार किया। इसके पश्चात् आपका विहार का कार्यक्रम बनता रहा। आंतरी में अपने काकाजी के यहाँ तीन चार दिन ठहरे। यहाँ से पं. बुधचन्द जी के साथ सागवाड़ा आये। यहाँ 15-20 दिन रहे। एक दिन गमनीबाई के आहार किया। वहाँ से परतापुर आये। 2-4 दिन ठहरे। वहाँ से नौगामा होते हुए बागीदौरा गये। वहां दो दिन ठहरे। वहाँ राजाबाई बड़ी धर्मात्मा थी। उनके यहाँ 2 दिन तक आहार किया। वहाँ से कलोंदरा होते हुए करेंडा पार्श्वनाथ गये। यहाँ मंदिर गाँव में हैं। प्रतिमाजी प्राचीन है। वहाँ एक तालाब भी है। यहाँ 6 दिन रहे। वहाँ से बागीदोरा आये। यहाँ 8 दिन रहे। वहाँ के पं. मणिकचन्द जी अच्छे पंडित हैं। यहाँ उपदेश दिया। शास्त्र स्वाध्याय किया। वहाँ से चलकर नौगामा आये। फिर पणुकी आये। 8 दिन तक रहे। वहाँ से गढ़ी आये।

गढी में मंडल विधान एवं स्वप्न दर्शन

गढी में जैन समाज अच्छी संख्या में है। वहां के कस्तूरचंद जी ने अढ़ाई द्वीप का मंडल मंडा कर उस पर पूजा की थी। आपके वहाँ रहने से विधान पर पूजाएं करने में और भी आनन्द आया। आप प्रवचन भी करते थे। आसपास के पर्याप्त संख्या में समाज के भाई-बहिन एकत्रित हुये वहाँ पर आप 22 दिन ठहरे। यहाँ पर आपने पाँच स्वप्न देखे—

(1) प्रथम स्वप्न में एक गाय देखी जो सब आदमियों को मारने दौड़ती थी। आपने कुशलता पूर्वक उस गाय को पकड़ कर बांध दिया।

(2) दूसरे स्वप्न में सूत की जयमालाएं देखी। आप ने उनको लेकर एक-एक माला सभी को जप करने के लिए बांट दी।

(3) तीसरे स्वप्न में काष्ठ का कमण्डल देखा।

(4) चतुर्थ स्वप्न में जैन बन्धुओं के समूह को साथ मंदिरजी जाते देखा।

(5) पंचम स्वप्न में स्वयं भगवान के दर्शन किये।

प्रातः काल होने पर अपने स्वजनों को सभी भाईयों को सुनाया। सभी स्वप्न अच्छे थे तथा आपके मुनि दीक्षा लेने का लक्षण बता रहे थे।

क्षुल्लक दीक्षा एवं चातुर्मास

उक्त स्वप्नों के पश्चात् आपने उसी दिन उपवास किया और दीक्षा ग्रहण कर ली। केशलोंच करके क्षुल्लक भेष धारण कर लिया। यहां से ओजगे और पुणे की ओर विहार किया। वहाँ आठ दिन रहे। प्रवचन करते रहे। यहाँ पर प्रतापगढ़ के जैन बन्धु आपको चातुर्मास का आमंत्रण देने आ गये। इसके पश्चात् प्रतापगढ़ जाकर आपने चातुर्मास किया। यहाँ आपने एक साथ 32 उपवास किये और उपवास के पश्चात् मगनी बाई के यहाँ निरन्तराय आहार हुआ। आहार लेने के पूर्व भाद्रपद 14 को रात्रि 12 बजे मंदिर में नगाड़े के तीन शब्द हुए जिन्हें आस-पास के गॉवों तक में सुना गया। उस समय मंदिर का ताला बन्द था। गॉवों में प्लेग की बीमारी फैल रही थी, वह भी नगाडों के शब्द के पश्चात् मिट गयी। इस घटना के पश्चात् आपका निरन्तराय आहार हुआ। मगनी बाई ने श्राविका के गुण ग्रहण किये। यथाशक्ति दान दिया।

चातुर्मास के पश्चात् आपने गाँवों में विहार किया और विहार करते हुए अरथूण पहुँचे। अरथूण पहुँचने के पश्चात् आपके दर्शनार्थ बांसवाड़ा स्टेट के बुकीया गाँव के एक जागीरदार ठाकुर ने आकर निवेदन किया कि उनके गाँव में 300-400 वर्ष पुराना जैन मंदिर है, जिसमें मूर्ति खण्डित हो गयी है इसलिये वहाँ नयी मूर्ति विराजमान की जानी चाहिये। आपने ठाकुर सा. से कहा– कि तुम लोग मांसाहारी हो, जीवों को मारने वाले हो इसलिये ऐसे गाँव में मूर्ति कैसे विराजमान की जा सकती है। लेकिन ठाकुर सा. ने कहा कि यदि मूर्ति विराजमान हो जावेगी तो वह मांसाहार का त्याग कर देगा। आपने अरथूणा के जैनों को बुलाया और उनके सामने सरदार से लिखवा लिया कि दशहरा पर हमारे गाँव में भैंसा नहीं मारा जावेगा। उस गाँव में अरथूणा के मंदिर में आदिनाथ स्वामी की प्रतिमा को लाकर विराजमान कर दिया। ठाकुर सा. ने भी 500) रुपया मंदिरजी में मूर्ति विराजमान करने के उपलक्ष्य में दिये। पण्डित नन्दलाल जी ने प्रतिमा को विधिपूर्वक विराजमान कर दी। मंदिरजी पर सोने का कलश चढ़ाया। उस अवसर पर आपके केशलोंच हुये। मेले में करीब पांच हजार व्यक्ति एकत्रित हुए। आपके उपदेश

से भीलों ने सदा के लिए मांस, मदिरा और चोरी करना छोड़ दिया। ठाकुर सा. ने भी नित्य दर्शन करने का नियम ले लिया, तथा मंदिर जी के लिये 6 बीघा जमीन दे दी अथवा रुपया वार्षिक देने की घोषणा कर दी इसके पश्चात् महाराज श्री अन्य गाँवों में विहार करते हुए अहिंसा धर्म का प्रचार करते रहे।

इसके पश्चात् आपने गुजरात में प्रवेश किया और टांका टूंका के पास वाले मंदिर में दर्शन किये। वहाँ से विहार करते हुए ईडर पहुँचे। यहाँ से आप तारंगा की यात्रा पर गये। पं. नन्दलाल जी आपके साथ थे। तारंगा की यात्रा करने के पश्चात् वहीं पर आप चार दिन रहे। आपका वहाँ केश लोंच हुआ। वहॉ पर आपका प्रवचन हुआ, उसके प्रभाव से जैनेत्तर बन्धुओं ने मांस, मदिरा एवं अभक्ष्य पदार्थों के सेवन का त्याग किया। बहुत से जैन बन्धुओं ने शास्त्र स्वाध्याय का नियम लिया। आपने छाणी ग्राम में सरस्वती भण्डार खुलवा दिया। 14 ग्रामों के निवासियों को वहां से स्वाध्याय के लिये शास्त्र प्राप्त होने लगे। तथा जो ग्रंथ भेजना चाहे वे पचोरी रूपचन्द वीरचन्द छाणी के पते पर ग्रंथ भिजवा भी सकते हैं, इसका भी नियम बना दिया। छाणी ग्राम से गोडादर, देरीला, बडाली में विहार करके वहाँ के में मंदिरों के एवं अभीझरा पाश्चर्वनाथ स्वामी के दर्शन किये। वहॉ से ईडर एवं ईडर, से सागवाड़ा आकर वहॉ आपने चातुर्मास किया। वहॉ श्रावण शुक्ला पूर्णिमा संवत् 1980 के शुभ दिन एक श्राविका आश्रम स्थापित करवाया जो उस समय की बहुत बडी मांग थी।

मुनि दीक्षा :

सागवाड़ा में चातुर्मास के मध्य भाद्रपद शुक्ला 14 संवत् 1980 को आपने आदिनाथ स्वामी के मंदिर जाकर भगवान के समक्ष दिगम्बरी दीक्षा धारण कर पूर्ण निर्ग्रन्थ मुनि बन गये। वैराग्य की भावना तो आपकी पहले से ही प्रबल थी। वह आज पूर्ण हो गयी। वहाँ से आधा मील दूरी पर स्थित एक पहाड़ी पर गये और वहॉ 6 घण्टे रहकर आपने ध्यान किया। मुनि बनने के पश्चात् आपसे सभी जैनों ने मिलकर वस्त्र धारण करने के लिये निवेदन किया, कहा कि यह समय मुनि पद धारण का नहीं है किन्तु आप अचल एवं दृढ़ रहे और कहा–कि भाइयों बमन करके फिर ग्रहण नहीं किया जाता है

तो फिर दिगम्बर होकर अम्बर कैसे धारण किये जा सकते हैं। महाराज की इस घोषणा के पश्चात् सब पंचों ने आपको मंदिर में पधारने के लिये निवेदन किया। आपने आदिनाथ स्वामी की चौथे काल की प्राचीन प्रतिमा के दर्शन करके गाजा बाजे के साथ नगर में होकर मंदिरजी में आये।

उस रात्रि को आपको 5 स्वप्न हुए। पहले स्वप्न में पहाड़ के ऊपर भगवान के चैत्यालय देखे। दूसरे स्वप्न में फूले हुए कमलों से भरा सरोवर देखा। तीसरे स्वप्न में एक श्वेत वृषभ देखा, चौथे स्वप्न में एक बड़ा नाहर देखा। पांचवे स्वप्न में अपने मस्तक पर सूखे हूए बेर के कांटों का बोझ देखा जिसमें किसी ने आग लगा दी जिससे सब जल कर भस्म हो गये। इन स्वप्नों ने मानों यह घोषित कर दिया कि आपके द्वारा आगे जैन शासन का प्रभाव देश व्यापी होगा। इसके पश्चात् दीपावली के पश्चात् सागवाड़ा में एक श्राविकाश्रम खोला गया जिसका नाम मुनि शान्तिसागर श्राविकाश्रम रखा गया। चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् आप मुनि शान्तिसागर जी के नाम से प्रसिद्ध होते गये। वहीं पर बस्ती के बाहर नदी के किनारे क्षेत्रपाल का मंदिर है, वहां पर आदिनाथ की प्राचीन प्रतिमा चूने में ढकी हुई थी, उसको जैनों ने पहिले ही बाहर निकाल लिया था। उस पर भीलों ने सिन्दूर लगा दिया था। मुनिश्री शान्तिसागरजी ने कहा कि मूर्ति अखंडित है। यदि आज रात्रि को स्वप्न होगा तो कल प्रक्षाल पूजन होगी। तब सब श्रावकों को उपदेश देकर प्रक्षाल पूजन करा दिया। जो भील जीव हिंसा करते थे उनको डूंगरपुर सरकार से बंद करा दिया कि भविष्य में कोई भी जीव हिंसा नहीं करने पावे। इससे मुनिश्री की चारों ओर प्रशंसा होने लगी।

मुनिश्री का विहार सितरी ग्राम की ओर हो गया। आपके साथ बम्बई सभा के उपदेशक कुंवर दिग्विजय सिंह जी भी थे। यहाँ कुंवर सा. ने ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की, फिर मुनिश्री का विहार गलिया की ओर हुआ, वहाँ पाँच दिन ठहर कर धर्मोपदेश देकर श्रावकों को व्रत प्रतिज्ञा दिलायी। वहाँ से अजण और फिर वहाँ से गढ़ी गये। उस समय समाज में कन्या विक्रय खूब चलता था। इससे समाज तो कलंकित होता ही था, अहिंसा धर्म को भी कलंकित कर रखा था। दो दिन गढ़ी में ठहरकर वहाँ के निवासियों को धर्मोपदेश देकर व्रत प्रतिज्ञा करायी। गढी से धारोज और वहाँ से खवोरा होते हुए प्रतापगढ़ आये। यहाँ पांच दिन तक ठहर कर आपने धर्मोपदेश से

समाज को एक नयी दिशा प्रदान की। प्रतापगढ़ में उस समय समाज के 500 घर थे। आपके उपदेश से छाणी सरस्वती भण्डार की स्थापना के लिए 700) रुपये का चन्दा हुआ।

प्रतापगढ से अन्य छोटे-छोटे गाँवों में विहार करते हुए मुनिश्री जावरा पधारे। यहाँ आप तीन दिन रहे। यहाँ आपके पैर में बड़ी चोट लग गयी थी, जिसके उपचार के लिये यहॉ के श्रावकों ने उपचार किये लेकिन उसमें कोई विशेष आराम नहीं मिला। मुनिश्री ने असातावेदनीय का फल मानते हुए शान्तिपूर्वक सहन कर लिया और वहां से विहार करते हुए चन्द्रावत पहुँच गये। यहॉ आपको एक मुनि और मिल गये जिनका नाम मुनि चन्द्रसागर जी महाराज था। वहॉ मुनि श्री चन्द्रसागर जी का केशलोंच था। इसलिये बहुत से श्रावकगण एकत्रित हुए थे। आपका वहॉ प्रभावक उपदेश हुआ, जिसका बहुत अच्छा प्रभाव पडा और श्रावकों को व्रत नियम आदि देकर कितनी ही बुराईयों का त्याग कराया।

इन्दौर की ओर विहार :

वहॉ से दोनों मुनियों ने साथ-साथ इन्दौर की ओर विहार किया। इन्दौर में सर्वप्रथम मल्हारगंज की नशियां में ठहरे। वहाँ सर्वप्रथम वहां के प्रसिद्ध सरसेठ हुकमचन्द जी के यहॉ आहार हुआ। वहाँ 5 दिन ठहरने के पश्चात् एक दिन के लिये छावनी गये। सर्वप्रथम छावनी में सरकार ने नग्न मुनि के विहार के लिये मना कर दिया तो सरसेठ हुकमचन्द जी ने एवं समीरमलजी ने सरकार से आज्ञा प्राप्त करके मुनिराजों का निर्विघ्न विहार करायां वहाँ से तुकोगंज गये और फिर लश्करी मंदिर में ठहरे। यहॉ फिर दोनों ही मुनिराजों के सरसेठ साहब के घर आहार हुआ जिसके उपलक्ष्य में सेठ हुकमचन्द जी ने 1000)रुपया 500)रुपया सेठ कल्याणमल जी ने, 500)रु. गेंदालाल जी सूरजमल ने, 600)रु फतेह जी की धर्मपत्नी ने तथा 600)रुपया गम्भीरमल चुन्नीलाल राय पीपलीवाला ने शान्तिसागर श्राविकाश्रम सागवाड़ा के लिये दान दिया। इसके पश्चात् आपका मल्हारगंज की नशियाँ में केशलोंच हुआ। सर सेठ सा. ने मुनिश्री की साधना की बहुत प्रशंसा की और फिर 1000)रुपया श्राविकाश्रम को दान दिया। आपके अतिरिक्त सेठ कल्याणमल जी, सेठ कस्तूरचन्द जी आदि ने भी दान दिया। पूरा आर्थिक सहयोग 7000 रुपया

का एकत्रित हुआ जो सेठ जी के मिल में जमा कर दिया, जिसका वार्षिक ब्याज बराबर आता रहा। इस प्रकार इन्दौर एवं इन्दौर छावनी में समाज पर आपका पूरा प्रभाव छा गया। श्राविकाश्रम सागवाड़ा के लिये भी अच्छा आर्थिक सहयोग मिला। छावनी के पश्चात् फिर दोनों मुनिराज इन्दौर पांच दिन और रहे। और सारे वातावरण को धर्ममय बना दिया। इन्दौर से खण्डवा के लिए विहार किया। वहाँ पांच दिन रहे। श्राविका आश्रम के लिये आर्थिक सहयोग कराया। फिर वहाँ से खेरीधार होते हुए सिद्धवर कूट पहुंच गये। वहाँ आपके दर्शनार्थ सेठ कल्याणमल जी सकुटुम्ब इन्दौर से आये। यहाँ आप पांच दिन ठहरे। फिर वहाँ पुनः खण्डवा आये और वहाँ से विहार करते हुए बांकानेर धर्मपुरी होते हुए बड़वानी पहुंच गये।

बड़वानी में उपसर्ग :

बड़वानी पहुँचने पर आपका वहाँ धर्मोपदेश हुआ, जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। जब आप ध्यानस्थ थे तो धर्मद्रोहियों ने आप पर मोटर चला दी। आप भयंकर उपसर्ग होने पर भी ध्यान मग्न रहे। ध्यान से किंचित भी विचलित नहीं हुए। मोटर चली नहीं और वहीं स्वयमेव टूट गयी। दूसरे दिन उन सभी मोटर चलाने वालों ने मुनिश्री से हाथ जोड़ कर क्षमा मांगी और कहा कि वे तो परीक्षा करने आये थे कि देखे जैन साधु कितने प्रभावक होते हैं। मुनिश्री ने उनको क्षमा प्रदान कर दी और कहा कि इसमें उनका कोई अपराध नहीं हैं मुनिश्री की निस्पृहता, उदारता एवं समताभाव देखकर सब आश्चर्य चकित हो गये। मुनिश्री ने बड़वानी पहाड़ की वन्दना की। वहाँ से पिपलिया, लोहारदा, सुसारी आये। लोहरदा में आपने उपदेश में जलेबी बनाना एवं खाना बन्द कराया। सुमारी से मोड होकर राणापुर पहुँचे। यहाँ चार दिन रहे और सब श्रावकों के रात्रि भोजन का त्याग कराया।

राणापुर से थानला, कुशला गांव होते हुए व अन्देश्वर पार्श्वनाथ तीर्थ पर आकर दो दिन तक तीर्थ वन्दना की। वहां से बनेजरा होकर बगोदरे आये और फिर गांवों में विहार करते हूए सागवाडा पहुंचे। वहाँ फिर पांच दिन ठहरे और डूंगरपुर होते हुए केशरियानाथ पहुंचे।

केशरियानाथ में फिर उपसर्ग :

केशरियानाथ में श्वेताम्बरियों ने आपको कहा कि पहिले कमण्डलु पहरेदार को दे दीजिये और फिर दर्शन कर आइये। यह विरोध तीन दिन तक बराबर चलता रहा, आपका यही कहना था कि कमण्डलु पहरेदार को

नहीं दिया जा सकता। दिगम्बर साधु किसी के पराधीन नहीं हो सकते। अन्त में चौथे दिन मामला सुलझा और आप कमण्डलु लेकर मंदिर में चले गये। आप कमण्डलु को वेदी के ऊपर रखकर दर्शन करने लगे। इतने में पहरेदार आया और कामदार की आज्ञा से कमण्डलु को उठा ले गया। आपने इसे उपसर्ग माना और कहा कि जब तक कमण्डल वापिस नहीं आयेगा, तब तक उनके आहार पानी का त्याग है। लेकिन आध घण्टे के पश्चात् वह पहरेदार पुनः आया और अपनी भूल स्वीकार करके कमण्डलु को वापिस वेदी पर रख दिया। उसके बाद ही आपने कमण्डलु लेकर आहार चर्या के लिये गये। इसके पश्चात् श्वेताम्बरियों ने पूर्व पहरेदार को तो बदल दिया, लेकिन नये पहरेदार ने मुनिश्री के कमण्डलु को फिर अपने हाथ में ले दिया। इसके बाद मुनिराज एवं दिगम्बर जैन श्रावक मंदिर में ही आहार पानी का त्याग कर वहीं बैठ गये। लेकिन कुछ समय पश्चात् ही वह मुनीम फिर आया कमण्डलु को वापिस देने लगा। इस पर मुनिश्री ने कमण्डलु लेने से मना कर दिया और कहा जब तक उदयपुर से सरकारी हुक्म नहीं आवेगा वे कमण्डलु नहीं लेंगे। क्योंकि बार-बार कमण्डलु लेने देने से धर्म की हंसी होती है। इसके पश्चात् कामदार ने आपसे क्षमा मांगी और कमण्डलु वापिस दे दिया। मुनिराज तीन बजे आहार के लिये निकले। इतने में ही उदयपुर से भी आदेश आ गया जिसमें लिखा था कि कोई किसी को दर्शन करने को मना नहीं कर सकता है। इसके पश्चात् मुनिश्री कमण्डलु सहित मंदिर में दर्शनार्थ गये। कमण्डलु को वेदी पर रखा। दर्शन किये और आहार के लिये निकले। फिर आप वहाँ दो दिन ठहरे। किसी दिगम्बर मुनि के ऋषभदेव में आने का यह 50 वर्ष पश्चात् अवसर आया है। भण्डारी ने बतलाया कि 50 वर्ष पूर्व इसी तरह मुनि आये थे। उन्होंने भी कमण्डलु लेकर ही दर्शन किये थे। कोई रोक टोक नहीं हुई थी।

ऋषभदेव में अपनी यश पताका फैला कर मुनिश्री खडक होते हुए सागवाड़ा आये। वहाँ से प्रतापगढ और वहाँ से मन्दसौर आये। वहां आपका केशलोंच हुआ। इसके पश्चात् रतलाम आये। यहां पांच दिन तक ठहरे। नगर के बाहर जो प्राचीन मंदिर हैं उसके दर्शन किये। धर्मोपदेश दिया। रतलाम से बड़नगर आये वहां से बनेडिया जी आये। यह अतिशय क्षेत्र हैं। यहां पर तीन दिन तक ठहरे, अच्छी धर्म प्रभावना हुई। इन्दौर में पंडित जीवंधर जी शास्त्री को सरसेठ हुकमचंद जी ने एवं एक पंडित सेठ

कल्याणमल जी ने आपको पढ़ाने के लिये नियुक्त कर दिया। व्याकरण एवं सिद्धान्त का अच्छा अध्ययन चलने लगा। प्रत्येक रविवार को आम सभा होती थी जिसमें समाज अच्छी संख्या में आपका प्रवचन श्रवण के लिये एकत्रित होती थी। लश्करी मंदिर में मुनि श्री का आम सभा में संबोधन होता था। पं. श्री खूबचन्द जी मुनिश्री के पास प्रतिदिन आते थे। सिद्धान्त ग्रंथों पर आधारित अच्छी चर्चा होती थी। सारा वातावरण धर्ममय बन गया था। मुनि श्री ने इन्दौर का इन्द्रपुरी नाम रख दिया। वहीं पर आपका केशलोंच हुआ। आपने श्री हजारीलाल जी को ऐलक दीक्षा दी और उनका नाम सूर्य सागर जी रखा। दशलक्षण पर्व में मुरैना से पं. माणिकचंद एवं लश्कर से पं. लक्ष्मीचंद जी, शास्त्र प्रवचन के लिये आये थे। तत्वार्थ सूत्र पर अच्छा व्याख्यान होता रहा। शास्त्र चर्चा भी खूब होती रही। इसी अवसर पर बड़वानी से ब्र. नन्दकिशोर जी ने तार द्वारा सूचित किया कि वे मुनि दीक्षा लेंगे इसलिए उनके लिये पीछी कमण्डलु भेजा। इन्दौर से पिच्छी कमण्डलु भेजे गये। कुछ पंडित भी भेजे गये। इन्दौर में मुनि श्री से 10-12 भाइयों ने शुद्ध भोजन करने का तथा दूसरे चौके से कोई भी वस्तु अपने चौके में नहीं लाने का नियम लिया।

चातुर्मास के पश्चात् मुनिश्री शान्तिसागर जी एवं ऐलक सूर्यसागर जी इन्दौर से इन्दौर छावनी में आये। वहां चार दिन रहे और हाटपीपल्या आ गये। यहां 5 दिन रहकर सबको धर्म लाभ दिया। वहां से फिर सोमणकस पधारे। वहाँ से फिर हाटपीपली आये। यहाँ जैनों में परस्पर में झगड़ा रहता था। मुनिश्री के प्रभाव से वह मिट गया एवं एकता स्थापित हो गयी। यहाँ पर ऐलक सूर्यसागर जी को मुनि दीक्षा एवं ब्रह्मचारी सूवालाल को क्षुल्लक दीक्षा दी गयी। दीक्षा के समय प्राचीन काल जैसा दृश्य नजर आने लगे। वहाँ से संघ खाते गांव गया। संघ में मुनि सूर्य सागर जी एवं क्षुल्लक ज्ञानसागरजी भी गये थे। फिर आपका विहार हाल्दे हुआ। वहाँ केश लोंच भी हुआ। यहाँ केशलोंच देखने के लिये अच्छी भीड़ जमा हो गयीं आपका प्रभावक प्रवचन हुआ। लोगों ने सप्त व्यसन एवं मांस मदिरा का त्याग कराया।

वहाँ से नीमरली गांव आये। वहाँ पांच दिन ठहर कर श्रावकों को दर्शन पूजन के नियम दिलायें। यहां के भाई बहिन प्रतिमा जी के दर्शन नहीं करते थे। इसके पश्चात् विहार करते हुए इटारसी आये। यहाँ भी जैनी भाई भगवान

के दर्शन नहीं करते थे। आपने सबको देव दर्शन एवं पूजन का नियम दिलाया। इटारसी से आप बाबी गाँव आये। यहाँ आपका 5 दिन तक बराबर धर्मोपदेश होता रहा। यहाँ के श्रावकों में दर्शन करने का नियम नहीं था। आपने सब भाई बहिनों को प्रतिदिन देवदर्शन का नियम दिलाया। वहां से आप हुशंगाबाद आये। यहाँ भी 5 दिन ठहर कर धर्मोपदेश दिया तथा श्रावकों को दर्शन एवं पूजा के नियम दिलाये। यहां बहुत शंका समाधान हुआ।

फिर एक ऐसे गाँव में आपका विहार हुआ जहाँ मुसलमानों की अधिक बस्ती थी। शन्ति के लिये भोपाल से पुलिस आ गयी। वहाँ से तार भी आ गया कि नग्न साधुओं को कोई नहीं रोके। उनका निर्विरोध विहार होना चाहिए। मुनि श्री यहां दो दिन तक ठहरे और लोगों को मद्य, मांस का त्याग कराया। वहाँ से भेलसा आये और धर्मोपदेश से सबको लाभान्वित किया। फिर भोपाल आये। जब आप वहाँ से केवल तीन मील दूर थे। उसके पूर्व राजा ने अनाज का भाव 5 सेर निश्चित कर रखा था। प्रजा ने बहुत चारा जोरी की किन्तु राजा ने कोई ध्यान नहीं दिया, लेकिन जैसे ही मुनिश्री के नगर प्रवेश का समाचार मिला तब राजा ने स्वयमेव पांच सेर से आठ सेर कर दिया। उससे सभी लोगों ने मुनिश्री के प्रभाव को स्वीकार किया, सभी मुनि श्री के विहार में कोई रोक टोक न होवे ऐसी व्यवस्था करने लगे। राज्य से और बेगम साहिबा ने भी विशेष आदेश प्रसारित करवा दिये। यहाँ संघ पांच दिन तक रहा। खूब प्रभावना हुई। यहाँ मुनि श्री आनन्द सागर जी बडवानी से आ गये और क्षुल्लक ज्ञान सागर जी ने पहिले ऐलक और फिर मुनि दीक्षा भी आपसे प्राप्त की।

आपका संघ सहित भोपाल छावनी में विहार हुआ। यहाँ पर एक गाय जिसको एक कसाई मारने के लिए ले जा रहा था, उससे छूटकर जहाँ मुनि श्री ठहरे थे वहाँ आ गई। तत्काल माली ने रुपया देकर उसे छुड़ा लिया और एक पंचेन्द्रिय जीव को बचा लिया गया। फिर संघ कालापीपला आया। यहाँ आप दो दिन ठहरे और वहाँ से सुजानपुर आ गये। यहाँ आपके धर्मोदेश के प्रभाव से एक जैन पाठशाला स्थापित की गई। वहाँ से विसारा गये। यहाँ मुनि श्री ज्ञानसागर जी का केशलोंच हुआ। यहाँ अचानक विहार करते हुए बीनागंज पहुँचे। दो दिन ठहरने एवं धर्मोपदेश देने के पश्चात् राधोगढ़ आये। यहाँ फिर वह संघ आकर मिल गया और आपने बजरंगगढ़ की ओर विहार

किया। यहाँ पांच दिन ठहर कर खूब धर्मोपदेश दिया। बजरंगगढ़ अतिशय क्षेत्र है। यहाँ कुंथुनाथ शान्तिनाथ अरहनाथ जी की 15-16 फीट की विशाल प्रतिमाएं हैं। आपने एक मुसलमान से यहाँ मांस मदिरा आदि का त्याग कराया।

बजरंगगढ़ से आप पछाड़ गाँव आये। यहाँ आपका प्रभावशाली प्रवचन हुआ। एक कन्या विद्यालय खुलवाया गया। आपके दर्शनार्थ पं. कस्तूरचन्द जी उपदेशक भी आये थे। जैन बन्धु भी पर्याप्त संख्या में एकत्रित हुए। वहाँ से तराई, अमरोह होते हुए थूवोनजी भी आये। यहाँ 15, 16 तथा 20 फीट की विशाल प्रतिमाएं हैं। यह दर्शनीय अतिशय क्षेत्र दक्षिण में स्थित है। थूवोन जी से चन्देरी गये जहाँ की चौबीसी दर्शनीय है तथा उसी रंग की है जिस रंग के भगवान थे। सभी पद्मासन स्थिति में हैं। चन्देरी शहर से एक मील दूरी पर एक पहाड़ी पर एक प्रतिमाजी है वह भी दर्शनीय है। यहाँ से अचलगढ़ होते हुए मुंगावली आये। मुंगावली के बीच में 40-50 गाय बैल दौड़ते हुए गाँव से आये और मुनि श्री को बिना बाधा पहुँचाये प्रदक्षिणा लेकर वापिस चले गये। इस दृश्य को सभी लोग देखते रहे। मुंगावली में मुनिश्री पांच दिन रहे। धर्मोपदेश हुआ कितने ही लोगों ने नियम लिये। वहां से बमोरा आये तथा यहां तीन दिन रहे। धर्मोपदेश देकर जब आपने विहार किया तो एक छोटा सा बकरा आपके पीछे हो लिया। जब उसके मालिक ने पकड़ लिया तो भी वह उससे छुटकर फिर मुनि श्री की शरण में आ गया। तब मुनि श्री ने श्रावकों को आदेश दिया इस बकरे को कोई मारने नहीं पावे। इसकी कीमत देकर उसे छुड़ा लेना। इससे मुनि श्री के हृदय में जीवों के प्रति कितनी करुणा थी इसका पता चलता है।

बीना की ओर विहार

जब मुनि श्री का बीना की ओर विहार हुआ तो आपके प्रति जैनों में अपूर्व श्रद्धा के भाव जागृत हो गये। बीना में आपका केश लोंच हुआ उस समय 15 हजार जैन बन्धु थे। इसके अतिरिक्त 5 हजार जैनेतर बन्धु थे। इस अवसर पर मुनि श्री का प्रभावक धर्मोपदेश हुआ जिसमें जैनाजैनों ने रात्रि भोजन, मांस, मदिरा और मिथ्यात्व क्रियाओं का त्याग कर दिया। इस अवसर पर पं. कस्तूरचंद जी धर्मोपदेशक, पं. गणेश प्रसाद जी ब्रह्मचारी भी आये थे। उनके भी व्याख्यान हुये। बड़ा ही रोचक एवं धर्ममय समारोह हुआ।

बीना से मुनि श्री खुरई गये। पांच दिन तक ठहर कर धर्मोपदेश दिया। यहां से मुनि श्री बालावेहट गये और चतुर्थ कालीन प्रतिमा के दर्शन किये। वहाँ से मालथौन गये। यहां भी आप 5 दिन तक ठहरे तथा सबको धर्मोपदेश दिया। जहाँ पर 12 श्रावकों को पाक्षिक श्रावक के व्रत देकर उन्हें यज्ञोपवीत दिया। यहाँ के जैन बंधु बड़े धर्मात्मा हैं। यहाँ एक ब्रह्मचारी जी भी रहते थे। यहाँ से गुना आये। अजैनों से मांस मदिरा का त्याग कराया तथा जैनों को प्रतिज्ञायें दिलवायीं। वहाँ से गांवों में होते हुए सादूमल आये। यहां एक दिन ठहरे। पं. कस्तूरचंद जी उपदेशक भी आपके साथ में थे।

वहाँ से मंडावरा गये। यहां 60 घर जैनों के थे तथा 11 बड़े-बड़े मंदिर हैं। मुनि श्री वहां पांच दिन ठहरे। मुनि श्री के उपदेश से अजैनों ने मांस मदिरा, मिथ्यात्व एवं रात्रि भोजन का त्याग किया। वहाँ से सादूमल होते हुए मुनि श्री महरोनी आये। गाँव के बाहर स्थित क्षेत्रपाल मंदिर में ठहरे। यहीं पर मुनि आनन्द सागर जी एक सूर्यसागर जी का आगमन हो गया। तीनों साधुओं का प्रवचन हुआ जिसका जैनाजैन जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। यहां से पपोरा क्षेत्र पर आये। यहां 75 जैन मंदिर हैं उनमें एक चौबीसी भी है। यहां एक जैन पाठशाला है। यहां से मुनि श्री ने टीकमगढ़ की ओर विहार किया। टीकमगढ़ में मुनि श्री ने 5 दिन तक ठहर कर धर्मोपदेश दिया। टीकमगढ़ के महाराजा भी मुनि श्री के दर्शनार्थ आये थे। महरोनी के पं. बंशीधर जी एवं पं. कस्तूरचंद जी उपदेशक के भी भाषण हुए, जिसका बड़ा प्रभाव पड़ा। यहां के महाराजा के बाग में ही मुनि संघ टहरा था। वहाँ से विहार करके बहुत से गांवों में विहार करते हुए बालावेहट आये जो अतिशय क्षेत्र कहलाता है। स्थान दर्शनीय है। यहां मुनि श्री के पास हरी प्रसाद ने अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की और मुनि श्री के संघ में रहने लगे। अतिशय क्षेत्र पर बहुत सी प्रतिमाएं खण्डित थी। मुनिश्री ने खण्डित प्रतिमाओं के स्थान पर नयी अखण्डित प्रतिमाएं विराजमान करने की प्रेरणा दी।

इसके पश्चात् विहार करते हुए मुनि श्री ललितपुर आये। वहाँ चार दिन तक क्षेत्रपाल के मंदिर में ठहर कर धर्मोपदेश से सबको लाभान्वित किया। वहॉ से देवगढ़ आये और रात्रि में देवगढ़ में ठहर कर दूसरे दिन पहाड़ पर जाकर मंदिरों के दर्शन किये। आप पहाड़ पर 7 बजे पहुंच गये। पर्वत के कोट दरवाजे लगे हुए हैं। पर्वत की परिक्रमा 10 मील बतायी जाती थी। पर्वत तले नदी बहती है। पास में गुफा भी है। पहाड़ के ऊपर जैन मंदिर एक

मील की फेरी में है। जैन मंदिरों का कोट लगा हुआ है। 10-20 मंदिर तो साबुत हैं बाकी सब गिरे हुए हैं। यहां बड़ी-बड़ी प्रतिमाएं है जो सभी खण्डित है। सैकड़ों में कोई एक दो प्रतिमाजी अखण्डित हैं।

मुनिश्री ने आदीश्वर की एक अखण्डित प्रतिमा को देखकर जैनों से उसे वहां से ले जाकर मंदिर में विराजमान करने के लिए कहा। मुनि श्री की प्रेरणा से जब पंच गण मूर्ति को उठाने लगे तो वह किंचित् भी नहीं उठी, यहां तक हिली भी नहीं। तब मुनि श्री ने यह नियम ले लिया कि जब तक प्रतिमाजी विराजमान नहीं होगी तक तक वहाँ से नहीं जावेंगे। ऐसा कह कर वे आहार के पश्चात् वहीं बैठ गये सब श्रावकों के अनुरोध पर मुनिश्री ने प्रतिमा को जैसे ही स्पर्श किया कि वह उठ गये। पहिले उसका अभिषेक किया गया और वह इतनी हल्की हो गयी कि उसे दो हाथ ऊंची वेदी पर विराजमान कर दिया गया। सभी जैनों ने उसका अष्ट द्रव्य से पूजन किया चारों ओर प्रसन्नता छा गयी। देवगढ़ तो देवगढ़ ही है।

वहाँ से विहार करके चन्देरी एवं फिर बूढ़ी चन्देरी आये। यह भी अतिशय क्षेत्र की कहलाता है। उस समय यहां तीन मंदिर अच्छी अवस्था में थे शेष सब खण्डित एवं जीर्ण थे। बहुत सी प्रतिमाएं भी खण्डित हैं।

ललितपुर में चातुर्मास

खंदार जी से मुनि श्री ललितपुर आये और चातुर्मास स्थापित किया। आपके साथ में दो मुनिराज महाराज और थे। सभी का चातुर्मास निर्विघ्न समाप्त हुआ। मुनिश्री की बार बार प्रेरणा एवं उपदेश से मुनि श्री के नाम पर ही एक कन्या पाठशाला की स्थापना हुई। उस समय ललितपुर में तीन सौ घर जैनों के थे। चातुर्मास में मुनिश्री के दर्शनार्थ बाहर के बहुत से यात्रीगण भी आये थे। शहर के दो स्वर्ण मंदिरों में स्वर्ण का कार्य बहुत सुंदर व कलात्मक था। पं. श्री वंशीधर जी गहरोनी वाले मुनियों को पढ़ाते थे। सबका धर्म ध्यान अच्छा रहा।

इसके पश्चात् मुनिश्री शान्तिसागर जी एवं मुनि श्री आनन्दसागरजी ने एक साथ विहार किया एवं मुनि श्री सूर्यसागर ने भी दूसरी ओर विहार कर दिया। शान्तिसागर जी छाणी विरदा होते हुए मालथोन आये। यहां 5 दिन ठहरे। जैन बन्धुओं को अनेक प्रकार का त्याग कराया। बाजार के बने हुए

पान, बीड़ी, सिगरेट, सोडा वाटर आदि का त्याग कराया। यहां नगर के बाहर एक बगीचे में आपका केश लोंच हुआ। इसके पश्चात् गड़ाकोटा होते हुए दमोह आये। यहां शहर के बाहर बगीचे में ठहरे। धर्मोपदेश हुआ। लोगों ने सप्त व्यसन, बीड़ी सिगरेट एवं रात्रि भोजन का त्याग दिया। वहाँ से कुण्डलपुर आये और क्षेत्र के दर्शन किये। यहां बादामी रंग की पद्मासन वाली विशाल प्रतिमा है जिसके दर्शन मात्र से आत्म शांति की प्राप्ति होती है। उस समय यहां एक ब्रह्मचर्याश्रम था जिसमें दो ब्रह्मचारी रहते थे। मुनि श्री यहां चार दिन ठहरे।

मुनिश्री ने कहा कि 'ऐसी प्रतिमा हमारे देखने में नहीं आयी' पहाड़ की तलहटी में भी बहुत से मंदिर हैं। यहां यात्रियों का आवागमन रहता है। वहां से वे नैनागिरि आये। तीन दिन तक ठहर कर क्षेत्र के दर्शन करते रहे। छोटी सी पहाड़ी है। जिस पर दिगम्बर जैन मंदिर बने हुए हैं। कई मुनिराजों का मोक्ष स्थान है। विद्यालय भी चलता है। मुनि श्री यहां तीन दिन तक ठहरे। खूब धर्मोपदेश हुआ। जैना जैन बन्धुओं ने खूब सुना। वहां से हीरापुर होते हुए द्रोणागिरि पहुँचे। यह भी सिद्ध क्षेत्र है। बड़े-बड़े मंदिर हैं, गुफायें हैं। मुनि श्री ने धर्मोपदेश देकर श्रावकों को व्रत नियम दिये। जैन बन्धुओं ने सप्त व्यसन एवं रात्रि भोजन न करने का नियम लिया। वहां से मणिपुर गये तथा वहां से बरुआ सागर जाते समय एक छोटी सी पहाड़ी पर बनी हुई गुफा में दोनों मुनियों ने रात्रि बितायी। प्रातःकाल होते ही वे बरुआसागर आये। शहर के बाहर एक बड़ा सा सरोवर है, उसी पर ठहर कर सबको धर्मोपदेश देकर प्रसन्न किया। यहां से झांसी आये जहां ज्ञानसागर जी मुनिराज भी संघ में आकर मिल गये। तीनों मुनि रत्नत्रय के समान दिखाई देने लगे।

सोनागिरि जी की ओर

झांसी से तीनों मुनियों के संघ सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पर आये। सोनागिरि सिद्धक्षेत्र होने के कारण यहां सात दिन ठहरे। बराबर उपदेश होते रहे। यहां आनन्द सागर की मुनिराज का केशलोंच भी हुआ। दोनों मुनिराजों का धर्मोपदेश हुआ। खूब प्रभावना हुई। मुनि शान्तिसागरजी एवं आनन्द सागरजी ने लश्कर की ओर विहार किया। मुनि ज्ञानसागर जी मुंगावली चले गये। यहां से मुनि आनन्दसागर जी इन्दौर की ओर विहार कर गये तथा मुनि

शांतिसागर जी महाराज ने भी मुरार छावणी की ओर विहार किया। यहां मुनि श्री का प्रभाव का प्रवचन हुआ। उनके व्याख्यान से प्रभावित होकर अनेक बन्धुओं ने शराब का त्याग कर दिया। वहाँ से मुनिश्री भिण्ड चले गये। जहां एक मेला था जिसमें भाग लेने के लिए हजारों नर नारी पहुंचे थे। जिनकी संख्या करीब 51 हजार थी। जैन भाइयों ने महाराज श्री के प्रवचन से प्रभावित होकर कितने ही नियम लिये। यहां मुनिश्री का केशलोंच हुआ। जैनाजैन लागों ने मद्य मांस खाने का त्याग किया। छना पानी पीने का नियम लिया। शान्तिसागर श्राविका श्रम खोला गया। आठ जातियों के जैन परिवार रहते थे। यहाँ से मुनि श्री इटावा गये। वहाँ पांच दिन ठहरे। जमुना जी के किनारे एक प्राचीन मंदिर था जो पहिले जैन मंदिर था। मुनिश्री के प्रभाव से वह स्थान जैन आश्रम के रूप में हो गया। यहां प्रति वर्ष मेला भरता है। मुनिश्री के उपदेश से लोगों ने अभक्ष्य पदार्थों के खाने का त्याग किया। यहां कन्या पाठशाला है जिसके मंत्री भगवानदास जी जैनाग्रवाल थे।

कानपुर की ओर विहार

इटावा से विभिन्न गाँवों में विहार करते हुए वे कानपुर पहुंचे और फूल बाग में ठहरे। यहां मुनिश्री के प्रवचन में जैनों के अतिरिक्त बहुत से मुसलमान, अजैन बन्धु, यूरोपियन, आर्य समाजी एक हजार के लगभग एकत्रित होते थे। यहां आर्य समाजी बहुत से प्रश्न करते थे जिनका उत्तर भली भांति दिया जाता था। मुनि श्री यहां चार दिन रहे और अपनी विद्वता, त्याग एवं तपस्या की जैनाजैन जनता पर अमिट छाप छोड़ गये। बहुत से लोगों ने मांस मदिरा का त्याग करा तथा छना पानी पीने का नियम लिया। वहां से कानपुर के ही जैन गंज में गये। आने के पश्चात् आपका प्रवचन हुआ। मुनीन्द्र सागर जी सोनागिर से मुनि श्री के साथ हो गये। मुनीन्द्रसागरजी द्वारा दिगम्बरी दीक्षा मांगने पर उन्हें सभा के मध्य मंत्र विधि सहित मुनि दीक्षा दी गयी। हैदराबाद की चम्पा बाई ने भी सातवीं प्रतिमा के व्रत लिये। और भी बाइयों ने व्रत लिये। यहां मुनिश्री 10 दिन तक ठहरे और सारे वातावरण को धर्ममय बना दिया। मुनिश्री के प्रभाव से चतुर्थ काल जैसा दृश्य दृष्टिगोचर होने लगा। कानपुर से दोनों मुनि बाराबंकी आये। तथा दो दिन ठहरने के पश्चात् टिकैत नगर की ओर विहार कर दिया। यहां तीन दिन ठहरे। ब्र. शीतलप्रसाद जी भी यहां आये और आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर अजैन भाइयों ने मांस

मदिरा का त्याग कर दिया। जैन भाइयों ने भी व्रत नियम लिये।

इसके पश्चात् आप दरियावाद आ गये। यहां एक ब्राह्मण परिवार के घर में ही जैन मंदिर था उसमें चतुर्थकालीन प्रतिमाजी तथा कितने ही प्राचीन शास्त्र थे। एक ग्रंथ ताडपत्रीय था। मुनिश्री की प्रेरणा से सभी शास्त्रों को लोहे की अलमारी में रखने का निर्णय लिया गया। फिर आप अयोध्या आये। यहां दो दिन ठहर कर सब मंदिरों के दर्शन किये। उस समय यहां के सभी मंदिर जीर्ण हो गये थे। वहां से फैजाबाद और फिर गोरखपुर की ओर विहार हो गया। गोरखपुर के मध्य के गांवों में आपने धर्मोपदेश दिया और बहुत से लोगों ने मांस मदिरा का त्याग कर दिया। तथा छान कर पानी पीने का नियम लिया। मार्ग में जाते समय एक नदी में तीस धीमर मछली मार रहे थे। मुनिश्री जब वहां पहुंचे और मछलियों के तड़पने का दृश्य देखा तो उनका हृदय कांप उठा। मुनि श्री ने उसी समय धीमरों को उपदेश दिया तो उन्होंने पकड़ी हुई मछलियों को पानी में छोड़ दिया। तथा भविष्य में मछली नहीं पकड़ने का नियम लिया। मुनि श्री के उपदेश का उन पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने जाल को भी नदी में फेंक दिया। तथा मछली नहीं मारने तथा मदिरा नहीं पीने का नियम लिया। गोरखपुर के 5 मील पहिले सेठ अभिनन्दन प्रसाद का गांव था। वहां के एक मुसलमान ने मुनिश्री के उपदेश से मांस खाना एवं जीव मारना छोड़ दिया। वहां से गोरखपुर आकर सेठ अभिनन्दन दास जी के बगीचे में ठहरे। वहां सेठ जी ने मंदिर बनवा कर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करवायी गयी जिसमें पं. बुधचन्द जी सागवाडा, राज कंवर शास्त्री बांसवाड़ा, पं. कस्तूरचंद जी उपदेशक भोपाल तथा प्रतिष्ठाचार्य पं. सुन्दरलाल जी जयपुर से आये थे। यहां मुनियों का, ब्रह्मचारियों का तथा पंडितों का प्रतिदिन उपदेश होता था। जिसको सुन कर लोगों ने मांस मदिरा का त्याग कर दिया। प्रतिष्ठा रथ में 18 रथ थे। गज रथ निकला था। पंच कल्याणक प्रतिष्ठा में एक क्षुल्लक को ऐलक दीक्षा देकर उनका नाम वीर सागर रखा। भगवानदास जी अग्रवाल ने मुनिश्री से ब्रह्मचारी की दीक्षा धारण की। यही ब्रह्मचारी इस चारित्र के लेखक हैं। ज्ञान कल्याणक के दिन मुनि श्री के उपदेश के प्रभाव से अभिनन्दन प्रसाद जी ने मंदिर जी के संरक्षण के लिये 10,000 रुपयों का ध्रुव फण्ड बनाया। तथा सेठ एवं सेठ के पुत्रों ने स्वाध्याय एवं पूजा प्रक्षाल का नियम लिया।

जब मुनि संघ आगे विहार कर रहे थे, तो किसी ने यह मिथ्या समाचार फैला दिये कि मुनि श्री की किसी ने हत्या कर दी है। इससे समाज में गहरी हलचल मच गयी और चारों ओर से गोरखपुर तार आने लगे। बाजार बन्द हो गये। उपवास रखा गया। जैन समाज ने यहां शोक मनाया। इस पर अभिनन्दन प्रसाद जी ने सोचा कि मुनि महाराज की खैर-खबर का पता लगाना चाहिए। बिना पता लगाये किसी को भी समाचार देना ठीक नही। वे स्वयं मुनिश्री के पास आये और दर्शन करके वापिस लौट गये। वहां जाकर सबको समाचार दिया कि मुनि श्री ठीक है और सम्मेद शिखर जी की यात्रा पर जा रहे हैं।

मुनि श्री वहाँ से गाजीपुर होते हुए गया जी के बीच में एक मुसलमान के बगीचे में ठहर गये। उस समय वहाँ एक मुसलमानों की बारात आई हुई थी। मुसलमान मुनि संघ पर हमला करने की तैयारी करने लगे। गांववालों को मालूम चलने पर उन्होंने रात्रि को आकर ब्रह्मचारियों से कहा कि साधु महाराज यहॉ से अन्यत्र चले जावें नहीं तो मुसलमान तीनों साधुओं को मार डालेंगे। ब्रह्मचारियों ने भी मुनियों से तत्काल चलने को कहा लेकिन रात्रि में ही मौन खोलकर आचार्य श्री ने कहा कि दिन निकले बिना हम यहाँ से नहीं जा सकते हैं। अपने साथी मुनियों से कहा कि घबराना नहीं, उपसर्ग का जीतना ही परीक्षा है। दोनों मुनियों को धैर्य दिलाया। तपस्या के प्रभाव से कुछ भी नहीं हुआ। प्रातः होते ही मुनिसंघ वहाँ से विहार कर गये। और मुसलमानों के ह्रदय स्वतः ही बदल गये। मार्ग में ही गया समाज संघ को अपने यहाँ ले गये। आचार्य श्री ने यहाँ के समाज में व्याप्त वैमनस्य को हटाकर सबमें सद्भाव उत्पन्न किया। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा संपन्न हुई।

वहां से शिखर जी की ओर विहार किया। शिखरजी बीस पंथी कोठी के मुनीम एवं हजारीबाग की जैन समाज हाथी लेकर मुनिश्री के स्वागत में आये। जब आचार्य श्री ने हाथी लाने का कारण बताने को कहा तो उन्होंने निवेदन किया कि यह प्रथम अवसर है विगत 150 वर्षों में जब कोई जैन मुनि शिखर जी आये हों। इसलिए धर्म प्रभावना के निमित्त यह सब किया गया है। शिखर जी आने के पश्चात् मुनि श्री एवं वीरसागर जी दोनों शिखरजी की वंदना करने चले गये लेकिन पहाड़ पर ही रात्रि हो जाने के कारण वे जल मंदिर में ठहर गये। और वहीं सामयिक करने लगे। रात्रि को श्वेताम्बरी

बंधु आये और कहने लगे कि आप यहाँ से चले जावें। यदि नहीं जायेंगे तो जबरन उठाकर बाहर फिकवा देंगे। लेकिन उन्होंने न तो अपना मौन तोड़ा और न बाहर गये। वे रात भर वहीं ध्यानस्थ रहे और प्रातःकाल शेष कूटों की वंदना करके वापिस नीचे उतर आये। यहीं पर दोनों मुनियों का केशलोंच हुआ। तथा आठ दिन रहने के पश्चात् उनका गिरिडीह की ओर विहार हो गया।

चातुर्मास

आपने गिरिडीह में इस बार चातुर्मास किया। बड़ा आनन्द आया। चातुर्मास में ग्रंथों का विशेष अध्ययन किया। कलकत्ता से पं. झम्मनलाल जी आये थे। और भी कितने ही विद्वान थे।

पं. जयदेव जी 22 दिन तक संघ में रहे। शंका समाधान में विशेष आनन्द आया। केशलोंच शहर के बाहर किया गया। गिरिडीह में सेठ खेतसीदास विशेष प्रभावित हुए और उनको सप्तम व्रत प्रतिमा दी गई। वे न्यायाधीश थे और उन्होंने अपनी संपत्ति को अपने बेटों में बांट दी। एक लाख रुपये अपने लिए रख लिये। दान भी खूब हुआ। मुनि श्री ने इस चातुर्मास में शिखर जी की लावणी की रचना की तथा दो शास्त्रों का संकलन किया। आपके उपदेशों का जैन एवं जैनेतर समाज पर खूब प्रभाव पड़ा। कितनों ने ही रात्रि भोजन त्याग किया तथा दर्शन एवं स्वाध्याय का नियम लिया। यहाँ के निवासियों को पहिले जैनधर्म का किंचित् भी ज्ञान नहीं था। मुनि श्री ने सबको जैन धर्म का ज्ञान कराया। यहाँ ज्ञानसागर जी को पुनः मुनि दीक्षा दी गई। यहाँ मुनिश्री ने छापे के ग्रंथों के स्थान पर हाथ से लिखे ग्रन्थों को पढ़ने का अभियान चलाया। तथा उन्होंने शास्त्रों का परिग्रह नहीं रखने का नियम लिया तथा जिस ग्रंथ का स्वाध्याय करना हो, मात्र उसे ही साथ रखने का नियम लिया। संघ के किसी भी ब्रह्मचारी को चन्दा चिट्ठा नहीं रहने का नियम दिलाया तथा श्रावकों द्वारा दिया हुआ नौकर भी संघ में नहीं रखेंगे।

एक बार मुनि श्री जब शौच के लिये जा रहे थे, तो मार्ग में एक आदमी 13 बकरे और 6 केकड़े लेकर जा रहा था। मुनि श्री ने उससे पूछा कि वह इतने जानवरों को कहां ले जा रहा हैं जब उसने कहा कि वह इन्हें बेचेगा। तो मुनिश्री के कहने से श्रावकों ने सभी बकरे मोल ले लिये और उन्हें शिखरजी

भेज दिया। इनके चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् जब वहाँ से विहार हुआ तो सभी ने आपको भावपूर्ण विदाई दी। वहाँ से आप संघ के साथ पालंगज होते हुए शिखरजी आये। यहाँ भी आपका अच्छा स्वागत हुआ। वीरसागर जी भी संघ में आ गये। संघ में चार मुनि हो गये। यहाँ सबने प्रतिज्ञा की कि कोई एकल विहार नहीं करेगा। संघ छोड़कर अकेला विहार नहीं करेगा। शिखरजी की वंदना करने के पश्चात् संघ आगे बढ़ गया और गिरिडीह, बैजनाथ, मंदारगिरी, भागलपुर, चम्पापुर विहार करते हुए पावापुरी आये। मुनियों का संघ सब तीर्थों की वंदना करते हुए गया जी आया। यहाँ विशाल पंचकल्याणक प्रतिष्ठा संपन्न करवाकर माघ शुक्ला पूर्णिमा को गया से विहार कर दिया।

गया जी का मेला पूर्ण होने के पश्चात् श्री महाराज श्री वीरसागर तथा ज्ञानसागर जी के सहित विहार करते हुए रफीगंज आये। वहाँ आठ दिन रहे। वहाँ से मार्गवर्ती ग्रामों में विचरते हुए (काशी) बनारस गये। यहाँ महाराज श्री ने एकत्रित श्रावक-श्राविकाओं को धर्मोपदेश देकर सर्वमंदिरों के दर्शन किये। पुनः इलाहाबाद की तरफ संघ सहित प्रस्थान किया। मार्ग में मिर्जापुर के भाई भी दर्शनार्थ आये। महाराज श्री इलाहाबाद आकर कुंथुलाल जैनी भाई के बगीचे में ठहरे। यहाँ महाराज श्री ने 5 दिन रह कर धर्मोपदेश किया। यहाँ एक दिन आम सभा हुई जिसमें शहर के बड़े-बड़े जैन अजैन विद्वान सम्मिलित हुए थे। महाराज श्री के व्याख्यान का जनता पर अच्छा असर पड़ा था। महाराज श्री ने आर्यसमाजियों की शंकाओं का भलीभांति समाधान किया, जिनको सुनकर सभी पंडितों तथा आर्य समाजियों ने दिगम्बर जैन मुनियों की बड़ी प्रशंसा की। यहाँ से महाराज श्री ने अपने संघ सहित फारबीसगंज की ओर विहार किया। यहाँ पर महाराज श्री से प्रभावित होकर एक वणिक अग्रवाल जैन धर्म में दीक्षित हुआ उसको श्री भगवान का चैत्यालय रखने का नियम दिलाया और शास्त्र स्वाध्याय की प्रतिज्ञा कराकर रात्रि भोजन का त्याग कराया फिर वीरसागर सहित विहार करते हुए महाराज श्री बांद्रा आये। यहाँ से कितने ही ग्रामों में विहार करते हुए आप मऊ, रानीपुर, वरुआसागर होते हुए झांसी आये। यहाँ के श्रावकों को आपने धर्मोपदेश देकर एक जैन पाठशाला स्थापित करायी और अनेकों नियम दिलाये। फिर यहाँ से विभिन्न गाँवों में विहार करते हुए बजरंग गढ़ आये। यहाँ बजरंगगढ़ में श्री शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ, इन तीन तीर्थंकर भगवान की खड़गासन 15-16 फुट

ऊंची प्रतिमायें अति ही मनोज्ञ दर्शनीय हैं। महाराज श्री रूढ़वाई तथा व्यावरा होते हुए सारंगपुर आये। यहाँ श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा चौथे काल की अति ही मनोज्ञ है। यहाँ पर आपने धर्मोपदेश देकर रात्रि भोजन और अभक्ष्य वस्तुओं को त्याग कराकर शास्त्र स्वाध्याय का नियम दिलाया। यहाँ के एक ब्राह्मण वकील ने पूर्णतया जैन धर्म धारण किया तथा रात्रि में भोजन नहीं करने का नियम लिया। नित्य दिन में दर्शन पूजन तथा शास्त्र स्वाध्याय करके भोजन करने का भी नियम लिया। यहाँ से विहार कर महाराज श्री मक्सी पार्श्वनाथ आये। यहाँ की यात्रा करके आप उज्जैन की तरफ पधारे। यहाँ उज्जैन आकर आप सेठ घासीलाल कल्याणमल जी की धर्मशाला में ठहरे। यहाँ दो दिन रहकर श्रावक-श्राविकाओं को धर्मोपदेश कर सप्तव्यसन तथा अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग कराया। यहां से विहार कर आप बड़नगर आये। यहाँ पर दो दिन रहकर धर्मोपदेश किया। यहाँ का औषधालय और अनाथालय अच्छी तरह चल रहा था। यहाँ से विहार कर आप रतलाम आये। दो दिन ठहरकर चातुर्मास करने के लिए बागड़ की तरफ विहार करते हुए आप खांदू आये। यहाँ दो-चार दिन रहकर धर्मोपदेश कर आपने बांसवाड़े की तरफ विहार किया। बांसवाड़े में आपका केशलोंच हुआ। यहाँ सेठ विजयचंद जी का स्थापित किया हुआ विद्यालय अच्छी तरह चल रहा था। यहाँ से आप तखवाड़े होते हुए परतापुर आये और परतापुर से सागवाड़े गये। यहाँ सागवाड़े में महाराज श्री ने उपदेश देकर श्राविका आश्रम खुलवाया था जो अब अच्छी तरह चल रहा है। यहाँ से आप चातुर्मास करने के लिए बड़ी अथोया उलका होते हुए परतापुर आये। यहाँ पर महाराज श्री का केशलोंच हुआ। केशलोंच के पश्चात् महाराज श्री के उपदेश से जैनी भाइयों ने अपने घरों में तथा जीमन में विलायती शक्कर के प्रचार को बंद कर खाने का त्याग किया और कितने ही भाईयों और बहिनों ने अपनी शक्ति के प्रमाण व्रत नियम लिए। यहाँ चातुर्मास में आपने शांति विलास संग्रह नाम की पुस्तक का संकलन किया जिसमें एक हजार सवैया और एक ही हजार दोहा अति ही उपयोगी शिक्षाप्रद हैं। यहाँ से आप भिलोदा होते हुए श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जी आकर दर्शन किए। फिर मुरेटी होते हुए गोरेल आये। यहाँ पर रायदेश के जैनी भाई भी महाराजश्री की वंदना करने के लिये आये थे। उन्होंने भी श्री महाराज के उपदेश से नियम और प्रतिज्ञायें ली। यहाँ से आप विहार कर ईडर आये।

यहाँ मगशिर सुदी 14 को आपका केशलोंच शहर के सरकारी स्कूल बोर्डिंग के सामने मैदान में हुआ उस समय रायदेश तथा कांटा के बहुत से भाई इकट्ठे हुए। यहाँ ईडर के सरस्वती भवन में 8500 हस्तलिखित प्राचीन शास्त्र मौजूद हैं और 17 ग्रंथ ताड़पत्र पर कर्नाटकी भाषा में लिखे हुए विद्यमान हैं। उसमें विद्यानुवाद ग्रंथ भी हैं। उसको आपके उपदेश से ईडर के जैनी भाइयों ने मुनि शान्तिसागर ग्रंथमाला नये सरस्वती भवन में स्थापित कर दिया है। यहाँ से महाराज ने श्री विहार कर तारंगा श्री सिद्धक्षेत्र की यात्रा की। यहाँ से दासणा, भादवा, नयावाल, दांता आदि गांवों में विहार करते हुए धर्मोपदेश देते हुए तीन भाईयों से विलायती शक्कर का खाना छुड़वाया और अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग कराया।

यहाँ से विहार कर चांपलपुर होते हुए दोरेल आये। यहाँ से आप बड़ाली, पार्श्वनाथ आये। यहाँ चतुर्थकाल की प्रतिमा अति ही मनोज्ञ दर्शनीय है। यहाँ से फड़िया दरा आकर दो चार दिन रहकर आपने धर्मोपदेश देकर अभक्ष वस्तु आदि का त्याग कराया। यहां पर आपके उपदेश से एक ब्राह्मण ने पंच उदम्बर व तीन प्रकार का त्याग किया। यहां से विहार कर चोटाखण, चोरीचाद, होते हुए मोरेल आये। यहां दो तीन दिन रहकर धर्मोपदेश दिया। जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। यहां से विहार कर पोसीना मुनाब होते हुए बज आकर धर्मोपदेश दिया। यहां से आप मीलोटा, दाकीर आ गये। इस ग्राम में एक मील के लगभग दूरी पर एक मंदिर है जिसमें प्राचीन काल की अति ही मनोज्ञ दर्शनीय प्रतिमा है उनका दर्शन किया। यहां से आप भीरोड़ा, घुडेटी होते हुए कुकडिये आये। यहां से ईडर होते हुए जादर, भद्रसेन, हमोड़ा, साबरी, और कोटडे आये। राय देश में मृत्यु होने के पीछे छाती कूटने की महानिंदा रीति थी, उसको बंद कराया। यहां से जामुड़ी नचा होते हुए महाराज श्री फतेहपुर आकर श्रावकों को धर्मोपदेश देकर सोनासन गये। यहाँ पर आपने चार दिन रहकर धर्मोपदेश दिया। फिर यहां से कितने ही गांवों में विहार करते हुए ओरणा होते हुए लाकरोड आये। यहाँ आपने चार दिन रहकर धर्मोपदेश दिया यहां एक लायब्रेरी है। यहां से सितवाडे होते हुए आपने अलुवे में आकर धर्मोपदेश दिया। आपका तारंगा क्षेत्र पर बहुत प्रभावक चातुर्मास हुआ। चातुर्मास में अनेक संस्थाओं का जन्म हुआ। सभी को खूब दान दिया गया। संस्थाओं का उद्घाटन कर आप गोडादर, बावलवाड़ा, ग्रामों में विहार

करते हुए खूणादरी आये। यहां पर श्री आदिनाथ भगवान की चतुर्थकाल की प्रतिमा अति ही मनोज्ञ दर्शनीय है उनके दर्शन कर भाणंदा होते हुए नवासाय आये। यहां पर जेठ बदी 9 को आपका केशलोंच हुआ। उस समय खड़क के सब जैनी भाई आये थे। उन लोगों ने आपके उपदेश से सिगरेट, बीड़ी आदि व रात्रि का भोजन करना त्याग किया। यहां से महाराजश्री विहार कर देवल गांव होते हुए सूरपुर आये। यहां पर चतुर्थकाल की प्रतिमा का दर्शन कर डूंगरपुर आये वहां से बेलीवाड़े पधारे। खड़क के बाइयों को काले कपड़े बदलकर लाल या सफेद पहिनकर श्री भगवान के दर्शन करने का नियम दिलाया। यहां से आप विहार करते हुए नागफणी पार्श्वनाथ जी आये। यह स्थान पहाड़ों के बीच स्थित है जिसके चारों तरफ जंगल है। यहां के दर्शन कर टाक चिलोटा, चिन्तामणी पार्श्वनाथ हुअेटी होते हुए मोरेल आये। यहां ईडर के श्रावक भाई आपको चातुर्मास ईडर में करने के लिए लेने आये। सो यहां उनके साथ आषाढ़ सुदी अष्टमी को ईडर आकर के यहां चातुर्मास करना निश्चित किया। द्वितीय श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को श्री महाराज का केशलोच मंदिर जी के हाल में हुआ। यहां तीन मंदिर गांव में तथा एक पहाड़ पर हैं। यहॉ 10-12 चैत्यालय भी हैं। सेठ केवलचंद राव जी के घर चैत्यालय है जो मंदिर जैसा है। शुद्धता के साथ उसकी पूजा करते हैं।

जयपुर

डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल
(अनुवादक)

प्रशान्त मूर्ति आचार्य श्री शान्तिसागर (छाणी) व्यक्तित्व एवं कृतित्व

मेवाड़ (राज.) प्रान्त की पावन भूमि के दक्षिणी भाग में उदयपुर झीलों की नगरी से 40 मील दूर केशरिया जी सुप्रसिद्ध तीर्थ है। केशरिया जी तीर्थ से दस मील दूरी पर खेरवाड़ा तहसील है, यह खेरवाड़ा तहसील मेवाड़, बागड़, खड़ग प्रान्त के मध्य व्यापार का केन्द्र एक सुन्दर कस्बा है, यहां पर वर्तमान में जैन समाज की अच्छी बस्ती हो गई है, दो दिगम्बर जैन मंदिर है। इस खेरवाड़ा ग्राम से केवल पांच मील की दूरी पर खेरवाड़ा और विजयनगर के मध्य छाणी नाम का सुन्दर गांव है। यही छाणी गांव हमारे चरित्र नायक स्व. आ. 108 श्री शान्तिसागर जी महाराज का जन्म स्थान है। इसी कारण छाणी ग्राम को देश में प्रसिद्धि प्राप्त हुयी। छाणी गांव के बाहर एक किलोमीटर दूरी पर श्री महावीर भगवान का एक अतिशय क्षेत्र है।

मेवाड़ का महावीर जी अतिशय क्षेत्र

श्री महावीर स्वामी का प्राचीन भव्य मंदिर लोगों को दूर ही से आकर्षित करता है, प्रतिमा पर संवत् 1501 का लेख है। इस मंदिर की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा विक्रम संवत् 2001 में भट्टारक यशकीर्ति द्वारा बड़ी धूम-धाम से हुई थी। इस मंदिर के पास ही एक छोटी सी सुरम्य पहाड़ी है, जिस पर एक छोटा जिन मंदिर है उसमें इन्हीं आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज की प्रतिमा खड़गासन के रूप में स्थापित है, नीचे तक सीढ़ियां बनी हुई है। वर्तमान में भगवान महावीर स्वामी के मंदिर में कांच का सुन्दर काम समाज ने कराया है, जिसमें स्थान विस्तृत हो गया है। यात्रियों की सुविधा के लिये धर्मशाला का निर्माण हो रहा है। दूर-दूर से यात्रीगण इस तीर्थ के दर्शन करते आते हैं। महावीर स्वामी के इस अतिशय क्षेत्र से भी छाणी ग्राम की शोभा व प्रसिद्धि है। इस क्षेत्र के मंदिर में विराजमान भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा बड़ी मनोज्ञ एवं अतिशय वाली है।

आचार्य श्री का जन्म

इसी छाणी ग्राम में करीब 100 वर्ष पूर्व हूमड़ जाति के देदीप्यमान नक्षत्र दिगम्बर जैन श्रावक श्री भागचन्द जी जैन नाम के सद्गृहस्थ रहते थे, उनकी भार्या का नाम श्रीमती माणिक बाई था जिसे भजनों में मणिकाबाई के नाम से प्रसिद्धि मिली हुई है इसी माणिकबाई की कुक्षी से कार्तिक वदी 11 विक्रम संवत् 1945 के हस्तनक्षत्र में एक सुन्दर बालक का जन्म हुआ। यही बालक आगे चलकर आचार्य 108 श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) उत्तर भारत के नाम से देश में प्रसिद्धि प्राप्त कर स्वपर कल्याण कर गया। जिस प्रकार पाषाण की खान से हीरा निकलता है उसी प्रकार एक अल्प शिक्षित समाज में एक नर रत्न का जन्म हुआ। आज भी उनके समाधिमरण के पचास वर्ष पश्चात् हम उन्हें स्मरण कर उनका वंदन करते हैं। धन्य है उस महान् आत्मा को जिसकी शिष्य परंपरा वर्तमान में विशाल रूप में चल रही है।

बाल्यकाल

चरित्र नायक केवलदास एक होनहार बालक थे, माता-पिता और परिवार को अत्यन्त प्रिय थे। सभी बच्चों की तरह ही इनका पालन-पोषण हुआ, धीरे-धीरे दूज के चन्द्रमा की तरह वृद्धि को प्राप्त होने लगे, गांव की मिट्टी में अन्य लड़कों के साथ खेलते। जब कुछ बड़े हुए तो शिक्षा पाने की उम्र में पढ़ाई का साधन नहीं होने से कोई विशेष पढ़ाई नहीं कर पाये, साधारण पढ़ना और पट्टी पहाड़े या जोड़ बाकी आदि पढे। 15 वर्ष की छोटी उम्र में सामान्य रोजगार तथा नौकरी करने लगे इस प्रकार आपकी बाल्यावस्था व्यतीत हो गई। जब 29 वर्ष की उम्र को पहुंचे तब आपकी माताजी का स्वर्गवास हो गया। माता के वियोग से आपको भारी शोक हुआ किन्तु संसार की असारता व मृत्यु को अवश्यंभावी जानकर आपने धीरज का आश्रय लिया।

स्वप्न दर्शन

इन्हीं दिनों रात्रि को केवलदास ने दो स्वप्न देखे। एक स्वप्न तो श्री सम्मेदशिखर जी की यात्रा का था और दूसरा बाहुबली की पूजन करते हुए अपने को स्वयं बहुत सी सामग्री भगवान को चढ़ाते हुए देखा। दोनों स्वप्न शुभ थे और तीर्थ यात्रा का संयोग प्राप्त होने का उनका फल था।

एक दिन केवलदास के बहनोई बाँकानेर (गुजरात) के निवासी जिनका नाम गड़िया गुलाबचंद पानाचंद था उन्होंने केवलदास को भगवान नेमिनाथ का विवाह सुनाया, इसे श्रवण करने से केवलदास के हृदय में कुछ वैराग्य की ज्योति जगने लगी और संसार भोगों से विरक्ति और उदासीनता के भाव अंकुरित होने लगे। आपके धार्मिक भाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगे। छाणी में पंचोली रूपचन्द्रजी प्रतिदिन स्वाध्याय करते थे आप उनके द्वारा पढ़े जाने वाले शास्त्र सुनने लगे इससे शास्त्र श्रवण व पठन की तरफ आपकी रुचि बढ़ने लगी और संसार की असारता के भाव हृदय में हिलोरे मारने लगे।

आपके एक संबंधी बम्बई निवासी श्री लल्लूभाई लक्ष्मीचंद चौकसी एवं श्रीप्रेमचंद जी मोती चंद जी की धर्मपत्नी चम्पाबाई के लड़के श्री रतनचंद जी ने केवलदास को विषापहार स्तोत्र, आलोचना पाठ और रत्नकरण्ड श्रावकचार की एक एक प्रति पढ़ने के लिये दी। केवलदास को इन पुस्तकों के पढ़ने में रुचि उत्पन्न हुई और वे उन्हें ध्यान से पढ़ने लगे। कम पढ़ा वह केवलदास धर्म पुस्तकों के प्रथम बार पढ़ने से धर्म रुचि को बढ़ाने में तत्पर होने लगा, उसकी धर्म की जिज्ञासा बढ़ने लगी तथा कुछ भावों में धार्मिक जागृति उत्पन्न हुई।

परिवार

केवलदास के एक बड़े भाई थे जिनका नाम खूमजी भाई था। दो बहिने थी, माताजी का स्वर्गवास हुआ, पिताजी अभी विद्यमान थे। बस छोटा परिवार था। सामान्य रोजगार करने से घर का खर्च चलता था, किन्तु केवलदास की संसार में रुचि नहीं होने से गृहकार्य और व्यापार आदि से उदासीन रहा करते थे। कारण यह था कि भाग्य में कुछ और लिखा था अतः वे कहीं विरक्ति के भावों में अपने को खोने लगे थे, पर मार्ग आगे का क्या है यह सूझ नहीं रहा था पुनर्रांप संयम की तरफ कदम धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। स्वप्न का फल पूछने पर बहनाई पानाचंद जी ने शुभ बताया था इससे भी वे गृह से उदासीन रहने लगे। कम ज्ञान होने पर भी शास्त्र स्वाध्याय में मन लगाते और धर्म ज्ञान बढ़ाने लगे।

एक दिन केवलदास स्वतः श्री केशरिया जी की यात्रा करने चले गये, वहां पर मंदिर के सब भगवानों की वंदना कर मूलनायक श्री ऋषभदेव की

प्रतिमा के सन्मुख ब्रह्मचर्य व्रत का सहसा नियम ले लिया अर्थात् जीवन भर के लिये विवाह नहीं करने का नियम लिया। घर आने पर पिताजी नाराज हुए और विवाह करने की प्रेरणा करने लगे। केवलदास अपने व्रत पर तन, मन और वचन से पूरे दृढ़ थे उन्होंने सर्वथा इंकार कर कहा मैंने ऋषभदेव भगवान के सम्मुख प्रतिज्ञा की है कि मैं जीवन भर विवाह नहीं करूंगा-बस पिताजी का आग्रह असफल रहा और उनके प्रयत्न विवाह कराने के सब धरे के धरे रह गये।

व्रतों की ओर

एक दिन शास्त्र श्रवण करते समय आपने नंदीश्वर द्वीप के व्रत का वर्णन सुना तो आपने नंदीश्वर व्रत करना प्रारंभ कर दिया। यह व्रत 108 दिन का था, जिसमें एक दो उपवास और एक दो पारणा करने तथा बीच में दो दो उपवास भी करने थे, इस प्रकार 5-6 उपवास और 5-7 पारणा कर आपने अपने धार्मिक जीवन का शुभारंभ किया।

तीर्थ यात्रा के भाव

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के भाव केवलदास के उत्पन्न हुए, पिताजी से आज्ञा मांगी, पिताजी ने कहा मैं तीर्थ यात्रा के लिये कोई पैसा नहीं दूंगा और न आज्ञा दूंगा-हां तू विवाह करना स्वीकार कर ले तो विवाह का सब खर्च करने को तैयार हूं। केवलदास की तो विवाह के नाम से अरुचि हो गई थी वे तो भोगों को भुजंग के समान समझने लगे थे। अतः विवाह का सर्वथा इंकार करते हुए आपने अपनी प्रतिज्ञा को दुहराई, तब पिताजी निराश हुए किन्तु केवलदास ने तो यात्रा की मन में ठान ली थी। पिताजी ने खर्च के लिये केवल रुपये 5/- दिये यही पांच रुपये लेकर यात्रा करने घर से निकल पड़े और सर्वप्रथम सब संबंधियों से आप मिलने गये।

पुनः स्वप्न दर्शन

मार्ग में जाते हुए कणिआदरा गांव में ठहरे। रात्रि को स्वप्न आया, दो आदमी केवलदास से स्वप्न में कहते हैं कि उठो, संसार में क्यों डूबते हो। इतना कहकर वे गायब हो गये। आंख खुली उठे और सामयिक कर आगे

चलने के लिए रवाना हो गये। यहां से 6 मील दूर चिंतामणि पार्श्वनाथ का मंदिर है आप वहां पहुंचे और दर्शन कर आनंद को प्राप्त हुए। उस दिन केवलदास के नंदीश्वर द्वीप का व्रत का उपवास था। यहां अपने बहनाई पानाचंदजी से स्वप्न का फल पूछा व उन्होंने उत्तम बताया। वहां से चलकर अपने अन्य संबंधियों से मिलने गये, सबसे क्षमा मांगी और कहा कि अब मेरा इधर इस रूप में आना इसके बाद नहीं होगा। इससे ज्ञात होता है कि उनके मन में उस समय भी साधु बनने के अंतरंग में भाव बन रहे थे। परिवार के लोगों ने केवलदास को एक एक रुपया और नारियल भेंट देकर यात्रा के लिये विदाई दी। वहां से केवलदास पुनः छाणी गये और पिताजी से पुनः आज्ञा मांगी तब पिताजी ने मजबूरी से आज्ञा दी। उस समय केवलदास ने भाई बंधु बहिन परिवार व पिताजी से सबसे क्षमा याचना की और शिखर जी यात्रा के लिये प्रस्थान करने की पूर्णतः तैयारी कर ली। उस समय केवलदास के पास रुपये 5/- तो पिताजी ने दिये और कुटुम्ब सगे सम्बन्धियों के मिलाकर 22/- रुपये थे इन बाईस रुपयों पर केवल आप सम्मेदशिखर की यात्रा के लिये चल दिये।

शिखरजी की यात्रा को प्रयाण

सर्वप्रथम श्री केशरियाजी की यात्रा, दर्शन किये वहां से उदयपुर गये उदयपुर से रेल द्वारा, अजमेर, जयपुर, मथुरा, बनारस होते हुए ईसरी पहुंचे ईसरी से शिखरजी पहुंचे तक मधुवन की धर्मशाला में ठहरकर सब पर्वतों की वंदना करने पहाड़ पर गये। वंदना करते समय केवलदास भक्ति से गदगद हो गये। भाव विभोर होकर पर्वत पर ही रह जाने के भाव करने लगे पर पर्वत पर ठहरे नहीं वंदना कर मधुवन आ गये। इसी प्रकार दूसरी वंदना भी भाव से कर ली तीसरी वंदना में वंदना करते समय अपनी सरल प्रकृति से भावुकता में आकर प्रत्येक पर्वत के टोंक पर भगवानों से हाथ जोड़ प्रार्थना करते जाते थे कि हे भगवन्तों ! मैं पार्श्वनाथ भगवान की टोंक पर ब्रह्मचर्य दीक्षा लूंगा आप सब वहां पधारिये। जब सब टोंक की वंदना करते हुए सुवर्णभद्र कूट (भगवान पार्श्वनाथ मोक्ष स्थान) पर पहुंचे तब दर्शन पूजन कर विनय से भगवान की स्तुति की और भगवानों से बात करने लगे। हे भगवानों! मैं ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा लेना चाहता हूं, आप मुझे ब्रह्मचर्य प्रतिमा के व्रत की

दीक्षा दीजिये। ऐसा कहकर शरीर के कपड़े धोती दुपट्टे को छोड़कर सब उतार दिये और मस्तक तथा चोटी के कुछ बाल उखाड़ दिये। इस प्रकार दिनांक 1 जनवरी सन् 1919 में ब्रह्मचर्य प्रतिमा की दीक्षा केवलदास ने ग्रहण की। अब वे साधारण श्रावक से ब्रह्मचारी केवलदास कहलाये।

उस समय मधुवन की धर्मशाला में आये और जो भी कपड़े उतारे थे तथा पास में थे उन सबको गरीबों में बांट दिये। उन्हें ब्रह्मचर्य प्रतिमा के व्रती के अनुकूल धोती दुपट्टा रखना पड़ा। अब ब्रह्मचारी केवलदास के पास खर्च के लिये केवल रुपये 3/- तीन रुपये बचे। बड़ी बीसपंथी कोठी से डेढ़–डेढ़ रुपये लेकर वे पावापुरी पहुंचे। पावापुरी, राजगृही, कुण्डलपुर व गुणावा तीर्थों की वंदना करते हुए बनारस पहुंचे।

बनारस जाते समय टिकट के लिये पैसे कम पड गये तम मुनीम जी से चार आना लेकर जिस किसी भी तरह बनारस आकर स्याद्वाद महाविद्यालय में ठहरे। अब वहां ब्र. केवलदास के पास केवल एक पैसा बचा था इतने पर भी उनमें तीर्थ यात्रा करने के अपने संकल्प को नहीं छोड़ा ओर उसे पूर्ण किया। धन्य हैं ऐसे दृढ संकल्पी व्यक्ति को।

एक और स्वप्न

बनारस के स्याद्वाद विद्यालय में आप छः दिन ठहरे, एक दिन रात्रि को स्वप्न में एक सोलह वर्ष की लड़की एक पुस्तक देते हुए ब्र. केवलदास से बोली यह पुस्तक तुम ले लो इससे तुमको बहुत सी विद्या आ जायेगी। इतना कहकर कन्या चली गई। विद्यालय के मंत्री जी ने आप को ओढ़ने के लिए एक धोंसा (चद्दर) प्रदान की और 15/- रुपये देकर बंबई का टिकट दिलवा दिया फलतः आप बनारस से अब बंबई पहुंचे, वहां सेठ माणिकचंद पानाचंद, प्रेमचंद मोतीचंद के बंगले पर ठहरे, वहां पर लल्लू भाई लखमीचंद ने आपको आहार कराके रुपये 5/- रुपये भेंट किये तथा चम्पाबाई ने 2 धोती और 2/- रुपये दिये, इस द्रव्य से आप बंबई से अहमदाबाद आये। आपके पास केवल रुपये 3/- बचे थे। दो रुपयों से एक पछेवड़ी (दुपट्टा) ले लिया अब केवल रुपया एक पास में रहा था।

श्री सम्मेदशिखर जी तीर्थ पर आपने अपने पास केवल 5/- रुपये रखने का नियम लिया था किन्तु तीर्थ के लिये अधिक द्रव्य की छूट रख ली थी।

अहमदाबाद से आप ईडर, गौरल में चिन्तामणि पार्श्वनाथ के दर्शन कर अपने बहनोई श्री पानाचंद जी के पास बांकानेर आये।

अपने गांव में ब्रह्मचारी जी का स्वागत

बांकानेर में मंदिर जी में चार दिन ठहरकर वहां से श्रीपानाचंद जी बहनोई के साथ अपने गांव छाणी पधारे, आप तो गांव के बाहर श्री महावीर स्वामी के मंदिर में ठहरे और पानाचंद जी ने छांणी गांव में जाकर सबको सूचना दी कि केवलदास शिखरजी की वंदना कर सप्तम प्रतिमा के व्रत लेकर ब्रह्मचारी बनकर आपके गांव में आये हैं। गांव के जैनियों ने एक जिज्ञासा जागी अपने गांव के व्यक्ति को व्रती के रूप में दर्शन करने गांव के लोग उमड़ पड़े और गाजे बाजे के साथ जय जयकार करते हुए आकर ब्रह्मचारी जी से गांव में पधारने की प्रार्थना की और बड़े आदर और सम्मान के साथ आपको गांव में ले गये। यहां पर गांव के लोगों ने केवलदास को ब्रह्मचारी के रूप में देखकर बहुत प्रसन्नता प्रगट की। सब बड़े हर्षित हुए। पंचोली रूप चंद जी के यहां आहार हुआ। रूपचंद जी ने यहां आपको शास्त्र स्वाध्याय कराया, आठ दस दिन आपसे ब्रह्मचारीजी ने कुछ पढ़ाई की और शास्त्र का ज्ञान बढ़ाया।

पिताजी को धार्मिक प्रेरणा

केवलदास जी के पिताजी श्री भागचंद जी धर्म के प्रति उदासीन व्यक्ति थे, इनकी क्रियाएं भी ठीक नहीं थीं, आपने पिताजी को प्रेरणा कर गिरनार जी की यात्रा के लिये किसी तरह तैयार किया और अपने साथ पिताजी को लेकर यात्रा के लिये गिरनारजी की तरफ आप प्रस्थान कर गये। पुण्यवान आत्मायें अपना भी उपकार करती हैं और दूसरों का भी उपकार करने में नहीं चूकती हैं। पिताजी मिथ्यात्वी और पुत्र सम्यग्दृष्टि और व्रती यह कैसा संयोग था। किन्तु पुत्र एक ऐसा हीरा था जिसका मूल्य उस समय घर में कोई नहीं कर सका था।

गिरनार जी की वंदना कर आपने पिताजी को सत्त व्यसन और रात्रि भोजन का त्याग कराया, तथा प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने की प्रतिज्ञा दिलवाई। गिरनार जी से शत्रुंजय जिसे पालीताना कहते हैं वहां के

तीर्थ की यात्रा कर आप ईडर होते हुए चोटीवाड़ पहुंचे, वहां से पिताजी को घर के लिये रवाना कर आप गुजरात में ही विहार करने ठहर गये।

चोरीवाड़ से आप मोरले आये, यहां ऐलक पन्नालाल जी मिल गये, ऐलक जी के साथ बारामती और सोलापुर चले गये, कुछ विद्या का लाभ नहीं होने से पुनः गोरेल आकर चातुर्मास किया। यहां भाद्रपद में 17 उपवास किये बीच में सिर्फ तीन बार पानी दिया। अष्टाह्निक पर्व आने पर आठों उपवास किये। आपको व्रत उपवास करने का बहुत अच्छा अभ्यास हो गया था।

कार्तिक शुक्ला 11 को सामयिक करने के पश्चात् आप एक तख्त पर लेट रहे थे कि एक बड़ा सांप और उसके पीछे एक कुत्ता दौड़ा हुआ आया तो महाराज की सहसा आंख खुली, आपने कुत्ते को हाथ के संकेत से भगाया और सांप तख्त के नीचे लोटने लगा कुछ देर बाद सांप भी वहां से चला गया। इस प्रकार सांप और कुत्ते दोनों के प्राण बच गये।

गोमटेश्वर की यात्रा

गोरेला के जैनी भाई आपको साथ लेकर गोमटेश्वर (श्रवणबेलगोला) जहां बाहुबली भगवान की 57 फुट ऊंची विशाल अद्वितीय सुरम्य प्रतिमा है वहां गये। वहां की वंदना कर कई स्थानों में विहार करते हुए पुनः ईडर पधारे और वहां पर द्वितीय चातुर्मास किया। यहां पर श्री पं. नंदनलालजी के पास कुछ विद्या पढी। यहां पर आपने इस चातुर्मास में 32 दिन के उपवास किये।

एक और स्वप्न

एक रात्रि को यहां पर आपने दो स्वप्न देखे। वह चतुर्दशी की रात थी पहले स्वप्न में बहुत से स्त्री-पुरुष देवों के समान दिखायी दिये, बाजार में जाते हुए उन सभी पुरुषों ने आपको देखा और उन पर पुष्पों की वृष्टि की और जयजयकार शब्द का उच्चारण किया।

पुनः तीर्थ यात्रा

ईडर के भाईयों ने आपकी तीर्थ यात्रा का पूरा प्रबन्ध किया फलतः आप गुजरात के तीर्थ आबू, तारंगा, गिरनार आदि की वंदना करते हुए बंबई होकर दक्षिण भारत के तीर्थों के यात्रार्थ गये। दक्षिण में पूना सीमगा, तिरथली होते हुए मूड़बद्री जहां रत्नों की प्रतिमाये व धवला ग्रंथ विद्यमान है। आ पहुंचे। वहां आठ दिन रहे, वृहद अभिषेक वहां हुआ, बड़ा आनन्द रहा। मूड़बद्री से

बेलूर के बाहुबलि भगवान के दर्शन कर आप पुनः मूलबिद्री, मैगलोर, बैगलोर होते हुए मैसूर पधारे। मैसूर से श्रवणबेलगोला की यात्रा करते हुए आप हुबली आये। वहां से सोलापुर होकर कुन्थलगिरी सिद्ध क्षेत्र जहां देशभूषण, कुलभूषण मुनि मोक्ष गये हैं वहां आये। वहां की वंदना कर मांगीतुंगी और गजपंथा आये। इन यात्राओं में कलकत्ते के सेठ लक्ष्मीनारायण जी और श्री पंडित झम्मन लाल जी तर्कतीर्थ का समागम आपको मिला।

पश्चात् कलकत्ता, दिल्ली, हस्तिनापुर, कानपुर, वबनार से होते हुए श्री सम्मेदशिखरजी आप पधारे। यहां पर तीन वंदना कर आप कलकत्ता भागलपुर, चंपापुर, मंदारगिरि, नबादा, गुणावा, पावापुरी, कुण्डलपुर की यात्रा करते हुए राजगृही (पंचपहाड़ी) पधारे। यहां तीन दिन ठहरकर पांचों पर्वतों की वंदना की। यहां के प्राकृतिक गरम जल के कुण्डों में स्नान कर यात्री अपनी थकावट दूर करते हैं। यहां से पुनः बनारस, श्रेयांसपुरी (सारनाथ) चन्द्रपुरी के दर्शन कर आप अयोध्या आये। यहां के दर्शन कर आप कानपुर, झांसी होते हुए सोनागिरि पधारे। सोनागिरि के पर्वत पर के सब मंदिरों व नीचे के मंदिरों के दर्शन कर मथुरा आप आये। यहां चौरासी क्षेत्र में जम्बूस्वामी के दर्शनकर जयपुर होते हुए अजमेर आये। यहां तीन दिन ठहरे। यहां पर मुनिराज चन्द्रसागर जी व ऐलक पन्नालाल जी के आपको दर्शन हुये। अजमेर से अहमदाबाद, औरान, ईडर होते हुए केशरियाजी आये, यहां से पुनः ईडर आकर चातुर्मास किया, पर्यूषण पर्व में यहां 10 उपवास किये। फिर गुजरात व मेवाड़ के गांवों में विहार करते हुए पुनः केशरियाजी के दर्शन कर देवल पधारे। देवल में उनके मामा रहते थे, मामी को उपदेश देकर मिथ्यात्व छुड़ाया। देवल से वाग्वर प्रान्त के गांवों में विहार करते हुए सागवाड़ा आये, यहां गमनीबाई नाम की एक धर्मात्मा बाई रहती थी उनके यहां आहार किया। वहां से नौगामा बागीदौरा होकर कलींदरा आये यहां जंगल में श्री पार्श्वनाथ भगवान का एक अतिशय क्षेत्र है उनके दर्शन कर पुनः बागीदौरा आये, यहां एक पंडित माणिकचंद जी रहते थे उनसे शास्त्र चर्चा की यहां स्वाध्याय व उपदेश का अच्छा आनंद रहा वहां से नौ गांव, ढलुकी होकर आप गढ़ी आये।

क्षुल्लक दीक्षा

बांसवाड़ा जिले में परतापपुर के पास गढ़ी एक कस्बा है यहां हूमड़ जाति के अच्छे घर हैं, जिन मंदिर है, जब ब्र. केवलदास गढ़ी आये वह समय सन् 1922 विक्रम संवत् 1979 का था। यहां पर श्री कस्तूरचंदजी ने ढाई द्वीप का मांडला मंडवाकर बड़े ठाटबाट से पूजन करवाई, यहां पर आसपास के रहने वाले बहुत से जैनी भाई आये, बड़ी धूमधाम से धर्म प्रभावना हुई। एक दिन रात्रि को आपने पांच स्वप्न देखे। पहले स्वप्न में एक गाय दो आदमियों को दौड़कर मारती हुई देखी, आपने गाय को रस्सी से बांध दिया। दूसरे स्वप्न में बहुत सी जयमालायें सूतकी देखी, आपने उन जयमालाओं को सब आदमियों को जाप करने के लिये बांट दी। तीसरे स्वप्न में काष्ठ का कमण्डल देखा चौथा स्वप्न था जिसमें बहुत से आदमियों के साथ अपने को जिन मंदिर जाते हुए देखा। पांचवें स्वप्न में जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये। उक्त स्वप्न आपके भावी दिगम्बर मुनि बनने के संकेत दे रहे थे। आपने रात्रि के स्वप्न का हाल वहां के जैनी भाईयों से कहा, सब स्वप्न के हाल सुनकर प्रसन्न हुए आपने सबसे कहा मैं आज ही क्षुल्लक बनना चाहता हूँ बस फिर क्या था आपने अपने को पूर्ण रूप से क्षुल्लक पद के लिये तैयार कर लिया, कोई दीक्षा देने वाले गुरू आसपास व दूर दूर तक नहीं थे तब आप ही अपने गुरू बने और दिन के दो बजे बड़ी धूमधाम और गाने बाजे के साथ जुलूस के रूप में शहर से चलकर गांव के बाहर एक बगीचे में आ गये, उस समय वहां बांसवाड़ा के सेठ बालचंदजी भी आ गये थे। बगीचे में वृक्ष की छाया में दीक्षा विधि की सब तैयारी कर रखी थी। आपने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण से पूर्व खड़े होकर उस समय समस्त समाज से प्रार्थना की कि हम इस समय क्षुल्लक दीक्षा लेना चाहते हैं, कृपा कर समाज इस की स्वीकृति दीजिये। समाज के मन गदगद हो गये सबने दीक्षा की स्वीकृति दी। इससे पूर्व किसी को दीक्षा लेते हुए देखा नहीं था अतः सब निर्मिमेष नेत्रों से आपको क्षुल्लक बनते देख रहे थे। एकाएक जयध्वनि आकाश में गूंज उठी। भगवान आदिनाथ के समक्ष आपने बहुत शीघ्र मस्तक व दाढ़ी के बाल उखाड़ कर केश लोंच कर दिया और ब्रह्मचर्यावस्था के धोती दुपट्टा उतारकर एक कोपीन और चादर धारण कर आप पूर्णतः ग्यारह प्रतिमाधारी क्षुल्लक बन गये। अब आप 105 श्री क्षुल्लक शान्तिसागर जी के नाम से श्रद्धास्पद बन गये।

क्षुल्लक बनने के पश्चात् परतापुर की समाज ने गढ़ी आकर आपको चातुर्मास का निमंत्रण दिया, फलतः आप परतापुर विहार कर गये और वहां चातुर्मास किया। यहां पर आपने 32 दिन के उपवास किये।

अतिशय

यहां पर एक चमत्कार हुआ कि भाद्र शुक्ला 14 रात्रि को ताले लगे बंद मंदिर में स्वतः नगाड़े बजने लगे और उन दिनों गांव में प्लेग था सो समाप्त हो गया। इससे क्षुल्लक जी के पुण्य का प्रभाव लोगों पर पड़ा और लोगों की आपके प्रति श्रद्धा में वृद्धि होने लगी। फिर वहां से आप अरथूणा गये वहां के जागीरदार ने मांस मदिरा त्याग किये और वहां जो भैंसे की बलि पास के बुकिया गांव में होती थी वह बलि बंद करवाई। ठाकुर साहब ने जिन मंदिर की प्रतिष्ठा कराके प्रतिमा विराजमान कराई। उन दिनों वहां आपका केशलोंच हुआ, पांच हजार जनता एकत्रित हुई थी। आपके उपदेश के प्रभाव से अनेक भील वगैरह जाति के लोगों ने मांस मदिरा का त्याग किया। वहां से विहार कर आप टाकटुंका, चिन्तामणि पार्श्वनाथ, ईडर, तारंगाजी श्री केशरियाजी, नयागांव होते हुए छाणी पधारे, यहां एक सरस्वती भंडार खुलवाया। वहां से विजय नगर, देरोल बड़ाली पार्श्वनाथ होते हुए पुनः ईडर आये। ईडर से आसपास के गांवों में विहार करते हुए आप पुनः सागवाड़ा आये।

सागवाड़ा यह स्थान आचार्य शांतिसागर जी का श्रावक अवस्था से लेकर ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, मुनि और आचार्य अवस्था में हर प्रकार से आपके धर्मसाधना का केन्द्र रहा है। यहां पर उपदेश देकर एक श्राविकाश्रम की स्थापना करवाई वह दिन श्रावण शुक्ला पूनम संवत् 1980 का था।

मुनि दीक्षा

भाद्रमास चल रहा था सागवाड़ा की समाज धर्म लाभ ले रही थी अब भाद्र मास का पर्यूषण पर्व आया और क्षुल्लक जी के मन में वैराग्य की लहर दौड़ी और आप शीघ्र सम्पूर्ण परिग्रह त्याग मुनि बनने की तीव्र अभिलाषा करने लगे। सोचने लगे कब वह घड़ी आये कि मैं सर्वपरिग्रह त्यागकर मुनि बनूं। जिसकी आत्मा में वैराग्य की ज्योति जाग जाती है उसे कोई शक्ति संसार

में रोक नहीं सकती भाद्रपद शुक्ला 14 संवत् 1980 का आदिनाथ भगवान के मंदिर में सागवाड़ा की समाज की उपस्थिति में क्षुल्लक शांतिसागर जी महाराज ने कोपीन और चादर को उतार फेंका और जिनेन्द्र देव की साक्षी से आजीवन दिगम्बर मुनि व्रत को धारण कर लिया, अब आप पूज्य 108 श्री मुनिराज शांतिसागर बन गये। आपने सिंहवृत्ति को धारण कर उस युग में जहां उन दिनों त्यागी व व्रती के दर्शन दुर्लभ थे मुनि व्रत धारण कर मुनि धर्म का मार्ग प्रशस्त कर दिया जो कि बहुत वर्षों से रुका हुआ था। मुनि बनते ही आप गांव से आधा मील दूर एक पहाड़ी पर जाकर ध्यान मग्न होकर छः घंटे तक ध्यान लगाया। वहां सागवाड़ा के जैनी भाईयों ने आकर आपको वापिस वस्त्र धारण करने की प्रार्थना की इस पर आपने कहा कि मैंने तो वस्त्र जीवन भर के लिये त्याग किये है, मैं अब पुनः कैसे ग्रहण कर सकता हूँ क्या कोई वमन किये भोजन को पुनः भक्षण करता है? आपके दृढ़ निश्चय को देख समाज के भाई शांत हो गये। इस निर्भीक घोषणा को सुनकर जैन समाज झुक गया और उन्हें कसौटी में महाराज को खरा पाया तब प्रार्थना कर महाराज को गाजे बाजे के साथ बड़ी स्वागत से तालाब के पास वाले मंदिर के दर्शन करा नगर के मंदिर में ले आये। एक दिन मुनि बनने के पश्चात् रात्रि को आपने पांच स्वप्न देखे। पहला स्वप्न एक पहाड़ पर जिन चैत्यालय देखे, दूसरे स्वप्न में खिले हुए कमलों से भरा सरोवर देखा। तीसरे स्वप्न में श्वेत बैल, चौथे स्वप्न में एक बड़ा नाहर देखा। पांचवें स्वप्न में अपने ही मस्तक पर सूखे हुये बेर का कांटों का बोझ देखा। कांटों में किसी के आग लगा देने से वह सब जल गया। पहले चार स्वप्नों का फल तो आपके महात्मा बन यश प्राप्त करने का संकेत देता है और पांचवें का फल आपको अपने मार्ग में विघ्न व कठिनाइयां आने का संकते था किन्तु सब जल जाने का आशय यह है कि आप सभी विघ्न बाधाओं को पार कर मुक्ति पथ पर आगे बढ़ेगे। आप धर्म ध्यान से वहां चातुर्मास का समय समापन कर रहे थे-कि श्रावकों ने महाराज का नाम अमर करने व समाज में शिक्षा का प्रचार करने हेतु एक दिगम्बर जैन श्राविका श्रम खोला जिसका नाम मुनि शांतिसागर दि. जैन श्राविका श्रम रखा। इस आश्रम ने आज तक कई विधवाओं को उच्च शिक्षित बनाकर समाज में शिक्षा का भारी प्रचार किया है। इस प्रकार वर्षायोग समाप्त हो जाने पर महाराज वहां से विहार कर खड़गदा आये। अब आप

मुनि शांतिसागर जी नाम से प्रसिद्ध हो गये।

खड़गदा में क्षेत्र पाल जी का एक मंदिर गांव के बाहर है यहां पर आदिनाथ भगवान की प्रतिमा चूने में ढकी हुई है जिसे भील लोग सिंदूर पन्नी लगाकर पूजते थे। जैन समाज ने प्रतिमा को पटाने से बाहर निकलवा दी थी। प्रतिमा पूज्य है या नहीं? इसका निर्णय महाराज श्री के एक स्वप्न से हो गया और वहां बलि आदि का कार्य महाराज श्री की प्रेरणा से व राज्य की सहायता से सब बंद हो कर वर्तमान में एक जैन अतिशय क्षेत्र के रूप में यह स्थान बन गया है।

अब आप दिगम्बर मुनि के रूप में बागड़ के अनेक गांवों में विहार कर धर्म की ध्वजा फहराने लगे। वहां से प्रतापगढ़, जायरा तथा आसपास के अनेक गांवों में आपने विहार कर समाज की कुरूतियो को बंद करवाया, और जैन धर्म की जगह-जगह प्रभावना की। इधर कहीं दिगम्बर साधुओं के कभी दर्शन नहीं होते थे अब एक दिगम्बर तपस्वी व तेज वाले, पूर्ण संयमी साधु के दर्शन कर लोग अपने को भाग्यशाली समझते थे। इस बीच आप के पांव में भारी चोट आ गई इसे आपने शांति से सहन किया, इधर से चखाचरोद होते हुए आप चंद्रावल आये यहां मुनि राज चन्द्रसागर जी का संयोग मिला अब दोनों साथ-साथ विहार करने लगे। अब आप अनेक गांवों में विहार कर इंदौर पधारे। सरसेठ हुकुमचंद जी के यहां आपका आहार हुआ। सरसेठ साहब के प्रयत्न से यहां दिगम्बर जैन साधुओं का विहार निषिद्ध था सो अंग्रेज सरकार से रद्द करवाया जिससे दिगम्बर साधु शहर में बेरोकटोक आने लगे।

दोनों मुनि इंदौर छावनी में आये, यहां मंदिर की प्रतिष्ठा हो रही थी वहां आपके उपदेश हुये, फिर वहां से खण्डवा तथा अन्य गांवों में विहार कर आप बड़वानी सिद्धक्षेत्र पर आये।

बडवानी में उपसर्ग

बडवानी में कुछ धर्म विरोधी लोगों को दिगम्बर मुनि का आगमन अच्छा नहीं लगा और उन्होंने एक दिन ध्यान अवस्था में विराजे श्री मुनिराज शांतिसागर जी महाराज पर मोटर चला दी, और उन्हें मार देने का असफल प्रयास किया। महाराज ध्यानस्थ अवस्था में अचल रहे, मौन रखकर उपसर्ग सहन करने को उद्यत हो गये पर एक चमत्कार हुआ कि मोटर चलती-चलती

बन्द हो गई और टूट गयी आपके ध्यान का ही प्रभाव था, उपसर्ग करने वालों ने महाराज से क्षमा मांगी, आपने सब को क्षमा कर दिया, और राज्य दण्ड से उनकी रक्षा मांगी, ऐसी हैं जैन मुनियों की उत्तम क्षमा। फिर बड़वानी से विहार कर बीच के गांवों में विहार कर इन्दौर के पास लोहारदा आये। वहां आपने जैनियों के पंक्ति भोजन में जलेबी का भोजन बनाना बंदवा कर दिया। लोहारदा से सुसारी, झाबुआ, राणापुर, थान्दाला, कुशलगढ़ आदि गांवों में विहार करते हुए आप केशयरिया जी आये। यहां पर उन दिनों मंदिर के कर्मचारी पर श्वेताम्बर जैनों का प्रभाव था, मंदिर के सिपाहियों ने महाराज का कमण्डलु छीन लिया। फलस्वरूप आपने अनशन किया, सिपाही से क्षमा मांगी। महाराज अपने दृढ़ निश्चय पर अटल रहे, आखिर में मंदिर के अंदर कमण्डलु जाने लगा।

इन्दौर में चातुर्मास

फिर केशरिया जी से विहार कर बीच के बहुत से गांवों में धर्म प्रचार करते हुए प्रतापगढ़, मंदसौर होते हुए आप पुनः इन्दौर पहुंचे। सर सेठ हुकमचंद जी महाराज के परम भक्त थे। उन्होंने इन्दौर चातुर्मास में विद्वानों को रखकर महाराज श्री को पढ़ाया। आपने यहां कुछ भाषा और धर्म का ज्ञान प्राप्त किया। यहां पर इन्दौर में प्रतिदिन लश्करी मंदिर में शास्त्र सभा होती थी और सप्ताह में एक बार सार्वजनिक सभा होती थी। इस में इन्दौर के विद्वानों और पूज्य मुनि राज शांतिसागर जी के व्याख्यान व धर्मोपदेश होते थे। यहां पर चातुर्मास करने से धर्मोपदेश के अतिरिक्त विद्या अध्ययन और तत्व चर्चा का लाभ मिलने से महाराज ने इन्दौर का नाम इन्द्रपुरी रखा। श्री पं. खूबचंदजी प्रतिदिन आते और शंका समाधान कराते थे। जनता बहुत बड़ी संख्या में सभा में एकत्रित होती थी इस प्रकार इन्दौर का चातुर्मास महाराज का सफल चातुर्मास हुआ। दशलक्षण पर्व में श्री पं. माणिकचंद जी न्यायाचार्य मुरैना से एवं श्री पं. लक्ष्मीचंद जी लश्कर से आये थे, सूत्र जी के अर्थ व दशधर्मों पर व्याख्यान होते थे, श्रोताओं से सभा भरी रहती थी।

यहां पर हजारी लाल जी नाम से एक भव्य व्यक्ति जो कि सरसेठ सा. हुकमचन्द जी के यहां नौकरी करते थे, आपसे दीक्षा लेकर ऐलक बने और नाम उनका सूर्यसागर रखा, आगे जाकर ये ही सूर्यसागर आचार्य के नाम

से देश में प्रसिद्धि पाकर कल्याण कर गये।

बड़वानी में एक ब्रह्मचारी नंदकिशोरजी थे उन्होंने इन्दौर आदमी भेजकर मुनि बनने हेतु कमण्डलु पिच्छी मंगवायी। शांतिसागर महाराज ने तत्काल कमण्डलु पिच्छिका भिजवाई और दो चार विद्वान् भी भेजे। वहां विधि अनुसार उन ब्रह्मचारी जी की मुनि दीक्षा हुई और वे आनन्द सागर नाम से विख्यात हुए। यहां पर कई श्रावकों ने शुद्ध भोजन के नियम लिये तथा एक चौके से दूसरे चौके में आहार की सामग्री नहीं लाने के नियम लिये, संभवतः यह वर्ष सन् 1924 का था। यहां से मुनिराज शांतिसागर जी और ऐलक सूर्यसागर जी दोनों साथ-साथ विहार कर इन्दौर (छावनी) तथा सोनकर होते हुए हाटपिपली आये यहां पर शांतिसागर जी महाराज ने ऐलक सूर्यसागर को मुनि दीक्षा और ब्रह्मचारी सुवालाल जी को क्षुल्लक दीक्षा दी। क्षुल्लक जी का नाम ज्ञानसागर रखा। यहां पर दीक्षा समारोह में समाज ने बहुत दान दिया, और धर्म प्रभावना भी बहुत हुई।

अब यहां से दो मुनि व एक क्षुल्लक इस प्रकार तीनों साधु संघ में विहार कर अनेक गांवों में विहार करते हुशंगाबाद आये, यहां मुसलमानों की अधिक बस्ती होने से पुलिस का विहार में विशेष प्रबंध हुआ। यहां से भेलसा होकर आप भोपाल आये। यहां पर बेगम साहिबा ने मुनि महाराज के विहार में निषेध को रद्द करवाकर महाराज का निष्कण्टक विहार कराया। यहां पर बड़वानी से आकर आनन्द सागर महाराज भी मिल गये।

गौ रक्षा

एक दिन एक गाय को कसाई मारने के लिये ले जा रहा था वह गाय बंधन तोड़कर भागती हुई महाराज के पास आई, महाराज से अपनी रक्षा की याचना मूक भाव से करने लगी महाराज ने कसाई को रुपया दिलवाकर गाय को बचा लिया। यहां से अनेक गांवों में विहार करते हुए संघ बजरंगगढ़ आया यह बजरंगगढ़ गुना के पास मध्यप्रदेश में एक अतिशय क्षेत्र है जहां शांतिनाथ, कुंथुनाथ, आर अरहनाथ की विशाल खड़गासन प्रतिमाये हैं, यहां से विहार कर आपने थुवोनजी, और चंदेरी के तीर्थों की यात्रा वंदना की। चंदेरी में जैसी चौबीसी तीर्थकरों की प्रतिमाएं हैं ऐसी चौबीसी अन्यत्र कहीं नहीं हैं। यहां चौबीस ही प्रतिमाएं शास्त्रोक्त, एवं शरीर वर्ण के रंग की आकर्षक विद्यमान हैं। यहां से विहार करते हुए महाराज मुंगावली पधारे।

पशुओं की भक्ति

मुंगावली में एक दिन चालीस, पचास गाय बैल शांतिसागर महाराज के पास आकर महाराज की प्रदिक्षणा देकर नमस्कार कर शांतिभाव से चले गये। सबने यह अतिशय आंखों देखकर महाराज के तप का प्रभाव माना और लोगों की महाराज के प्रति श्रद्धा के भाव बढ़ गये।

यहां बड़वानीजी गणेशप्रसाद जी और महोपदेशक पं. कस्तूर चन्द जी भी आ गये। यहां पर भी एक बकरा अपने मालिक मुसलमान को छोड़ कर अपनी रक्षा के लिये शांतिसागर महाराज के पास आ गया। महाराज ने उसकी रक्षा कराके अभयदान दिया। यह बकरा महाराज के साथ-साथ बहुत दूर तक विहार करता रहा। सैनी पशु भी अपने आपको मारने वाले और बचाने वाले को पहचान जाते हैं और रक्षक की ही शरण में चले जाते हैं। यहाँ पर महाराज श्री का केश लोंच हुआ, पन्द्रह हजार के करीब लोग आये, महाराज के व विद्वानों के भाषण हुए बड़ी धर्म प्रभावना हुई, यहां से खुरई आये यहां श्राविका श्रम खुलवाया। यहां से बालावेहट, मालथौन आदि कई गांवों में होते हुए मडावरा साडूमल, महरौनी व पौरोजी अतिशय क्षेत्र में आये इस बीच आनन्दसागर जी मुनिराज व सूर्यसागर जी महाराज आकर मिल गये। यहां पर 75 मंदिर व चौबीसी भगवान के दर्शन कर महाराज टीकमगढ़ आये, यहां श्री पं. बंशीधर जी तथा कस्तूर चन्द जी के आ जाने से उपदेश का अच्छा प्रभाव पड़ा। यहां से बालावेहट आ गये। यहां पर श्री हरिप्रसाद जी मडावर वालों ने सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। यहां से आप ललितपुर पधारे, यहां क्षेत्रपाल जी के मंदिर में ठहरे। यहां से आप देवगढ़ अतिशय क्षेत्र के दर्शन करने गये। यहां पर एक आदिनाथ भगवान की प्रतिमा महाराज के कहने से लोग उठाने लगे पर वह कई आदमियों से भी नहीं उठी तब महाराज के स्पर्श करने मात्र से प्रतिमा हल्की हो गई, सरलता से उठा ली गई। और वह मंदिर श्री में वेदी पर विराजमान की गई।

ललितपुर का चातुर्मास

देवगढ़ से चंदेरी के दर्शनकर महाराज पुनः ललितपुर आये। यहाँ क्षेत्रपाल के मंदिर में शांतिसागर महाराज ने अपने संघ सहित चातुर्मास किया। सन् 1925 का वह वर्ष था। यहां चातुर्मास में बड़ी धर्म प्रभावना हुई। यहां पं.

मुन्नालाल जी खुरई वाले आ गये। बड़ा आनंद रहा यहां से महाराज ने मुनि आनंद सागर जी के साथ विहार किया, सूर्यसागर महाराज यहां से अलग विहार कर गये।

यहां से मार्ग के गांवों में विहार करते हुए महाराज दमोह होकर कुंडलपुर (बड़े बाबा) आये। यहां के मंदिरों के दर्शन कर बड़ी शांति मिली। यहां महाराज के दर्शन करने व उपदेश सुनने आसपास के बहुत से व्यक्ति आते थे। बहुत से व्यक्तियों को अनेक प्रकार के त्याग कराये व व्रत ग्रहण कराये। यहां से नैनागिरी और द्रोण गिरी क्षेत्र की वंदना पर महाराज वरुआ सागर आये, यहां से झांसी होते हुए दोनों महाराज भारत के सुप्रसिद्ध सिद्धक्षेत्र सोनगिरी तीर्थ आये। सोनगिरी की वंदना कर आप लश्कर आ गये। वहां पर कई मनुष्यों को अंग्रेजी दवाई व बीड़ी सिगरेट पीने का त्याग कराया। यहां एक कन्या पाठशाला खुलवाई। आनन्द सागर जी यहां से अलग हो गये। महाराज यहां से भिण्ड पधारे। यहां आश्रम खुलवाया, पहले से भी यहां कई संस्थाएं चल रही थी। भिण्ड से महाराज इटावा पधारे। ब्रह्मचारी प्रेमसागर जी महाराज के साथ में थे। इटावा से महाराज कानपुर पधारे, यहां कई श्रावकों ने महाराज के उपदेश से प्रभावित होकर कई व्रत ग्रहण किये। कानपुर में महाराज फूलबाग में ठहरे। यहां पर मुनीन्द्र सागर जी को मुनि दीक्षा दी गई। हैदराबाद की एक चंपाबाई ने सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये और बाई ने दो प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। यहां महाराज के प्रभाव से चतुर्थ कालीन समय होने लगा। लोगों ने कहा हमने आज तक ऐसे जैन साधु के दर्शन नहीं किये। धन्य हैं ऐसे साधु को।

कानपुर से बाराबंकी आये, यहां ब्र. शीतलप्रसाद जी से समागम हो गया, दोनों के उपदेश होते थे। यहाँ से दरियावाद होकर महाराज जी अयोध्याजी आ गये। यहाँ के मंदिरों के दर्शन कर महाराज जी गोरखपुर आये। मार्ग में जाते समय नदी के किनारे धीवरों ने करीब पांच हजार मछलियां पकड़कर नदी से बाहर निकाल रखी थीं, वे सब मछलियाँ तड़फ रही थीं, महाराज श्री ने दया से द्रवित होकर धीमरों को अहिंसा का उपदेश दिया, फलस्वरूप धीमरों ने सब मछलियाँ नदी में डाल दीं, जिससे सबकी रक्षा हो गई। धीमरों ने आगे से मछलियाँ नहीं मारने की प्रतिज्ञा की और मद्य मांस का त्याग किया और सबने अपने-अपने जालों को तोड़कर फेंक दिया। मार्ग में

एक और धीमर मिला उसने भी मछली मारने का व मद्य मांस भक्षण का त्याग किया।

गोरखपुर में सेठ अभिनंदन प्रसाद जी ने एक जिन मंदिर निर्माण कराके उन दिनों बिम्ब प्रतिष्ठा करवाई थी, जिसमें पं. बुधचंद जी शास्त्री राजकुमार जी शास्त्री, पं. किस्तूरचंद जी महोपदेशक, पं. सुन्दर लाल जी आदि विद्वान बाहर से पधारे थे। महाराज श्री एवं विद्वानों के भाषण से धर्म की बहुत भारी प्रभावना हुई। यहीं पर प्रतिष्ठा में गज रथ निकाला गया था, महोत्सव में 18 हाथी आगे थे। दीक्षा कल्याणक के दिन कुछ दीक्षाएं भी हुईं। सार यह है कि यह प्रतिष्ठा महोत्सव बड़े भारी पैमाने पर हुआ था। यहाँ से दोनों मुनिराज और ऐलक तथा क्षुल्लक बह्मचारी आदि महाराज जी के साथ विहार में थे।

एक गलत अफवाह

गाजीपुर और गोरखपुर के मध्य में किसी ने एक गलत अफवाह उड़ा दी कि शांतिसागर मुनिराज को किसी दुष्ट ने मार डाला, यह अफवाह दूरदराज तक शीघ्र फैल गई, कई जगहों से तार आये, कई स्थानों पर बाजार बंद रहे, कितने ही व्यक्तियों ने उपवास किये, बहुत से जैन भाई गोरखपुर पहुँचे, बहुत से मनुष्य महाराज के पास आये और महाराज को सकुशल देखकर बड़े प्रसन्न हुए। बड़ी कठिनाई से इस अफवाह का निराकरण हो सका।

उपसर्ग रुका

गाजीपुर और गया जी के बीच में एक मुसलमानों का गाँव पड़ा, वहां गाँव के एक मुसलमान के बगीचे में महाराज संघ सहित ठहर गये, केवल रात्रि को ही ठहरना था, उसी बगीचे में मुसलमानों की एक बरात आई थी, उनको दिगम्बर साधु का ठहरना अच्छा नहीं लगा, तब उन्होंने रात्रि को दिगम्बर साधुओं पर उपसर्ग कर उनके प्राण ले लेने का निश्चय किया। एक ब्रह्मचारी को इसकी भनक मिल गई, उसने महाराज को तत्काल यह स्थान छोड़ने की राय दी। किन्तु शांतिसागर महाराज ने कहा हम दिगम्बर जैन साधु रात्रि को विहार नहीं करते, चाहे प्राण भी क्यों न जायें। महाराज जी ने रात्रि को मौन खोलकर दूसरे साधु संतों से कहा हम सबको बड़े धैर्य से

इस उपसर्ग को सहन करना है, संघ रात्रि को वहीं रहा। किन्तु मुनि शांतिसागर जी के तप व त्याग के प्रभाव से उपसर्ग करने आये मुसलमानों के भाव सहसा बदल गये और सब साधुओं की वंदना कर चुपचाप किसी भी साधु को बिना मारे या बिना हानि पहुँचाये वहाँ से चले गये।

इस प्रकार उपसर्ग दूर हुआ या उपसर्ग हुआ ही नहीं, अब महाराज जी ने संघ सहित वहाँ से विहार किया और गया जी की तरफ अपने कदम बढ़ाये। मार्ग में ही गया जी के कुछ भाई महाराज जी को गया जी ले जाने के लिये आ गये, बड़ी श्रद्धा के साथ तीनों मुनियों को गया ले गये। गयाजी में आपसी समाज के मनमुटाव से मंदिर की प्रतिष्ठा नहीं हो रही थी। महाराज श्री शांतिसागर जी ने प्रयत्न कर समाज में एकता स्थापित की और समाज से प्रतिष्ठा कराना स्वीकार करा लिया। यहाँ से सम्मेदशिखरजी की तरफ प्रयाण किया। बीस पंथी कोठी के मैनेजर ने महाराज के स्वागतार्थ अनेक आदमियों के साथ हाथी भेजा, महाराज जी ने इसका विरोध किया, इस पर कोठी वाले बोले वहाँ पर सैकड़ों वर्षों से कोई दिगम्बर साधु आया नहीं, इससे हमको बड़ी प्रसन्नता होने से स्वागत हेतु हाथी लाये हैं इत्यादि। अब संघ सम्मेदशिखर जी आ गया, यहाँ दिगम्बर मुनि के पर्वत पर वंदना करने और वहाँ पर रात रहने पर श्वेताम्बरो की तरफ से उपसर्ग किया गया। किसी तरह महाराज श्री की तपश्चर्या के प्रभाव से उपसर्ग शांत हो गया। शिखरजी में विद्वान लोग भी आ गये। प्रवचन में श्रोताओं की भीड़ रहती थी। शिखरजी से महाराज जी गिरीडीह पधारे।

गिरीडीह में चातुर्मास

विक्रम संवत् 1983 संभवतः ईस्वी सन् 1926 में श्री शांतिसागर जी महाराज (छाणी) और मुनीन्द्र सागर जी का चातुर्मास गिरीडीह (बिहार) श्री सम्मेदशिखरजी तीर्थ के समीप ही समाज की प्रार्थना से हुआ। वीर सागर जी महाराज तो कोडरमा चले गये। यहाँ पर महाराज श्री ने श्री पं. बुधचंद जी एवं अन्य आगत विद्वानों से गोम्मट्सार, राजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रंथ पढ़े और स्वाध्याय किया। करीब 60 या 70 ग्रंथों का आप पारायण कर गये। गिरीडीह चातुर्मास में श्री पं. शिवजी राम जी, श्री पं. जयदेव जी, श्री पं. झम्मनलाल जी, श्री भगतजी आदि विद्वान गया आये थे, इससे महाराज

व विद्वानों के प्रवचन तथा शंका समाधान से लोगों को अच्छा धर्म लाभ मिला। यहां केश लोंच होने से बड़ी धर्म प्रभावना हुई। महाराज श्री ने गिरीडीह में एक सेठ खेलसी दास जी को सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कराये। यहाँ पर लोगों को मिथ्यात्व छुड़वाया और डाक्टरी दवाई सेवन का त्याग कराया।

यहाँ पर श्री कालूराम जी मोदी अपनी धर्मपत्नी के साथ महाराज श्री के उपदेश से जैन धर्म के अनुयायी बने और महाराज श्री को आहार दिया। श्री सुवालाल जी जो कि महाराज श्री से दीक्षा लेकर ज्ञानसागर मुनि बने थे। उन ज्ञानसागर मुनि को मुनि धर्म से च्युत हो जाने पर पुनः शांतिसागर महाराज जी ने मुनि दीक्षा दी।

महाराज श्री ने मुनि संघ में किसी प्रकार की शिथिलता न आये और अनर्गल प्रवृत्ति कोई न कर सके उसके लिये निम्न प्रकार के नियम बनाये जो कि संघ के प्रत्येक साधु को पालन करने अनिवार्य थे, वर्तमान में भी आज के साधुओं को इन नियमों पर ध्यान देकर साधु वर्ग में आई शिथिलता को दूर करना चाहिये वे नियम निम्न प्रकार थे :-

1. केशलोंच का प्रदर्शन नहीं करना, एक कमरे में केशलोंच करना।
2. केशलोंच में पीछी या कमण्डलु आदि की बोली नहीं लगवाना।
3. किसी भी संस्था के लिये चन्दा नहीं करवाना। कहीं चन्दा करके रुपया दान में देवें तो वहीं की संस्थाओं को रुपया दिला देना।
4. अपने साथ सवैतनिक नौकर नहीं रखना।
5. चंदा करने वाले साधु, ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी कोई भी हो उन्हें संघ में नहीं रखना।
6. परीक्षा किये बिना नये साधु नहीं बनाबें-क्योंकि काल दोष लगने पर धर्म की निंदा व अपवाद होता है।
7. अपने साथ चटाई आदि नहीं रखना, और न उन पर सोना बैठना।
8. जिस के घर आहार हो उसे किसी भी प्रकार का द्रव्य देने के लिये नहीं कहना।

   उक्त नियमों का शांतिसागर जी महाराज ने कठोरता से पालन किया व कराया इस कारण से उन दिनों आपके शिष्यों की संख्या न तो बढ़ पाई और न आपका संघ बड़ा भारी बन सका।

आचार्य पद

गिरीडीह में शांतिसागर जी महाराज का संघ अच्छा बन गया था, कुछ और त्यागी, ब्रह्मचारी बाहर से आ गये थे। समाज ने व त्यागियों ने मिलकर बड़े समारोह के साथ शांतिसागर जी महाराज को आचार्य पद दिया। उस समय समाज में बड़ा आनंद छा गया। अब मुनि शांतिसागर से वे आचार्य 108 श्री शांतिसागर जी महाराज बन गये। लोगों पर महाराज श्री का प्रभाव बढ़ने लगा और आपका चारित्र व तप उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता गया।

विक्रम संवत् 1983 का चातुर्मास समाप्त कर आचार्य शांतिसागर जी महाराज गिरीडीह से मगसर वदी 1 को विहार कर पालंगज आये, यहाँ का राजा क्षत्रिय होने पर भी जैन धर्मपालन करता था। यहाँ उनके मंदिर में पार्श्वनाथ भगवान की मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान हैं। यहां से आप पुनः शिखरजी आये, यहां पर मुनि वीरसागर जी महाराज कोडरमा से आकर मिल गये। शिखरजी में 13 दिन रहे तीन वंदनायें की। फिर वहां से पुनः गिरीडीह होकर वैद्यनाथ धाम जो कि वैष्णव संप्रदाय का बड़ा तीर्थ है आये, वहां से मंदारगिरी की वंदना कर भागलपुर, चंपापुर, नवादा, गुणावा होते हुए महाराज पावापुरी आये, यह तीर्थ भगवान महावीर का निर्वाण स्थान है, यहां से कुण्डलपुर के दर्शन करते हुए महाराज राजगृही पधारे। यह राजगृही पंच पहाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। यहां पर गरम जल के झरने व कुंड हैं, पर्वतों से प्राकृतिक गरम जल बहकर कुंडों में आता है। यहीं पर विपुलाचल पर्वत से भगवान महावीर की प्रथम देशना हुई थी।

गया की ओर

राजगृही में गया की जैन समाज के बहुत से भाई गया में होने वाली पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में महाराज श्री को निमंत्रित करने आये, महाराज श्री ने समाज की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और गया की तरफ प्रस्थान कर दिया। महाराज श्री की स्वीकृति से गया समाज में बड़ी प्रसन्नता उत्पन्न हुई और समस्त संघ को राजगृही से विहार कराके गया जी ले गये। गया पहुंचने पर समाज ने आचार्य संघ को बड़े स्वागत से जुलूस निकालकर ले गये।

गया का प्रतिष्ठा महोत्सव

गया जी में ससंघ महाराज 27 दिन रहे, यहां की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा बड़ी धूमधाम से संपन्न हुई। करीब बारह-तेरह हजार मनुष्यों का मेला लगा, उस समय में इतनी संख्या भी किसी भी मेलों में अच्छी मानी जाती थी। फल्गु नदी की रेती में पाण्डाल बनाया। लाखों का सामान फल्गु नदी की रेती में फैला हुआ था। पुलिस का प्रबन्ध अच्छा होने से चोरी आदि नहीं हुई। यहां के मंदिर में प्रतिष्ठा में करीब 10 हजार की आय हुई थी, जो कि आज 90 लाख के बराबर हो सकती है।

गया से विहार

गया से महाराज श्री मुनि वीरसागर जी और मुनि ज्ञानसागर जी के साथ विहार करते हुए रफीगंज आये, यहां आठ दिन रहे। यहां से बीच के अनेक गांवों में विहार करते हुए शांतिसागर जी महाराज का संघ काशी बनारस पहुंचा। यह हिन्दुओं और जैनियों का बड़ा भारी तीर्थ है। हजारों यात्रियों का आना जाना रहता है, यहां पर भदैनी घाट, भेलपुरा, श्रेयांसपुरी और चंद्रपुरी जैनियों के तीर्थ स्थल हैं और काशी विश्वनाथ के नाम से वैष्णवों का बड़ा भारी तीर्थ है। यहां मंदिरों के दर्शन किये, सभा में समाज के लोग आते थे। उन्हें धर्मोपदेश से संबोधित किये। यहां से संघ ने इलाहाबाद की तरफ प्रस्थान किया, मार्ग में मिर्जापुर की जैन समाज के भाई संघ के साथ हो लिये। और संघ इलाहाबाद आ पहुंचा। संघ पांच दिन यहां ठहरा, एक दिन आम सभा हुई, जिसमें शहर के बड़े-बड़े विद्वान और जैन तथा जैनेतर समाज के भाई सभा में आये, महाराज श्री ने उपदेश दिया, जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा, यहां आर्य समाजी भाईयों ने कई प्रश्न किये, उनका आचार्य महाराज ने अच्छा समाधान किया जिससे पंडितों और आर्य समाजियों ने महाराज श्री की बड़ी प्रशंसा की।

यहां से महाराज श्री ने संघ सहित विहार कर दिया, मार्ग में बाराबंकी के भाई आकर ज्ञानसागर जी महाराज को इलाहाबाद वापिस ले गये। श्री वीरसागर जी सहित महाराज अनेक ग्रामों में विहार करते हुए करवा आये। वहां पर उपदेश देकर एक अग्रवाल वैष्णव को जैनी बनाया। उसने घर पर चैत्यालय बनाने का तथा शास्त्र स्वाध्याय का नियम लिया एवं रात्रि भोजन

करने का त्याग किया। यहां से संघ विहार करता हुआ बांदा (उत्तरप्रदेश) पहुंचा, यहां धर्मोपदेश दिया, फिर अन्यान्य अनेक गांवों में विहार करते हुए संघ सहित महाराज श्री रानीपुर, बरुआसागर होते हुए झाँसी आये। यहां पर अमृत की वर्षा करते हुए करष आये। यहां पर एक धार्मिक पाठशाला की स्थापना कराई एवं कई व्यक्तियों को योग्य नियम दिलाये। यहां से महाराज श्री आमोल आये। यहां पर धर्मोपदेश देकर यहां के ठाकुर को मांस-मदिरा का त्याग कराया और यहां के जैनियों को यथोचित नियम दिलवाये। यहां से विहार कर सीपरी (शिवपुरी) कोलारस के लोगों का धर्मोपदेश द्वारा कल्याण करते हुए संघ सहित महाराज श्री गुना आये।

गुना मध्यप्रदेश का बड़ा शहर है, जैन समाज की अच्छी बस्ती है। यहां कुछ दिन ठहर कर महाराज श्री बजरंगगढ़ आये। यह बजरंगगढ़ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र माना जाता है। यहां के मंदिर में शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरहनाथ इन तीन तीर्थकरों की खड्गासन ऊंची विशाल व मनोज्ञ 15 फुट की प्रतिमाएं विराजमान हैं। इनके दर्शन से मन प्रसन्न व शांति का अनुभव करता है। अब वीरसागर जी महाराज तो यहीं रहे और शांतिसागर जी महाराज यहां से विहार कर रुठवाई तथा जावरा होते हुये सारंगपुर आये। यहां पर भगवान महावीर स्वामी की अतीव प्राचीन प्रतिमा मंदिर में विराजमान है। यहां पर धर्मोपदेश देकर अनेक जैनों को रात्रि भोजन का तथा अभक्ष्य भक्षण का त्याग एवं शास्त्र स्वाध्याय का नियम दिलवाये। यहां के ब्राह्मण कपिल ने पूर्णतः जैन धर्म स्वीकार किया। वे रात्रि भोजन त्यागी और नित्य देव दर्शन करने वाले, पूजन भक्ति व स्वाध्याय कर भोजन करने वाले सच्चे जैनी बने। इन्होंने मिथ्या देवी-देवताओं को पूजने का भी त्याग किया। यहां से विहार कर महाराज श्री मक्सी पार्श्वनाथ आये, यह तीर्थ श्वेताम्बर, दिगम्बर दोनों समाज द्वारा मान्य होने से कभी-कभी झगड़े का भी कारण होता है। मक्सी पार्श्वनाथ से विहार कर महाराज श्री उज्जैन पधारे।

उज्जैन नगरी ऐतिहासिक प्राचीन सुप्रसिद्ध नगरी है। यहां पर आप घासीलाल कल्याणमलजी धर्मशाला में ठहरे। दो दिन ठहरे सभा में धर्मोपदेश देकर कई मनुष्यों को सप्तव्यसन और अभक्ष्य भक्षण का त्याग कराया। यहां से विहार कर महाराज श्री बडनगर पहुंचे। यहां दो दिन ठहर कर धर्मोपदेश दिया, यहां मालवा प्रान्तिक सभा के अर्न्तगत औषधालय और अनाथालय अच्छी

तरह से चल रहे थे, यहां से विहार कर आप रतलाम आये। यहां दो दिन रुककर आपने बागड़ प्रान्त की तरफ विहार किया। यहां से बागड़ प्रान्त में खान्दू नाम के गांव में महाराज-पधारे। यह खान्दू बांसवाड़ा जिले में एक प्रसिद्ध गांव है, जहां जिन मंदिर तथा नरसिंहपुरा जाति के अच्छी संख्या में दिगम्बर जैन रहते हैं। वर्तमान में माही नदी के बांध में यह गांव डूब जाने से सबके सब बांसवाड़ा नगर पधारे। यहां पर सेठ विजयचंद जी का स्थापित किया हुआ दिगम्बर जैन विद्यालय उन दिनों अच्छा चल रहा था। श्री पंडित राजकुमार जी हाटपीपल्या वालों के द्वारा पढ़ाये हुए जैन छात्र सर्वार्थसिद्धि तक पढ़कर धर्म का ज्ञान प्राप्त किये थे। वहां बांसवाड़ा के मंदिर में महाराज श्री का केशलोंच हुआ और धर्म की प्रभावना हुई। यहां से विहार कर महाराज श्री तलवाड़ा और परतापुर ठहरते हुए सागवाड़ा पहुँचे। सागवाड़ा में श्राविकाश्रम स्थापित किया। सागवाड़ा और परतापुर के चातुर्मास आदि का वर्णन हम पूर्व विवरण में दे चुके हैं। अतः यहां उसका केवल संकते ही दे रहे हैं। यहां से चातुर्मास करने के लिये महाराज श्री गढ़ी, अर्थना, डबूका आदि गांवों में ठहरते हुए पुनः परतापुर पधारे और यहां समाज के आग्रह से चातुर्मास किया। यहां पर एक गमनीबाई रहती थी, जो कि महाराज श्री को गयाजी से ही चातुर्मास के लिये यहां पर लाई थी। गमनीबाई ब्रह्मचारिणी, व्रती व धर्मात्मा थी। यहां पर चातुर्मास में महाराज श्री ने लोगों को धर्मोपदेश द्वारा पूजन, प्रक्षाल तथा देवदर्शन का महत्व समझाकर पूजन, प्रक्षाल के नियम दिलवाये और मंदिर में पूजन प्रक्षाल में जो अड़चन आती थी, उस अड़चन को दूर कराया। यहां के चातुर्मास में केशलोंच हुए और महाराज के त्याग, तपश्चर्या तथा धर्मोपदेश का अच्छा प्रभाव पड़ा, जिससे समाज ने यहां भोज में विलायती शक्कर का प्रयोग बंद किया और कई श्रावकों ने श्रावकोचित नियम लेकर जैन धर्म की प्रभावना की। यहां पर श्री शांतिसागर जी महाराज ने बड़े कठिन परिश्रम से शांतिविलास नामक पुस्तक का संग्रह किया, जिसमें अतीव उपयोगी और शिक्षाप्रद 1000 दोहे तथा 1000 सवैये संग्रह किये थे। खेद है कि यह संग्रह कहीं मिला नहीं, अगर वह प्रकाशित हो जाता तो बहुत काल तक समाज के काम आता पर आज वहीं नहीं है, अतः उसका केवल नाम मात्र का ही संकेत दे रहा हूँ। महाराज श्री की प्रेरणा से यहां की समाज ने 1000 धर्म की प्रथम भाग की पुस्तकें मंगवाकर बागड़

और खड्ग प्रान्त की पाठशालाओं को बँटवाई।

यहां पर चातुर्मास में धार्मिक पाठशाला महाराज श्री ने खुलवाई, जिसमें 35-40 छात्र-छात्रायें उन दिनों धर्म शिक्षा ले रहे थे। इस प्रकार महाराज श्री ने यहां का चातुर्मास सफलता से संपन्न कर, वहां से विहार किया और गढ़ी, सागवाड़ा, डलुका, आंजणा अर्थोना होते हुए गलियाकोट पधारे। गलियाकोट में प्राचीन कला युक्त दिगम्बर जैन मंदिर है। यह स्थान मुसलमानों में बहुरा जाति का बड़ा तीर्थ स्थान है। यहां पर धर्मोपदेश देकर महाराज श्री ने धार्मिक पाठशाला खुलवाई। यहां से विहार कर महाराज श्री चीतरी कुवा होते हुए पीठ नाम के गांव पधारे। यहां पर कुछ दिन ठहर कर धर्मोपदेश दिया और यहां से विहार कर बाकरोल, बामनवाडस होते हुए महाराज बाकांनेर (गुजरात) पहुँचे। यहां दो दिन ठहरे। यह गांव शांतिसागर जी महाराज के बहनोई श्री पानाचन्द जी का गांव है, जिसका हम पूर्व में उल्लेख कर आये हैं। यहां पर दो दिन ठहर कर धर्मोपदेश दिया और यहां से विहार कर भीलोडा आये। यहां पर श्री केशरिया जी के विशाल मंदिर जैसा बावन जिनालययुक्त अति प्राचीन विशाल जिनमंदिर है, यह केशरिया जी के मंदिर से भी प्राचीन कहा जाता है। पूर्व भट्टारकों ने इस मंदिर को देखकर इसके अनुसार नक्शा तैयार कर श्री केशरिया जी का मंदिर बनवाया है। आज भी यह मंदिर कलात्मक व प्राचीन ऐतिहासिक रूप से दर्शनीय है।

भीलोड़ा से विहार कर महाराज श्री ने चिन्तामणि पार्श्वनाथ आकर तीर्थ के दर्शन किऐ, चिन्तामणि पार्श्वनाथ से विहार कर महाराज मुरेठी होते हुए गोरेल पधारे।

यहां पर सूय देश के जैनी भाई महाराज श्री की वंदना के लिये आये। उन्होंने महाराज श्री के धर्मोपदेश श्रवणकर यथोचित नियम व व्रत ग्रहण किये। पश्चात् महाराज ईडर पधारे, यहां पर मंगसिर सुदी 14 को केशलोंच के लिये सभा की व्यवस्था राजकीय स्कूल के सामने मैदान में समाज ने की थी। महाराज श्री के उपदेश का गुजरात की समाज व जैनेतर भाईयों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। यहां की समाज ने महाराज श्री के उपदेश व प्रेरणा से जैन बोर्डिंग श्राविकाश्रम, ग्रंथमाला और सरस्वती भवन स्थापित किये। यहां ईडर के सरस्वती भवन में 8500 हस्तलिखित शास्त्रों का भण्डार है, और 17 ग्रन्थ ताड़पत्रों की कर्नाटक लिपि में लिखे मौजूद हैं। क्योंकि ईडर में भट्टारक

जी की गादी थी। जहां-जहां भट्टारकी गादी होती थी, वहां-वहां शास्त्र भण्डार रहता था। आज भी वे ग्रन्थ विद्यमान होंगे। उन ग्रन्थों में विद्यानुवाद ग्रन्थ भी है।

ईडर से आचार्य महाराज तारंगा जी सिद्धक्षेत्र की वंदना के लिये आये, यहां की वंदना कर सुदासना, भअवा, नवावास, दांता आदि ग्रामों में विहार करते हुए जैनधर्म की अतीव प्रभावना कर जैनियों को विलायती शक्कर का त्याग कराया और किसी के मरने पर जो इधर छाती कूट कर रोने की प्रथा थी, जिसको सापा कहते थे, इसी भयंकर कुप्रथा को बन्द करवाया, तथा अनेकों को अभक्ष्य भक्षण का त्याग कराया। यहां से विहार कर महाराज श्री चापलपुर होते हुए दोरल पधारे। यहां पर समाज ने बहुत दान दिया जो कि तारंगा जी सिद्धक्षेत्र में 108 मुनि शांतिसागर आत्मोन्नति भवन निर्माण के लिये जमा कराया गया। वहां से विहार कर बढ़ाली, अमोनरा पार्श्वनाथ आये। यहां चतुर्थ कालीन पार्श्वनाथ भगवान की मनोज्ञ प्रतिमा है, दर्शनीय है यहां से महाराज जी कोडियाढरा आये। वहां पर एक ब्राह्मण ने उपदेश से पाँच उदुम्बर फल और तीन मकार का त्याग कर अष्ट मूलगुण धारण किये। वहां से महाराज श्री चोटासण चीरीवाड़ होते हुए पुनः गोरेल आये। यहां तीन दिन रहकर धर्मोपदेश दिया, जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। यहां से भीलोड़ा, बांकानेर होते हुए टांकादुका आये। यहां पर धार्मिक वृत्ति के जैनी रहते हैं, अच्छा जिनमंदिर है। इस गांव से करीब एक मील दूरी पर एक आदीश्वर भगवान का मंदिर है, जिसमें चतुर्थकालीन प्राचीन भव्य प्रतिमा है, वहां के दर्शन किये, यहां से भीलोड़ा भुलेटी होते हुए कुकड़िये आये, यहां से ईडर होते हुए जादर, भद्रसेन, चित्तोड़ा सावड़ी होते हुए महाराज श्री कोटोडा आये। यहां पर भी मरण के पश्चात् छाती कूटकर करुण क्रन्दन करने व रोने की प्रथा को महाराज श्री ने बंद कराया। वहां से विहार करते हुए महाराज श्री जाम्बूडी, नया, फतहपुर होते हुए सोनासन आये। वहां पर चार दिन रहकर धर्मोपदेश दिया, फिर यहां से कितने ही गांवों में विहार करते हुए ओरणा ठहरते हुए लाकरोड़ा आये। यहां चार दिन ठहरकर धर्मोपदेश दिया। यह गांव साबरमती के तट पर है, यहां एक पुस्तकालय है। यहां अच्छी पुस्तकों का संग्रह है, यहां से सितवाड़े होते हुए अलुवा आकर तीन दिन ठहरे, धर्मोपदेश दिया। यहां भी विलायती शक्कर का त्याग कराया।

यहां से आप दस्सरा, पीलपुर होते हुए कलोल पधारे। कलोल, अहमदाबाद के पास मेहसाना के निकट एक बड़ा कस्बा है जहां नरसिंहपुरा जाती के दिगम्बर जैन अच्छी संख्या में रहते हैं, महाराज श्री कलोल में तीन दिन ठहरे। उपदेश हुआ, धार्मिक पाठशाला यहां अच्छी चल रही है। यहां से विहार कर महाराज श्री वापिस अलुवा बलासप, फालक, बत्राल होते हुए पुनः तारंगाजीसिद्ध क्षेत्र पहुंचे।

तारंगा जी का मेला

तारंगा जी सिद्धक्षेत्र पर चैत्र शुक्ला 11 से 15 तक बड़ा भारी मेला लगता है, यहां सिद्धक्षेत्र ईडर के पास प्रसिद्ध है। यहां पर कोटि शिला और सिद्ध शिला नाम से दो सुंदर पहाड़ हैं। साढ़े तीन करोड़ मुनि यहां से मोक्ष गये हैं। इस मेले में दूर-दूर से हजारों यात्री आते हैं। यहां चैत्र शुक्ला 14 को शांतिपुंज में महाराज श्री का केशलोंच हुआ। उस समय उपस्थित जनसमाज ने हजारों का दान दिया।

उसी समय श्री शांतिसागर आत्मोन्नति भवन का उद्घाटन हुआ। रायदेश, साबरकांठा से तथा अन्य स्थानों से बहुत दान में सहायता प्राप्त हुई। उनमें से 3000 रुपये ब्रह्मचर्य आश्रम तारंगा जी, 4 हजार रुपये आत्मोन्नति भवम तारंगा जी, 4 हजार रुपये ईडर बोर्डिंग सरस्वती भवन, 2 हजार रुपये ग्रंथमाला को दिये गये। यहां पर सोनासन वाले गांधी जीवराज ने 12 हजार रुपये ईडर बोर्डिंग और आश्रम को दान दिये। जिस कारण उनके नाम को बोर्ड बोर्डिंग पर लगाया गया। बोर्डिंग का नाम भी उन्हीं के नाम से रखा गया है। जो कि अभी चल रहा है। महाराज श्री के सान्निध्य में ज्येष्ठ शुक्ला 5 श्रुत पंचमी के दिन यहां बोर्डिंग, श्राविका आश्रम, सरस्वती भवन और ग्रंथमाला चारों संस्थाओं का उद्घाटन हुआ।

पुनः जन्मस्थल की तरफ

ईडर से विहार कर महाराज श्री गोडाकर (विजयनगर), बावल बाड़ा होते हुए खूणादरी पधारे। खड़ग प्रान्त में खूणादरी ऋषभदेव भगवान का एक अतिशय क्षेत्र है। यहां पर अष्ट धातु की जिसमें स्वर्ण भी शामिल है आदिनाथ भगवान की भव्य व विशाल प्रतिमा है, आज भी दूर-दूर से दर्शनार्थी आते

हैं। और यात्रा वंदना कर प्रसन्न होकर जाते हैं। यहां से महाराज श्री भाणदा ठहरते हुए नवागांव आये। यहां ज्येष्ठ बुदी 9 को महाराज श्री का केशलोंच हुआ। उस समय खडग के सब जैनी भाई आये थे महाराज श्री ने धर्मोपदेश देकर अनेकों को सिगरेट, बीड़ी, सोडावाटर, बाजार का बर्फ, रात्रि भोजन आदि का त्याग कराया। यहां से पुनः भाणदा होकर महाराज श्री अपने जन्म स्थान छाणी पधारे। छाणी में उन दिनों ठाकुर मानसिंह जी शासक थे, जिनका उल्लेख हम पूर्व में कर आये हैं। वे महाराज के बड़े भक्त बने और महाराज की प्रेरणा से प्रभावित होकर दशहरे पर होने वाली भैंसे की बलि को हमेशा के लिये बंद कर दिया। छाणी में कुछ दिन ठहर कर महाराज देवल पधारे, देवल से विहार कर आप सुरपूर पधारे। यहां पर भी चतुर्थकालीन प्राचीन प्रतिमा जिनमंदिर में है। यह स्थान डूंगरपुर के पास है, यहां से डूंगरपुर आये। यहां दो दिन ठहरे, श्रावकों को उपदेश देकर यथोचित नियम व्रत दिलाये। यहां से विहार कर बिछिवाडा आप पधारे। यहां पर पति के मरने पर स्त्रियों को काले कपड़े पहनने का त्याग कराया और सफेद कपड़े पहनकर मंदिर देवदर्शन प्रतिदिन करने का नियम बनाया।

नागफणि पार्श्वनाथ

बिछीवाड़ा से महाराज नागफणि पार्श्वनाथ नाम के अतिशय क्षेत्र के दर्शनार्थ पधारे। यह स्थान पहाड़ों के बीच बहुत मनोज्ञ प्राकृतिक शोभा वाला है रमणीय अतिशय क्षेत्र है। यहां पार्श्वनाथ भगवान तथा धरणेन्द्र, पद्मावती की अतिशययुक्त प्रतिमा जिनमंदिर में है। यहां पर पहाड़ के भूगर्भ से प्रतिमा जी के नीचे के भाग से जल का स्रोत बहता हैं, तीन कुण्ड और गोमुखी बनाये गये हैं। गोमुखी से पानी निकलकर क्रमशः तीनों कुण्डों में भर जाता है। और आगे जाकर पानी समाप्त हो जाता है। यात्रियों के बढ़ने पर स्वतः ही पानी बढ़ता है और यात्रियों के कम होने पर स्वतः कम हो जाता है। पानी शुद्ध निर्मल है। यात्रियों के ठहरने, बनाने आदि की व्यवस्था है। यहां के दर्शनकर महाराज श्री विहार करते हुए पुनः गुजरात में प्रविष्ट हुए। टांकादु, भीलोड़ा, चिन्तामणि पार्श्वनाथ मुडेटी आदि गांवों में विहार करते हुए गोरेल पधारे।

यहां पर ईडर की समाज के भाई महाराज श्री को चातुर्मास की प्रार्थना

करने आये। महाराज ने चातुर्मास की स्वीकृति दी और यथासमय विहार कर महाराज आषाढ़ की अष्टाह्निका के दिनों में ईडर पधार गये। यहां पर भगवान सागर ब्रह्मचारी आकर चातुर्मास में महाराज के संघ रहे।

ईडर गुजरात प्रान्त का प्रसिद्ध प्राचीन शहर है, जैन समाज के 100 घर हैं तीन जिनमंदिर हैं, एक मंदिर पहाड़ पर है, कुछ गृहों में चैत्यालय हैं। मंदिरों में शिल्पकला प्रशंसनीय है। मंदिर प्राचीन और विशाल हैं। यहां पर प्रतिदिन दोनों समय सभा में महाराज श्री के धर्मोपदेश चलते थे। जैन व जैनेतर समाज के लोग धर्मलाभ उठाते थे।

द्वितीय श्रावण शुक्ला चर्तुदशी को महाराज श्री का केशलोंच हुआ, उपदेश हुआ, धार्मिक पुस्तकें बांटी गईं। यहां पर भी मरने पर छाती कूटकर रोने की भयंकर प्रथा थी। महाराज श्री ने बहुत प्रयत्न कर इस प्रथा को बन्द करवाया। ईडर चातुर्मास के पश्चात् महाराज श्री के विहार की कोई सामग्री क्रमबद्ध नहीं मिल सकी। अतः हम इससे आगे क्रमशः विवरण देने में असमर्थ हैं।

आचार्य शांतिसागर जी महाराज (दक्षिण) का आगमन

इन्हीं वर्षों में प्रतापगढ़ के निवासी बम्बई में जिन का व्यापार है, ऐसे स्वनाम धन्य धर्मात्मा सेठ संघपति घासीलाल पूनमचन्द जबेरी बहुत कठिन प्रयत्न कर स्वयं चौका और घर के मनुष्यों को संघ के साथ रखते हुए चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जी महाराज के संघ को दक्षिण भारत से उत्तर भारत लाये और विक्रम संवत् 1985 में श्री सम्मेदशिखर जी में अपने खर्च पर विशाल पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाई। यह प्रतिष्ठा महोत्सव "न भूतो न भविष्यति" था। मैं बच्चा था, पिताजी के संघ उस प्रतिष्ठा महोत्सव में गया था और खो गया था। शांतिसागर जी महाराज का संघ बड़ा विशाल था। उस संघ में बहुत से विद्वान व तपस्वी साधु थे। सम्मेदशिखर जी की प्रतिष्ठा के पश्चात् उक्त संघ समस्त उत्तर भारत, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात आदि में धर्म प्रभावना करते हुए कई वर्षों तक धर्म की जागृति कर संघपति सेठ द्वारा प्रतापगढ़ (राजस्थान) में शांतिनाथ अतिशय क्षेत्र के मंदिर की विशाल पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई गई। यह मेला भी उस युग में अपूर्व था। अनेक शहरों में संघ के चातुर्मास हुए। हैदराबाद में

दिगम्बर मुनि के आगमन का निषेध था, वह प्रतिबंध उठ गया और सर्वत्र दिगम्बर साधु के प्रभाव द्वारा भारत में धर्मध्वजा फहरी, इतिहास इसका साक्षी है। हरिजन मंदिर प्रवेश के बिल से जैन मंदिर मुक्त हुए, यह सब चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर महाराज (दक्षिण) के तप, त्याग का ही प्रभाव है।

दो संघों का मिलन

आचार्य शांतिसागर जी महाराज (दक्षिण) और आचार्य शांतिसागर जी महाराज (छाणी) उन दोनों संघों का बड़ा आश्चर्यकारी मिलन एक स्थान पर हुआ वह स्थान था अजमेर (मेवाड़) के पास ब्यावर शहर। इस ब्यावर शहर में दोनों संघ के सफल चातुर्मास हुए जिन्होंने यह दृश्य देखा वे उसका वर्णन बड़े जोरों से कर रहे हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों यह गंगा और यमुना का संगम ही था। उस चातुर्मास में रानीवाले सेठ साहब की प्रधान भूमिका रही थी। दूर-दूर से समाज के लोग आते थे। विद्वानों का जमघट रहता था। सेठ साहब का आना-जाना, चौके आदि की धूम रहती थी। अब तो अनेक नवीन साधु दक्षिण वाले आचार्य श्री द्वारा दीक्षित हुए और हजार वर्ष के बाद समस्त उत्तर भारत में दक्षिण भारत की तरफ दिगम्बर साधुओं की महिमा बढ़ने लगी। और यत्र तत्र दिगम्बर साधुओं के दर्शन, धर्म श्रवण और आहार देने का लाभ समाज को पूर्णतः मिलने लगा। चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जी, महाराज को बहुत सम्मान देते थे। सभा में दोनों आचार्यों का समान आसन सबके मध्य में रहता था। संघ के सब साधु छाणी वाले महाराज श्री को विनय से नमोऽस्तु करते थे।

ऋषभदेव में चातुर्मास

विक्रम संवत् 1988 में शांतिसागर जी महाराज का ऋषभदेव (केशरिया) मेरे जन्म गांव में चातुर्मास हुआ। मेरे स्वर्गीय पिताजी चुन्नीलाल जी मेश्वोत जो कि मुनियों को आहार दान देने व मुनि भक्ति में यहां की समाज में सर्वप्रथम थे, तथा स्व. सेठ सोहनलाल जी सर्राफ एवं स्व. श्री दुलीचंद जी गंगवाल आदि ने चातुर्मास में बहुत योगदान दिया। यहां संघ सहित आचार्य श्री का चातुर्मास धूमधाम और प्रभावकारी रहा। मैं उन दिनों उदयपुर में इन्हीं

महासज के शिष्य आचार्य सूर्यसागर जी महाराज द्वारा संयमप्रकाश ग्रंथ में कार्य कर रहा था। शांतिसागर जी महाराज ने संयमप्रकाश का कार्य छुड़वाकर ऋषभदेव अपने पास कार्य करने रखा। मैंने सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला नामक पुस्तक का संपादन व संशोधन किया तथा और भी महाराज द्वारा संकलित पुस्तकों का संपादन और कुछ शास्त्र लिखे। मेरे लिये महाराज मेरे पिताजी से कहते थे कि चुन्नीलाल जी आपका लड़का बहुत होशियार है। केशलोंच में तथा सभा में महाराज श्री कई बार मुझसे भाषण भी कराया करते थे।

तीर्थ पर आने वाली यात्री और राज्याधिकारी देव स्थान हाकिम आदि महाराज श्री के दर्शन करने आते और महाराज श्री के दिव्य तेज व तपश्चर्या से प्रभावित होते थे।

श्री शांतिसेवा संघ की स्थापना

यहां पर नरसिंहपुरा दिगम्बर जैन समाज में उन दिनों दो पार्टियाँ पड़ी हुई थीं। महाराज श्री ने उन्हें मिलाने का बहुत प्रयत्न किया था। हमने कुछ नवयुवकों से मिलकर दोनों पार्टियों को मिलाकर एक संस्था स्थापित की। आचार्य शांतिसागर जी महाराज के सांकेतिक नाम को रखते हुए उसका नाम श्री शांति दिगम्बर जैन सेवा संघ रखा था। यह संघ अच्छा चला। समाज ने भी इसकी सेवाओं को सराहा। शांतिसागर महाराज की पूर्णप्रेरणा और आशीर्वाद इसे मिला, इस संघ में दोनों पार्टियों से मेम्बर चुने गये। सभापति श्री सोहनलाल सर्राफ थे। मंत्री मैं चुना गया था। इसका हिसाब-किताब सब व्यवस्था मैं करता था। इस संघ ने पूरे प्रयत्न कर समाज की पार्टी बंदी को समाप्त करने का प्रयत्न किया। इस चातुर्मास में आचार्य श्री के साथ एक वयोवृद्ध वीरसागर जी महाराज थे और संभवतः ऐलक धर्मसागर जी महाराज थे। एक या दो ब्रह्मचारी थे, महाराज श्री का विहार वहां से हो गया। पश्चात् शांतिसागर जी महाराज दक्षिण के प्रधान शिष्य, संस्कृत के धुंरधर विद्वान् मधुर व्याख्याता श्री कुन्थुसागर जी महाराज का ऋषभदेव आगमन हुआ तथा हमने दोनों आचार्यों के नाम से शान्ति सेवा संघ के अन्तर्गत एक वाचनालय व पुस्तकालय स्थापित किया। जिसका नाम श्री शान्ति कुन्थु वाचनालय रखा गया था। एक बिल्डिंग किराये पर लेकर उसमें हम लाइब्रेरी चला रहे हैं।

दूसरा चातुर्मास

ऋषभदेव के समाज ने पुनः दूसरा चातुर्मास शान्तिसागर महाराज का यहां कराया। उस चातुर्मास में मैं आचार्य कुन्थुसागर जी महाराज द्वारा श्री कुन्थुसागर दिगम्बर जैन बोर्डिंग के बुलाने पर डूंगरपुर चला गया था और बोर्डिंग के सुपरिडेंट का कार्य करने लगा था। ऋषभदेव में इस चातुर्मास में श्री शांति सेवा संघ के अन्तर्गत ही आचार्य शांतिसागर दिगम्बर जैन बोर्डिंग के नाम से एक छात्रावास खोला। मुझे डूगंरपुर से ऋषभदेव मेरे साथियों ने बुला लिया। मैंने अपनी दुकान का काम करते हुए सेवा संघ पुस्तकालय और बोर्डिंग का सब काम सम्भाल लिया। इन संस्थाओं का काम जोरों से चला। ऋषभदेव में दिगम्बर जैन विद्यालय बहुत वर्षों से चल रहा था। इसके सर्वे सर्वा स्व. नाथूलाल जी वाणावत थे। इस विद्यालय के अन्तर्गत इन्हीं आचार्य शान्तिसागर जी के नाम से कन्यापाठशाला पहले से चलती थी। बहुत वर्षों तक रात्रि को 11 बजे तक प्रतिदिन समय देकर मैंने पुस्तकालय और बोर्डिंग को प्रगति पथ पर लाने का अथक प्रयत्न किया। किन्तु कुछ लोगों को हमारी संस्थाओं की प्रगति सहन नहीं हुई और समाज में बड़ा वितण्डावाद खड़ा कर बोर्डिंग को विद्यालय में मिला दिया। इधर परिस्थिति वश मैं बाहर सर्विस करने चला गया अतः मेरे ऋषभदेव से बाहर रहने से लाइब्रेरी व सेवा संघ और वाचनालय का भार पं. फतहसागर जी "प्रेमी" तथा श्री पं. मोतीलाल जी "मार्तण्ड" को सोहनलाल जी ने सुपुर्द किया। लेकिन आज इन संस्थाओं का नाम निशान नही है। बोर्डिंग के लिये तो मैं दक्षिण भारत में भ्रमण कर हजारों रुपये की सहायता लाया था। इस प्रकार मेरी वर्षों की साधना व सेवा तथा संस्थाओं की समाधि हो गई। जब यह याद आता है तो हृदय दुख से भर जाता है। इस प्रकार शान्तिसागर जी महाराज के नाम से समाज सेवा करने वाली इन संस्थाओं के नाम ही शेष हैं। बाकी सब कालकवलित हो गया।

समाधिमरण

उन दिनों के जैन समाचार पत्रों से आ. शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) के समाधिमरण के संबंध में अन्वेषण करने से जो विवरण मिले, उन्हें मैं यहां पाठकों की जानकारी के लिये प्रस्तुत करता हूँ :-

ऋषभदेव से महाराज श्री सलूम्बर चातुर्मास कर बागड़ की तरफ विहार कर गये। सन् 1944 के मई मास के पूर्व आ. शान्तिसागर महाराज बागड़ी प्रान्त के कुहाला गांव में पहुंचे, वहां पर जिन बिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा थी। प्रतिष्ठा महोत्सव के समापन होने पर दि. 5 मई 1944 को महाराज श्री का केशलोंच हुआ, उस समय स्वास्थ्य अच्छा था। कुहाला से सागवाड़ा की तरफ विहार किया। और परोदा, सारोदा गांवों में ठहरते हुए महाराज श्री दि. 12 मई 1944 को सागवाड़ा पधारे। रास्ते में बुखार प्रारंभ हो गया, शरीर में कमजोरी आने लगी। दि. 13 मई को महाराज ने अल्प आहार लिया, धीरे-धीरे ज्वर बढ़ता गया। आहार वगैरह छूट गया या त्याग कर दिया। दि. 17 मई 1944 विक्रम संवत् ज्येष्ठ वुदी दशमी को आपकी हालत ज्यादा खराब हो गई और डबल निमोनिया ने अपना प्रभाव डाला और पंचणमोकार का जाप करते हुए महाराज श्री के शरीर से प्राण निकल गये। शरीर पिंजर पड़ा रह गया, चेतन पंछी उड़ गया, महाराज श्री स्वर्ग सिधार गये। उपस्थित सभी मनुष्यों के आंखों से अश्रु धारा बहने लगी। वह बागड़ गुजरात का सूर्य अस्त हो गया। एक शांत स्वभावी, मंदकायी, महान तपस्वी, निस्पृह प्रशममूर्ति साधु अपनी शिष्य परंपरा छोड़कर चले गये। काल उन्हें निष्ठुरता से उठा ले गया। उस समय क्षु. धर्म सागरजी को बुलाने पर भी समय पर नहीं आ सके। स्वर्गारोहण के समय मुनि नेमिसागर जी, ब्र. नानालालजी, श्री सेठ कस्तूरचंद देवड़ीया, पं. जिन चंदजी, पं. शान्तिलाल जी, पं. धनकुमार जी तथा हजारों नर-नारी सागवाड़ा के उपस्थित थे, अजैन अधिक थे।

चंदन की लकड़ी के विमान में शव को बिठाकर बड़ा भारी जुलूस बाजार से होता हुआ जयघोष करता हुआ नशियाँजी पहुँचा। नशियाँ जी में मुनिराज नेमिसागर जी ने भूमि शोधन की, वहां पर चंदन की चिता तैयार कर महाराज श्री के पार्थिव शरीर को चिता पर रखा गया। और विधिपूर्वक दाह संस्कार किया गया। देखते-देखते अग्नि की ज्वालायें महाराज श्री के शरीर को भस्म कर गईं। महाराज श्री के स्वर्गवास के समाचार आंधी की तरह समस्त भारत में फैल गये। अनेक स्थानों पर शोक सभायें हुईं और लोगों ने शोक संवेदना प्रकट की। कई स्थानों पर बाजार बंद रहे व जुलूस निकाले गये।

ऋषभदेव में

ऋषभदेव में महाराज श्री के स्वर्गवास की खबर आई तो समाज में भारी दुःख व शोक छा गया। मैं उस दिन बाहर गाँव में गया था। श्री सोहनलाल जी ने पत्र व आदमी भेजकर मुझे बुलाया। ऋषभदेव में हमने जुलूस निकालकर शोक सभा की और शोक प्रस्ताव के साथ उनका स्मारक बनाने का निर्णय लिया गया। इसके लिये मैं और श्री सोहनलाल जी सर्राफ सागवाड़ा गये। वहां पर समाज की मीटिंग बुलाई गई और स्मारक बनाने का निश्चय किया।

स्मृतिग्रंथ की योजना

श्री मूलचंद जी किशनलाल जी कापडिया सूरत शान्तिसागर जी महाराज के बड़े भक्त थे। उन्होंने जैन मित्र में अपना संपादकीय लेख लिखकर समाज का ध्यान स्मृतिग्रंथ तैयार कराने हेतु आकर्षित किया। ऋषभदेव में मैंने इसके लिये दो बार समाज की मीटिंग बुलाई थी। कापड़िया जी भी मीटिंग में सूरत से आये थे। स्मृति ग्रंथ की योजना बनी तथा उसकी रूपरेखा तैयार हुई और उसके संपादन का भार मुझे तथा मेरे सहायक पं. दौलतराम जी शास्त्री को दिया गया।

खेद है कि श्री नाथूलाल जी वाणावत ने दूसरी मीटिंग में इस योजना को रद्द कर चन्द्रगिरी पर ऋषभदेव में उनका स्मारक बनाने का निर्णय कराया। फलस्वरूप न तो स्मृति ग्रंथ बना और न स्मारक बना। प्रसन्नता है कि 46 वर्षों के पश्चात् स्व. शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) के शिष्य, प्रशिष्य परम्परा को श्री उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज अब उन शान्तिसागर महाराज का स्मृतिग्रंथ तैयार करा रहे हैं, और इसमें मेरा सहयोग भी लिया गया है। इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ।

कामना

सकल गुण निधियो, छाणिजः शांतमूर्तिः,
विबुधनिचयसेव्यो, भागचन्द्रस्य पुत्रः,
प्रविदलितकषायों, निस्पृही राममुक्तः।
जयव्रतुजयतुसूरिः शांति, सिंधुर्यतीशः।।

पं. महेन्द्र कुमार 'महेश'

आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज "छाणी" के चातुर्मास की सूची

1.	1979	वि.सं.	कैसर
2.	1980	"	सागवाड़ा
3.	1981	"	इन्दौर
4.	1982	"	ललितपुर
5.	1983	"	गिरीडीह
6.	1954	"	परतापुर (बांसवाड़ा)
7.	1985	"	ऋषभदेव
8.	1986	"	सागवाड़ा
9.	1987	"	इन्दौर
10.	1988	"	ईडर
11.	1989	"	नसीराबाद
12.	1990	"	ब्यावर
13.	1991	"	सागवाड़ा
14.	1992	"	उदयपुर
15.	1993	"	ईडर
16.	1994	"	मलियाकोट
17.	1995	"	पारसोला
18.	1996	"	भींडर
19.	1997	"	तालोद
20.	1998	"	ऋषभदेव
21.	1999	"	ऋषभदेव
22.	2000	"	सलुम्बर

आचार्य 108 श्री शान्तिसागर महाराज (छाणी) द्वारा दीक्षित साधुवृन्द

मुनि 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज, धार

इस कुटिल पंचम काल में ऐसे जीव बहुत ही थोड़े हैं, जो आदर्श पथ पर गमन कर अपने अमूल्य मानव जीवन की चरम सीमा प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। जिन– जिन आत्माओं की, अपनी निज आत्मविभूति की ओर दृष्टि गई है, वे आत्माएं इस संसार में प्रातः स्मरणीय एवं जगद्वन्दनीयता को प्राप्त होकर, चरम सीमा को प्राप्त हुईं हैं। वे आत्माएं आज इस संसार में नहीं हैं और पंच परावर्तन रूपी रहट (यंत्र) के भी परिचक्र को उन्होंने परिपूर्ण कर दिया है तथा वे निजानंद में लीन होकर लोकाग्र भाग में निवास करती हैं।

आज ऐसी पवित्र आत्माओं के दर्शन होना दुर्लभ है, परन्तु उनके आदर्श और उच्च पथ पर अपितु उनके सदृश मोक्ष मार्ग पर गमन करने वाली आत्माओं का अब भी अभाव नहीं है, उन्हीं के दिव्य दिगम्बराभूषण को धारण करने वाली महात्माओं के दिव्य दर्शनों का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है, यह हमारे सातिशय पुण्य का उदय है, परन्तु ऐसी पवित्र आत्मायें इस समय 20-25 से अधिक नहीं हैं।

उन्हीं पवित्र आत्माओं में से एक महात्मा श्री दिगम्बर मुनि ज्ञानसागर जी महाराज (धार) जो आचार्य श्री शान्तिसागर जी (छाणी) के एक आदर्श और आद्य शिष्य हैं, जिनके चरण कमलों में यह 'पूजन' रूप तुच्छ भेंट सादर समर्पण करने के लिये समुन्नत हुआ हूँ। जिनका महात्म्य इस भारत के मुख्य केन्द्र मालवा सी.पी.यू.पी. भद्र देश, ढूंढार देश हाडोती आदि–आदि में प्रकाशित हो रहा है, जिनके धवल गुण रूप पताका यश रूप में फहरा रही है।

आपमें आकर अनेक सद्गुण निवास करते हैं, परन्तु हमें यह बताना है कि आपका पाण्डित्य, तपोविशेषता, वक्तृत्व शैली, चारित्रबल और सहनशीलता उपसर्ग विजयता भी कुछ कम नहीं हैं। यहां पर उपयुक्त बातों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराना भी अनुचित न होगा।

पाण्डित्य - आप एक बहुत बड़े भारी उद्भट विद्वान हैं, आपका बाल्यकाल से ही स्वाध्याय आदि पठन-पाठन की ओर सदैव लक्ष्य रहता था तथा आपने अनेक आचार्य प्रणीत उच्च कोटि के ग्रंथों का स्वाध्याय कर अपूर्व ज्ञान का सम्पादन किया है, इसलिए आपकी पाण्डित्यता से जैन तथा जैनेतर समाज भली प्रकार सबकी परिचित है, आपका युक्तिवाद तो इतना प्रबल है कि सामने वादी ठहरते नहीं हैं तथा आगमवाद के सागर ही हैं इसीलिए आपका नाम 'ज्ञानसागर जी' ही है, -यथा नाम तथा गुण' वाली कहावत यथार्थ चरितार्थ की है।

तपो-विशेषता-तप की भी आपमें बड़ी विशेषता है, आपने हमारे दिगम्बर जैनाचार्य प्रणीत बड़े-बड़े कठिन व्रत जैसे-आचाम्ल वर्द्धन, मुक्तावली, कनकावली, जिनेन्द्र गुणसम्पति, सर्वतोभद्र, सिंहविक्रीडतादि अनेक तप आपने किये हैं तथा करते रहते हैं, जिनके माहात्म्य द्वारा आपकी दिव्य देह मनोहरता को प्राप्त हुई है तथा व्रतादि उग्र तप करते समय आपका शरीर बिल्कुल शिथिलता को प्राप्त नहीं होता था।

वक्तृत्व शैली-वक्तृत्व शैली भी आपकी कम नहीं है, आपका व्याख्यान हजारों की जनसंख्या में धारा प्रवाही होता है, जिसको श्रवण कर अच्छे-अच्छे व्याख्याता चकित होते हैं। आपमें एक अपूर्व विशेषता यह है कि आप एक निर्भीक और स्पष्ट वक्ता हैं, वस्तु स्वरूप को आप जैसा का तैसा ही प्रतिपादन करते हैं, जिस कारण पर मतावलम्बी आपके सामने थोड़े ही समय में परास्त हो जाते हैं।

आपके वाक्य बड़े ही ललित, सुश्राव्य एवं मधुर निकलते हैं, जिनके कारण जनता आपके वचनामृत श्रवण करने के लिये सदैव उत्सुक और लालायित रहती है, इसलिये आपके उपदेश का जनता पर काफी प्रभाव पड़ता है।

चारित्र बल-इसको बताने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आप एक उच्च आदर्श लिंग जो मुनि मार्ग उसकी शरण को प्राप्त हुए हैं, ऐसी अवस्था में चारित्र आपका कैसा है? उसे ज्ञानी जन स्वयं समझ गये होंगे, किन्तु आपके अपूर्व चारित्र के प्रभाव द्वारा, आपकी चिरकीर्ति इस भूमंडल में विद्युतवत् चमत्कार दिखलाती हुई आलोकित कर रही है और इसी के प्रभाव से बड़े-बड़े राजा-महाराज और बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पुरुष आकर आपके चरणों में नत-मस्तक करते हैं और बड़े-बड़े राज्याधिकारी-गण आकर सिर झुकाते हैं,

यह सब चारित्र की विशेषता का महत्व है।

सहनशीलता या उपसर्ग विजयता-आप में अपूर्व है, महान कठिन से कठिन उपसर्गों की आप परवाह न करते हुए उन्हें बड़े ही शान्ति पूर्वक सहन करते हैं। एक समय आप बांदा से झांसी की ओर आ रहे थे। बीच में अतर्रा नामक ग्राम में आपके सम्पूर्ण शरीर से भंवर मच्छी (भोरमक्खी) लिपट गईं थीं, परन्तु आपने इस महान उपसर्ग की कुछ भी परवाह न की। दूसरी बार आज जब नरवर (ग्वालियर) से आमोल को जा रहे थे उस समय शेर ने आकर आपका सामना किया था परन्तु वहां भी विजय प्राप्त की, इसी प्रकार झाँसी के मार्ग में सामायिक करते समय गोहरा आपके बदन पर इधर-उधर फिरता रहा, परन्तु आपने कुछ भी परवाह न की और भी अनेक उपसर्ग आपने आने पर सहे हैं, विस्तार भय से यहां उल्लेख नहीं किये।

आपको निद्रा भी बहुत कम आती है, हमारा पूर्व में आपसे कई वर्षों तक सम्पर्क रहा है, मैं समय-समय पर जाकर गुप्तरीत्यानुसार परीक्षा करते थे, परन्तु जब कभी जाते थे तभी आप जाग्रत अवस्था में मिलते थे। विशेष कर आपका लक्ष्य आत्म ध्यान में अधिक रहता था। गृहस्थी के चारित्र को समुज्जवल बनाने के लिये आप रात्रि दिवस चिन्तित रहते हैं, जहां कहीं आपका विहार होता है वहां पर श्रावकाचार का प्रचार काफी होता है और सच्चे सद्गृहस्थ बनाते हैं। इस गृहस्थागार में गृहस्थ धर्म को सम्पादन करने वाली श्राविकायें होती हैं, बहुभाग श्रावकाचार का इन्हीं पर निर्भर रहता है। उन्हीं को आप उचित शिक्षा देकर व्रतादि ग्रहण करा श्रावकाचार धर्म स्वीकार कराकर उन्हें सच्ची श्राविकाएं बनाते हैं।

आपका लक्ष्य विशेष कर स्त्रियों को सदाचारिणी बनाने की ओर रहता है तथा उनके संयम, शील की रक्षार्थ सतत् प्रयत्न करते रहते हैं। आपका विहार अभी 4-5 वर्षों से मालवा और मारवाड़ तथा हाड़ोती प्रांत में हो रहा है, यहाँ पर व्रत, विधान क्रिया बहुत ही उच्च और आदर्श है तथा प्रायः सर्व व्रतों का भार स्त्री लाल और छोटेलाल। आपका विवाह संवत् 1955 में 14 वर्ष की आयु में सरखड़ी में हुआ था। आप बचपन से ही सदाचारी थे। विवाह के समय से दो बार भोजन करना, रात्रि को पानी तक नहीं लेना और पूजन करने का आपका नियम था। आपने अध्ययन किसी पाठशाला में नहीं किया। निज का अनुभव ही कार्यकारी हुआ है। आप घी, धातु, गल्ला और कपड़ा

का व्यापार करते थे। आपके सुयोग्य दो पुत्र हैं जो कि चिंतामन और धर्मचन्द, बम्हौरी में रहते हैं। आपके वंश द्वारा रेशंदीगिर के उद्धार का कार्य हुआ है। ऐसा जैन मित्र से ज्ञात हुआ है कि आपके पूर्वजों ने यहाँ जंगली झाड़ियाँ सफाई कराके नैनागिर क्षेत्र को प्रकाश में लाया था, फिर आपके द्वारा तो पूर्ण उद्धार हुआ है। पंच कल्याणक, गजरथ आदि बड़े मेले तो आपके प्रयत्न के सफल नमूने हैं। क्षेत्र की उन्नति करना आपका मामूली कार्य नहीं था बल्कि कठोर त्याग का फल था आपको बचपन में खुमान कहा करते थे और भविष्य में तो मान खोने वाले ही निकले। आपने मिति ज्येष्ठ सुदी 5 संवत् 1948 को द्रोणागिर में मुनि अनंतसागर जी और शान्तिसागर जी महाराज छाणी से दूसरी प्रतिमा ली थी तब आपका नाम ब्र. खेमचन्द रखा। मिति आषाढ़ वदी 8 संवत् 1995 में अंजड़ बड़वानी में मुनि सुधर्मसागर जी से 7वीं प्रतिमा ली थी। फिर सागर में माघ मास के पर्यूषण पर्व संवत् 2000 में दशवीं प्रतिमा धारण की थी। संवत् 2001 से वर्णी गणेशप्रसाद जी के संघ में रहकर जबलपुर में वीर जयन्ती पर वीर प्रभू के समक्ष क्षुल्लक दीक्षा ली और आपका नाम क्षुल्लक क्षेमसागर रखा गया। आपने क्षुल्लक दीक्षा से ही केश लोंच करना चालू कर दिया था। वर्णी जी तो आपके चारित्र की प्रशंसा किया ही करते थे। इसके पश्चात् आपने संवत् 2012 को श्री रेशंदीगिर गजरथ के दीक्षा कल्याणक के दिन भगवान आदिनाथ की दीक्षा के समय भगवान आदिनाथ के समक्ष मुनि दीक्षा धारण की तब उसी दिन मिति माघ सुदी 15 शक्ति समाज पर निर्भर हैं उन्हीं के लाभार्थ आपने व्रत कथा कोष नामक ग्रन्थ अनेक शास्त्रों से खोज कर लिखा है, जो कि व्रत विधान करने वालों को अवश्य एक बार देखना चाहिये। इत्यादि प्रयत्न आप गृहस्थों को आदर्श बनाने के लिये सदैव करते रहते हैं।

मुनि श्री आदिसागर जी महाराज

आपका जन्म बुन्देलखंड के अन्तर्गत बम्हौरी ग्राम में मिति कार्तिक सुदी 2 विक्रम संवत् 1941 में हुआ था। आपके पिताजी का नाम गोपालदास था और माता का नाम लटकारी था। आप गोला पूर्व चौसरा वंश के सुयोग्य जैन हैं। आपके आजा का नाम बहोरेलाल था। उनके यहां गोपालदास, नन्हेलाल, हलकाई, हजारीलाल और बारेलाल आदि 5 पुत्र थे। आप भी अपने

4 भाइयों में से मझले भाई हैं। भाइयों के नाम इस प्रकार हैं खूबचन्द, खुमान, मोतीलाल और छोटेलाल। आपका विवाह संवत् 1955 में 14 वर्ष की आयु में सरखड़ी में हुआ था। आप बचपन से ही सदाचारी थे। विवाह के समय से दो बार भोजन करना, रात्रि को पानी तक नहीं लेना और पूजन करने का आपका नियम था। आपने अध्ययन किसी पाठशाला में नहीं किया। निज का अनुभव ही कार्यकारी हुआ है। आप घी, धातु, गल्ला और कपड़ा का व्यापार करते थे। आपके सुयोग्य दो पुत्र हैं जो कि चिंतामन और धर्मचन्द, बम्हौरी में रहते हैं। आपके वंश द्वारा रेशंदीगिर के उद्धार का कार्य हुआ है। ऐसा जैन मित्र से ज्ञात हुआ है कि आपके पूर्वजों ने यहाँ जंगली झाड़ियाँ सफाई कराके नैनागिर क्षेत्र को प्रकाश में लाया था, फिर आपके द्वारा तो पूर्ण उद्धार हुआ है। पंच कल्याणक, गजरथ आदि बड़े मेले तो आपके प्रयत्न के सफल नमूने हैं। क्षेत्र की उन्नति करना आपका मामूली कार्य नहीं था बल्कि कठोर त्याग का फल था आपको बचपन में खुमान कहा करते थे और भविष्य में तो मान खोने वाले ही निकले। आपने मिति ज्येष्ठ सुदी 5 संवत् 1948 को द्रोणागिर में मुनि अनंतसागर जी और शान्तिसागर जी महाराज छाणी से दूसरी प्रतिमा ली थी तब आपका नाम ब्र. खेमचन्द रखा। मिति आषाढ़ वदी 8 संवत् 1995 में अंजड़ बड़वानी में मुनि सुधर्मसागर जी से 7वीं प्रतिमा ली थी। फिर सागर में माघ मास के पर्यूषण पर्व संवत् 2000 में दशवीं प्रतिमा धारण की थी। संवत् 2001 से वर्णी गणेशप्रसाद जी के संघ में रहकर जबलपुर में वीर जयन्ती पर वीर प्रभू के समक्ष क्षुल्लक दीक्षा ली और आपका नाम क्षुल्लक क्षेमसागर रखा गया। आपने क्षुल्लक दीक्षा से ही केश लोंच करना चालू कर दिया था। वर्णी जी तो आपके चारित्र की प्रशंसा किया ही करते थे। इसके पश्चात् आपने संवत् 2012 को श्री रेशंदीगिर गजरथ के दीक्षा कल्याणक के दिन भगवान आदिनाथ की दीक्षा के समय भगवान आदिनाथ के समक्ष मुनि दीक्षा धारण की तब उसी दिन मिति माघ सुदी 15 शनिवार को आपका नाम मुनि आदिसागर रखा गया।

मुनि श्री नेमिसागर जी महाराज

सरल स्वभाव, शान्तचित्त, शरीर से कृश किन्तु तपस्तेज से दीप्त, हृदय के सच्चे, परिस्थितियों के अनुकूल चलने वाले, प्रयोजन वश बोलने वाले,

प्रतिष्ठा, वैद्यक, ज्योतिष, गणित, मंत्र, तंत्रयंत्र, तथा धर्मशास्त्र के ज्ञाता, मधुर किन्तु ओजस्वी वाणी में बोलने वाले वक्ता, पण्डितों के पण्डित, सफल साधक, जीव मात्र के प्रति अहिंसा का भाव रखनेवाले, न किसी के अपने न पराये, न सपक्षी न विपक्षी, स्वाभिमान, निर्भीकता से धर्म साधन करनेवाले, विलासों एवं भोगों से अछूते, इन्द्रियों का दमन करने वाले, कषायों का निग्रह करने वाले, समाज के गौरव एवं देश के अनमोल रत्न, तपोनिधि, अध्यात्म योगी श्री 108 मुनि नेमिसागर जी का जन्म मंगलमय एवं परम पवित्र श्री यशोदा देवी की पुनीत कुक्षि से पिता श्री मुन्नालाल जी के पुत्र के रूप में विक्रम संवत् 1960 के फाल्गुन शुक्ला द्वादशी रविवार को पठा (टड़ा) ग्राम में हुआ।

आप बाल्यकाल से ही बाबा गोकुलप्रसाद जी, पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी एवं पूज्य मोतीलाल जी वर्णी के सान्निध्य में रहकर उक्त गुरुजनों की कृपा द्वारा संवत् 1978 में पूज्य पिताजी का स्वर्गारोहण हो जाने के कारण घर पर ही रहकर अनेकों विद्याओं के अथाह वारिधि बने।

आपके बचपन का नाम हरिप्रसाद जैन था। आपने विवाह का परित्याग कर ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। 8 वर्ष की आयु में पाक्षिक व्रतों तथा 15 वर्ष की आयु में नैष्ठिक श्रावक के रूप में दूसरी प्रतिमा ग्रहण की। सन् 56 में इन्दौर आए। विक्रम संवत् 1996 में माघ कृष्णा प्रतिपदा गुरुवार मु. पटना, पोस्ट रहली, जिला सागर के जलयात्रा महोत्सव परी 108 मुनि पदमसागरजी द्वारा सप्तम प्रतिमा ग्रहण की तथा आपका नाम रखा गया श्री विद्यासागर।

फाल्गुन शुक्ला 3 सोमवार संवत् 2016 में म.प्र. के देवास जिलान्तर्गत लुहाखा नामक ग्राम में श्री पंचकल्याणक महोत्सव पर दीक्षा कल्याणक के समय श्री 108 मुनि आचार्य योगेन्द्रतिलक शान्तिसागर जी महाराज द्वारा आपने 11वीं प्रतिमा धारण की और नाम पाया श्री 105 क्षुल्लक नेमिसागर जी। विक्रम संवत् 2040 की शुभ मिति मार्गशीर्ष शुक्ला 15 को आचार्य योगेन्द्रतिलक शान्तिसागर जी महाराज द्वारा मुनिदीक्षा ग्रहण की।

आपने लगभग 16 वर्ष की अवस्था से लिखना आरम्भ किया। आपने अपनी मनोवृत्तियों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त किया। आपका गद्य एवं पद्य दोनों पर समान रूप से अधिकार रहा। आपकी कृतियाँ निम्नलिखित हैं :-

1. श्रावक धर्म दर्पण प्रकाशित

2.	हरि विलास	प्रकाशित
3.	प्रतिष्ठासार-संग्रह	शास्त्राकार सजिल्द यह ग्रन्थ लगभग 2000 पृष्ठों का होगा
4.	अध्यात्म सार	संग्रह
5.	कविता संग्रह सार (स्वरचित)	अप्रकाशित

सामाजिक क्षेत्र में आपने जो कार्य किए उनका विवरण सिर्फ इतना कह देने में ही पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर होने लगता है कि क्षेत्र पपौरा, अहारजी एवं अनेक संस्थाओं के आप अधिष्ठाता, व्यवस्थापक एवं संचालक हैं। इन क्षेत्रों एवं संस्थाओं में आपने जितने भी कार्य किए हैं, वे अवगुण्ठन में नहीं हैं।

आपके संकल्प इतने अडिग हैं कि विरोधी तत्वों के अनेक विग्रहों, महादुर्मोच्च, भयानक संकटों, शारीरिक आधि-व्याधियाँ तथा लोगों की दुर्जनतापूर्ण मनोवृत्तियों से भी आप टस श्रसे मस नहीं हुए। अनेकों तरह की आपदाओं ने आपको कर्तव्य पथ से डिगाना चाहा पर निर्भीक स्वात्म बल से आपको सदैव सफलता मिली। गेंदाबाई था। माता-पिता ने आपका नाम हजारीलाल रखा। झालरापाटन में आपके चाचा रहते थे। उन्होंने आपका पालन-पोषण कर गोद ले लिया। उस जमाने में शिक्षा का प्रचार कम था अतः आपकी शिक्षा प्रारम्भिक हिन्दी ज्ञान तक सीमित रही। गृहस्थावस्था में कुछ दिन रहने के बाद संवत् 1981 को रात्रि में एक स्वप्न के कारण संसार स्वरूप से विरक्ति हो गयी। बस, सिर्फ गुरु की तलाश थी।

विक्रम संवत् 1981 आसौज शुक्ल 6 का दिन भाग्योदय का दिन था। इन्दौर में पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज (छाणी) के पास आपने ऐलक दीक्षा ग्रहण की। आचार्य श्री ने आपको दीक्षा देकर 'सूर्यसागर' नाम दिया और आपने सूर्य की तरह चमक कर जग का अज्ञानान्धकार दूर किया। मंगसिर कृष्ण 11 को गुरु से हाटपीपल्या में उसी वर्ष मुनि पद की भी दीक्षा ग्रहण की। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर समाज ने आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। आप निर्भीक वक्ता, जिनधर्म की आचार-परम्परा का प्रचार करने वाले, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य थे। जिनके उपकारों से समाज कृतकृत्य है। पूज्य मुनि श्री गणेशकीर्तिजी महाराज आपको अपने गुरुतुल्य मानकर निरंतर मार्गदर्शन प्राप्त करते रहें हैं, जग-उद्धारक ऐसे आचार्य श्री के चरणों में शत्-शत् वंदन। आचार्य श्री का विस्तृत परिचय इस स्मारिका के अनेक लेखों में दृष्टव्य है।

मुनि श्री मल्लिसागर जी महाराज

आप नांदगांव (नासिक) के रहने वाले हैं, आपके पिता का नाम दौलतराम जी सेठी और माता का नाम सुन्दरबाई था। आप खण्डेलवाल हैं। गृहस्थावस्था में आपका नाम मोतीलाल था, पांच वर्ष की अवस्था में आपके माता, पिता ने विद्याभ्यास के लिये पाठशाला में भेजा, आपने अल्पकाल में ही विद्याभ्यास कर लिया। 25 वर्ष की अवस्था में (नांदगांव) में श्री 105 ऐलक पन्नालाल जी ने चातुर्मास किया। उस वक्त आपने कार्तिक सुदी 11 संवत् 1976 के दिन दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। आपने शादी भी नहीं की, क्योंकि

आपने अनेकों चातुर्मास किए, किन्तु श्री परम पावन अतिशय क्षेत्र देवगढ़ के भयानक बीहड़ जंगल में आपने जो चातुर्मास किया वह साहसिकता की दृष्टि से चिरस्मरणीय रहेगा। डाकुओं और जंगली जानवरों के भय से व्याप्त भीषण जंगल में एक दिगम्बर संत का एकाकी रहना आश्चर्य की बात नहीं, तो और क्या हो सकती है? किन्तु आश्चर्य हम संसारी लोगों को ही होता है इन जैसे संतों के लिए तो क्या पहाड़, क्या बीहड़ जंगल सब समान हैं।

उच्चकोटि के विद्वान और महान पद पर आसीन होते हुए भी आप अत्यन्त सरल विनम्र एवं शान्त स्वभाव वाले हैं। आपके जीवन में प्रदर्शन और आडम्बर तो नाममात्र को नहीं है।

मुनि वीरसागरजी महाराज

मुनि वीर सागर जी का जन्म पंजाब प्रान्त के जिला सरोजपुर के समीप धर्मपुरा में अग्रवाल जाति में सेठ नारायणप्रसाद जी के यहाँ हुआ था। आपका पूर्व नाम कल्याणमल था। आप आजीवन बाल ब्रह्मचारी रहे, आपने आदिसागर जी से प्रथम प्रतिमा धारण की थी। उत्तरप्रदेश में आपने क्षुल्लक दीक्षा ली। आपने अपने जीवन के अन्त में समाधि धारण कर आत्म कल्याण किया।

आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज

आचार्य श्री का जन्म पेमसर ग्राम (शिवपुरी) में कार्तिक शुक्ल। 9 विक्रम संवत् 1940 की शुभ मिति में श्री हीरालाल जैन पोरवाल के घर में हुआ था। आपकी माता का नाम आप अल्पवय से ही वैराग्य रूप थे और आप ऐलक पन्नालाल जी के साथ ही रहने लगे तथा आपने गृह का भार त्याग दिया।

उनके साथ में रहकर विद्याध्ययन भी किया। संवत् 1960 में प्रथम चातुर्मास फीरोजपुर छावनी (पंजाब) दूसरा चातुर्मास संवत् 1981 में देववन्द। तीसरा चातुर्मास रामपुर चौथा चातुर्मास वर्धा में किया पश्चात् गुरु की आज्ञा से अलग होकर बारा (सिवनी) में किया। वहाँ से ग्रामों में भ्रमण करते हुए गिरनारजी, मऊ (गुजरात) ईडर राज्य में अगहन सुदी 7 संवत् 1984 के दिन श्री 108 आचार्य शान्तिसागर जी छाणी महाराज के पाद मूल में आपने सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। वहाँ से तीर्थराज शिखरजी की यात्रा के लिये विहार किया, वहाँ पर दक्षिण संघ भी उपस्थित था, उनके भी दर्शन किये। संवत् 1985 का चातुर्मास आपने श्री 108 आचार्य शान्तिसागर जी दक्षिण वालों के संघ कटनी (मुडवारा) में किया। संवत् 1986 का चातुर्मास कानपुर, पावापुर, लश्कर आदि स्थानों में भ्रमण करते हुए पूर्ण किया। संवत् 1987 का चातुर्मास श्री 108 आचार्य शान्तिसागर जी छाणी के पाद मूल में इन्दौर में किया तथा भाद्रपद शुक्ला 7 शनिवार को पांच हजार जनता के समक्ष क्षुल्लक दीक्षा के व्रत ग्रहण किये। वहाँ से विहार कर सिद्धवर कूट आये। वहां श्री 108 आचार्य शान्तिसागर जी छाणी के चरण कमल में दिगम्बरी दीक्षा की याचना की। मिति मंगसिर वदी 14 संवत् 1987 बुधवार (वीर संवत् 2457) के दिन दिगम्बरी दीक्षा धारण की।

उस समय केशलोंच करते समय आप जरा भी विचलित न हुए। दीक्षा संस्कार की सब विधि मंत्र सहित श्री 108 आचार्य वर्य शान्तिसागर जी छाणी के कर-कमलों द्वारा हुई। आपका समाधिमरण मांगीतुंगी में आचार्य महावीरकीर्तिजी के सानिध्य में हुआ।

क्षुल्लक धर्मसागर जी

आप जन्म से ब्राह्मण थे परन्तु जैन धर्म पर विशेष श्रद्धा होने से उसी का अभ्यास करते रहे। 3-4 वर्ष आप ब्रह्मचारी रूप में रहे तथा आपका नाम ब्रह्मचारी रूप में चुन्नीलाल शर्मा था। वीर संवत् 2457 में आपने ईडर चातुर्मास के समय श्री शान्तिसागर जी (छाणी) मुनिराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की और आप चारित्र धर्म का उत्तरोत्तर पालन करते हुए आत्मकल्याण की ओर अग्रसर होते गये।

प्रशान्तमूर्ति आचार्य 108 श्री शान्तिसागर महाराज (छाणी) की पूजा

समिति पंच व्रत पंच त्रिगुप्ति धारते,
आप तिरे, अरु पर को भी गुरु तारते।
ऐसे श्री आचार्य शान्तिसागर गुणी,
करूं स्थापना आह्वानन सन्निधि भणी।।

ॐ ह्रीं आचार्य श्री शान्तिसागर अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वानननम्।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। (परिपुष्पांजलि क्षिपेत्)

शुद्ध प्रासुक नीर निर्मल, लेयकर झारी भरो,
चरण तल त्रय धार देके, जन्म मृत्यु जरा हरो।।
आचार्यवर श्री शान्तिसागर के चरण चित लायके।
पूजा रचाऊँ भावसेती शुद्ध मन हुलसाय के।।

ॐ ह्रीं आचार्य श्री शान्तिसागरेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर कपूर मिलाय चन्दन, घिस कटोरी लाय के।
चरण चरचों मैं गुरू के, भवाताप नशाय के।।
आचार्यवर श्री .... ।।

ॐ ह्रीं आचार्य श्री शान्तिसागरेभ्यो चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।।

उज्जवल अखण्डित लेय अक्षत, धोय थाली में भरो।
पद अखय की प्राप्ति हो, इस हेतु चरणों में धरो।।
आचार्यवर श्री .... ।।

ॐ ह्रीं आचार्य श्री शान्तिसागरेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।

मकरंद लोचन विविध पुष्प, सु लाय थाली में भरो।
कर समर्पित चरण आगे, कामबाण सभी हरो।।
आचार्यवर श्री .... ।।

ॐ ह्रीं आचार्य श्री शान्तिसागरेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।

पकवान नाना भाँति के, अति मधुर रसमय लायकर।
क्षुधारोग विनाश होते, आमके गुण गायकर।।

आचार्यवर श्री .... ।।

ॐ ह्रीं आचार्य श्री शान्तिसागरेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

तमनाश करता ज्योतिकारक, दीप जगमग जोत ही।
अज्ञान तम का नाश होवे, ज्ञेय परकाशक सही।।
आचार्यवर श्री .... ।।

ॐ ह्रीं आचार्य श्री शान्तिसागरेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।

चुर दशांगी धूप को ले, अग्नि मांहि जलाय कर।
धूम्र के मिस कर्म होवे, नष्ट अष्ट उड़ाय कर।।
आचार्यवर श्री .... ।।

ॐ ह्रीं आचार्य श्री शान्तिसागरेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।

लेय कर के फल मनोहर, पक्व मिष्ट सु पावना।
मुझको मिले अब मोक्षफल, ये ही परम शुभ भावना।।
आचार्यवर श्री .... ।।

ॐ ह्रीं आचार्य श्री शान्तिसागरेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।।

जल आदि लेकर अर्घकर, सब अष्ट द्रव्य मिलायकर।
मांगता हूँ अनर्घ पद मैं अर्घ चरण चढ़ायकर।।
आचार्यवर श्री शान्तिसागर के, चरण चित्त लायके।
पूजा रचाऊं भावसेती, शुद्ध मन हुलसाय के।।

ॐ ह्रीं आचार्य श्री शान्तिसागरेभ्यः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।

जयमाला

द्वादश तप दशधर्म, आवश्यक षट् करें,
पाले पंचाचार, त्रिगुप्ति मन धरे।
धारे ये छत्तीस, आचारज गुणिन को,
वंदो श्री आचार्य शान्तिवर गुणिन को।।
शान्तिसागर आचार्य जी, तुम हो गुण की खान।
अल्पबुद्धि गुणमालिका, भाषा करूँ बखान।।
आचार्य शान्तिसागर दयाल, भव जीवन के हो रक्षपाल।
जय त्रस थावर रक्षा करंत, भवसागर भविजन को तिरंत।।
मेवाड़ प्रान्त सुन्दर सुजान, छाणी नामक एक ग्राम जान।
हूमड़ जाति श्री भागचन्द, आचार्यवर्य उनके ही नंद।।
माता माणिक बाई प्रवीण, तसु कुक्ष जन्म आचार्य लीन।
उन्नीस शतक चालीस जान, तामें पुनि योगहु पांच मान।।
कार्तिक वदी एकादशि प्रवीण, नक्षत्र हस्त में जन्म लीन।
आनन्द भयो तब पुर मझार, घर घर मंगल गावें सु सार।।
बढ़ते निशदिन ज्यों द्वितीय चन्द्र, भावी उन्नत कैवल्यचन्द्र।
रहते थे बालपने विरक्त, नहीं व्याह कियो नहिं भये गृहस्थ।।
पुनि नेमिनाथ का चरित सार, मन में इस विधि कीनो विचार।
हैं विषयभोग अति दुःखकार, संसार सकल दीखे असार।।
केशरिया जी को कर प्रणाम, ले ब्रह्मचर्य को प्रण सुठान।
एक ग्राम सागवाड़ा सु थान, मुनिदीक्षा आप लही सु आन।।
कीनो अनेक देशनि विहार, उपसर्ग भये तब कई बार।
कर्मों की गति का लखि विकार, वे सहे सभी समता सुधार।।
गुरु पद में बीते कई साल, उपदेश देय भविजनहि तार।
इन्दौर किया जब चतुर्मास, तहाँ भव्यजनों की हरी प्यास।।
श्री कूट सिद्धवर सिद्धक्षेत्र, आये करते बहु पुर पवित्र।

थे मुनि मल्लिसागर जी साथ, जिनने दीक्षा ली आप हाथ।।
विद्या उन्नति बहु आप कीन, जनता कू हित उपदेश दीन।
करते विहार बहु पुर मझार, इक नग्न महेश्वर में सिधार।।
तहाँ पंच दिवस उपदेश कीन, जनता ने कुछ व्रत नियम लीन।
मेवाड़ प्रान्त कीनो सुधार, उपदेश दियो करके विहार।।
सब जगह प्रान्त बागड़ मझार, कीना शिक्षा का अति प्रचार।
उन्नीस शतक अट्ठाणु साल, गुरु शान्तिसिन्धु आये खुशाल।।
किया ऋषभदेव में चतुर्मास, भविजन की पूरी करी आश।
केवल भक्ति आवेश आय, यह नई रची गुणमाल गाय।।
कुछ भूल चूक यामें जो होय, सब क्षमा करो आचार्य मोय।
यह गुणमाला, विविध रसाला, भक्तिभाव से, पूज करें।
विष्णू ने गाई, मन हुलसाई, पूज्य श्रेष्ठ, हम भाव धरें।।
ॐ ह्रीं आचार्य श्री शान्तिसागरेभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।।
श्रेष्ठ भाव को धार मनुज पूजन करें,
गुण को गावें भक्तिभाव हिरदे धरें।
धन धान्यादिक होय, अमंगल सब हरे,
सो नर सुख को भोग, बहुरि शिवतिय वरें।।

इत्याशीर्वाद

शिष्यों को अर्घ

प्रथम शिष्य श्री सूर्य हैं, दूजा ज्ञान भण्डार।
तीजा मुनि श्री मल्लि हैं, वीर श्री गुणधीर।।
धर्म आदि क्षुल्लक श्री, निज निधि करे विचार।
ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी, संघ चतुरविधि धार।।
ॐ ह्रीं चतुर्विधसंघेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।

प्रशान्तमूर्ति आचार्य 108 श्री शान्तिसागर महाराज (छाणी) का पूजन (द्वितीय)

वीस वसु गुण मूल जे पालैं तिन्हें बहुभाव सों,
दश धर्म की रक्षा करैं इषु समिति धारहि चाव सों।
कलि काल पंचम काल में जे नग्न दीक्षा धारहीं,
तिन शान्तिसागर छाणी के पद कमल जजु शिरधार हीं।।
शान्तिसागर मुनि गुणी, पालें जे वसु वीस।
करि आह्वानन थापि इत, पूजों पद नय शीश।।

(उपस्थिति में) **ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणपालक परमदिगम्बरमुनि श्री शान्तिसागरचरणाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत्।**

(अनुपस्थिति में) **ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणपालक परमदिगम्बरमुनि श्री शान्तिसागर अत्रावतर अवतर सम्वौषट् इत्याह्वाननम्।**

अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः प्रतिस्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।। (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

शुचि निर्मल नीरा गंग नदीरा लखि अति धीरा भरि लीजे।
तिहि गालि बनाई चारु मिलाई कुंभ भराई कर लीजे।।
शान्त्याब्धि मुनीशा कर्मन खीसा भव रुग पीसा लखि लीजे।
तिन के जुग चरणा भव भ्रम हरणा गहि तिन शरणा जजि दीजे।।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणपालकपरमदिगम्बरमुनिश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चन्दन दाह निकंदन कुंकुम संघन घसि कीजे।
करपूर मिलाई बहु महकाई कुंभ भराई कर लीजे।।
शान्त्याब्धि.................................।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणपालकपरमदिगम्बरमुनिश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

शाली गंधकारी बहु अनियारी खंड निकारी कर लीजे।
मुक्ता उनहीरी गंध पसारी धूलि भरु थारी भरि दीजे।।
शांत्याब्धि.................................।।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणपालकपरमदिगम्बरमुनिश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो

अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुमना गंधकारी वेल निवारी मरुआ प्यारी चुनि कीजे।
वर जुही गुलाबा कमल फुलावा भाल भरावा कर लीजे।।
शान्त्याब्धि.................................. ।।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणपालकपरमदिगम्बरमुनिश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रसगुल्ला रसाजे खुरमा खाजे मोदक ताजे कर लीजे।
गोझाहि बनाई फेनि कराई थाल बनाई भरि दीजे।।
शान्त्याब्धि..................................... ।।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणपालकपरमदिगम्बरमुनिश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घृत करपूर दीवा मणिन कहीवा भ्रम तम क्षीवा ले आई।
जे बहु परकाशक मोह विनाशक ज्ञान विकासक सुखदाई।।
शान्त्याब्धि .... ।।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणपालकपरमदिगम्बरमुनिश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दश गंध लियाई चूर कराई अगिनि जराई गंध भरी।
जसु धूम उड़ाई दश दिश छाई अलिगण आई नृत्य करी।।
शान्त्याब्धि .... ।।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणपालकपरमदिगम्बरमुनिश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम छुहारा पिस्ता प्यारा गुछ नरियारा ले लीजे।
सहकार अनारा नारंगि सारा सोने थारा भरि कीजे।।
शान्त्याब्धि................................. ।।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणपालकपरमदिगम्बरमुनिश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल वसु द्रव्यै इकठी सव्वै थाल भरव्वै कर लीजे।
शुभ अर्घ बनाई भाव लगाई पूज रचाई जजि दीजे।।
शान्त्याब्धि............................... ।।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणपालकपरमदिगम्बरमुनिश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो

अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

षट् कायन के जीव तनी रक्षा करैं।
हित मित मीठे सत्य वचन मुख उच्चरैं।।
नहीं अदत्ता गहैं ब्रह्मचर्यहिं धरैं।
पंच महाव्रत धारि परिग्रह परिहरैं।।

ॐ ह्रीं पंचमहाव्रतपालकश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो अर्घं।।1।।

भूमि देखते चलैं वचन मीठे कहैं।
एक बार दिन मांहि शुद्ध भिक्ष गहैं।।
देखि उठावहिं धरहिं शास्त्र आदिक कही।
मल मूत्रादिक करैं भूमि लखि जीवनहीं।।

ॐ ह्रीं पंचसमितिपालकश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो अर्घं।।1।।

असपर्श रसना घ्राण नैना श्रोत्रहीं।
इस भाँति सों जो पांच इन्द्री है कहीं।।
करि तिन सब को दमन सुध्यान लगावहि।
उपसर्ग परिषह परे न अंग डुलावहि।।

ॐ ह्रीं पंचेन्द्रियदमनदक्षाटलध्यानधारकश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो अर्घं।।3।।

प्रतिक्रमण चन्दन स्तुती स्वाध्याय ही।
कायोत्सर्गऽरु वनसुं समता भावही।
षट् आवश्यक क्रिया मुनिन की जानिये।
इनको मुनि नितहि करैं परमानिये।।

ॐ ह्रीं षटावश्यकक्रियापालकश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो अर्घं।।4।।

करि नहान को त्याग दंत धौंवे नहीं।
केशलोंच भू शयन वस्त्र धारैं नहीं।।
एक बार लघु अशन खड़े आसन करैं।
शेष यही गुण सात मुनि पालन करैं।।

ॐ ह्रीं स्नान स्नानत्यागादिसप्तगुणपालकश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो अर्घं।।5।।

इन अट्ठाइस मूल गुणन को जानिये।
पालहि श्री मुनिराज भव्य परमानिये।।
जल फल आदिक द्रव्य आठहु लायके।
पूजिये जिनके पायं त्रियोग लगायके।।

ॐ ह्रीं अट्ठाईसमूलगुणधारकश्रीशान्तिसागरमुनिभ्यो पूर्णार्घं।।6।।

जयमाला

शान्ति करैं शान्ति धरैं भौं भरमण काहि हरैया हैं।
धर्म बढ़े मिथ्यात्व हटैं ऐसो उपदेश करैया हैं।।
ऐसे ही मुनिराज दास भव सागर तरण तरैया हैं।
तिन गुण की जैमाल कछु नमि तिनके चरण कहैया हैं।।1।।
श्री शान्तिसागर मुनिवर उदार वसु कर्मन खण्डन को कुठार।
मिथ्यात्व मोह तम हरण, बहु जैनधर्म उद्योत कार।।2।।
मेवाड़ प्रान्त पश्चिम बखान, जहं राज उदयपुर को सुजान।
तहँ छाणी वर इक ग्राम जान, जो निकट केशरिया नाथ थान।।3।।
तिह भागचन्द हूमड़ रहाय, मुनि शान्तिसागर तिन पुत्र आय।
माणिकबाई माँ सती साध्वि, जिहि कुक्ष जन्म लिय शान्त्याब्धि।।4।।
उन जीवित गृह सों थे उदास, इतने पितुमा किया स्वर्गवास।
जब तीस वर्ष की आयु आय, तब शिखर क्षेत्र वंद्यो सुजाय।।5।।
तहँ ब्रह्मचर्य व्रत धार लीन, भे बाल यती नहिं व्याह कीन।
ब्रह्मचारि रहै त्रै वर्ष जान, तब स्वप्ने पंच लखें सुजान।।6।।
मारत गो बांध्यो सिंह डाँट, बहु सूत माल दई जनन बाँट।
पुनि काठ कमण्डल को लखाय, संघ ग्राम जनन जिन भवन जाय।।7।।
फिर दर्शन श्री जिनराज कीन, तब क्षुल्लक व्रत को धार लीन।
क्षुल्लक पद में गो कछुक काल, फिर पांच स्वप्न देखे दयाल।।8।।
सरवर वारिज फूले महान, अरु देख्यो नाहर सिंह जान।
पर्वत जिन भवन समेत वीर, अरु वृषभ श्वेत देख्यो सुधीर।।9।।
मस्तक पर सूखे कांट पेखि, तिन अग्नि लगी जरतेही देखि।
तब मुनि मुद्रा लीन्हीं सुधार, इति भयो कार्य भव भ्रमण हार।।10।।
समये समये अजहुँ सुजान, होते शिक्षाप्रद स्वप्न ज्ञान।
जासों अनुभव मुनि काहि होय, कछु ही दिन में ते फलित होय।।11।।
श्री मुनिवर इत उत करि विहार, जागृत करते निज धर्मसार।
श्री मुनि को आवत सुनत कान, जुरि जैनाजैन आवत महान।।12।।
नर नारिन की जुरि भीर जाय, चहुँ दिश सों आवत हैं जो धाय।

लखि नग्न होयँ विस्मित अजैन, मुनि धर्म कहैं जयकार बैन।।13।।
जिन भव्यन भाग्य उदय कराय, ते करहि दरश मुनिराज आय।
श्री मुनिवर के गुण हैं महान, करि कौन सकै तिनको बखान।।4।।
तिन पद पावन रज हीय धार, वश भक्ति कछुक है कह्यो सार।
सुत कन्हईलाल मुनि पद सरोज, भगवान दास नमै रोज रोज।।5।।
कर जोरि करै विनती मुनेश, तुम पद रति हिय वर्त हमेश।
जासों भव भरमण जाय छूट, वसु कर्मन बन्धन जायँ टूट।।6।।
श्री मुनि गुणमाला अतिहि रसाला जे भविआला कण्ठ धरैं।
ते पुण्य संयोगी होयँ निरोगी बहु सुख भोगी मोक्ष वरैं।
इति जयमालार्घं निर्वपामीति स्वाहा।
जे वंदै मुनि शान्तिसागर हर्षाय के,
सुनहि धर्म उपदेश सुचित्त लगाय के।
तिन के रोग दुःख सब जायँ पलाय है,
अन धन सुत परिवार लछय सरसाय है।।

इत्याशीर्वाद

वे ही वीर कहलाते हैं

(1)

त्याग के अनंग संग ध्यान मे हुए जो रंग,
छोड़ नारी संग ज्ञान भंग को पिलाते हैं।
बुद्धिमान, ज्ञानवान, धर्मवान, शक्तिवान,
पूज्य मुनिराज धर्म ध्यान को सिखाते हैं।
आतम में मस्त रहें, ध्यान में ही लग्न रहें,
तन में नग्न रहें धर्म को सुनाते हैं।
ऐसे भव्य बन्धु मुनिराज शान्तिसिन्धु गुरु,
कहत 'महेन्द्र' वे ही वीर कहलाते हैं।।

(2)

अहो यह भोग अति पाप को संयोग देख,
त्याग नारी जोग, ध्यान आत्म में लगाते हैं।
दिव्य देहधारी, शक्तिधारी, कर्महारी मुनि,
नग्न देहधारी, जैन धर्म को जगाते हैं।
त्याग जगजाल फन्द पाया है आनन्द कन्द,
छोड़ परिजन वृन्द धैर्य को सिखाते हैं।
ऐसे शान्तिसिन्धु जैनधर्म के स्वरूप गुरु,
कहत 'महेन्द्र' वे ही वीर कहलाते हैं।

महेन्द्रकुमार 'महेश'

भजन

जिन धर्म का डंका बजाय दिया, इन शान्ति मुद्रा वालों ने।
मम ज्ञान को रस्ता बताय दिया, इन छत्तिस मूलगुण वालों ने।।
इस पंचम काल के मध्य ही में, मिथ्यात्व का जोर तो खूब बढ़ा।
सब भेद भाव मिटाय दिया, इन कमण्डल पीछी वालों ने।।
जब हमको मिले गुरु शान्ति छवि, हम अरज करें सब ही उनको।
सब नीति का मार्ग बताय दिया, इन शान्ति मुद्रा वालों ने।।
जिनधर्म का......................................।।
क्रोध, लोभ, मद, मान रिपुन को, सब दाह किये निज कर्मन को।
मुझे शान्ति का प्याला पिलाय दिया, इन पंच महाव्रत वालों ने।।
सप्त व्यसन में लीन पड़े थे, दे उपदेश छुड़ाय दिया।
दश धर्म का भेद बताय दिया, इन छत्तिस मूलगुण वालों ने।।
धर्मसागर क्षुल्लक की अरजी, अब धार ले हूँ अपने चित्त में।
संसार-समुद्र में डूब रहा, निकाल दिया गुरु ज्ञानी ने।।
जिन धर्म का डंका बजाय दिया, इन शान्ति मुद्रा वालों ने।।

आरती

जय आचार्य शान्ति स्वामी, आरती करूँ तुम चरणे।
जय आचार्य...।
गुरु अन्तरयामी। जयदेव, जयदेव।
छाणी शुभ नगरी मध्ये, स्वामी भागचन्द पिता।
माता माणिक कूखे, जन्मे गुरु दातार।। जयदेव, जयदेव।
आदिनाथ प्रभु चरणे शिरनामी, गुरु चरणे शिर नामी।
भोगों से भये हैं वैरागी, निज निधीना स्वामी।। जयदेव, जयदेव।
इस काल पंचम मध्ये, गुरु महाव्रत धरीआ।
आप तरे अरु तारे, हम संकट हरीया।। जयदेव, जयदेव।
स्वामी हम आन करे अर्चा, गुरु ज्ञान करें चर्चा।
मिटें सकल सन्ताप, मिले शिवरमणी पर्चा।। जयदेव, जयदेव।
त्यागी धर्म आयो गुरु चरणे, अब आयो गुरु चरणे।
चार गती से टारो, मिटे जनम मरणे।। जयदेव, जयदेव।

छाणी के आचार्य मुनीश्वर श्री शान्तिसागर वन्दन

पावन जैन दिगम्बर साधु महायति इन्द्रिय जेता,
मोक्षमार्ग के परम पथिक हैं धन्य मुनीश्वर विजयेता,
निर्ग्रन्थ दिगम्बर पावन मुद्रा, नमन गुरुवर अभिवन्दन,
छाणी के आचार्य ऋषीश्वर नमूं शान्तिसागर वन्दन ।।1।।
उसी काल के मुनि श्री, जो दक्षिण के पावन अभिराम,
वे भी आचार्य गुरुवर, शान्ति के सागर शुभनाम,
कैसा पावन योग बना है, दोनों अनुपम महायति,
एक बने दक्षिण के देवा, दूजे उत्तर महानपि ।।2।।
दोनों की अद्‌भुत है महिमा, निर्विकार थे अप-ग्रही,
दोनों में था नेह धर्म का, कठिन मार्ग के मुनि व्रती,
आचार्य श्री शान्तिसागरजी, जनम उदयपुर की 'छाणी',
पावन संवत 19 सो 45, दिव्य उदय वाणी ।।3।।
पिता श्री भागचन्द अनोखे, भाग्य उन्हीं का था जागा,
माणिक बाई मातु जिनकी मणिमय अनुपम सुत पाया,
घर में इनका नाम नेह से, 'केवलदास' कहा करते,
तीर्थंकर के दास बने थे, केवल धन्य महान वे थे ।।4।।
नेमिश्वर की जग असारता का चरित्र सुना केवल,
नहीं सार है जग में कोई, मोही क्यों मन है पागल,
मध्यरात्रि में देख स्वप्न में श्री सम्मेदशिखर यात्रा,
बाहुबली गोम्मटस्वामी की, चरण वन्दना शुभ यात्रा ।।5।।
तभी श्री की वीतरागता, उभर चली केवल के तन,
बाल ब्रह्मचारी ही रहकर, कामदेव को जीता मन,
करी वन्दना शिखरराज की, और परिग्रह का कर त्याग,
गढ़ ग्राम में पहुंचे केवल, सोचा राग ज्वलंत है आग ।।6।।
ऋषभदेव की प्रतिभा आगे क्षुल्लक दीक्षा ले ली जिन,
केवल से शान्तिसागर थे, वीतरागता पावन गिन,
संवत् अठरह सौ 80 में, पहुंचे सागवाड़ा महाराज,
भाद्र सुदी चौदस के दिन में, बने मुनिश्वर ऋषि सरताज ।।7।।

आत्मोद्धारक जो जन होता, पर को सुख-साधन करते,
पर पीड़ा जो देते जन को, जीवन भर दुःख को वरते,
जो पर को कल पाता है, वह कभी नहीं सुख पासकता,
सर्वत्र बिलखता है रोता, वह जीवन में है अकुलाता ।।8।।

क्रमशः तपाराधना करके पूज्य हुए जग जन में आप,
प्राणी मात्र के शुभ चिंतक थे, उन्हें बचाया भव के ताप,
वे शान्ति की प्रभा पुंज थे, जनमार्ग प्रकाशित कर पाये,
कोटि हृदय के प्राण बने थे, हर मन उन तक बढ़ आये। ।।9।।

आत्मधर्म के थे अनुरागी विना ताज के ऋषीवर थे,
आत्मकोष से धर्ममणि को, विस्तारा श्री यतिवर ने,
धर्महीन जो बने प्रमादी, नई चेतना भर उनमें,
विमल आत्म सरिता की लहरें, सुखमय लहरायी जिनने ।।10।।

आयु का कण क्षण क्षण बीते, ज्यों मिटे बुलबुला पानी का,
तन धन वैभव सब नश्वर हैं, यौवन रूप जवानी का,
दुनियां की इस मृगतृष्णा में, मानव आत्मधर्म खोवे,
मैं क्या हूँ क्या करना मुझको, करता क्या यह न सोचे ।।11।।

सच्चा सुख पाना गर तुमको, सत संयम को अपना लो,
सम्यक्त्व रतन को पाना होगा, मुक्तिमार्ग को तुम पालो,
जिनवाणी का सतत चिंतवन भव से पार लगाता है,
तीर्थंकर का ध्यान लगाले, मनवा क्यों पछताता है ।।12।।

जो आत्मविद्यघी है मानव, दुःखों से वे हैं घबड़ाते,
अज्ञानतिमिर औ रागद्वेष से, मिथ्या बल हैं दिखलाते,
धर्मराज जब जाग्रत होवे, शुभ धर्म कर्म के भाव उदय,
श्री जिनपूजा गुरु वन्दना, आत्म विकास का भाग्योदय ।।13।।

मन से वाणी से कर्मों से, तुम शौच बाह्य अन्तर पाओ,
संयम का अभिनव हो संचय, तक मन रोगी क्यों कर पाओ,
विकथा से काम नहीं होता, कथनी तज करनी को देखो,
गर रिक्त अभी तक है जीवन, तो धर्म कर्म को है सेवो ।।14।।

सुख यहां वहां क्यों कर होगा, सुख स्वात्मरूप में वसता है,
परवशता दुख की है जननी, कल कल में बेकल रहता है,
बालू से तैल नहीं रिसता, नभ में क्या पुष्पों की क्यारी,
स्वारथ वश पर में सुख मानें, दुर्बुद्धि की है बलिहारी ।।15।।

निज करनी से कांटे बोता, फूलों की क्यों आश करे,
पेड़ लगाया है बबूल का, आम कहां क्यों आश करे,
यह मत समझो स्वर्ग वहीं हैं, जहां देव गण है रहते,

यह न समझो नर्क वही है, जहां नारकी गण वसते ।।16।।
नर्क यहीं है स्वर्ग यहीं है, पाप पुण्य जन मन साथी,
कर्मों के फल स्वयं दीखते, न भविष्य तक रख साखी,
श्री जिनेन्द्र से पावन भगवन, गुरु दिगम्बर सत्य यति,
शिखरसम्मेद सा तीरथ पूजो, शुद्ध करो जन स्वयं मति ।।17।।
जो इनकी शरणों में आया, भव बन्धन उसने काटा,
आधि व्याधियां नष्ट हुईं हैं, शाश्वत सुख को है पाता,
सोच करो न अब कुछ मन में, भज ले श्री जिन की वाणी,
निर्ग्रन्थ गुरु का सुमिरण कर ले, ग्रहण करो श्री जिनवाणी ।।18।।
लोहा गर पारस को छूले, वह सोना बन जाता है,
शशि का ऐसा प्रभाव कि, ताप भी शीतल होता है,
जीवन गर अभिशाप बना है, बना हुआ वरदान स्वरूप,
धन्य धन्य हे जैन ऋषिश्वर, पावन कितना सम्यक् रूप ।।19।।
आचार्य श्री का ही प्रकाश है मुनिधर्म है उजियाला,
कल्पलता सी शीतलता है, सन्ताप ताप का है टाला,
भक्ति भोर पुलकित हो नाचे, ऋषिधर्म पर बलिहारी,
सुर नर किन्नर महिमा गाते, धर्मामृत के हैं अधिकारी ।।20।।
श्रद्धानत मस्तक अंजलि में, श्रद्धा सुमन समर्पित,
नमन तुम्हें शत बार हमारा, अभिनन्दन कर अर्पित,
युग युग तक गायी जावेगी, डग डग पर तव गाथा,
जग जन मानव है आभारी, झुका रहेगा पद माथा ।।21।।
आंखों में सागर है, वे शान्ति दिवाकर छाणी के,
मन वीणा झंकृत हो उठती, अर्चन कर उस वाणी के,
इनसा सच्चा ऋषिवर पाकर, माँ भारत मुस्काये जरूर,
दिखलाया सत्पथ मानव को, वे मुनिवर हैं जग के नूर ।।22।।
कोटि कोटिशः नमन तुम्हें हैं, ये गुरु जग के हितकारी,
अपने सूक्ष्म महाचिन्तन से, मुनि प्रथा जिन विस्तारी,
जीवन की आदर्श रश्मियाँ, लक्ष्य मुक्ति का धन्य हुआ,
पौरुष जिसका रवि तेज सा, जग जगती अभिवंद्य हुआ ।।23।।
स्याद्वाद औ अनेकान्त के दिव्य रूप थे गुरु विशेष,
रत्नत्रय जीवन का पथ है, जिससे नशते सारे क्लेश,
साम्यभाव के पावन मुनि को, मेरा अभिवन्दन अभिराम,
दिव्य विभूति ज्ञानज्योति को, मेरा शतशः शरण प्रणाम ।।24।।
मेरा शतशः चरण प्रणाम!

आरा — शशिप्रभा जैन 'शशांक'

वन्दना गीत

हे ज्ञानसागर! हे मुनीश्वर! वन्दनं तव वन्दनम्।
हे ज्ञानध्यानदयानिधे! तव वन्दनं तव वन्दनम्।।टे.।।
त्वं सर्वसत्वहितंकरस्त्वं ज्ञानध्यानदिवाकरः।
त्वं शान्तिधर्मसुखाकरस्तव वन्दनं तव वन्दनम्।।
सज्ज्ञानसंयमनिधिपते! त्वं सर्वसंगविवर्जितः।
हे सुमतिसागरशिष्य! मुनिवर! वन्दनं तव वन्दनम्।।
त्वं शान्तिदाता दुःखहर्ता धर्मनेता भवहरः।
भवभोगविषयविवर्जितस्तव वन्दनं तव वंदनम्।।
तव मधुरवाणी शान्तिसुखदां, समाकर्ण्य च जगजनाः।
प्राप्नुवन्ति सुखं च शान्तिं, वन्दनं तव वन्दनम्।।
हे! ज्ञानसागरसद्गुरो! त्विह श्रूयतां मम प्रार्थनाम्।
दीयतां मे दर्शनं, तव वन्दनं तव वन्दनम्।।

-महेन्द्रकुमार 'महेश' शास्त्री

आचार्यश्री शान्तिसागर स्तवन

(1)

मुनिराज शान्तिसिन्धु धुलेवा में न आते।
तो हम यहां ये धर्म दिवस व्यर्थ गंवाते,
नहीं लाभ उठाते।।
चमके हैं अहो भव्य धन्य हमारे।
आचार्य शान्तिसिन्धु ऋषभदेव पधारे,
भवि जीव को सत धर्म का उपदेश सुनाते।।
मुनि..।।
इस कामदेव शत्रु के हैं आप विजेता।
हैं बाल ब्रह्मचारी अहो धर्म के नेता,
संसार भोग हैं असार इस्को बताते।।
मुनि..।।
आये हैं मुनीराज मुनीधर्म बताने।
अरु वीर के सत धर्म को भारत में जगाने,
सोते हुए जिन धर्मियों को आके न जगाते।।
मुनि..।।
माता श्री मणिका के मुनिराज दुलारे।
श्री भागचन्द जैन के हैं आप सितारे,
छाणी है जन्मस्थान मुने! आपका ध्याते।।
मुनि..।।
अये जैन धर्मियो! तो कुछ धर्म लाभ लो।
निज जन्म को गिरते हुए अब तो सम्हाल-लो।
हम सबकी यही प्रार्थना तन-मन से सुनाते।
मुनि..।।
अवसर गया वो बाद में वापिस न आयेगा।
पाया न धर्म लाभ तो सब व्यर्थ जायेगा,
कहता 'महेन्द्र' हम उन्हीं को शीस नवाते।।
मुनि..।।

(2)

मुनि शान्ति धुलेता आये रे, दरशन कर दिल हुलसाये।।
मिथ्यामद मार भगाया,
अरु सत्य धर्म चमकाया।
मुनि ने मधु मांस छुड़ाया।।
श्रावकजन नियम दिलाये रे, दरशन कर।।
गुरु ऋषभदेव में आये,
सम्यक्त्व कर्म समझाये।
रिपु क्रोध रु काम भगाये।।
नित शान्ति सुधा बरसाये रे, दरशन कर।।
माणिकाबाई के सितारे,
श्री भागचन्द्र के प्यारे।
गुरु हैं मुनिराज हमारे।।
श्री शान्तिसिन्धु मन भाये रे, दरशन कर।।
किया कामदेव को दूरा,
अरु मोहमहामद चूरा।
हैं ज्ञानध्यान भरपूरा।।
अरि कर्म समूह दबाये रे, दरशन कर।।
हे वीर बन्धुओं जागो,
आलस अरु माया त्यागो।
उस ही मारग में लागो।।
जो मार्ग मुनीश बताये रे, दरशन कर।।
यह गया समय नहीं आवे,
नहीं बार-बार मुनि आवे।
हम पुण्य रु धर्म कमावे।।
यह विनय 'महेन्द्र' सुनाये रे, दरशन कर।।

पं. महेन्द्रकुमार

श्रीशान्तिसागरनो उज्ज्वल दीपक

श्री शान्तिसागर जे दीपक उज्जवल हतो मेवाड़मां,
ते छोडीने कीर्ति सु उज्जवल सीधाव्यां छे स्वर्गमां।
शान्तिसागर जी आवलो एवी अरज करवा हमे,
अहिं अष्टद्रव्यो भावथी पूजा प्रभु भाणीए अमे।
मेवाड़मां शुभ गाम छाणी भागचन्द्रो जैन छे,
माणिकबाई कुक्षथी गुरुजी तमारो जन्म छे।
वर्ष पंचावन तणी आयु महीय अकाल तो,
जप अने तपमां थयुं छे सागवाड़ा निधन तो।
मिथ्यात्व देशोमां छवायुं जे तमे टळयुं गुरु,
कुरिवाजो कुचल बहु आजे तमे टाल्या गुरु।
बोर्डिंग अने भुवन सरस्वती ने बळी कई आश्रमो,
कई ज्ञाननां क्षेत्रो वसावी सिधाव्या छो स्वर्गमां।
मुकी गुरुजी कीरती उज्जवल स्वर्गमां सीधावीया,
ते कीर्तिथी जीवो तणे मुख याद बहुये आवीया।
गुरुजी सीधाव्या स्वर्ग तेथी आल भारे खाटे छे,
सुबोधी ने ज्ञानी हता ते आज छोड़ी जाय छे।
देश देशे करी अटन ने भव्य जीव उपदेशीया।,
पाते तरी उपदेश दई तार्या डूबेला जीवडा।
जोडीने कर वे प्रभु वीनयुं ए कीरतीवंतने,
शान्ति चीरा देजो प्रनीत चरणे प्रभू ए गुरुजीने।

दिगम्बर जैन 20-6-44 से साभार

आचार्यवर्य श्री शान्तिसागर, स्वर्गवासी हो गये।
कर्म को तप से जलाकर, आत्मवासी हो गये।।टेक।।
अस्त सूर्य हुआ हमारा, प्रकाश बिन हम क्या करें।
कौन बताये गये गुरुवर, राह में हम भूले पड़े।।आ।।
बीच समुद्र में डूबे हुये थे, खड़कवासी हम सभी।
नाव बनकर तारते थे, नाव हमारी डूब गई।।आ.।।
कौनसी जिह्वा से गुरुजी, गुण आपके गाऊं मैं।
सहस्त्र जिह्वा जो बनावे, तो भी गुणगा सकते नहीं।।आ.।।
'गेवीलाल' दास तुम्हारा, करे अन्तीम प्रार्थना।
भव भव में मांगूं आत्मबल, और मांगूं कुछ नहीं।।आ.।।

दिगम्बर जैन 20-6-44 से साभार

त्रिभुवन के मझधार में

युग बीते पर तृप्ति न अब तक पा पाये संसार से
इसीलिए तो भटक रहे हम त्रिभुवन के मझधार में।

(1)

कितनी बार लिया है जीवन रूप बदल कर ठांव में
राजा हुआ कभी नगरी में कभी भिखारी गाँव में
कोटि कोटि दीनारों का अधिपति कितनी बार हुआ
बांधे रहा सदा कंचन जंजीर स्वयं ही पांव में
धूप छांव में आंगन सुख दुख के झूले झूलते
बिता दिये सोने से दिन हमने केवल अभिसार में।
इसीलिए जो भटक रहे हम त्रिभुवन के मझधार में।।

(2)

रागद्वेष को स्वयं सौंप दी जब जीवन की डोर रे
मोह और ममता दोनों का कोई ओर न छोर रे
तृष्णा की अग्नि में जलते इसीलिए तो प्राण हैं
कैसे पा सकते तब बोलो शान्ति सुखों की भोर रे
नहीं कभी पहिचाना हमने अपने सत्य स्वरूप को
बहते रहते लक्ष्य हीन होकर सुख दुख की धार में
इसीलिए तो भटक रहे हम त्रिभुवन के मझधार में।।

(3)

सुख दुख में जब तक समता का भाव नहीं आ पायेगा
रागद्वेष से जब तक मन का नाता टूट न पायेगा
हमें जूझते ही रहना तब तक कर्मों के बन्ध से
तभी मुक्ति पा पायेंगे हम जन्म मृत्यु के द्वन्द्व से
जिन जिन ने कर्मों को जीता मुक्त हुए वे भव रोग से
नहीं जन्म लेना उनको अब इस दुखमय संसार में
नहीं भटकना है उनको अब त्रिभुवन के मझधार में।
युग बीते पर तृप्ति न अब तक पा पाये संसार से
इसीलिए तो भटक रहे हम त्रिभुवन के मझधार में।।

(4)

पूज्य मुनि शान्तिसागर ने, तोड़ा जग से नाता था
काम क्रोध मद लोभ मोह न पास में उनके आता था
इसीलिए वह योगीश्वर बन छूटेंगे संसार से
युग बीते और तृप्ति पा लई उनने इस संसार से
इसीलिए न भटकेंगे वे त्रिभुवन के मझधार में।।

सागर — -फूलचन्दजी 'मधुर' (स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी)

श्री शान्तिसागर मुनि महाराज

श्री - शान्तिसिन्धुर्भुवि भव्यबन्धुः।
शां - त्यात्मकः सत्वहितंकरो यः।।
ति - ग्मं तपो यत्सपति प्रकृष्टः।
सा - धुस्तपस्वो मुनयः स जीयात्।। 1 ।।
ग - र्वाद्विरक्तः मुनिमार्गरक्तः।
र - त्नः सदा स्वात्मरतः प्रविज्ञः।।
मु - नीशवर्येण सदैव वन्द्यः।
नि - रस्तमिथ्यात्मवलः स जीयात्।। 2 ।।
म - हामुनिश्चात्र 'महेन्द्र' पूज्यः।
हा - स्याच्च शोकाद् रहितः सदा यः।।
रा - जादिवर्गेण चिरं प्रपूज्यं।
ज - हयः सुधिः शान्तियतिः स जीयात्।। 3 ।।

पं. महेन्द्रकुमार

भजन

गुरु शान्ति सिन्धु महाराजा, अमृत बेन बोलो ने।
मैं आयो दरश के काजा, प्रेम रस घोलो ने।।
मेवाड़ देश सोठावणो, छाणी नग्र शुभ ग्राम।
भागचन्द घर अवतरे, हर्षनो नहीं पार।।
अमृत...।।
मणि माता के कूख में, आयो देव अवतार।
केवल रतन जनमिया, आनन्द को नहिं पार।।
अमृत...।।
भोग रोग सम जान के, माने नहीं अगार।
मोह कुटुम्ब से छोड़ के, गये ऋषभ के द्वार।।
अमृत......................................।।
ब्रह्मचर्य को धर के, शुभ कीना ये विचार।
सम्मेदशिखर भेट्या बना, गयो जन्मारो हार।।
अमृत..।।
सम्मेदशिखर को भेट के, बागड़ देश सुधार।
ग्राम गढ़ी के मध्य में, क्षुल्लक भये तिहवार।।
अमृत...................................।।
सागवाड़ा के मध्य में, आदिनाथ अवतार।
जिन दीक्षा को धार के, कीनो देश सुधार।।
अमृत......................................।।
मेवाड़ बागड़ देश में, कीनो आप उद्धार।
खड़क गुजरात के माहि ने, विद्या को कियो प्रचार।।
अमृत......................................।।
क्षुल्लक 'धर्म' आयो दर्शको, भेट्या श्री महावीर।
शान्ति-सिन्धु के चरण में, नित्य नमावे शीश।।
अमृत......................................।।

क्षु. धर्मसागर महाराज

शान्तिधर्मशिक्षा

(प्रस्तुत शान्ति धर्मशिक्षा, शान्ति पंचरत्न संग्रह से संग्रहीत है जो आचार्य शान्तिसागर जी द्वारा रचित है उपयोगी होने से यहाँ दे रहे हैं-स.)

ज्ञानलक्ष्मीघनाश्लेषमभयानन्दनन्दितम् ।
निश्चितार्थमहं नौमि, परमानन्दमव्ययम् ।। 1 ।।

।।श्री आदिनाथस्तुति।।

भुवनाम्भोजमार्तण्डधर्मामृतपयोधरम् ।
योगी कल्पतरुं नौमि देवदेवं वृषध्वजम् ।। 2 ।।

।।श्री चन्द्रप्रभस्तुति।।

भवज्वलनसंभ्रान्तसत्त्वशान्तिसुधार्णवः ।
देवश्चन्द्रप्रभः पुष्यात्, ज्ञानरत्नाकरश्रियम् ।। 3 ।।

।।श्री शान्तिनाथस्तुति।।

सत्यसंयमपयः पूरः पवित्रितजगत्त्रयम् ।
शान्तिनाथं नमस्यामि विश्वविघ्नौघशान्तये ।। 4 ।।

।।श्री वर्धमानस्तुति।।

श्रियं सकलकल्याणं कुमुदाकारचन्द्रमाः ।
देवः श्री वर्धमानाख्यः क्रियादिभव्यामिनन्दिताम् ।। 5 ।।

।।जिनवाणीस्तुति।।

श्रुतस्कन्धनभश्चन्द्रसंयमश्रीविशेषकम् ।
इन्द्रभूतिं नमस्यामि योगीन्द्रं ध्यानसिद्धये ।। 6 ।।

।।उपदेशक के लक्षण।।

प्रबोधाय, विवेकाय, हिताय, प्रशमाय च ।
सम्यक् तत्त्वोपदेशाय, सतां सूक्तिं प्रवर्तते ।। 7 ।।

।।धर्म की महिमा।।

धर्मः त्रिलोकबन्धुः धर्मः शरणं भवेत् त्रिभुवनस्य ।
धर्मेण पूजनीयः भवति नरः सर्वलोकस्य ।। 8 ।।
धर्मेण कुलविपुलं धर्मेण च दिव्यरूपमारोग्यम् ।
धर्मेण जगत्कीर्तिः धर्मेण भवति सौभाग्यम् ।। 9 ।।

वरवहनयानवाहनशयनासनयानभोजनानां च।
वरयुवतिसन् भूषणानां संभाति भवति धर्मेण।। 10 ।।

।।भव्य धर्म का सेवन करो।।

धर्मामृतं सदापेयं दुःखातंकविनाशनम्।
यस्मिन् पीते परं सौख्यं जीवानां जायते सदा।। 11 ।।
चारित्रं खलु धर्मो धर्मो यः स शम इति निर्दिष्टः।
मोहक्षोभविहीनः परिणाम आत्मनो हि शमः।। 12 ।।
धर्मेण परिणतात्मो आत्मा यदि शुद्ध समयोग युतः।
प्राप्नोति निर्वाणं सुखं शुभोपयुक्तो वा स्वर्गसुखम्।। 13 ।।

।।अधर्मी वाक्य।।

यो धर्मं कुर्वन् इच्छति सुखानि कश्चिद् निर्बुद्धिः।
स पीलयित्वा सिकतामिच्छति तैलं नरो मूढ़ः।। 14 ।।
बह्वारम्भं परिग्रहणं संतोषवर्तितं यत्र।
पंचोदम्बरमधुमासानि भक्ष्यते यत्र धर्मः।। 15 ।।
दम्भयते यत्र जनः पीयते मद्यं च यत्र बहुदोषम्।
इच्छन्ति तमपि धर्मं केचिच्च अज्ञानिनः पुरुषाः।। 16 ।।
य एतादृशं धर्मं करोति इच्छति सौख्यं भोक्तुम्।
उत्सृजं निम्बतरुं मूढः इच्छति आम्रफलानि च।। 17 ।।
धर्म इति मन्यमानः करोति य एतादृशं माहापापम्।
स उत्पद्यते नरके अनेकदुःखपथे भीमे।। 18 ।।

।।आचार्य वाक्य।।

एवमनादिकाले जीवः संसारसागरे घोरे।
परिहिंटते अलभमानो धर्म सर्वज्ञं मणीयतम्।। 19 ।।

।।आचार्यकृत धर्मोपदेश।।

परित्यज्य कुधर्मं तस्मात् सर्वज्ञभाषितो धर्मः।
संसारतारणार्थं च ग्रहीतव्यो बुद्धिमद्भिः।। 20 ।।
धर्मो जिनैः भणितः सागरस्तथा भवेदनगारः।
एतयोर्द्वयोरपि हि सारं खलु भवति सम्यक्त्वम्।। 21 ।।

।।मुनिधर्म।।

अनगारः परं धर्मधीराः कृत्वा शुद्धसम्यक्त्वम्।

गच्छन्ति केचित्स्वर्गे केचित् सिद्धयन्ति धूतकर्मणः।। 22 ।।

।।श्रावकधर्म।।

पंचाणुव्रतानि गुणव्रतानि भवन्ति त्रीणयेणम्।
चत्वारि च शिक्षाव्रतानि सागार एतादृशो धर्मः।। 23 ।।

।।धर्म ऐसा नहीं होता है।।

धर्मो न पठनेन भवेत् धर्मो न।
धर्मो न मय प्रदेशे धर्मो न।। 24 ।।

।।धर्म ऐसे होता है।।

रागद्वेषौ द्वौ परिहरति यः आत्मनि य वसति।
सो धर्मो जिनोक्तं य पंचमगतिं ददाति।। 25 ।।

।।मोक्ष का फल।।

इति अष्टगुणो देवो जराव्याधिविवर्जितश्चिरं कालम्।
जिनधर्मस्य फले न च दिव्यसुखं भुक्ते जीवः।। 26 ।।

।।धर्म का अन्तिम मंगल।।

जिने देवो जिने देवो जिने देवो जिने जिनः।
दया धर्मो दया धर्मो दया धर्मो दया सदा।। 27।।

आचार्य शान्तिसागर जी महाराज छाणी

संति-संस्मरण

हीरछंद

कम्मदलणं सोम्म–धरण चंदकिरण राजदे
केवलकिरणं मधुर भावे पडिदिण–पमादे।
णं सुमहुर–विंद–भमर–धम्म–धरण गम्मदे
राग-दलण सम्म-सरण-केवल-सुद-भासदे।। 1 ।।

केवलदास प्रतिदिन कर्मो का क्षय करने के लिए चंदकिरण की सोम्यता को धारण कर मानों केवल किरण रूपी मधुर-भाव में प्रातः काल से लेकर सान्ध्य तक भ्रमर समूह की तरह धर्म धारण करने के लिए ही श्री प्रवृत्त होना चाहता है। राग की समाप्ति ही साम्यभाव की एकमात्र शरण केवलज्ञान रूपी श्रुत से भासित होती है।

सुसमा छंद (सुषमा छन्द)

गामे रमदे सम्मेदचला, अक्खाण–रदा सम्मत्तगदा।
रत्ती-असणं चागं पढमं, सज्झाय-णिमित्तं भत्ति-बंद।। 2।।

केवलदास ग्राम में रहता है, सम्मेदशिखर की ओर सम्यक्त्व से पूर्ण कथाओं को सुनकर उस ओर चलना चाहता है। इसलिए वह सर्वप्रथम रात्रि भोजन का त्याग करता है फिर स्वाध्याय हेतु भक्ति में रत होता है।

इन्द्रवज्रा

धम्मं ण कम्मं ण हु किं पि जाणे,
झाणे रदो वंदण–हेदु–गम्मे।
तित्थादु तित्थं रिसहं च देवं
गच्छेदि सो केवलदास-दासं।। 3 ।।

वह केवलदास न धर्म, न ही कर्म जानता है, फिर भी वह ध्यान में रत एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ की वन्दना करने के लिए ऋषभदेव/केसरयिा जी की ओर चल पड़ता है।

मालती छन्द

गामे गामे सम्मं धम्मं बोहीणं
बम्हं णाणं बम्हं चारं बम्हीणं।
वीरे मग्गे धीर भावे गच्छेदी
मंसं मज्जं चागावेंतो गच्छेदि।। 5 ।।

वे ग्राम-ग्राम में धर्म का सम्यक् बोध कराने के लिए स्वयं ब्रम्ह का ज्ञान करते, उसका आचरण करते, फिर वीर के मार्ग पर धीर भाव से चल पड़ते और जन-जन को मांस, मधु का त्याग कराते हुए चलते हैं।

भुजंगप्रयात

गदो चार–वासो धरे बम्हचेरं, महा–खुल्लगं दिक्ख–सिक्खा–वएणं
रमंतो च धम्मे वसे सागवाड़े, किदो केस लुचं समं वत्थचागं।।

ब्रह्मचर्य को धारण करने के बाद क्षुल्लक दीक्षा की शिक्षा के व्रत से युक्त चार वर्ष व्यतीत कर दिये, फिर सागवाड़ा में धर्म का आचरण करते हुए केशलुञ्च पूर्वक स्वयं ही वस्त्र त्याग दिए।

पंकावली

सो जण–जण–मण–भावण–दिक्खउ
साहु–जय–जय–सुसंति–सुधाधर।
राजदि मुणि–पह–दिगंबर–दिक्खउ
बागड़-गड-इदिवुत्त-महा धर।। 6 ।।

बागड़ प्रान्त के इतिहास की अनुपम दीक्षा जन-जन के मन को प्रेरित करने वाली थी। यह मुनिमार्ग की दिगम्बर दीक्षा साधु मानी गई। जय जयकार रूप सुशान्ति की अमृत धारा फूट पड़ी।

चामर

उत्तरप्पदेस–संति–साहु–सम्म–देसणे
भत्ति–जुत्त–मोह–मुत्त–मज्ज–मंस–णिग्वुदा।
माणवाण–णारि–वुंद–बाल–बुड्ढ–णिज्जणे
संति-पाद-चाग-भाव-धम्म-सम्म-संगदा।। 7 ।।

उत्तरभारत की शान्तिपूर्ण सम्यक् देशना से नारियों, बालकों, वृद्धों और मानवों का समूह एवं अनार्य भी भक्ति युक्त होकर मद्य-मांस से रहित, मोह मुक्त आचार्य शान्ति सागर के चरणों में त्याग भाव से युक्त सम्यक् धर्म की संगति में जाते हैं।

सारंगरूपक

ता सव्व–आणंद–कंदेण–धावंति, दसट्ठ–हेदुं जणा सागवाडाए।
जेणीसरी दिक्ख-सिक्खेण रजंति, जा संति-सासास-आभं वि दीसंति।।8।।

जैसे ही इस तरह की दीक्षा को लोगों ने सुना, वैसे ही सागवाडा की

और उनके दर्शनार्थ हेतु जन-समूह आनन्दभाव से दौड़ पड़ते हैं, जिन्होंने अपनी शिक्षा-दीक्षा से शान्ति के शासन की आशा एवं आभा को दिखलाया है, वे निश्चित ही जैनीश्वरी दीक्षा से शोभा को प्राप्त करते हैं।

मणोहंस

जह आय--संति--महंत--साहुवियावरे
तह सव्व चारु--चक्कवरी--मुणि--संतिणो।
इग एव ठाण--गुरू विराजदि राजदे
सद-भत्ति-सद्ध-महंत-छाणि-विसायरे।। 9 ।।

जैसे ही दोनों महान् शान्ति के धारक सन्तों का व्यावर नगर में आगमन हुआ, वैसे ही सभी जन एक स्थान पर शान्तिसागर छाणी और चारित्र चक्रवर्ती शान्तिसागर मुनि के दर्शन हेतु उमड़ पड़ते। महान श्रद्धा एवं भक्ति के साथ अपनी महान आत्मा को पहचानने में प्रवृत्त होती है।

मालव--सुरम्म--देसे, इंदूर--णयरे चउमास--समए।
विविह-पण्णा-जणेसुं, सत्थ-सिद्धंत-रहस्से मग्गो।। 10 ।।

वे शान्तिसागर मालव के सुरम्य प्रदेश के इन्दौर नगर में चार्तुमास के समय विविध विद्वानों से शास्त्र-सिद्धान्त के रहस्य में प्रवृत्त हुए।

ललिदपुर--गिरीडीहे, परदापुर--ईडर--सगवाड़ाए।
पुण इंदूर-ईडरे, णसीरवाद-वियावरे च ।। 11 ।।
सागवाडा-उदयपुर-ईडर-गलियाकोडे महणयरे।
पारसोला-भिण्डरम्मि, तालोद-रिसह-दिसह संलंबरे।। 12 ।।

आपने ललितपुर, गिरीडीह, परतापुर, ईडर, सागवाड़ा पुनः इन्दौर, ईडर में चातुर्मास किया। नसीराबाद, ब्यावर, सागवाड़ा, उदयपुर, ईडर गलियाकोट, पारसोला, भिण्डर, तालोद, ऋषभदेव पुनः ऋषभदेव और सलुम्बूर आदि स्थानों पर चातुर्मास किये।

तेणं पहावेणं च, चउव्विह--समाजम्हि सामंजस्सो।
जादो धम्मबुद्धी च, दाणं सत्थ-णाणं-बहावणं।। 13 ।।

उनके प्रभाव से चतुर्विध समाज (संघ) में सामंजस्य, धर्मबुद्धि, दान, ज्ञान, शास्त्र के प्रति अभिरुचि भी उत्पन्न हुई।

महव्वय--रहो संती, एगंते केसलुंचं वेतणजुत्तं ण भिच्चं।
पत्त-परिक्खा-पुव्वं, असणं लेंति देंति दिक्खं वि।। 14 ।।

वे शान्तिसागर महाव्रत में रत एकान्त में केशलोंच करने, वेतनयुक्त नौकर नहीं रखते, पात्र परीक्षा पूर्वक आहार लेते और दीक्षा भी देते हैं।

आचार्य श्री सूर्यसागर महाराज

द्वाविशंति कर सहन परीषह, द्वादशानुप्रेक्षा में मग्न।
परम वीतरागी शान्तसूर्यमुनि, धर्मध्यान में हैं संलग्न।।
"जीव मात्र को धर्म लाभ हो" रखकर यह हित-भाव विशाल।
ख्याति-नाम से दूर, "सूर्य मुनि" रहते नित परमारथ काल।।

कल्याणकुमार जैन 'शशि'

आदर्श संत परमपूज्य आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज : एक संस्मरण

आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज का वि.सं. 1940 को मध्यप्रदेश के शिवपुरी जिलान्तर्गत पेमसर नामक ग्राम में जन्म हुआ था। आपका जन्म का नाम श्री हजारीलाल जैन था। आपने वि.सं. 1981 को 41 वर्ष की उम्र में सन्तशिरोमणि ज्ञानदिवाकर समाधिसम्राट्, परमतपस्वी परमपूज्य श्री 108 आचार्य शांतिसागर जी (छांणी) से इन्दौर में ऐलक दीक्षा ली, और आपका नाम सूर्यसागर जी रखा गया, आपने 51 दिन पश्चात् ही आचार्य शांतिसागर जी (छाणी) से हाटपिपल्या (मालवा) में सर्व परिग्रह का त्याग कर जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार की, और 45 वर्ष की उम्र में वि.सं. 1985 को आपने कोडरमा (बिहार) में आचार्य पद प्राप्त किया था।

आचार्य श्री के निज स्वभाव साधन का विचार तो निरन्तर रहता ही था लेकिन, साथ ही संसार के प्राणियों के प्रति करुणाभावं भी था कि इनका जन्म-मरण के दुःखों से किस प्रकार छुटकारा हो। यह विचार आपके हृदय को सालता रहता था। इस बात का सबूत है 'संयमप्रकाश' नामक ग्रंथ जो कि पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध दोनों 10 भागों में मुनिधर्म और श्रावकधर्म के बारे में भव्यजीवों के सम्बोधनार्थ उनकी भलाई निहित करके स्वाध्याय के लिए यह ग्रंथ प्रस्तुत किया आपका संयम प्रकाश आत्म हितेच्छुओं को सम्यक् मार्गदर्शन करता हैं। इसके स्वाध्याय से आत्मलाभ लेना चाहिये।

आचार्य श्री निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग पर पूरी तरह आरूढ़ थे। जैसा उन्होंने जाना और समझा उसे अपने व्यवहारिक जीवन में स्थान दिया और वैसा ही उन्होंने संयमप्रकाश ग्रंथ में प्रस्तुत किया। आपने और भी ग्रंथ भव्यजीवों के संबोधनार्थ लिखे। आपने संयमप्रकाश ग्रंथ में तो करीबन मुख्य-मुख्य जैनसैद्धान्तिक सभी ग्रंथों का और जैनेत्तर ग्रंथों का भी सार निकालकर बहुत ही अच्छी तरह प्रकाश डाला हैं।

मुझे यह लिखते हुये परम हर्ष होता है कि जैनाचार्यों, मुनिराजों एवं

विद्वत् वर्ग ने साहित्य संरचना एवं संकलन करके भव्य जीवों का सदैव मार्ग दर्शन किया है, लेकिन यह हमारा ही दुर्भाग्य है कि हम स्वयं उनके बताये मार्ग पर न चलकर अपना ही भविष्य अंधकारमय बनाने पर तुले हैं। उसमें किसी कर्म व भाग्य का रंचमात्र भी दोष नहीं है। क्योंकि अपना भाग्य बनाने व बिगाड़ने वाले हम स्वयं हैं। हम ही अपनी परिणाम रूपी लेखनी से अपने भाग्य में लिख लेते हैं और उसी का भुगतान जन्म-मरण के रूप में भोगते हैं। एक ग्रामीण कहावत है कि "चलनी में दूध दोहे और कर्मों को दोष देवें"। वास्तविकता में हम इसी कहावत को चरितार्थ करने पर तुले हैं।

रोजाना की तरह एक दिन मैं जब श्री मंदिर जी में दर्शन-पूजन हेतु गया तो मेरी दृष्टि सूचनाबोर्ड पड़ी और प्रशममूर्ति, बालब्रह्मचारी आचार्य श्री शांति सागर (छांणी) की स्मृति में अखिल भारतीय निबन्ध लेखन प्रतियोगिता के बारे में चिट्ठी लगी देखी, उसमें जब मैंने अखिल भारतीय आचार्य सूर्यसागर जी महाराज का नाम देखा तो मुझे 44 साल पुरानी वि.सं. 2005 की घटना एकदम स्मृति में हो आई और मेरा रोम-रोम हर्ष से उल्लसित हो गया। वि.सं. 2005 में जब मेरी उम्र 21 वर्ष की थी, उस समय मुझे मिलिट्री में 1000 खाकी तौलिये सप्लाई करने थे, तो एक मित्र ने कहा कि आप इन्दौर चले जाइये वहां उपलब्ध हो जायेंगे।

जब उज्जैन से इन्दौर बस से शाम को सात बजे पहुँचा तो सर सेठ श्री हुकमचंद जी की नसियां जी में गया। वहाँ मुझे एक अलमारी उपलब्ध हो गई। प्रातः काल नसियां जी के श्री मंदिर जी में दर्शन-पूजन से निवृत हो कर स्वाध्याय कर रहा था। वहाँ कुछ माता-बहिनें एकत्रित हो गई। मैंने एक वृद्धा मां जी से पूछ ही लिया यहां सर सेठ हुकमचन्द जी साहब का रहने का भवन कहाँ है, क्योंकि मैं इन्दौर पहली बार गया था। सेठ साहब के बारे में चर्चायें अवश्य सुनता रहता था। उन मां जी ने कहा कि, तुकोगंज में उनका इन्द्रभवन है वे उसमें रहते हैं वहाँ जिनालय भी हैं।

जब मैं पूछते-पूछते इन्द्रभवन के फाटक के पास पहुंचा और अन्दर जाने लगा तो दरबान ने रोक दिया। मैंने कहा-भाई साहब! मुझे भगवान के दर्शन करने जाना हैं तो उन्होंने सहर्ष जिनालय की तरफ इशारा करके जाने की अनुमति दे दी। जब मैं जिनालय के पास पहुंचा तो वहां एक भवन रंगीन कांचों का था और एक संगमरमर का बना जिनालय था। वहां ही एक कर्मचारी

पास में सफाई कर रहा था। परदेश होने के कारण कोई गलती न हो जाय इसीलिए मैंने उससे पूछा कि भइयाजी! जिनालय कहाँ है? वह शायद गलत समझ गया और उसने कहा कि इस कांच के स्वाध्याय भवन में, ऊपर हैं।

मैं जब ऊपर पहुंचा तो क्या देखता हूँ कि आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज विद्यमान हैं और वे उस समय लेखन कार्य में संलग्न थे। मैं नमोस्तु कहकर और धोक देकर बैठ गया। उस समय उनका तुकोगंज इन्द्रभवन में ही चातुर्मास हुआ था।

आचार्य श्री जब मेरी तरफ मुखातिब हुए तो उन्होने पूछा कि कहां से आये हो? मैंने कहा-महाराज मैं लश्कर (ग्वा.) से आया हूँ। साथ ही साथ मैंने अपने आने का कारण भी बता दिया और मैंने कहा महाराज मुझे यहाँ का कुछ भी ज्ञान नहीं हैं। आचार्य श्री ने अत्यन्त कृपावन्त होकर कहा—तुम अमुक बाजार में अमुक दलाल के पास चले जाना, वह काम करा देगा। लेकिन साथ ही मुझे सावधान भी कर दिया कि उससे हमारा नाम न लेना।

मैंने कहा-नहीं महाराज! ऐसा कभी नहीं होगा, और जो कुछ भी नाम एवं पता बतलाया था वह मैंने नोट कर लिया। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे मेरी सारी चिन्ता दूर हो गई हो। कुछ समय से मेरे अंदर एक जिज्ञासा थी सो मैंने मौका पाकर पूछ ही लिया कि महाराज! पांचउदुम्बर फलों में ऊमर, कठूमर, बड़, पीपल और पाकर है तो कठूमर में कौन-कौन से फल आते हैं। जबकि कोई तो कठूमर में कठेर को, कोई गोंद को, कोई पपीता को बताते हैं।

आचार्य श्री ने कहा कि कठूमर अंजीर को कहते हैं। अंजीर तो फल बेचने वालों में मिलते हैं, और किराने वाले के यहां मेवा की चीजों में सूखे डोरी में पिरोये हुए रहते हैं और कहा कि संस्कृत में काकोदुम्बारिका शब्द का काष्टोदुम्बर हुआ और काष्टोदुम्बर का अपभ्रंश होते-होते कठूमर नाम हो गया। कठूमर का भाषा वालों ने अलंकृत पच्चू फोड़कर निकलने वाला अर्थ कर लिया। हमने बहुत छानबीन कर कठूमर का अर्थ अंजीर निकाला है।

मैं थोड़ी देर बैठा और उठने को हुआ तो आचार्य श्री ने कहा-कहां जा रहे हो? अभी नीचे स्वाध्याय भवन में सेठ साहब व पंडित जी सब आयेंगे और शास्त्र वाचन होगा। मैं मन में बहुत प्रसन्न हुआ और बैठ गया। उस

समय मुझे ऐसा लगा कि आचार्य श्री से मेरा बहुत पुराना परिचय हो थोड़ी देर बाद ही सब लोग आ गए, तब आचार्य श्री भी नीचे उतर आये और उनके भी पीछे-पीछे उतर गया। सेठ साहब धोती-दुपट्टा पहने हुये थे और आपके हाथ में मोती या मूंगा की जाप जपने की माला थी, मैं भी वहां ही बैठ गया।

पं. जी ने शास्त्र स्वाध्याय के दौरान में निश्चय, व्यवहार की बहुत ही सुन्दर व्याख्या की। आपने कहा कि अनादि काल का यह जीव विषय-कषायों से मलीन हो रहा है, सो व्यवहार साधन के बिना उज्ज्वल नहीं हो सकता। जब जीव मिथ्यात्व, अव्रत और कषायादिक की क्षीणता होने पर देव, गुरु, धर्म की यथार्थ श्रद्धा करें और उसके तत्वों की जानकारी हो और उसकी अशुभ क्रिया मिट जाय, तब वह जीव निश्चय रत्नत्रय का अधिकारी हो सकता है। क्योंकि व्यवहार के बिना निश्चय की प्राप्ति नहीं होती। यह बात मुझे आज तक अच्छी तरह याद है।

स्वाध्याय समाप्त होने के बाद जब सब लोग चले गये, बाद में आचार्य श्री दर्शन करके आहार को निकल पड़े, सो उनको इन्द्रभवन में ही पड़गाह लिया। मैं आचार्य श्री पीछे-पीछे चला गया, और आहार देखता रहा। जब आहार हो चुका, तब मैंने कहा-महाराज मैं इन्द्रभवन देखना चाहता हूँ।

तब महाराज ने कर्मचारी से कहा—इनको इन्द्रभवन दिखा दो, मुझसे कहा कि हम जब तक यहीं बैठे हैं। कर्मचारी मुझे अंदर ले गया और सेठ साहब का जो खास कमरा था, वह मुझको दिखा दिया। जिसमें पूरे कमरे में सोने ही सोने का काम था, कमरे के बीच में स्वर्ण का बना हुआ झूला कुर्सीनुमा टंगा हुआ था। पुण्य की महिमा देखकर दान करने का फल साक्षात् दिखाई दे रहा था। जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल पाता है। जब मैं वापिस आया तो तब तक आचार्य श्री वहां से वापिस हो गये थे, मैं आचार्यश्री को परोक्ष नमस्कार करके अपने गन्तव्य स्थान पर चला आया।

मैं पूछते-पूछते उस दलाल के घर पर पहुंच गया, और उसने मेरा उसी समय सारा काम करा दिया, मुझे वह दिन आज तक याद है।

लश्कर **भगवतीप्रसाद वरैया**

आचार्य श्री सूर्यसागर जी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

आचार्य श्री 108 सूर्यसागर जी महाराज एक निःस्पृह, वीतरागी और शांतिप्रिय साधु थे। अपने जीवन काल में समाज में व्याप्त अनेक स्थानों के आपसी मतभेद, फूट, मनमुटाव और परस्पर के कलह- झगड़ों को अपने सदुपदेशों द्वारा मिटाने में वे सिद्धहस्त थे। उन्होंने अनेक स्थानों की समाजों के वर्षों के आपसी झगड़े मिटाकर समाज में एकता स्थापित की, सामाजिक संगठन को मजबूत बनाया और कषायों को मिटा कर शान्ति स्थापित की। वे परम तपस्वी थे। उन्होंने आगमानुसार अपने मुनि जीवन को बनाया। उनकी कथनी करनी में अन्तर नहीं था। वे आहार के लिये एक बार शहर में जाते। सदुपदेश देकर वापस शहर से बाहर चले जाते। वे सात्त्विक वृत्ति के साधु थे। जयपुर में उनका वर्षायोग सन् 1936 में प्रथम बार हुआ।

आचार्य श्री का जन्म कार्तिक शुक्ला नवमी विक्रम संवत् 1940 में ग्वालियर के प्रेमसर नामक ग्राम में पोरवाल जाति के यसलहा परिवार में हुआ था। गृहस्थावस्था में आपका नाम श्री हजारीमल था। आपके पिता का नाम श्री हीरालाल जी, माता का नाम गैंदाबाई था। श्री हीरालाल जी के सहोदर भाई बलदेव जी के सन्तान न होने से चरित्र नायक श्री हजारीमल जी उनके दत्तक हो गये और उनके साथ बाल्यावस्था में ही झालरापाटन आ गये। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा झालरापाटन में ही हुई। अधिक पढ़ नहीं सके। शिवपुर जिले के मेवाडा ग्राम में ओंकार मल जी पोरवाल की सुपुत्री मोतां बाई के साथ आपका विवाह हो गया और इन्दौर आकर राव राजा सर सेठ हुकमचंद जी के यहां और उसके बाद सेठ कल्याणमल जी के यहां सर्विस की। सर्विस छोड़कर कपड़े का स्वतंत्र व्यवसाय किया कपड़े की दलाली भी करते रहे।

आपकी बचपन से धार्मिक रुचि थी, वह धीरे-धीरे उम्र बढ़ने के साथ-साथ बढ़ती गई। आपकी धर्मपत्नी भी धार्मिक विचारों की थी, अच्छी सैद्धान्तिक चर्चायें कर लेती थीं। नियमित स्वाध्याय से उनका ज्ञान अच्छा हो गया था। सन् 1916 में उनका स्वर्गवास हो गया। धर्मपत्नी के वियोग

से इन्हें संसार से उदासीनता होने लगी। संवत् 1981 में एक स्वप्न ने श्री हजारीमल जी के जीवन में एक परिवर्तन ला दिया। स्वप्न में आपने देखा कि एक जलाशय में तख्त पर बैठा कोई उनसे कह रहा है कि चले आओ, देर न करो। उसके आग्रह पर भी इन्होंने ध्यान नहीं दिया तो उस व्यक्ति ने तख्ते को किनारे पर लगा कर इन्हें तख्ते पर चढ़ाया और जल में कुछ दूर दे जाकर पीछी कमण्डलु को दिखा कर कहा कि इन्हें ले लो। इन्होंने इन्कार किया और दो-तीन बार कहने पर भी नहीं उठाया। नहीं लेना है यह कहते हुए बिस्तरों पर कुछ हटे तो पलंग से नीचे गिर गये। यह सत्य घटना नहीं स्वप्न की बात है, पर इससे उनके जीवन में काफी परिवर्तन आया और उसी साल सन् 1925 में आश्विन कृष्ण षष्ठी को इन्दौर में विराजमान आचार्य श्री शान्तिसागर छांणी महाराज जी से ऐलक दीक्षा ले ली। दीक्षा लेने के बाद आपका नाम हजारीमल से सूर्यसागर रखा गया। आपके भाव साधु जीवन की ओर बढ़ने लगे। ऐलक अवस्था की लंगोटी का परिग्रह भी आपको अखरने लगा और 15 दिन के पश्चात् ही मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी को हाट पीपल्या (मालवा) में अपने गुरु आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज छाणी से सर्व परिग्रह त्याग आत्म कल्याण की भावना से दिगम्बर मुनि की दीक्षा ले ली और तप साधना में लीन रहने लगे।

41 वर्षीय मुनि श्री 108 सूर्य सागर जी के जीवन में जहां स्व कल्याण स्वात्मोत्थान की भावना थी साथ ही धर्म प्रचार तथा समाज के उत्थान के विचार भी पनपते रहे। धार्मिक शिक्षा और सद्प्रवृत्तियों पर आप सदा जोर देते थे। आपके सदुपदेश से अनेक स्थानों पर पाठशालायें, विद्यालय, औषधालय खुले, समाज में व्याप्त कषायें भी कम हुईं। आपसी झगड़े-टंटे जो कोर्ट कचहरी तक में चलते रहे, जिनमें आपसी मारपीट तक हुई ऐसे सैंकड़ों स्थानों के व्यक्तिगत, पंचायती और सामाजिक झगड़े मिटे, शान्ति स्थापित हुई। भिंड, टोंक, मुंगावली, खुरई, चंदेरी, टीकमगढ़, हाट पीपल्या, उदयपुर, संवारी, भीलवाड़ा, डबोक, साकरोदा, नरसिंहपुरा आदि में वर्षों तक चलने वाले झगड़े शान्त हुए।

जयपुर में भी एक-ग्यारह का झगड़ा समाज में चला और काफी फैला। बहिन-बेटियों का आपस में पीहर ससुराल आना जाना बन्द हुआ। विवाह-शादियों में सम्मिलित होना बन्द रहा। यह मनमुटाव झगड़ा तीन वर्ष

तक रहा। सन् 1936 में जब आपका चातुर्मास जयपुर में हुआ आपने झगड़े को सुना तो विद्वानों की जैन नगरी में ऐसी बातें क्यों? आपके उपदेश से समाज एकत्रित हुई और आनन-फानन में यह झगड़ा जो तीन-चार वर्षों से चलता आ रहा था शान्त हुआ। इस अवसर पर प्रसिद्ध संगीतज्ञ और बाल सहेली के संस्थापक संचालक मेरे पूज्य पिता श्री गैंदीलाल जी भांवसा ने अपने साथियों से चर्चा कर जयुपर के समस्त दिगम्बर जैन समाज के पुरुष वर्ग की गोठ (सहभोज) के आयोजन की घोषणा कर दी जो शहर से पूर्व की ओर प्रसिद्ध स्थान घाट में दिन में भगवान् के पूजन भजनपूर्वक सम्पन्न हुई। यह बाल सहेली वि.सं. 1959 में स्थापित हुई थी जो प्रति शुक्रवार को जयपुर के विभिन्न मंदिर चैत्यालयों में प्रातःकाल पूजन और सायंकाल भजन का आयोजन करती थी। आज भी यह बाल सहेली चालू है। मैंने स्वयं भी यह सारी बातें देखी हैं।

चोमू में 60-70 घर खण्डेलवाल अग्रवाल जैनों के हैं। वहां दो शिखर बंद मंदिर व एक चैत्यालय है। इन मंदिरों के आमद खर्चा के हिसाब और एक दुकान के झगड़े ने इतना तीव्र रूप धारण कर लिया कि यह पहले समाज में दो गोठें थी, वैमनस्य बढ़ा, दो की तीन और तीन की चार पार्टियां हो गईं। समाज ो हजारों रुपया खर्च हो गया। कई सज्जनों ने झगड़ा मिटाने का प्रयत्न किया पर मिटा नहीं। 14-15 वर्षों से झगड़ा था। आचार्य सूर्यसागर जी महाराज का सदुपदेश करीब ढाई माह तक हुआ। एक विद्यालय की स्थापना हुई उसका नाम श्री नाभिनन्दन दि. जैन पाठशाला रखा गया और उसके मंत्रित्व का भार स्वनाम धन्य पं0 चैनसुख दास जी पर रहा। महाराज श्री ने सारे मामले को सुना व समझा और झगड़ा मिटाया। चोमू जैन समाज में एकता स्थापित की। इस पर चोमू समाज में हुए व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से एक तहरीर लिखी गई जो दोनों मंदिर चैत्यालय और विद्यालय का सारा खर्चा एक जगह से होगा और जो इसमें विघ्न बाधा करेगा वह देव शास्त्र गुरु से विमुख होगा।

कृतित्व

आचार्य श्री की सबसे महत्वपूर्ण देन 'संयमप्रकाश' के दस भाग हैं जो एक संग्रह ग्रंथ है। बड़ी मेहनत और खोजबीन के साथ तैयार किया गया है। पूज्य गुरुदेव चैनसुखदास जी के नेतृत्व में इसका सारा सम्पादन कार्य

भाई श्री प्रकाश जी शास्त्री न्यायतीर्थ व मुझे करना पड़ा और थोड़े दिन के बाद ही भाई प्रकाश जी का सन् 1950 में स्वर्गवास हो गया। वे अच्छे विद्वान् थे। यह सारा ग्रन्थ 20 इंच गुना 30 इंच/आठ साइज में जयपुर के सांगानेरी हैड मेड पेपर में छपा है। सांगानेरी कागज टिकाऊ होता है। जयपुर में प्रायः सारे शास्त्र भण्डारों के ग्रंथों में यही कागज लगाया जाता था। इसकी दस किरणें हैं पूर्वार्द्ध की पांच और उत्तरार्द्ध की पांच। पूर्वार्द्ध में मुनि धर्म का वर्णन और उत्तरार्द्ध में श्रावक धर्म का वर्णन है।

जैसा कि ग्रंथ के नाम से विदित होता है कि इस ग्रंथ में संयम का ही मुख्यतः विवेचन है। संयम के भेद-प्रभेदों को पूर्णतः इसमें बताया गया है और सरल भाषा में समझाया गया है। यह ग्रंथ जटिल नहीं है। सर्व साधारण की भाषा में सुगम है। अनेक ग्रंथों की बजाय एक ही इस ग्रंथ का स्वाध्याय-मनन-चिन्तन एक साधारण पढ़े लिखे आदमी को धार्मिक सैद्धान्तिक ज्ञान कराने में सक्षम है। साथ ही उसको संयमित जीवन बिताने की प्रेरणा प्रदान करता है।

पूर्वार्द्ध की प्रथम किरण में साधु के मूल गुणों का, महाव्रतों का सारांशतः वर्णन है। मुनि चर्या कैसी होनी चाहिए, उनका रहन सहन, खान-पान आदि शास्त्रानुसार विवेचन इस प्रथम किरण में 168 पृष्ठों में है।

द्वितीय किरण समाचार अधिकार की है। समाचार अर्थात् मुनि और आर्यिकाओं का आचरण कैसा हो यह 144 पृष्ठों में खोलकर समझाया गया है।

ग्रंथ की तृतीय किरण पंचाचाराधिकार है। महाव्रतियों के लिये मुख्यतः, पांच आचार का पालन निश्चित रूप से अनिवार्य है। सम्यग्दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार। इनके भेद-प्रभेद खोल कर समझाये गये हैं। तृतीय किरण के 228 पृष्ठ हैं।

चतुर्थ किरण—भावनाधिकार है। मानव जीवन में उत्थान और पतन करानेवाली उसकी भावनायें ही हैं। सद्भावनायें उत्थान कारक हैं और असद् भावनायें पतन का कारण हैं। भावनामय ही जीवन है वे ही जीवन निर्माण करती हैं। अतः सदा सद्भावनायें ही रखना चाहिये। यह एक प्रकार अभ्यास है और वैराग्य में स्थिरता व आनन्द सुख की वृद्धि करता है। आचार्यो ने 12 भावनायें बताई हैं जिनका निरन्तर अभ्यास अपेक्षित है। अनित्यादि 12

भावनायें हैं। इनका वर्णन तथा अनगार भावना का विशेष वर्णन इस चौथी किरण में 294 पृष्ठों में है।

पंचम किरण में वृहद् समाधि अधिकार है। मूल गुणों का सम्यग्दर्शन आदि का पालन करते हुए कषायादि को नष्ट कर संयममय जीवन बिताने पर आत्म परिणति शुद्धि की ओर झुक जाती है तब ध्यान, योग रूप समाधि करण होता है। इस पांचवी भावना में मरण के 17 भेद-प्रभेदों का वर्णन 266 पृष्ठों में है।

इस प्रकार मुनि धर्म का विवेचन 1002 पृष्ठों में पांच अध्यायों में पूर्ण होता है। इससे आगे श्रावक धर्म का वर्णन है। श्रावक अणुव्रतों का पालन करता है।

उत्तरार्द्ध की प्रथम किरण सम्यग्दर्शनाधिकार, 118 पृष्ठों में है। द्वितीय किरण पाक्षिकाचाराधिकार है। पाक्षिक श्रावक के लिये अपेक्षित नियम व्रत आदि का वर्णन इस किरण में 216 पृष्ठों में है। तृतीय किरण दर्शन प्रतिमाधिकार है। जिसमें नैष्ठिक श्रावक की दर्शन प्रतिमा और व्रत प्रतिमा का स्वरूप, भेद और प्रभेद 218 पृष्ठों में वर्णित है।

चतुर्थ किरण--सामायिकादि व नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमाधिकार में 9 सामायिकादि परिग्रह त्याग का स्वरूप उसके भेद-प्रभेदों का वर्णन है। सामान्यतः 10वीं 11वीं प्रतिमा का स्वरूप भी इसमें है। पर 10-11वीं प्रतिमाधारी साधक क्षुल्लक और ऐलक रूप में होने से उनका विशेष वर्णन पंचमी किरण में उत्तम नैष्ठिक साधकाधिकार के नाम से दिया गया है। इस प्रकार श्रावक धर्म का वर्णन करने वाला उत्तरार्द्ध की 5 किरण 754 पृष्ठों में है।

इस प्रकार 'संयम प्रकाश' ग्रंथ के 10 भागों में उक्त वर्णन 1756 पृष्ठों में हैं।

इसके अतिरिक्त आचार्य श्री की और अनेक रचनायें हैं। श्रावक धर्म प्रकाश-सामान्य रूप से, श्रावक धर्म प्रकाश-विशेष रूप से, 'आध्यात्मिक ग्रंथ संग्रह', 'आत्मसाधन मार्तण्ड', 'आत्म सद्बोध मार्तण्ड', 'अभक्ष विचार मार्तण्ड', 'सद्बोध मार्तण्ड', 'निर्जरामार्तण्ड', 'निजानन्दमार्तण्ड', 'विवेकमार्तण्ड', स्वभाव बोधमार्तण्ड आदि है जो संसारी जीवों को आत्मा का अनुभव करा कर उसका कर्तव्य सिखाते हैं।

सम्पादक, वीरवाणी
जयपुर

भंवरलाल न्यायतीर्थ

आचार्य 108 श्री सूर्यसागर जी महाराज के चातुर्मास : एक सिंहावलोकन

1. संवत् 1981 इन्दौर चातुर्मास दीक्षा
2. सं. 1982 ललितपुर में चातुर्मास
3. सं. 1983 इन्दौर में लावरेभरो पर चातुर्मास
4. सं. 1984 इन्दौर में खजूरी बाजार लश्करी मन्दिर में
5. सं. 1985 श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा से कोडरमा में
6. सं. 1986 जबलपुर में चातुर्मास
7. सं. 1987 कुण्डलपुर अतिशय क्षेत्र (दमोह)
8. सं. 1988 खुरई (सागर) में चातुर्मास
9. सं. 1989 टीकमगढ़ में चातुर्मास
10. सं. 1990 भिण्ड (ग्वालियर) में चातुर्मास
11. सं. 1991 आगरा पीर कल्याणी नशिया में
12. सं. 1992 लाडनूँ मारवाड में चातुर्मास
13. सं. 1993 जयपुर में चातुर्मास
14. सं. 1994 अजमेर में सेठ भागचन्द जी की नसिया जी
15. सं. 1995 उदयपुर मेवाड़ में चातुर्मास
16. सं. 1996 कुरावड जिला उदयपुर मेवाड़ में
17. सं. 1997 भिण्डर जिला उदयपुर मेवाड़ में
18. सं. 1998 भीलवाड़ा जिला उदयपुर में
19. सं. 1999 लाडनूँ जिला जोधपुर मेवाड़ में
20. सं. 2000 कुचामन मारवाड जि. जोधपुर में
21. सं. 2001 जयपुर नगर राजस्थान में
22. सं. 2002 मंदसौर मालवा में
23. सं. 2003 इन्दौर दीतवारिया बाजार में
24. सं. 2004 संयोगिता गंज छोटी छावनी इन्दौर में
25. सं. 2005 इन्दौर तुकोगंज सर सेठ हुकुम चन्द जैन के इन्द्र भवन में
26. सं. 2006 उज्जैन फ्रीगंज माधोनगर में सेठ साहब के मील कम्पाऊंड में
27. सं. 2007 कोटा शहर राजस्थान में
28. सं. 2008 दिल्ली शहर (इन्द्रप्रस्थ) में
29. सं. 2009 डालमिया नगर (बिहार) में

मुनि श्री भरतसागर जी के पत्र के सन्दर्भ में

एक जीवन यात्रा

(किशोरीलाल से आचार्य विमलसागर तक)

वास्तव में, निराकुलता में ही सच्चा सुख है और यह निराकुलता शिव-मार्ग में प्रवृत्त हुए बिना सम्भव नहीं। जो शिव-मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है, उसे सांसारिक भोग विलास हेय लगने लगते हैं। वह इनसे विनिर्मुक्त होना चाहता है। आज सारे संसार की दृष्टि अपने घर की खोज करने वाले सत्यान्वेषी साधनों की ओर लगी हुई है। स्वर्गीय आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज भी ऐसे ही विश्ववंद्य सच्चे साधकों में से एक थे।

पौष शुक्ला द्वितीया विक्रम संवत् 1948 में मुनि श्री को जन्म देने का सौभाग्य मध्यप्रदेश के मण्डला जिला के ग्राम माहिनो को प्राप्त हुआ। जायसवाल कुलरत्न सेठ भीकमचंद जी की चिरसाध पूरी हुई, क्योंकि उन्हें चार भाइयों के बीच बड़ी प्रतीक्षा के पश्चात् सौ० मथुरादेवी की कोख से किशोरीलाल नामक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। द्वितीया को जन्मा बालक द्वितीया के चांद की भांति अपने समस्त गुणों का उत्तरोत्तर विकास करता हुआ बढ़ने लगा। परन्तु क्रूर राहु बाल चन्द्र के इस विकास को न देख सका और आठ वर्ष की अल्पायु में ही उससे पिता का प्यार छीन लिया। माता मथुरादेवी पर असमय ही दुःख का पहाड़ सा टूट पड़ा। लेकिन धैर्यशालिनी माता इस दुःख से विचलित नहीं हुई। वह तो अपने होनहार पुत्र को लेकर पीरोठ नगर में आकर बस गई तथा वहीं उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा दिलाई।

परिवर्तन नियति का क्रम है। किशोरावस्था के विदा लेते ही अंगड़ाई लिए यौवन का आगमन हुआ। अपने युवा बेटे का भरता-संवरता शरीर देखकर किस मां का मन खुशी से भर नहीं जाता? वह भी अपने युवा बेटे के विवाह की मधुर कल्पनाओं में खोई रहकर वैधव्य के दुःख को भुलाये रहतीं। कहावत है कि बारह वर्ष बाद घूरे के दिन भी फिरते हैं। उनके भी दिन फिरे। पुत्र-बधू के शुभ आगमन से परिवार में एक बार फिर से हर्षोल्लास की लहर दौड़ गई। किन्तु निष्ठुर नियति को उनका यह सुख अच्छा नहीं

लगा। विवाह के सिर्फ सात वर्ष बाद ही विक्रम सम्वत् 1975 में उनको फिर एक गहरा आघात लगा। वह लाड़ली बहू भी सारे परिवार को बिलखता छोड़कर सदैव के लिए चली गई। किशोरीलाल के युवा मन का दर्पण भी इस करारी चोट से अक्षत न रह सका। वह प्रायः उदास रहने लगा। पूर्ण यौवन में उनकी इस उदासीनता को देख परिजनों ने दो वर्ष बाद उनका दूसरा विवाह भी कर दियां इस प्रकार फिर उस घर से मातमभरी उदासी ने बिदा ली। पुत्र-वधू ने भी कुलमर्यादा के अनुरूप अपने गुरुतर दायित्व का पन्द्रह वर्ष तक सफलतापूर्वक निर्वाह किया। सारा परिवार आमोद-प्रमोद में खोया रहता, किन्तु भविष्यत् को कौन टाल सकता है। वि. सं. 1992 में उनकी जीवन-संगिनी भी बीच में ही हाथ छुड़ा कर चली गई।

गृहस्थ-जीवन के इन झंझावातों का किशोरीलाल के मन पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़ा, जो स्वाभाविक ही था। बाल्यावस्था में ही पितृ वियोग, पूर्ण यौवन में दो-दो पत्नियों का वियोग, माता का वियोग, इत्यादि घटनाओं ने उन्हें संसार की असारता का अच्छा बोध करा दिया था।

राग और विराग में केवल दृष्टि का ही भेद है। जब उनकी दृष्टि ही पलट गई, तब भला गृहस्थी के बन्धन उन्हें कैसे बाँध सकते थे? विक्रम संवत् 1993 में उन्होंने साधना के कठिन मार्ग को अपनाते हुए व्रत-प्रतिमा धारण करके देश-संयम की दूसरी सीढ़ी पर चढ़कर मोक्ष-मार्ग की तरफ कदम बढ़ाया। अब तो उनकी एक ही रट थी—

'कब गृहवास सो उदास होय, वन सेऊं
लखूं निज रूप, गति रोकूं मन-करी की?

'जहाँ चाह, वहाँ राह'- जिसे गृहवास के त्याग की चाह हो, उसे भला घर कैसे बाँध कर रख सकता है। विक्रम् संवत् 1997 में वह शुभ घड़ी भी आई जब पाटन (झालावाड़) में उन्होंने अपने पूज्य गुरु आचार्य श्री विजयसागर जी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा लेकर गृहस्थ-जीवन को तिलांजलि देकर साधक के एक नवजीवन का प्रारंभ किया।

अन्तरात्मा साधक को बाहर का कुछ भी नहीं सुहाता है, फिर भला वही लँगोटी और खण्ड-वस्त्र में क्यों कर उलझे रहते। उन्हें तो अब चाह लंगोटी की दुःख भाले, लंगोटी की इच्छा भी चिन्ताजनक प्रतीत हुई। अपने श्रद्धेय गुरुजी की प्रेरणा से कापरेन नगर में ऐलक दीक्षा लेकर तीन वर्ष तक दिगम्बरी

साधना के कठिन मार्ग का सतत् अभ्यास किया और विक्रम संवत् 2000 में कोटा (राजस्थान) में मुनि श्री विमलसागर नाम से अपने पूज्य गुरुवर आचार्य श्री विजयसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा धारण कर देश-संयम की सीमा को लांघ कर महाव्रती या श्रमण की संज्ञा प्राप्त की। श्रमण शब्द की व्युत्पत्ति पाणिनि के अनुसार "श्रमु तपसि खेदे च" धातु से हुई है, जिसका अर्थ है— तप करने वाला साधक। मुनि-दीक्षा साधना के विद्यालय में प्रथम प्रवेश है। सच्ची पढ़ाई तो यहीं से प्रारंभ होती है। सत्यान्वेषी साधु को आत्मा का साक्षात्कार करके जीवन में आध्यात्मिक सौन्दर्य के नए-नए द्वार खोलने होते हैं। एक आध्यात्मिक योद्धा की भाँति उसे पुरुषार्थ का धनुष लेकर, तप के बाण से कर्मों के दुर्भेद्य कवच का भेदन करना पड़ता है। स्वर्ण को स्वर्णत्व अग्नि की प्रखर लपटों में तपने पर ही प्राप्त होता है। उसी प्रकार आत्मा को भी परमात्मा पद की प्राप्ति तपस्या के द्वारा ही होती है। तपश्चरण की आध्यात्मिक अग्नि से तृप्त एवं परिपक्व होने पर ही साधना फलवती होती है। तप की महत्ता से परिचित पूज्य मुनिश्री ने भी इन्द्रिय दमन करने वाले दुर्धर तप को अपना कर तप के सोने में त्याग की सुगन्ध बसाने की कहावत चरितार्थ कर जन-जीवन पर अपनी एक अपूर्व छाप छोड़ी। आज का भौतिकवादी मानव जब नवीनतम खोजों द्वारा भौतिक सुविधाएं जुटाने में लगा हुआ था, तब आप साधना का कठिन मार्ग अपना कर सच्चे साधक की भांति घोर परीपह सहन करते हुए सुखान्वेषण में निमग्न रहते थे।

"पानी हिलता भला, जोगी चलता भला" उक्ति को चरितार्थ करते हुए आप जीवन भर सच्चे सुख का सन्देश लिए, भगीरथ की भांति अनेकों कष्टों को झेलते हुए भी ज्ञान-गंगा को जन-जन तक पहुँचाने का सतत प्रयास करते रहे। वर्षा-योग, विराम या विहार के रूप में कितने ही पुण्यवानों को आचार्यश्री का सानिध्य प्राप्त हुआ। सन्त का मन पर-पीड़ा से द्रवित हो उठता है। उसकी यही भावना रहती है कि पर-पीड़ा का किस प्रकार निवारण करूँ? दुःख-रूप संसार को उन्होंने काफी नजदीक से देखा था। अतः वे एक सच्चे हितैषी की भाँति जन-जन को मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त करना चाहते थे। सिद्धवरकूट में श्री कीर्तिसागरजी महाराज को ऐलक-दीक्षा, भोपाल पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा में श्री धर्मसागर जी महाराज को क्षुल्लक दीक्षा उनकी इसी भावना की प्रतीक है। लश्कर में चौमासा करके आपने कई सामाजिक विवादों को निपटा कर

एक सच्चे संगठक का कार्य किया। गुना में महाराजश्री के चौमासे का धर्मपरायण जनता पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ा था। आपकी सद्‌प्रेरणा के परिणामस्वरूप लगभग बारह ग्रन्थों का प्रकाशन किया, जिनका जनता पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ा था। आपकी सद्‌प्रेरणा के परिणामस्वरूप लगभग बारह ग्रन्थों का प्रकाशन किया गया, जिनका अनुशीलन करके जन-जन आज भी मुनिश्री को सच्ची श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहा है। इसी प्रकार भिण्ड आदि कितने ही ग्राम और नगरों की भूमि आचार्य श्री के पावन चरणों के स्पर्श से धन्य हुई। 81 वर्ष की पूर्णतः ढलती आयु में जब रोग और जीर्णता के कारण शरीर बिल्कुल टूट चुका था, तब भी आप एक सच्चे योद्धा की भाँति अपने कर्तव्य धर्म के प्रति सजग थे। कोटा नगर के निवासी उनकी यह स्थिति देख जब यह सोच रहे थे कि अब तो आचार्यश्री का यहाँ से आगे बढ़ना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं, तब कभी हार न मानने वाला उनका दृढ़ संकल्पी मन उन्हें कर्तव्यपालन की ही प्रेरणा दे रहा था। उनके अटल निश्चय ने मानो बाधाओं को पीछे ही धकेल दिया था। कोई सोच भी नहीं सकता था कि चर्या तक के लिए चलने-फिरने में असमर्थ यह सन्त आगे कहीं चौमासा कर सकेगा। उत्तरोत्तर क्षीण अवस्था को देखकर कोटावासियों ने आचार्यश्री से काफी अनुनय-विनय किया कि वह कुछ दिन और कोटा में ही मुकाम करें, किन्तु उनके सामने तो 'रमता जोगी, बहता पानी' का सिद्धान्त था। वहाँ से आपने विहार कर ही दिया और ग्राम सांगोद, जो कि आपके जीवन का अंतिम पड़ाव था, वहाँ आकर ठहरे। शारीरिक दुर्बलता अब सीमातीत हो गई थी। जब आचार्य श्री ने देखा कि काया का रथ अब धर्माराधन के योग्य नही रहा, तब उन्होंने एक सच्चे योद्धा की भाँति जीवन से हार न मानते हुए मृत्यु को एक आध्यात्मिक महोत्सव के रूप में वरण करने का निश्चय किया।

आचार्यश्री विमलसागर जी ने 13 अप्रैल सन् 73 को सांयकाल के 6 बजे यम-सल्लेखनाव्रत धारण किया। रात्रि के 9.44 पर आप समाधिस्थ हुए। आपके स्वर्गारोहण होने का महान् दुःखद सन्देश हवा की तरह भारत के कोने-कोने में फैल गया। दूसरे दिन आपके अन्तिम-दर्शन की अभिलाषा लिए अपार जनसमूह एकत्र हो गया।

मध्याह्न में आपका अन्तिम संस्कार सम्पन्न हुआ। मथुरादेवी का किशोरीलाल अपने जीवन की दीर्घ साधनामयी जीवन-यात्रा पूर्ण कर अन्त

में चिरकाल के लिए भारतमाता की गोद में सो गया।

शेष है उनका जीवन-आदर्श, पावन उपदेश, तप, त्याग, धर्मनिष्ठता, सच्चारित्र, जिनको जीवन में समाचरित कर प्रत्येक मानव अपना कल्याण कर सकता है।

आचार्य विमलसागर द्वारा दीक्षित साधु

आचार्य श्री निर्मलसागर जी महाराज

आचार्य श्री का जन्म उत्तरप्रदेश, जिला एटा ग्राम पहाड़ीपुर में मगसिर वदी 2 विक्रम संवत् 2003 में पद्मावती परिवार में हुआ था, आपके पिताजी का नाम सेठ श्री बोहरेलाल जी एवं माता जी का नाम गोमावती जी था, दोनों ही धर्मात्मा एवं श्रद्धालु थे। देव, शास्त्र, गुरु के प्रति उनकी अनन्य भक्ति थी तथा अपना अधिक समय धार्मिक कार्यों में ही व्यतीत करते थे। उन्होंने पाँच पुत्र एवं तीन कन्याओं को जन्म दिया। उनमें से सबसे छोटे होने के कारण आप पर माता-पिता का अधिक प्रेम रहा लेकिन वह प्यार अधिक समय तक न चल सका तथा आपकी छोटी उम्र में ही आपके माता-पिता देवलोक सिधार गये थे। आपका बचपन का नाम श्री रमेशचन्द्र जी था। आपका लालन-पालन आपके बड़े भाई श्री गौरीशंकर जी द्वारा हुआ। आपकी वैराग्य भावना बचपन में ही बलवती हुई थी। आपके मन में घर के प्रति अति उदासीनता थी। आपके ह्रदय में आहारदान देने व निरग्रन्थ मुनि बनने की भावना ने अगाध घर बना लिया था। आप जब छहढाला आदि पढ़ते तो इस संसार के चक्र-परिवर्तन को देखकर आपका ह्रदय काँप उठता था एवं बारह-भावना पढ़ते ही आपके भावों का स्रोत बह उठता तथा वह धर्म चक्षुओं के द्वारा प्रवाहित होने लगता था। आप सोचते थे कि इन दुःखों से बचकर अपने को कल्याणमार्ग की ओर लगाकर सच्चे सुख की प्राप्ति करूँ। इसी के अनन्तर शुभकर्म के योग से परम पूज्य श्री 108 महावीर कीर्ति जी का शुभागमन हुआ। उस समय आपकी उम्र 12 वर्ष की थी। महाराज श्री आपके घराने में से हैं। आपने उनके समक्ष जमीकन्द का त्याग किया और थोड़े दिन उनके साथ रहे। फिर भाई के आग्रह से घर आना पड़ा। अब आपको घर कैद सा मालूम होने लगा। आपके भाई ने शादी के बहुत यत्न किए लेकिन सब निष्फल हो गए। आप आचार्य श्री

108 शिवसागर जी के संघ में भी थोड़े दिन रहे। वहाँ से बड़वानी यात्रा के लिए कुछ लोगों के साथ चल दिये। बड़वानी में आचार्य श्री 108 विमलसागर जी का संघ विराजमान था। आपने वहाँ पर दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। उस समय आपकी उम्र 15 वर्ष की थी। फिर बाद में आप दिल्ली पहुँचे। वहाँ पर परम पूज्य श्री 108 सीमन्धरजी का संघ विराजमान था। उनके साथ आप गिरनार जी गये। वहाँ पर आपने सं. 2022 मिति वैशाख वदी 14 को क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। उस समय आपकी उम्र 17 वर्ष की थी। वहाँ से विहार कर संघ का चातुर्मास अहमदाबाद में हुआ। उसके बाद आपने गुरु की आज्ञानुसार सम्मेदशिखर जी के लिए विहार किया। आप पैदल यात्रा करते हुए आगरा आये वहाँ पर श्री परम पूज्य 108 विमलसागर जी का संघ विराजमान था। आपने सं. 2024 मिती आषाढ़ सुदी 5 रविवार के दिन महाव्रतों को धारणकर निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा धारण की तथा संघ का चातुर्मास वहीं पर हुआ। वहाँ से विहार करते हुए आप कुण्डलपुर आये। जहाँ पर आचार्य श्री से ब्र. निजात्माराम जी ने क्षुल्लक-दीक्षा ग्रहण की। वहाँ से विहार करते हुए आप श्री सम्मेदशिखर पधारे। वहाँ पर महाराज श्री की तीर्थराज वन्दना सकुशल हुई। बाद में आपका चातुर्मास हज़ारीबाग में हुआ। उसके बाद आप मधुवन आये। वहाँ पर क्षुल्लकजी ने आप से महाव्रत ग्रहण किये। बाद में आप ईसरी पंचकल्याणक में पधारे तथा वहाँ पर 5 दीक्षायें आपके द्वारा हुईं। आप वहाँ से विहार करते हुए बाराबंकी पधारे। जहाँ पर आपका चातुर्मास हुआ। वहाँ से विहार करते हुए आप मेरठ आये। मेरठ से आप संघ सहित पांडव नगरी भगवान् शान्तिनाथ, अरहनाथ, कुन्थुनाथ, मल्लिनाथ की जन्मभूमि हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पर जिस दिन भगवान् आदिनाथ ने श्रेयान्स राजा से प्रथम आदि काल का आहार गन्ने के रस के रूप में ग्रहण किया था पधारे। संघ सहित विराजकर आपके सम्पूर्ण संघ ने गन्ने का रस लेकर उस दिन की याद को ताजा करा दिया मानो वो ही दृश्य सामने हो। मुनि श्री एक माह रहकर मीरापुर, जानसठ, मुजफ्फरनगर, खतौली, सरधना, बरनावा, बिनौली, बड़ागाँव, बड़ौत आदि इलाकों में होते हुए चातुर्मास के लिए दिल्ली कैलाशनगर में विराजे। आपने अनेकों स्थानों पर चातुर्मास किये।

वर्तमान में गिरनार क्षेत्र पर निर्मल ध्यान केन्द्र का निर्माण कार्य आपके सदुपदेश से हो रहा है। आप व्रतों में दृढ़ एवं साहसी हैं, सरलता अधिक है,

क्रोध तो देखने में नहीं आता तथा प्रकृति शान्त एवं नम्र है, ऐसे वीतरागी साधुओं के प्रति अगाध श्रद्धा है।

आचार्य श्री कुन्थुसागर जी महाराज

घरकों के मातृत्व-सुख की तमन्ना पूरी हुई तो छविराज फूले नहीं समाये। पिता बन जाने की खुशी में सं. 1972 माघ शुक्ला पंचमी (बसंत पंचमी) को धोवा ग्राम (ग्वालियर) की गलियों में उन्होंने बाजे बजवा दिये। गांव की सयानी औरतों ने बधाई गाते हुए सीख दी—लाला! ललन का नाम बदरी रखना बदरी। गाँव की गलियों में खेलकर स्कूल पहुँचा तो पंडितजी ने पुकारा—बद्रीप्रसाद!

स्कूल की पढ़ाई हुई तो बद्रीप्रसाद का जी गाँव छोड़ने को मचलने लगा। किताबों के दो अक्षर पढ़ते ही उसने जान लिया कि जिन्दगी घर में खपाने के लिए नहीं पंचपरावर्तन मिटाने के लिए मिली है। जीवन को राह मिली पर गति बाकी थी। फिर मिला नेत्रों को सुखकारी पूज्यपाद आचार्य श्री विमलसागर महाराज का दर्शन और जीवन को मिली गति। आचार्य श्री ने भव्यात्मा पर अनुग्रह करते हुए क्षुल्लक-दीक्षा प्रदान की। कुछ समय बाद सम्मेदशिखर में समस्त परिग्रहों को समाप्त करने वाली निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा प्रदान कर दी और आपका नाम 'कुन्थुसागर' रखा। आप भी चारित्र की सीढ़ियों में स्थिर पग बढ़ाते हुए अपने नर जन्म की सफलता में जुट गये क्योंकि जीवन का सार चारित्र है। कहा है—

थोवम्हि सिक्खदे जिणइ बहुसुदं जो चरित्त संपुण्णो।
जो पुण चरित्तहीणो किं तस्स सुदेव बहुएण।।

गुरु सेवा करते हुए आपने सतत् स्वाध्याय से जिनागम के रहस्य को हृदयंगम कर लिया तथा सुज्ञानदर्पण पुस्तक लिखकर अपनी विद्वत्ता से समाज को विदित कराया। जिन शासन की प्रभावना की।

मुनि 108 श्री अजितसागर जी महाराज

सं. 1958 में ग्राम कूप जिला भिण्ड में श्रीगणेशीलाल जी के घर पर श्री चुन्नीलाल जी ने जन्म लिया था। आपने मिडिल शिक्षा प्राप्त करके गृहस्थ-धर्म में प्रवेश किया तथा मुनि विमलसागर जी से सं. 2012 में अलवर में क्षुल्लक-दीक्षा ग्रहण की तथा सं. 2017 में भिण्ड में मुनि-दीक्षा धारण की। गुरु ने आपका नाम मुनि अजितसागर रखा। आपने जैनागम के ग्रन्थों का स्वाध्याय

किया तथा आत्मकल्याण में लगे हुए हैं।

ऐलक श्री ज्ञानसागर जी महाराज

आपका पूर्व नाम सुगनचन्द जी था। आपका जन्म वि. सं. 1956 में पौष माह में धमसा जिला ग्वालियर में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री प्यारेलाल जी था। साधारण शिक्षा के बाद व्यापार में लग गये। सं. 2011 में विमलसागर जी से सातवीं प्रतिमा ली। सं. 2013 में क्षुल्लक-दीक्षा एवं सं. 2016 में ऐलक दीक्षा ली तथा भारत में गुरुवर्य के साथ विहार किया।

ऐलक श्री सन्मतिसागर जी महाराज

कहावत है कि 'पूत के पांव पालने में ही दिखाई देते हैं।' लोकोक्ति कैसी भी हो, परन्तु गांव गढ़ी (भिण्ड) के शिखरचन्द जैन के जीवन में यह कहावत यथार्थ निकली। गढ़ी ग्राम में जैनियों के घर सिर्फ इने-गिने ही हैं। श्री पातीराम जैन खरोबा (गोत्र पांडे) अपनी पत्नी मथुराबाई के साथ अपने सीमित साधनों से निर्वाह करते हुए धर्म साधना करते थे। पुण्ययोग से सं. 1962 में मगसिर कृष्णा 12 को इस दम्पत्ति को पुत्ररत्न का लाभ हुआ। जिसका नाम शिखरचन्द रखा गया। आपके जन्म के एक वर्ष पश्चात् आपके माता-पिता सपरिवार सिरसागंज (मैनपुरी) में आकर बस गये। जहाँ पर आपकी शिक्षा-दीक्षा हुई। कालान्तर में माता-पिता के देहावसान के बाद आप सपरिवार (स्त्री-पुत्र-पुत्रियों सहित) खड्गपुर (पश्चिम बंगाल) में आकर बस गये। परिवर्तन संसार का नियम है। काललब्धि पाकर फलटण में पू. आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज के दर्शन करते ही आपकी मोहनिद्रा भंग हो गई और गुरु चरणों में आपने सप्तम प्रतिमा के व्रत प्रदान करने की प्रार्थना की। कार्तिक शुक्ल 11 वी. सं. 2485 को आचार्य श्री ने व्रत प्रदान करते हुए आपका नाम मंजिल के अनुरूप 'शिवसागर' रखा। उसी वर्ष फाल्गुन शुक्ला 2 को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान कर 'ज्ञानसागर' नाम रखा। वैशाख शुक्ल 13 वी. सं. 2487 को काम्पिल्या में आचार्य श्री ने आपको ऐलक दीक्षा प्रदान करते हुए आपका नाम वृषभसागर घोषित किया। कर्मयोग से स्वास्थ्य के कारण दीक्षोच्छेद करना पड़ा और क्षुल्लक पद की दीक्षा लेनी पड़ी जहाँ आप पूर्व नाम ज्ञानसागर के नाम से प्रसिद्ध हुए। चार वर्ष बाद पुनः ऐलक दीक्षा लेकर सन्मतिसागर नाम से रत्नत्रय की आराधना कर रहे हैं।

क्षुल्लक श्री धर्मसागर जी महाराज

घमंडीलाल जी का जन्म सं. 1941 में भिण्ड में हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीमती पानाबाई था। पिता जी का नाम श्री शोभालाल जी था। बचपन में सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपने अपना व्यापार आदि कार्य सम्भाला। क्षुल्लक स्वरूपचन्द जी से सं. 1995 में दूसरी प्रतिमा धारण की तथा मुनि विमलसागर जी से कोटा में सं. 2004 में क्षुल्लक दीक्षा ली। आप संघ में रहकर ग्रन्थों की नकल करने तथा जिनवाणी की सेवा में अपना समय लगाते थे।

इन्दौर **डॉ. प्रकाशचन्द जैन**

आचार्य श्री 108 विमलसागर जी महाराज (भिण्ड वाले) के चातुर्मास : एक सिंहावलोकन

1.	ब्रह्मचर्यावस्था में	1994	मैदपुर
2.	"	1995	मुरैना
3.	क्षुल्लकावस्था में	1996	कापरेन
4.	ऐलकावस्था में		पाटन (झालावाड़)
5.	"	1997	मौमालपुरा
6.	"	1998	मेहरू
7.	"	1999	सिरसा जहाजपुर
8.	मुनि अवस्था में	2000	कोटा (राजस्थान)
9.	"	2001	बड़ानयागंज
10.	"	2002	सोनकच्छ
11.	"	2003	मन्दसौर
12.	"	2004	उज्जैन
13.	"	2005	इन्दौर
14.	"	2006	इन्दौर
15.	"	2007	ग्वालियर
16.	"	2008	ग्वालियर
17.	"	2009	गुना
18.	"	2010	शिवपुरी
19.	"	2011	कोलारसी
20.	"	2012	इटावा
21.	"	2013	भिण्ड
22.	"	2014	भीलवाड़ा
23.	"	2015	अशोकनगर
24.	"	2016	भिण्ड

25.	"	2017	अलवर
26.	"	2018	भिण्ड
27.	"	2019	लखनऊ
28.	"	2020	गिरिडीह
29.	"	2021	सागर
30.	"	2022	सिरोंज
31.	"	2023	ईसरी
32.	"	2024	आगरा
33.	"	2025	पहाड़ी धीरज, दिल्ली
34.	"	2026	बाराबाँकी
35.	"	2027	रामगंज मंडी
36.	"	2028	पिड़ावा
37.	"	2029	कोटा
38.	आचार्य-पदवी से विभूषित (राजस्थान)	2030	संगोद जिला कोटा
39.	समाधि-मरण (राजस्थान)	2030	संगोद जिला कोटा

परम पूज्य प्रातःस्मरणीय, धर्मदिवाकर, तपोनिधि, उपसर्गविजेता, योगीन्द्र चूडामणि, दिगम्बर जैनाचार्य श्री 108 सुमतिसागर जी महाराज की जीवन-झांकी

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरतीवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।

हरेक जीव के साथ जिन्हें मैत्रीभाव है, गुणीजनों के प्रति जिन्हें प्रेम है, दुःखी जीवों के प्रति जिनके हृदय में करुणा स्रोत बह रहा है, विपरीत वृत्ति वाले विरोधी जीवों के प्रति जिनकी माध्यस्थ भावना है, ऐसे दिगम्बराचार्य श्री 108 सुमतिसागर जी महाराज के चरण-कमलों में कोटिशः नमस्कार, कोटिशः नमस्कार, कोटिशः नमस्कार।

आपका जन्मदिन : आपकी माता जी का एवं पिताजी का परिचय

विक्रम संवत् 1974 आसोज के शुक्ल पक्ष का चौथा दिन। स्थान श्यामपुरा, जिला मुरैना (म.प्र.)। वात्सल्यमूर्ति माँ चिरोंजादेवी एवं धर्मवत्सल पिता जी छिद्‌छूलाल जी के यहाँ अवतरित हुआ एक पुत्र-रत्न। वही रत्न आगे जाकर एक महान् मुनि आचार्य बनेगा, इसकी कल्पना उस समय क्या किसी ने की होगी?

आपके गृहस्थ जीवन का नाम नत्थीलाल जी। माँ चिरोंजीदेवी एवं पिताजी छिद्‌दूलाल जी ने आपके जीवन में उत्तमोत्तम संस्कारों की नींव डालने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। शील, संयम और सदाचार के पथ पर आरूढ़ आपको देखकर माँ-बाप मारे खुशी के झूम उठते थे।

आपके गृहस्थ जीवन की झलक

आपकी शादी हुई थी, जब आप बारह साल की उम्र के थे। आपकी धर्म-पत्नी का नाम है रामश्रीदेवी। धर्मवत्सला रामश्रीदेवी वाकेय में भगवान

की दुलारी ही हैं। संयम और त्याग की ओर उनका झुकाव शुरू से ही है। जिनकी होनहार अच्छी होती है, उन्हें ही संयम, त्याग, दया, करुणा आदि के भावों की जागृति रहती ही है।

आपके तीन भाई हैं : झून्नीलाल जी, बाबूलाल जी एवं रामस्वरूप जी। आपकी बहन है कलावती जी। इन चारों को भी जैनधर्म के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा है।

आपके भाई झुन्नीलाल जी भी वर्तमान युग के मुनिवर श्री 108 अजितसागर जी हैं। आपके दो पुत्र हैं : बारेलाल एवं भागचन्द जी। आपके दो पुत्रियाँ हैं : कपूरीबाई और शकुन्तलबाई। ये भी सुशील एंवं गुणज्ञ हैं।

आपके गृहस्थ जीवन की कुछ चिरस्मरणीय घटनाएँ

आपकी शादी के पश्चात् की एक बात है। एक डाकू। नाम था उसका रामदुलारे। वह आपको उठाकर ले गया, परन्तु आपमें उस समय भी भय का नामोनिशान तक नहीं था। आपकी आँखों में अश्रु की एक बूंद भी नहीं गिर पायी थी। चौदह दिनों के भीतर आप किसी न किसी तरह डाकुओं के गिरोह से अपने गाँव वापस आ पहुंचे थे।

प्रसंग दूसरा। परगना अम्बहा। कुछ डाकू आये। उन्होंने आपको पकड़ लिया। उन्होने आपकी छाती पर बंदूक की नोक रख दी। आपके गहने उतार दिये। उन डाकुओं ने भी माल बताने के लिए आपको मजबूर किया, परन्तु आपने निर्भीक होकर उत्तर दिया कि मैं कुछ नहीं जानता, पिताजी जानते होंगे। उस समय आपके पिताजी मकान की ऊपरी मंजिल पर सोये हुए थे। वे जाग उठे और परिस्थितिवश सोचकर ऊपर से नीचे कूदे। हल्ला हो गया। डाकू आपको छोड़कर भाग गये।

प्रसंग तीसरा। एक समय की बात है। आप अपनी दुकान पर सो रहे थे। कोई एक विषैला जानवर आया। उसने आपको काटा। आप बेहोश अवश्य हो गये, परन्तु आपके प्राणों की कोई हानि नहीं हुई। सच है अगर पुण्य कर्म प्रबल है तो मुसीबत के समय भी एक बाल तक बांका नहीं होता।

प्रसंग चौथा। एक बार आप चोरों से घेरे गये। वे आपको मारने पर उतारू ही थे कि इतने में मिलिटरी के कुछ सिपाही आ पहुँचे। उन्होंने चोरों को पकड़ लिया, परन्तु आपने चोरों को कतई सजा न होने दी। धन्य है आपके हृदय की विशालता।

इस प्रकार के कई उपसर्ग आपके जीवन में आते रहे, परन्तु धर्म की प्रभावना ही ऐसी होती है कि कसौटी के पश्चात् वे टल भी जाते हैं।

आध्यात्मिक प्रगति के सोपान पर

संवत् 2010। स्थल मुरैना। परम पूज्य प्रातः स्मरणीय, विश्ववंद्य, महात्मन् आचार्यरत्न श्री 108 स्व. विमलसागर जी महाराज अपने पुनीत संघ सहित पधारे। आपकी धर्मपत्नी रामश्रीदेवी ने एक बार कहा—'पू. आचार्य भगवंत् को आहार देने की मेरी प्रबल इच्छा है, मैं शूद्र जल का त्याग ले लूँ और आप भी ले लीजिए।'

तब आपने (नत्थीलालजी ने) कहा—'तुम ले सकती हो, मुझसे नहीं बनेगा।' रामश्रीदेवी ने शूद्र जल का त्याग किया एवं आहारदान दिया।

दूसरे दिन आपके घर पर शुद्ध भोजन बन पाया। पू. आचार्यरत्न विमलसागर जी आहारचर्या के लिए निकले। आपके वहाँ विधि मिल गयी। पू. आचार्य भगवन ने इशारे से पूछा— क्या आप शूद्र जल का त्याग करेंगे? आपने कहा—मुझसे तो शूद्र जल का त्याग नहीं बनेगा।

पू. आचार्यरत्न लौटने लगे। उसी क्षण आपके मन में इस प्रकार के भाव उठे, 'पू. भगवन् बिना आहार किये लौट रहे हैं। मैं कैसा अभागी हूँ, जैन कुल में मेरा पैदा होना न कुछ के बराबर है।' फिर क्या था, आप इतने भावविभोर हो गये कि बिना कुछ हिचकिचाए आप दृढ़ प्रतिज्ञ होकर बोले—'गुरुवर्य, आज से मुझे शूद्र जल का त्याग है।

पू. मुनिवर्य की पड़गाहना विधि हो गयी। आहारदान का अवसर आपने अपने हाथ से जाने नहीं दिया। इस प्रथमावसर ने आपके जीवन के लिए एक महत्व का मोड़ दे दिया।

आप अब जैन तत्वज्ञान के प्रखर मर्मज्ञ पंडितवर्य मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. सुमनचन्द जी शास्त्री, पं. बालमुकुन्द जी, पं. सुखदेव जी एवं अन्य ब्रह्मचारियों के सत्समागम में रहने लगे। आप शास्त्र अध्ययन करने लगे। सही तो है : स्वाध्यायः परमं तपः।

आप क्रमिक विकास करते रहे। संवत् 2021 में आपने पूज्य श्री 108 शान्तिसागर जी मुनिराज से दूसरी प्रतिमा अंगीकार की। इस वर्ष मुरैना में गजरथ पंचकल्याणक महोत्सव हुआ। इस शुभ अवसर पर पू. गुरूदेव श्री 108 आचार्यरत्न विमलसागर जी महाराज पधारे। आपने उनसे सातवीं प्रतिमा

ब्रह्मचर्य प्रतिमा ले ली। त्याग की नींव विशेष से विशेषतर मजबूत होने जा रही थी। आपके दिल में संसार की नश्वरता के बारे में बार-बार विचार उठते रहे। आपने पू. आचार्यरत्न श्री 108 विमलसागर जी के चरणकमलों पर नारियल चढ़ाते हुए कहा--'मुनि दीक्षा के मेरे भाव हैं।'

2025 चैत्र शुक्ला 13 (महावीर जयन्ती) के दिन आपने पूज्य विमलसागर जी से ऐलक दीक्षा अंगीकार की। आपका शुभ नाम रखा गया वीरसागर जी। इस प्रसंग विशेष पर करीबन दश हजार की जनसंख्या उपस्थित थी।

वहाँ से विहार करने के बाद आप देहली पधारे। सावन सुदी ग्यारह के दिन आपने प्रथम केशलुंचन किया। घास--फूस की तरह आपने थोड़े ही समय में अपने केश उखाड़ दिये। उस समय आप ऐसे शान्त थे मानो प्रभु वीतराग प्रतिमा हो। केशलोंच पूर्ण होते वक्त आपकी जय जयकार से आकाश गूंज उठा।

अगहन वदी 12 सं. 2025 में आपका दूसरा केशलोंच हुआ। आपने अपने गुरुवर्य श्री 108 विमलसागर जी से मुनिदीक्षा हेतु प्रार्थना की। सुवर्ण अवसर हाथ लग गया। आप मुनिदीक्षा से विभूषित हुए। आपका शुभ नाम रखा गया मुनि श्री 108 सुमतिसागर जी। वाकेय में आप हैं सुमति के भंडार, सुमति के देने वाले गुरुवर्य।

यात्राओं की ओर

आप अपनी पत्नी रामश्रीदेवी के साथ तीर्थराज सम्मेदशिखर वन्दनार्थ गये थे। वहाँ आपने ब्रह्मचर्यव्रत लिया था। ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार से आपके भविष्य की उन्नति का मार्ग बिलकुल साफ और स्पष्ट हो गया।

आपने सम्मेदशिखर के अलावा पावापुरी, राजगृही, चंपापुरी, हस्तिनापुर, अयोध्या, सोनागिर, बड़वानी, गजपंथा, गिरनारजी, तारंगाजी, पावागढ़, पालीताणा आदि एवं कर्नाटक राज्य के समस्त तीर्थक्षेत्रों की वन्दनाएं की हैं।

मुनि अवस्था की कुछ उल्लेखनीय घटनायें

स्थल बाबरपुर, जिला इटावा। उसमें रहता था एक कलाकार। दैववशात् वह पागल हो गया। उसे पकड़कर कुछ भाई आपके पास आये। आपने -- गुरुदेव ने अपने कमण्डल से थोड़ा सा जल निकाला, मंत्र पढ़ा और उस जल को पागल कलाकार पर छिड़क दिया।

बस क्या था? पाँच दिन के भीतर–भीतर उसका पागलपन हमेशा के लिए नष्ट हो गया। कुछ दिनों के बाद वह अपने घर की जिम्मेदारी यथावत् संभालने लग गया।

स्थल मेहसाना (गुजरात)। मेहसाना के दिगम्बर जैन मंदिर का कुआँ। उसमें पानी नहीं था। आपने अपने कमण्डलु से पानी निकालकर कूएँ में छिड़का। न मालूम उसमें पानी कहाँ से धमका। लोग उसे देखते ही आश्चर्यसागर में डूब गये।

स्थल श्रवणबेलगोला। वहाँ पर कुछ एक व्यक्तियों ने एक कुत्ते को बुरी तरह फटकारा। उसकी स्थिति मृतक के समान हो गयी। पू. आचार्य सुमतिसागर जी ने महामन्त्र णमोकार पढ़कर उस कुत्ते पर पानी छिड़का। वह उसी क्षण स्वस्थ होकर दौड़ने लगा। उपस्थित जनता यह देखकर चकित रह गयी।

ईडर की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में लगातार चार-पांच दिनों तक केशर की वर्षा हुई थी, और सोनागिर में भी इस प्रकार हुआ था। यह सब आपकी तपश्चर्या का ही प्रभाव है।

आपसे प्रभावित होकर कई खटीकों ने अपना पेशा छोड़ दिया था, कई मांस-भक्षियों ने मांस खाना छोड़ दिया है, कई शराबियों ने शराब पीना छोड़ दिया है।

आपकी प्रवचनशैली

आपके प्रवचन अपने ढंग के अनोखे हैं। आपकी प्रवचन शैली सरल और सुबोध है। तत्व का मर्म स्पष्ट करने के लिए आप जो छोटे-बड़े दृष्टान्त पेश करते हैं उनसे आपके प्रवचन और निखर उठते हैं।

आपके व्याख्यानों से प्राप्त कुछ चिन्तन–कणिकाएं :

1. सच्चे सुख का साधन है देवशास्त्रगुरु की शरण। उनकी अनन्य भक्ति से जीव सुख की प्राप्ति अवश्यमेव कर पायेगा।
2. धन्य वही है जिसने जीवन का एक-एक क्षण आत्मसंशोधन में लगा दिया है।
3. किसी भी हालत में चित्त को चंचल मत होने दें, क्योंकि उसे चंचल रखने से कष्टों की परम्परा बनी रहेगी।
4. किसी के पाप को जानकर उससे घृणा न करें। अगर घृणा करो

तो उसका पाप तो दूर न होगा, परन्तु आपमें घृणा, क्रोध, द्वेष आदि को अवश्यमेव स्थान प्राप्त हो जायेगा।

5. धन, संपत्ति और मित्रता को पाकर घमंड न करें, क्योंकि घमंड कभी साथ नहीं देगा।
6. क्षण-क्षण में जीवन व्यतीत होता जा रहा है। हम मृत्यु की ओर बढ़ते जा रहे हैं। बहुत ही शीघ्र जीवन समाप्त हो जायेगा, इसलिए संसार, शरीर एवं भोगों से आसक्ति हटाकर शुद्धात्मा में लीन होने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिये।

अन्तिम बात

हे महान् आत्मन्! आप प्रबल भेदविज्ञानी हैं। संसार के प्रति आप उदासीन हैं। आप त्याग और संयम के महान् उपासक हैं। आप धीर-वीर हैं। आपकी वजह से आज सोनागिरि सिद्धक्षेत्र दिन दूना रात चौगुना बढ़िया से बढ़िया होता जा रहा है। आपकी निर्मल प्रभावोत्पादक वाणी सुनकर सोनागिर के लिए दान का अस्खलित प्रवाह बह रहा है। उदासीन आश्रम, चौबीस टोकों की रचना, गिरनार सिद्धक्षेत्र पहाड़ की प्रतिकृति इत्यादि की नींव पडी है, जिनके लिए आपका आभार सदैव ही समाज की ओर से जितना माना जाय थोड़ा ही होगा।

प्रबल शक्तिमान आचार्य भगवन्! आपकी कठोर तपश्चर्या से हम अवश्यमेव प्रभावित हैं। भीषण झंझावातों में भी आपके होठों की मुस्कराहट हमारे लिए पथ-प्रदर्शिका है।

हे सिन्धु! आप ज्ञान, ध्यान, तप की उपासना में हमेशा ऐसे रत रहते हैं, जिनके वर्णन के लिए शब्द नहीं हैं।

धन्य हैं आप! धन्य हैं हमारे प्रिय गुरुवर्य सुमतिसागर जी। हम परम कृपालु जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करते हैं कि आप शरीर से स्वस्थ रहकर रत्नत्रय की साधना कुशलता से करते रहें और अंतिम लक्ष्य मोक्षगति की प्राप्ति आपकी आत्मा के द्वारा एक न एक दिन हो जाए।

आपके चरणों में कोटिशः नमस्कार।

ईडर (गुजरात) **बाबूलाल चूनीलाल गांधी**

आचार्य 108 श्री सुमतिसागर जी महाराज द्वारा दीक्षित साधुवृन्द

आचार्यकल्प 108 श्री सन्मतिसागर जी महाराज
उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज
'मुनिश्री 108 श्रुतसागर जी महाराज
" विजयसागर जी महाराज
" संभवसागर जी महाराज
" वर्धमानसागर जी महाराज
" जम्बूसागर जी महाराज
" पार्श्वसागर जी महाराज
" शान्तिसागर जी महाराज
" शीतलसागर जी महाराज
" सुपार्श्वसागर जी महाराज
" मल्लिसागर जी महाराज
" मुक्तिसागर जी महाराज
" समाधिसागर जी महाराज
" चन्द्रसागर जी महाराज
" शान्तिसागर जी महाराज
" भरतसागर जी महाराज
" सन्मतिसागर जी महाराज
" ज्ञानभूषण जी महाराज
" बाहुबलीसागर जी महाराज
" संभवसागर जी महाराज
" विनयसागर जी महाराज
" समतासागर जी महाराज
" क्षमासागर जी महाराज

" गुणसागर जी महाराज
" संतोषसागर जी महाराज
" वीरसागर जी महाराज
" अजितसागर जी महाराज
" श्रेयान्ससागर जी महाराज
" आदिसागर जी महाराज
" वैराग्यसागर जी महाराज
" नेमीसागर जी महाराज
" तपसागर जी महाराज

आर्यिका श्री 105 शान्तिमती जी माताजी
" राजमती माताजी
" पार्श्वमती माताजी
" ज्ञानमती माताजी
" विद्यामती माताजी
" वीरमती माताजी
" सिद्धमती माताजी
" चन्द्रमती माताजी
" दयामती माताजी
" समाधिमती माताजी
" कीर्तिमती माताजी
" सूर्यमती माताजी
" शान्तिमती माताजी
" वीरमती माताजी
" श्रीमती माताजी
" भाग्यमती माताजी

ऐलक श्री 105 आदिसागर जी
" ऋषभसागर जी
" शीतलसागर जी
" जिनेन्द्रसागर जी
" ऋषभसागर जी
" निर्वाणसागर जी
" पद्मसागर जी
" शीतलसागर जी

क्षुल्लक श्री 105 चन्द्रसागर जी

" सूर्यसागर जी
" नेमसागर जी
" धर्मसागर जी
" बुद्धिसागर जी
" नेमिसागर जी
" नमिसागर जी
" संभवसागर जी
" शीतलसागर जी
" वीरसागर जी
" शान्तिसागर जी
" सूर्यसागर जी
" विनयसागर जी
" दयासागर जी
" ऋषभसागर जी
" सिद्धसागर जी
" चन्द्रसागर जी
" भावसागर जी
" नेमीसागर जी
" कुलभूषण जी
" ऋषभसागर जी
" कैलाशसागर जी
" अनन्तसागर जी
" अनंगसागर जी
" सिद्धसागर जी
" मल्लिसागर जी
" सिद्धसागर जी
क्षुल्लिका श्री 105 ज्ञानमती जी
" शान्तिमती जी
" जिनमती जी
" आदिमती जी
" भाग्यमती जी
" धर्ममती जी
" दयामती जी
" विपुलमती जी

आचार्य 108 श्री सुमतिसागर जी महाराज के चातुर्मास : एक सिंहावलोकन

सन् 1968	दिल्ली	1980	इन्दौर
1969	बाराबँकी	1981	पोदनपुर (बम्बई)
1970	भागलपुर	1982	ईडर
1971	कोडरमा	1983	उदयपुर
1972	आरा	1984	श्री सोनागिर जी
1973	श्री सोनागिर जी	1985	भिण्ड
1974	अजमेर	1986	श्री सोनागिर जी
1975	ईडर	1987	श्री सोनागिर जी
1976	श्री सोनागिर	1988	दिल्ली
1977	मुरैना	1989	वहलना (मुजफ्फरनगर)
1978	सम्मेदशिखरजी	1990	श्री सोनागिर जी
1979	भिण्ड	1991	श्री सम्मेदशिखर जी
		1992	श्री सम्मेदशिखर जी
		1993	श्री सम्मेदशिखर जी
		1994	श्री सोनागिर जी

उपाध्याय ज्ञानसागर जी : एक चमत्कृत सन्त

विगत सात वर्षों से उपाध्याय श्री ज्ञानसागर महाराज का नाम जैन संतों की प्रथम पंक्ति में आने लगा है। उनकी निर्दोष तपश्चर्या, ज्ञान साधना एवं भक्तों की उन तक सहज पहुंच ही इसका एकमात्र कारण हो सकता है। समाज के प्रमुख विद्वानों का उनके प्रति आकर्षण भी उनके तपोनिष्ठ व्यक्तित्व की पहिचान है। उपाध्याय जी युवा संत हैं। अभी उन्होंने 34 वर्ष पार किये हैं लेकिन महाकवि कालिदास की "तपसि वयः न समीक्षते" वाली उक्ति के अनुसार उन्होंने वर्षों से मुनि जीवन अपनाये हुये साधुओं को बहुत पीछे छोड़ दिया है।

उपाध्याय श्री को नगरों में विहार करना जरा भी पसन्द नहीं है। उन्होंने अब तक ऐसे गाँवों में विहार किया है जहां जैन परिवार भी अधिक संख्या में नहीं हैं। छोटे-छोटे गाँवों में जैन तो हैं क्योंकि वे जैन कुल में पैदा हुये हैं लेकिन आचार-विचार एवं धार्मिक ज्ञान से शून्य हैं ऐसे ही गाँवों में विहार करके उन्होंने धार्मिक चेतना जागृत की है। श्रावकधर्म क्या है? मुनिधर्म क्या है? मुनियों के प्रति समाज का क्या कर्तव्य है? आदि विषय भी आपके प्रवचनों के प्रमुख विषय रहते हैं। जैनत्व के प्रमुख चिन्ह रात्रि-भोजन-त्याग एवं देवदर्शन जैसे नियमों में आपने अब तक हजारों नवयुवकों को बांध दिया है।

उपाध्याय श्री से मेरा स्वयं का भी अधिक पुराना संपर्क नहीं है और वैसे उनके मुनि जीवन को अभी अप्रैल 93 में छटा वर्ष लगा है, तथा उपाध्याय पद से अलंकृत हुये मात्र 3 वर्ष हुए हैं। हाँ क्षुल्लक अवस्था में वे अवश्य 11 वर्ष तक रहे तथा आचार्य विद्यासागर जी, आचार्य सुमतिसागर जी, आचार्यकल्प श्रुतसागर जी जैसे तपोनिष्ठ संतों के सानिध्य में साधुत्व के गुणों को जीवन में उतारना सीखा। अभी मुझे शिखर जी में आपके सानिध्य में चार दिन तक रहने का सुयोग मिला। एकान्त भी था। भक्तों की ज्यादा भीड़-भाड़ भी नहीं थी। इसके पूर्व खेकड़ा, बिनौली, सरधना, बुढाना,

शाहपुर एवं बलवीरनगर देहली में दर्शनों का सुयोग मिला। लेकिन आपके सानिध्य में सेमिनारों एवं संगोष्ठियों में व्यस्त रहने के कारण आपसे विशेष बात नहीं हो सकी। अभी शिखर जी में मैंने एक दिन अवसर देखकर विनम्र स्वर में जानना चाहा कि उपाध्यायश्री को वैराग्य लेने के भाव क्यों हुए? इसके पीछे क्या कारण है? उपाध्यायश्री पहले तो मौन रहे और मुझे ऐसा लगा कि वे अपने विगत जीवन के बारे में कुछ बताना नहीं चाहते, लेकिन मैंने फिर उनसे निवेदन किया कि महाराज, इसमें मुनिचर्या में कोई दोष नहीं लगता और न यह स्वयं की प्रशंसा करने के दोष में आता है। अंत में उन्होंने जो बताया वह संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

उपाध्यायश्री का जन्म मुरैना नगर में सन् 1958 में हुआ। आपके पिता श्री शांतिलाल एवं माता अशरफी बाई प्रथम पुत्र को पाकर फूले नहीं समाये। शिशु का नाम उमेश रखा गया। उमेश जैसे-जैसे बड़ा होने लगा, माता के साथ मंदिर जाने व साधु संघ आने पर उनके दर्शनों को जाने लगा। कुछ बड़ा हुआ। स्कूल जाने लगा। लेकिन मां बाप ने देखा कि उमेश को साधुओं के साथ रहने में बड़ा चाव है इसलिये वह बिना कहे ही उनके साथ हो जाता है और महाराज का कमण्डलु लेकर साथ चलने लगता है। बड़ी कठिनाई से प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की और 12-13 वर्ष की आयु में ही साधुओं के साथ रहने लगा। मुरैना छोड़ दिया। मां-बाप भाई, बहिन सभी को छोड़ कर साधुओं के साथ हो गया। अब तो चारों ओर उमेश का ही नाम चर्चित हो गया। एक तो आयु में बहुत छोटा, फिर मां बाप से दूर तन-मन से साधुओं की सेवा—इन सबने बालक उमेश को और भी प्रोत्साहित किया।

उमेश को आचार्य विद्यासागर जी, आ. सुमतिसागर जी, आचार्य कल्प श्रुतसागर जी जैसे तपोनिष्ठ संतों का समागम मिला। उनके संघ में रहने, उनकी जीवनचर्या को देखने, मुनि जीवन की कडुवी एवं मीठी घटनाओं को देखने-परखने एवं उनकी सेवा-सुश्रुषा करके शुभाशीर्वाद प्राप्त करने में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज से उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत ही नहीं लिया किन्तु कातंत्र व्याकरण, तत्वार्थसूत्र एवं जैनसिद्धान्त प्रवेशिका जैसे ग्रंथ प्रारंभिक आयु में अध्ययन करने का सुयोग मिला। आपने मोटर गाड़ी में नहीं बैठने का नियम भी ले लिया और इस प्रकार साधुओं के साथ पद यात्रा करने लगे। आपको आचार्य सुमतिसागर जी, मुनि श्री

विवेकसागर जी के संघ में रहने का भी सुयोग मिला।

एक बार आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर का संघ महावीर जी से सवाई माधोपुर तक विहार किया। मार्ग में बनास नदी आयी नांव में बैठकर सभी साधुओं ने नदी पार करने का निश्चय किया। नदी में पानी बहुत था। नाव कुछ पुरानी थी इसलिये नदी के बीच में पहुंचते-पहुंचते वह डगमगाने लगी। नाविक भी घबरा गया। सभी ने णमोकार मंत्र का जाप करना शुरू कर दिया। नदी के उफान को देखकर सभी को जीवन का अंत दिखाई देने लगा। इतने में ही नाविक के हाथ में एक डंडा आ गया जिसके सहारे नदी पार हो गई। 'डूबते को तिनके का सहारा' वाली कहावत चरितार्थ हो गई। सभी को दूसरा जीवन मिला। सवाई माधोपर संघ पहुंचा। वहां पहाड़ के नीचे एकमात्र टावल पहिने बालक उमेश 8 घंटे तक खड़े होकर चिंतन में लगा रहा। बाहरी जीवन से एकदम शून्य बना रहा। उपाध्याय श्री की यह प्रथम साधना थी जिसमें वे पूर्ण रूप से सफल रहे। सवाईमाधोपुर से निवाई तक आचार्यकल्प श्रुतसागर जी की सेवा में रहे। निवाई से उनका भी साथ छोड़ दिया और वहां से सागर पहुंचे। सागर में भी मन नहीं लगा। साधु-जीवन में प्रवेश करने की छटपटाहट लग रही थी इसलिये वहां से सोनगिरि जा पहुंचे। सोनगिरि में उस समय आचार्य श्री सुमतिसागर जी का संघ था। आचार्य श्री के संघ में आप पहिले भी रह चुके थे। तथा वे आपकी साधुओं के प्रति अपार भक्ति एवं वैराग्य परिणामों को देख चुके थे। इसलिये जैसे ही आपने आचार्य श्री से क्षुल्लक दीक्षा देने की प्रार्थना की। आचार्य श्री ने अपनी अनुमति दे दी। उसी दिन से आपके प्रति श्रावकों की भक्ति एवं श्रद्धा उमड़ने लगी। आखिर 5 नवम्बर सन् 1976 का शुभ दिन आया। एक भव्य समारोह में आपको आचार्यश्री ने क्षुल्लक दीक्षा दे दी। आपने केश-लौंच किया। इसके पूर्व भी आपने केश-लौंच करने का अभ्यास कर लिया था। क्षुल्लक बनते ही आपका नया जीवन प्रारंभ हो गया। आपका नाम क्षुल्लक गुणसागर रखा गया।

क्षुल्लक जीवन की साधना :-

क्षुल्लक पद प्राप्त करते ही कठोर साधना का मार्ग अपनाया। चिंतन-मनन एवं स्वाध्याय प्रधान आपका जीवन बनने लगा। एक बार आप सोनगिरि के त्यागी आश्रम में ध्यानस्थ थे। इतने में ही एक सर्प आया और आपके पांवों पर खेलने लगा। कभी कमंडलु पर चढ़ जाता। लेकिन आप

ध्यान मग्न रहे। आखिर सर्प अपने-आप नतमस्तक होकर चला गया। यह आपकी प्रथम परीक्षा थी जिसमें आप पूर्ण खरे उतरे और आपकी साधुत्व वृत्ति की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

एक बार आप सागर में मंदिर में ध्यानस्थ थे। एक छिपकली आकर कंधे पर चढ़ गई। एक-दो घंटे तक वह दुपट्टे पर बैठी ही रही। महाराजश्री को लगा की कोई कीड़ा शरीर पर चढ़ गया है। लेकिन वे ध्यानस्थ रहे। आखिर छिपकली उछल कर कूद गई और कहीं अन्यत्र चली गई। छिपकली के स्पर्श से ही शरीर पर फुंसियां हो जाती हैं। इसके जहरीले पंजों को शरीर सहन नहीं कर सकता लेकिन क्षुल्लक गुणसागर जी ने अपनी साधना से सब पर विजय प्राप्त कर ली।

इसी तरह की सर्प की एक और घटना मुंगावली में हुई। सन् 1984 में आप वहां थे। आहार लेने के पश्चात् आप प्रायः जंगल में जाकर सामायिक करते थे। एक दिन जब ध्यान मग्न थे तो एक सर्प आया और कुंडली मारकर सामने बैठ गया। फन फैलाकर आपको निहारने लगा। और अंत में नतमस्तक होकर वहां से चला गया। आपको ऐसा लगा कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

क्षु. अवस्था से ही आपको जंगल में जाकर ध्यान करने की आदत है। इसी स्वभाव के कारण आप जन संकुल शहरों की अपेक्षा छोटे गाँवों में विहार करना अधिक पसन्द करते थे। चंदेरी की घटना है, वहां से 2 कि. मी. खन्दार का अतिशय क्षेत्र है। चारों ओर घना जंगल है। आप वहीं पर ध्यान मग्न थे। आपके पास वहां का माली आया और सिंह होने की चर्चा करने लगा। इतने में ही थोड़ी देर में सिंह आ गया और दहाड़कर चला गया। सब लोग डरे हुए थे लेकिन आपको ऐसा लगा कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

ये कुछ घटनाएं हैं जो आपके साधु जीवन की कठोर चर्या, निर्भीकता, एवं सहज स्वभाव पर प्रकाश डालती हैं। मुनि बनने के पश्चात् आपकी चर्या में और भी कठोरता आ गई है। न गर्मी की भीषणता से आप घबराते हैं और न भयंकर सर्दी की कंपकपाहट आपको भयभीत कर सकती है। सभी ऋतुओं में आपका समान जीवन रहता है।

इसी प्रसंग में मुझे आपकी कठोर तपश्चर्या की एक घटना और याद आती है। जनवरी 90 का महिना। उस समय आप बड़ौत के पास ही छोटे

गांव बिनौली में विराज रहे थे। शीत ऋतु अपने यौवन पर थी। आकाश में बादल थे। शीत लहर चल रही थी। कभी-कभी पानी भी आ जाता था। मैं और डा. श्रेयान्सकुमार जैन बड़ौत से करीब प्रातः 6 बजे उपाध्यायश्री के पास बिनौली पहुंचे। शीत हवा से शरीर में अत्यधिक कम्पन। वहां मंदिर में गये। देखा उपाध्याय श्री एक छोटी सी कोठरी में पट्टे पर विराजमान हैं। न घास और न चटाई। दर्शन करते ही उपाध्याय श्री के प्रति सहज श्रद्धा के भाव उमड़ गये। यह क्या? शीतलहर में भी वही स्वाभाविक मुद्रा जो गर्मी अथवा अन्य ऋतुओं में रहती है। मुझसे रहा नहीं गया। मैंने उपाध्यायश्री से निवेदन किया कि महाराज घास भी नहीं, चटाई भी नहीं जिसका अधिकांश साधु उपयोग करते हैं। लेकिन वे कुछ नहीं बोले और मौन से ही इसी तरह की चर्या को स्वाभाविक चर्या बता दिया।

सेमिनारों एवं संगोष्ठियों के प्रति झुकाव

उपाध्याय श्री का विद्वानों, साहित्य सेवियों, शोधार्थियों के प्रति सहज लगाव हैं। वे विद्वानों से अधिक से अधिक संपर्क रखना चाहते हैं और विद्वानों का समागम होता रहे इसलिये वे श्रावकों को संगोष्ठियां आयोजित करने की प्रेरणा दिया ही करते हैं। वे कहते हैं कि विद्वान् समाज की धरोहर हैं इसलिये उनका संरक्षण, सम्मान एवं आतिथ्य जिनवाणी का संरक्षण एवं सम्मान है। आपके सानिध्य में सर्वप्रथम मुंगावली में सन् 1984 में संगोष्ठी का आयोजन किया गया। चंदेरी में आठ दिन का शिविर लगाया। ललितपुर में न्यायविद्या वाचना की गई तथा खनियाधाना में सेमिनार आयोजित की गई। जिसमें बहुत से विद्वानों ने भाग लिया। ये सब गतिविधियां क्षुल्लक अवस्था में चलती रही।

मुनिदीक्षा भी आपकी सोनगिरि में ही हुई। इस दृष्टि से सोनगिरि सिद्धक्षेत्र ने आपके जीवन को मोड़ने में प्रमुख भूमिका निभाई। क्षुल्लक गुणसागर के रूप में आपने 11 वर्ष तक मध्यप्रदेश को प्रमुख रूप से अपना क्षेत्र बनाया। पं. श्रुतसागर जी एवं पं. पन्नालाल जी से व्याकरण एवं सिद्धान्त ग्रंथों का अध्ययन किया। क्षुल्लक अवस्था में काफी लम्बे समय तक रहने पर एक दिन आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने कहा कि "गुणसागर तू कब तक इस चद्दर से मोह करता रहेगा।"

मार्च 88 में आचार्य श्री सुमतिसागर महाराज से आपने मुनिदीक्षा प्राप्त की और कुछ महिनों तक संघ में साथ रहने के पश्चात् आचार्यश्री की स्वीकृति

लेकर संघ से अलग होकर उत्तर प्रदेश की ओर मुड़ गये। यहां के छोटे-छोटे गाँवों में आपने विहार किया और नवयुवकों में अपूर्व धार्मिक श्रद्धा उत्पन्न की। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश में विहार करते हुए आपके सानिध्य में समाज ने खेकड़ा, बिनौली, सरधना, बुढाना, शाहपुर में विद्वत् गोष्ठियां आयोजित की तथा आचार्य कुन्दकुन्द वर्ष को सफल बनाने में सक्रिय योगदान दिया।

उत्तरप्रदेश से बिहार की ओर विहार किया। आपका प्रथम चातुर्मास शिखर जी में हुआ। शिखर जी में आपने वहां के जैन समाज का मन जीत लिया। वहां के समाज ने इसके पूर्व किसी साधु के लिये चौके नहीं बनाये थे लेकिन आपके प्रति इतनी भक्ति एवं श्रद्धा उमड़ पड़ी कि पूरे चातुर्मास आपकी तन, मन एवं धन से भक्ति की। चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् विहार करने की भी समस्या थी। जब वे वहां से गिरिडीह पहुंचे तो समाज ने उपेक्षित भाव से आपका स्वागत किया। लेकिन जैसे-जैसे समाज आपसे परिचित होने लगा उनकी साधना, तप एवं वीतरागता को देखा, उनके प्रवचन सुने तो आपके प्रति सहज ही आकर्षण बढ़ने लगा और समाज ने पाया कि उपाध्यायश्री वर्तमान युग के महान् साधु हैं तथा वैराग्य एवं ज्ञान की मूर्ति हैं। आपका दूसरा चातुर्मास वर्ष 1991 में गया में हुआ। गया जैन समाज की उपाध्यायश्री के प्रति भक्ति भी अविस्मरणीय रही और जैसे वर्तमान में रांची में उनके प्रति आर्कषण है वही दृश्य वहां भी देखने को मिला था। गया में भी मुझे दो बार जाने का अवसर मिला। चातुर्मास समाप्ति पर गया में उपाध्यायश्री के सानिध्य में भव्य समारोह हुआ। बिहार प्रदेश का जैन युवा सम्मेलन, विद्वद् संगोष्ठी, महासभा अधिवेशन, शास्त्रि परिषद् अधिवशेन, तीर्थ रक्षा समिति अधिवेशन आदि अनेक कार्यक्रम जिस प्रभावना एवं सफलता के साथ संपन्न हुये वे सब अब इतिहास के पृष्ठ बन चुके हैं।

गया चातुर्मास के पश्चात् उपाध्याय श्री रफीगंज, डाल्टनगंज, हजारीबाग, रामगढ़ कैन्ट आदि नगरों में विहार करते हुये रांची पधारे और यहां एक महिने के प्रवास में ही समाज पर एवं नगर पर जादू जैसा प्रभाव स्थापित कर लिया। अभी जब हम रांची में उपाध्याय श्री के पास बैठे हुये थे तो वहां के अग्रवाल समाज के अध्यक्ष भी आकर उपाध्यायश्री से अग्रवाल भवन में प्रवचन करने की प्रार्थना कर रहे थे। रांची में यह प्रथम अवसर

है कि जैनेतेर समाज भी उपाध्यायश्री का प्रवचन अपने यहां कराने को लालायित हो रहा है। एक दिन सिक्ख समाज के कुछ व्यक्ति आये थे और अपनी शंकाओं का समाधान कर रहे थे। किसी जैन साधु के इतने व्यापक प्रभाव को देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है। पूज्य उपा. श्री के प्रति इसी तरह जन-जन की भावना बढ़ती रहे हम तो यही कामना कर सकते हैं। सारा विहार आज उपाध्याय ज्ञानसागर जी मय हो चुका है तथा उनके आगमन पर पलक-पावड़े बिछाने को तैयार है।

इस तरह उपाध्याय श्री ज्ञानसागर महाराज समाज की आशाओं के केन्द्र हैं जिनके विहार से एवं उपदेशों से भगवान् महावीर के सर्वजीवसमभाव, सर्वधर्म समभाव, अपरिग्रहवाद का सर्वत्र प्रचार होगा। जनता निर्ग्रन्थ साधुओं के प्रति आकृष्ट होगी तथा सर्वत्र समाज में समन्वय एवं धार्मिक वात्सल्य के भाव पैदा होंगे। ऐसे साधु को पाकर सारा समाज गौरवान्वित है।

जयपुर **डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल**

श्रमण परम्परा के अमृत-पुरुष : उपाध्याय ज्ञानसागर जी

परमपूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी का नाम दिगम्बर जैन श्रमण-परम्परा में विशिष्ट उज्जवलता के साथ उदित हुआ है। ज्ञान, दर्शन एवं चरित्र की निर्मल आभा, सत्य के प्रति समर्पण, आग्रहमुक्त चिन्तन, मानव जाति के कल्याण की कामना और प्राणिमात्र के प्रति तादात्म्य का अनुभव उनके अंतरंग व्यक्तित्व को विश्लेषित करने वाले तत्त्व हैं। पूज्य उपाध्याय श्री के जीवन में उदार दृष्टिकोण की सुगन्ध एवं आध्यात्म के अन्तःस्थल की प्रतिध्वनि है। आठ वर्षीय मुनिजीवन में प्रचण्ड मार्त्तण्ड की भाँति अकेले आलोक एवं उत्ताप विकीर्ण कर उ.प्र., म. प्र., उड़ीसा, बिहार, बंगाल, हरियाणा भारत के गाँव दर गांव क्षुधार्त्तो, पीड़ितों, व्यथितों को जीवन की नवीन राह दिखाते, पथभ्रष्टों, व्यसनियों एवं कुमार्गरतों को सन्मार्ग पर लगाते हुए अपने पुष्प जैसे कोमल एवं वज्र जैसे कठोर अन्तस्थल में पूर्वगामी सुधा युग को सम्पूर्ण रूप से आत्मसात् करके धार्मिकचेतना जाग्रत कर रहे हैं। हजारों-हजारों परिवार एवं युवा आपसे प्रभावित हुए हैं। जब भी समाज में बढते जा रहे भ्रष्टाचार, दुराचार, अनाचार, कदाचार की चर्चा आपके सम्मुख आती है तो सहजता से कहते हैं—"चिन्ता नहीं, चिन्तन करो, व्यथा नहीं, व्यवस्था करो" उपाध्याय श्री युवा संत हैं, मात्र ३६ वर्ष की अवस्था में लौकिक, अलौकिक प्रत्येक क्षेत्र का सम्पूर्ण ज्ञान सहज ही कालिदास की "तपसि वयः न समीक्षते" वाली उक्ति को सार्थक कर देता है।

बुन्देल खण्ड की विद्वानों की साधनास्थली एवं महापुरुषों की जन्मस्थली मुरैना की पुण्य धरा पर सन् १९५७ को उदित इस बालसूर्य को देख प्राची दिशा की भाँति आदरणीया मातुश्री अशर्फी बाई एवं पूज्य पिता श्री शांतिलाल जी ही धन्य हुए हों ऐसा नहीं है, उनके असाधारणत्व का प्रतिपल हर्षवर्द्धक अनुभव आसपास के सभी जन करते ही रहे हैं।

परिजन-पुरजन मर्मस्पर्शी रोमांचक एवं प्रभावी संस्मरणों से बालक उमेश से ब्र० उमेशजी तक का जो चित्रांकन करते हैं वह निःसन्देह उल्लेखनीय है। बचपन से आपकी आत्मनिष्ठा, दृढ़ता, तार्किक क्षमता विलक्षण है। पं. सुमतिचन्दजी शास्त्री मुरैना, जिन प्रसंगों को भूले नहीं भूलते हैं उनमें से एक है निरुत्तर कर देने की क्षमता। कहते हैं —व्यथित परिवारजनों विशेषतः विह्वल माता-पिता के पुत्रमोह से उद्वेलित मैं जब गृहत्याग हेतु तत्पर ब्र. उमेश को सोनगिरि फोन करता हूँ "उमेश अभी तुम बहुत छोटे हो, घर लौट आओ अभी १७–१८ वर्ष की अवस्था गृहत्याग की नहीं है, तो झट से कहते हैं — "पण्डितजी, मैं छोटा सही, आप तो बड़े हैं आप ले लीजिए" तो मैं निरुत्तर ठगा सा रह गया।" (आज भी पूज्य श्री का यह विशेष गुण सभी को अभिभूत करता है।) भविष्य के इन प्रख्यात संत का बाल्यकाल संत जैसा ही रहा, बचपन की अनावश्यक उद्दण्डताओं से दूर शांत प्रकृति, साधु को ही सर्वस्व समझने वाले ब्र. उमेश १२–१३ वर्ष की अल्पायु ही में अघोषित रूपेण अपने भविष्य का स्वयं निर्धारण कर चुके थे, सभी इस अल्पवय बालक की चेष्टाओं में पूर्व संस्कारों को देख चुप तो हो जाते पर सशंक हृदय से यह भी जान चुके थे कि यह घर संसार के मायामोह से सर्वथा विरक्त ही रहकर निःस्पृह जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्तित्व है। छोटे से बीज के अन्दर व्यापक संभावनाएँ मोहवश देखकर भी कब तक अनदेखी की जा सकती थी। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी से ब्रह्मचर्यव्रत लेकर 'कातंत्र व्याकरण', 'पाणिनि व्याकरण, अष्टाध्यायी अष्टसाहस्री, 'तत्त्वार्थ सूत्र' एवं 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' जैसे ग्रन्थों के अध्ययन का सुयोग मिला। एक विनम्र सुयोग्य शिष्य के रूप में पू. आचार्य श्री जी का सहज स्नेह वात्सल्य प्रचुरता से आपके साथ रहा है। पू० आ० सुमति सागर, मुनिश्री विवेक सागर, आचार्य कल्प श्रुतसागर जी सदृश तपोनिष्ठ संतों के पावन सानिध्य ने जीवन को शुद्ध से शुद्धतम एवं संस्कारित बनाया।

एक बार आचार्यकल्प श्रुतसागर जी के संघ ने श्रीमहावीरजी से सवाई माधोपुर तक विहार किया। मार्ग में बनासनदी आई। नाव में बैठकर सभी साधुओं ने नदी पार करने का निश्चय किया। नदी में पानी बहुत था, नाव कुछ पुरानी थी इसलिए नदी के बीच में पहुँचते–पहुँचते वह डगमगाने लगी, नाविक भी घबरा गया। सभी ने णमोकारमंत्र का जाप करना शुरू किया।

नदी के उफान को देखकर सभी को जीवन का अंत दिखाई देने लगा। इतने में ही नाविक के हाथ एक डंडा आ गया जिसके सहारे नदी पार हो गई। 'डूबते को तिनके का सहारा' वाली कहावत चरितार्थ हुई सभी को नया जीवन मिला। संघ सवाई माधोपुर पहुँचा, वहाँ पहाड़ के नीचे एकमात्र टावल पहने बालक उमेश ८ घण्टे तक खड़े होकर चिन्तवन में लगे रहे। उपाध्याय श्री जी की यह प्रथम साधना थी जिसमें वे पूर्णरूपेण सफल रहे।

क्षुल्लक दीक्षा : साधना निरन्तर वृद्धिगत थी, अन्तरंग आत्म कल्याण की ओर अग्रसर था, "जहॉ चाह, वहॉ राह" गृह मुक्ति की छटपटाहट सोनगिरी ले आई और यही रचना हुई निवृत्ति-जीवन के प्रथम अध्याय की अपार भक्ति एवं वैराग्य के परिणामों को देख आ. श्री सुमति सागर जी से जैसे ही आपने क्षुल्लक दीक्षा देने की प्रार्थना की तत्काल ही स्वीकार कर ली गई। अन्ततः ५ नवम्बर १९७६ का वह शुभ दिन भी आया जब एक भव्य समारोह में आपने केशलौंच किया और क्षुल्लक दीक्षा प्राप्त की। अब आपका नाम ब्र. उमेश से क्षु. गुणसागर हो गया।

दीक्षा लेते ही श्रद्धा-भक्ति से समन्वित ऊर्जा का प्रवाह कठोर तप व साधना से संयुक्त हो गया। आप सनात्च सिन्धु की अतल गहराईयो को नापने लगे और इधर अज्ञात शक्तियॉ स्वकार्यरत हो गईं। कहते हैं न संयम साधना में संलग्न महापुरुष छोटी आयु में ही तेजस्वी हो जाते हैं। उनमें महान कार्य करने की अपूर्व क्षमता होती है। अपनी शक्ति से वे संसार भर को चमत्कृत कर देते हैं। क्षु० गुणसागर जी भी इससे विलग नहीं।

कठोर साधना : एक बार आप सोनागिरि में ध्यानस्थ थे। इतने में ही एक सर्प आया और आपके पॉवों पर खेलने लगा। कभी कमण्डल पर चढ जाता लेकिन आप ध्यानमग्न रहे, आखिर सर्प स्वयं नतमस्तक होकर चला गया, यह आपकी प्रथम परीक्षा थी जिसमें आप पूर्ण रूप से खरे उतरे और आपकी साधुत्व वृत्ति की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

मुंगावली सागर के मन्दिर की घटना है। आप ध्यानारूढ़ थे। एक छिपकली आकर जंघा पर चढ़ गई। एक-दो घण्टे तक वह दुपट्टे पर बैठी ही रही। महाराज श्री को लगा कि कोई कीड़ा शरीर पर चढ़ गया है। आप ध्यानमग्न ही रहे। छिपकली पीठ व दुपट्टे पर खेलती रही। कहीं अन्यत्र चली गई। छिपकली के स्पर्श से ही शरीर पर फुंसियाँ हो जाती हैं। इसके

जहरीले पंजों को शरीर सहन नहीं कर सकता लेकिन क्षुल्लक गुणसागर जी ने अपनी दृढ़ साधना से सब पर विजय प्राप्त कर ली।

सर्प की एक और घटना मुंगावली में हुई। सन् 1984 में आप वहाँ थे। आहार लेने के पश्चात् आप प्रायः जंगल में जाकर सामायिक करते थे। एक दिन जब ध्यानमग्न थे तो सर्प आया और दुपट्टे पर खेलता रहा फिर कुण्डली मारकर बैठ गया। फन फैलाकर आपको निहारने लगा और आपको ऐसा लगा जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

क्षुल्लक अवस्था से ही आपको जंगल में जाकर ध्यान करने की आदत है। इसी स्वभाव के कारण आप जनसंकुल शहरों की अपेक्षा गाँवों में विहार करना अधिक पसन्द करते हैं। चंदेरी की घटना है, वहाँ से 2 कि.मी. दूर खन्दारजी अतिशय क्षेत्र है जहाँ चारों ओर घना जंगल है। आप वहीं पर ध्यानमग्न थे, आपके पास वहाँ का माली आया और सिंह की चर्चा करने लगा। इतने में ही थोड़ी देर में सिंह आ गया और दहाड़कर चला गया। सब लोग डरे हुए थे लेकिन आपको ऐसा लगा कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

कठोर तपश्चरण निर्दोष चर्या, निर्भीकता एवं सहज साधु-स्वभाव को प्रकट करती है। ये कुछ घटनाएँ हैं। सत्य यह है कि आप सच्चे आत्मजयी, उपसर्ग-विजयी, ज्ञानाध्ययन एवं साधु है चारित्रिक शिथिलता आपको सहन नहीं। न गर्मी की भीषणता से घबराते हैं, और न भयंकर सर्दी की कंपकंपाहट आपको भयभीत कर सकती है। सभी ऋतुओं में आपका समान जीवन रहता है। शीत लहर में भी न घास, न फूस, मात्र एक चटाई रखते हैं। बस प्रतिपल मन्द-मन्द मुस्कुराहट, मूलाचार में वर्णित साधु के आचार के जीवन्त प्रतीक ऐसे साधु अपनी साधना से ही सबके आराध्य हो जाते हैं, अभिभूत हो सभी चरणों में झुक जाते हैं। अपनी वृत्ति के प्रति जागरूकता, नियन्त्रण एवं सावधानी आपकी विशिष्टता है।

साधना के पथ पर प्रतिपल चलने वाले भला लक्ष्य तक पहुँचे बिना कभी रुकते हैं। क्षुल्लक अवस्था में 12 वर्ष व्यतीत होने पर आचार्य विद्यासागर जी ने कहा "गुणसागर तू कब तक इस चद्दर से मोह करता रहेगा।" इतना गुरु का संकेत था कि नंगानंग कुमारों की तपस्थली, अनेकानेक मुनियों की साधनास्थली, तीर्थकरों के समवशरण से पवित्र धरा सोनागिरि ही में मुनिदीक्षा का संकल्प ले लिया और अब आप क्षुल्लक गुणसागर से मुनि 108 ज्ञानसागर

जी बने। सत्य यह है कि उन्होंने अपने जीवन को प्राप्त ही इस दिन के लिए किया था। साधना के मध्य चमत्कारों का उन्होंने कभी आह्वान् नहीं किया, चमत्कार करने वाले तत्त्व ही उनकी सेवा में सदा उपस्थित रहते हैं। नित्य नये चमत्कार सुनने में आते हैं, पर आश्चर्य नहीं होता क्योंकि जैन साधु के जीवन में ऐसी तो घटनाएँ नित्य-प्रति होनी स्वाभाविक है ही। यह साधना-पथ के मानों सहयात्री हैं।

मार्च ८८ में मुनि दीक्षा लेकर प्रथम वर्षायोग सागर (म.प्र.) में हुआ। कुछ महीनों तक संघ में साथ रहने के पश्चात् आचार्यश्री की स्वीकृति लेकर संघ से अलग होकर उत्तरप्रदेश की ओर मुड़ गए। यहाँ के छोटे-छोटे गाँवों में आपने विहार किया और नवयुवकों में अपूर्व धार्मिक श्रद्धा उत्पन्न की। देवदर्शन और रात्रि-भोजन-त्याग के नियम से न जाने कितने युवक-युवती सहजता से ही बंध गए। उत्तर प्रदेश के खेकड़ा, बिनौली, सरधना, बुढ़ाना, शाहपुर में विद्वत् गोष्ठियां हुईं। आचार्य कुन्दकुन्द द्वि सहस्राब्दी वर्ष को सफल बनाने में सक्रिय योगदान दिया। सरधना में पू. गुरु 1008 आचार्य श्री सुमति सागर जी ने आपको उपाध्याय पद समाज के कई हजार धर्मप्रेमियों, विद्वानों, श्रीमन्तों के मध्य प्रदान किया। सत्य यह भी है कि पूज्य श्री 108 ज्ञानसागर जी 'पद' आदि से सर्वथा विरक्त हैं। आपके पावन-पवित्र व्यक्तित्व का विलक्षण एवं प्रभावशाली प्रभाव चरणागत को सदा के लिए अनुयायी बना लेता है।

प्रवचन-शैली में समागत विषयों की सामयिक प्रासंगिकता, सहज, सुबोध भाषा, विशदता एवं प्रस्तुतीकरण के ही कारण श्रोताओं की भीड़ इतनी बढ़ जाती है कि एक गाँव से दूसरे गाँव विहार हुआ नहीं कि प्रवचन के समय सभी वहाँ उपस्थित। वाणी का यह अद्भुत प्रभाव ही है कि श्रोताओं की जीवनशैली आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तित हो गई है।

उत्तरप्रदेश से बिहार की ओर विहार कर प्रथम चातुर्मास श्री सम्मेद शिखर जी में हुआ। आपका पुण्य एवं साधना वहाँ भी प्रभावी एवं चर्चित हुई। पूरे चातुर्मास में श्रावकों की तन, मन, धन से की गई भक्ति देखते ही बनती थी। समस्त धरा को ही अपना विहार स्थल समझते हैं। श्रावकों की स्थान-स्थान पर अभ्यर्चना-अर्चना से तो आप सर्वथा निरपेक्ष हैं। जहाँ जो है, जैसा है ठीक है—पर पुष्प तो अपना सौरभ साथ ही रखता है। जैन तो

क्या अजैन भी जहाँ मुखारविन्द से निःसृत दो शब्द सुनने को लालायित रहते हैं। निश्छल, सौम्य, मन्द मुस्कुराहट युक्त मुखमुद्रा, दिगम्बरवेश देखते नहीं कि श्रद्धानत हो जाते हैं। कह उठते हैं—"वर्तमान युग के साधु हैं सभी प्रकार से सभी समस्याओं को सामधान देने में सक्षम हैं, विरोधों को भी सामंजस्य में व प्रतिकूलता को भी अनुकूल बनाने में समर्थ हैं। सभी के प्रति वत्सलभाव है। सन् १९९१ में आपका प्रथम चातुर्मास गया में हुआ। गया में उपाध्याय श्री के सानिध्य में भव्य समारोह हुआ।

उपाध्याय श्री विद्वानों, साहित्य-सेवियों एवं शोधार्थियों से सहज स्नेह रखते ही हैं। विद्वानों से अधिक से अधिक सम्पर्क रखना चाहते हैं। विद्वानों का समागम होता रहे अतः वे श्रावकों को संगोष्ठियां करने की प्रेरणा दिया ही करते हैं। वे कहते हैं विद्वान समाज की निधि है। इसलिए उनका संरक्षण, सम्मान एवं आतिथ्य ही जिनवाणी का संरक्षण एवं सम्मान है।

बिहार में रांची से लगभग अस्सी किमी. दूर तड़ाई ग्राम में विराट सराक सम्मेलन में लाखों सराकों को जैन धर्म की मूलधारा में लाने और उनके उत्थान के लिए अनेक कार्यक्रमों का आयोजन एवं भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज के शीर्ष नेता साहू अशोक जैन के द्वारा सराकोत्थान ट्रस्ट की स्थापना, धर्मप्रभावक, संस्कृति-संरक्षण जैसे महान प्रभावी कार्य आपके चरण-सानिध्य में हुए। जबाडीह, देवलदांड, अगसिया एवं रंगमाटी को अपनी वीतरागी मुद्रा एवं प्रभावी वाणी से पवित्र किया। सराक बन्धुओं के मध्य वर्षायोग की स्थापना कर सच्ची साधना का परिचय, दिगम्बरत्व मुद्रा का महत्त्व बिहार तो बिहार बंगाल और उड़ीसा को मिला।

क्षुल्लक अवस्था में सन् 1984 में मुंगावली में संगोष्ठी खनियाधाना में सेमिनार आयोजित हुआ जिसमें बहुत से विद्वानों ने भाग लिया। सराकों को उनका अतीत का गौरव स्मरण कराया, उस प्रतिकूल क्षेत्र में जैनत्व का बिखरा पुरातत्व एवं सराकों के अन्तरंग में निहित श्रावकत्व को संरक्षित, संपोषित करने का महनीय कार्य कर इस ओर पूरे भारत का ध्यान आकर्षित किया। लोकेषणा, ख्यातिलाभ के प्रचार-प्रसार से निःस्पृह पूज्य उपाध्याय श्री की यही अलौकिक साधना, परदुःख कातरता, असीम करुणा, अपूर्व त्याग सम्पूर्ण बिहार प्रान्त में चर्चा का विषय बन गई। वहाँ के युवाओं जैन-जैनेतरों में धार्मिक संस्कार को जागृत करना असंभव नहीं तो कठिन कार्य अवश्य

ही था; लेकिन अपनी अद्वितीय आत्मशक्ति से आपने वह कर दिखाया। सराक, समाज की धारा से जुड़कर शेष भारत के श्रावकों के समकक्ष रहे, उनके साथ घुलमिल जायें यही आपका प्रयास है। सच भी है, पं. बंगाल, बिहार, उड़ीसा में ८-१० लाख जैन यदि हमारे अपने हैं, और हो जाते हैं तो इससे अधिक जैनसमाज के लिए और प्रसन्नता क्या हो सकती है। शक्ति और संगठन के साथ-साथ सुदूरवर्ती क्षेत्रों में जैनत्व का प्रचार-प्रसार होगा।

बिहार प्रदेश के रांची जिला में युवा सम्मेलन अ. भा. विद्वत् संगोष्ठी, महासभा अधिवेशन, दि. जैन शास्त्री परिषद, अधिवेशन, तीर्थरक्षा समिति अधिवेशन आदि अनेक कार्यक्रम जिस प्रभावना व सफलता के साथ सम्पन्न हुए वे सब इतिहास के ऐतिहासिक पृष्ठ बने हैं। बिहार प्रान्तीय युवा परिषद का अधिवेशन सम्पन्न हुआ। तीर्थंकर महावीर की आचार्य-परम्परा का विवेचन हुआ।

गया चातुर्मास के पश्चात् उपाध्याय श्री रफीगंज, डाल्टनगंज, हजारी बाग, रायगढ़, कैन्ट आदि नगरों में विहार करते हुए राँची पधारे और यहाँ एक माह के प्रवास में ही समाज पर एवं नगर पर जाई जैसा प्रभाव स्थापित किया। जैनेतर समाज इतनी प्रभावित थी कि सर्वधर्म सम्मेलन में सभी धर्मों के प्रतिनिधियों ने भाग लेकर उपाध्याय श्री जी के प्रति अगाध श्रद्धा प्रकट की। वहाँ के पुलिस अधीक्षक की अभ्यर्थना तो वर्णनातीत है। किसी जैन साधु का इतना व्यापक प्रभाव कि आज सारा बिहार ज्ञानमय हो चुका है। उनके आगमन पर पलक-पाँवड़े बिछाने को तैयार हैं।

मेरठमण्डल का धर्मस्थलल :— सन् 1995 के प्रथम माह में मेरठ के पंचकल्याणक में आपके शुभागमन ने तो सभी का कल्याण कर दिया है। मेरठ मण्डल में आपका विहार स्वयं में एक गौरवमयी गाथा बन गई है। हजारों की संख्या में प्रतिदिन श्रद्धालुओं का साथ-साथ गमन, स्थान-स्थान से बसों का आना, चातुर्मास स्थापना के लिए हजारों की संख्या में श्रीफल चढ़ा-चढ़ाकर प्रार्थना करना किसी आश्चर्य से कम न था। एक चतुर्थकालीन दृश्य सबको विस्मित कर देता। युवाओं की भीड़ की भीड़ के जयकारे, प्रवचनों में अपने-अपने स्थान पर चातुर्मास का आग्रह, भजन व भाषणों से विनयपूर्वक उद्‌गार प्रकट करना, साधु और श्रावक के सम्बन्ध को परिपुष्ट करता हुआ अद्वितीय उदाहरण बन जाता। गाँव के गाँव साथ चलते रहते। संभवतः मेरठ

मण्डल का कोई ऐसा ग्राम तक न था जो उपाध्याय श्री के चरणों में निवेदन के लिए प्रस्तुत न हुआ हो। किसी साधु के चातुर्मास के लिए ऐसी प्रतिस्पर्धा वर्तमान में सामान्यतया नहीं दिखालाई पड़ती।

यह सब उपाध्याय श्री जी की चारित्रिक विशेषाताओं व युगानुरूप जनसामान्य की भावनाओं को समझने का प्रतिफल है। इस सब धूमधाम से से अप्रभावित जितना पूज्य श्री को देखा अन्यत्र इतना कठिन है। शतसूर्यों की ज्योति जैसी प्रभा से दीप्त तेजस्वी आभा वाले, आत्मानुसंधान में तत्पर, अत्याधिक श्रमशीलश्रमण, पूज्य उपाध्याय श्री जी को न किसी प्रचार की चाह है न प्रसार की। प्रतीत होता है कि स्वयं यश-कीर्ति उनके साथ रहने को लालायित है।

सहारनपुर पंचकल्याणक के पश्चात् 25, 26 व 27 मई को 'जैन राष्ट्रीय-विज्ञान संगोष्ठी' उस पल ऐतिहासिक हो गई जब देश-विदेश के 30 से भी अधिक मूर्धन्य विद्वानों की आवाज को स्वर देते हुए प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी ने कहा— आज भारत भर में विद्वानों के प्रति आत्मीयता रखने वाले और समाज में श्रद्धास्पद स्थान देने वाले कोई हैं तो वह हैं पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर। 'देश-विदेश के विद्वान इसीलिए श्रद्धापूर्वक अभिभूत पूज्य श्री उपाध्याय महाराज के चरणों में आकर होते हैं। पूज्यवर महाराज श्री भी समाज को विद्वानों का पुरुषार्थ विस्मृत नहीं होने देते। पं. मक्खनलाल शास्त्री स्मृति ग्रंथ, डा. कस्तूरचंद कासलीवाल अभिनन्दन-ग्रन्थ, डॉ. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य स्मृति-ग्रन्थ, डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य स्मृतिग्रन्थ, प्रशममूर्ति आचार्य शांतिसागर "छांणी" स्मृति-ग्रन्थ सब आपकी ही पावन-प्रेरणा से प्रकाशित हुए हैं और हो रहे हैं।

सहस्र-सहस्र श्रद्धालु और विशेषतः युवावर्ग मंत्रमुग्ध पूज्य उपाध्याय श्री जी को सुनते हैं तो प्रतीत होता है कि ये कोई नवीन साधु हैं और नवीन स्वर से प्रवचन कर रहे हैं अथवा जैन धर्म की शाश्वत् आत्मा शरीर धारण कर इस पंचमकाल में प्राणि मात्र को संजीवित करने के लिए अमृतवाणी, अभयवाणी का उच्चारण कर रही है। पूज्य श्री के उत्साह व आशीर्वाद से युवकों का कर्मोत्साह सौ गुना बढ़ गया है। श्रमणत्व के सच्चे प्रतिनिधि, आर्ष-परम्परा के संपोषक आराध्य श्री का सर्वस्व अर्पण इसी का नाम तो है वैराग्य।

इस प्रकार उपाध्याय श्री जी समाज की आशाओं का केन्द्र हैं। पूज्य

श्री के विहार और उपदेश से निश्चित रूप से भगवान महावीर के सर्वजीव समभाव, सर्वधर्म समभाव एवं अपरिग्रहवाद का सर्वत्र प्रचार होगा। जनता निग्रन्थ साधुओं के प्रति आकृष्ट होगी तथा सर्वत्र समाज में समन्वय एवं धार्मिक वात्सल्य के भाव उत्पन्न होंगें : शतायुष्य होकर पूज्य उपाध्याय श्री सर्वत्र विहार करते रहें – ऐसे तपस्वी साधु को पाकर सारा समाज गौरवान्वित है!

सहारनपुर | डॉ. नीलम जैन

तृतीय खण्ड

जैनधर्म के प्रभावक प्राचीन आचार्य

आचार्य जोइन्दु और उनका साहित्य

आचार्य श्री कुन्दकुन्द जी द्वारा प्रवर्धित एवं पूज्यपाद आदि आचार्यों द्वारा पोषितअध्यात्म-परम्परा को नये आयाम देने वाले जैन योग एवं अध्यात्म के महान आचार्य जोइन्दु के यशःप्रसार के लिये 'परमात्मप्रकाश' व 'योगसार' जैसे ग्रंथों के रहते किसी नवीन परिचय की वस्तुतः आवश्यकता नहीं है। उनके कृतित्व की जितनी जनख्याति है, उनके व्यक्तित्व के बारे में आज भी अनेकों जिज्ञासायें पूर्ववत् विद्यमान हैं।

नाम—

श्री 'परमात्मप्रकाश' ग्रन्थ में इन्होंने अपना नाम जोइन्दु दिया है, जोकि विशुद्ध अपभ्रंश रूप में इनका निर्विवाद नाम माना जाता है; किन्तु इसके संस्कृतनिष्ठ रूपों के बारे में पर्याप्त मतभेद हैं। 'जोइन्दु' की अपेक्षा 'योगीन्दु' इनका नाम स्वीकार कर इस समस्या का एकपक्षीय समाधान सोच लिया गया है। जबकि आ. ब्रह्मदेव सूरि, आ. श्रुतसागर सूरि तथा आ. पद्मप्रभमलधारिदेव आदि अनेक प्राचीन आचार्यों ने इन्हें 'योगीन्द्र' नाम से अभिहित किया है।

व्याकरणिक दृष्टि से विचार किया जाये तो अपभ्रंश भाषा की उकार बहुला-पद्धति को प्रायः सभी विद्वानों व भाषाविदों ने स्वीकार किया है। तदनुसार जैसे 'नरेन्द्र' का 'नरिंदु', 'पत्र' का 'पत्रु' रूप अपभ्रंश में बनता हैं। वैसे ही योगीन्द्र>जोईन्द>जोइन्दु रूप भी सहज समझ में आ सकने वाला तथ्य है। केवल इतना ही नहीं, इन्होंने स्वयं भी अपना नाम 'योगीन्द्र' स्वीकारा है। अमृताशीति इनका प्रथम संस्कृत ग्रंथ प्राप्त हुआ है, इसके अंतिम पद्य में "योगीन्द्रो वः सचन्द्रप्रभविभुरविभुर्मंगलं सर्वकालम्" कहकर अपने नाम का संस्कृत रूपान्तर योगीन्द्र संकेतित किया है। टीकाकार आचार्य बालचन्द्र अध्यात्मी ने भी टीका में अनेकत्र इनका नाम योगीन्द्र प्रयोग किया है, तथा अंत में भी "श्री योगीन्द्रदेवकृतामृताशीतिनामधेययोगग्रन्थः समाप्तः" कहकर उपसंहार किया है। यह तथ्य भी इस संदर्भ में अति विचारणीय है कि आधुनिक विद्वानों के अतिरिक्त किसी भी प्राचीन आचार्य, विद्वान या लिपिकार

ने इनका नाम योगीन्दु नहीं लिखा है। लिपिकारों ने योगेन्द्र जैसे पाठभेद इनके नामों के दिये हैं; किंतु यह 'योगीन्द्र' नाम से ही साम्य रखता है, योगीन्दु से नहीं।

काल निर्णय

जोइन्दु के कालनिर्णय के बारे में कई अवधारणायें प्रचलित हैं; उनमें प्रमुख हैं—

1. जोइन्दु 873-973 ई. के मध्य (वीर निर्वाण की 15वीं शताब्दी में) हुये थे।
2. भाषा के आधार पर डॉ. हरिवंश कोछड़ ने इन्हें 8-9वीं शताब्दी ई. का माना है, तो राहुल सांकृत्यायन ने 1000 ई. इनका काल निर्धारित किया है।
3. छठी शताब्दी ई. के उत्तरार्द्ध में योगीन्दु का काल डॉ. ए.एन. उपाध्ये व डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री ने स्वीकार किया है।
4. सिद्धांत सारादिसंग्रह के सम्पादक पं. परमानन्द सोनी ने इन्हें वि.स. 1211 के पहले का विद्वान् माना है।

आज की परम्परा इन्हें छठी शताब्दी ई. का ही स्वीकारती है। किन्तु अमृताशीति ग्रंथ के अवलोकन के उपरांत इस मान्यता पर प्रश्न चिन्ह अंकित हो जाता है, क्योंकि उन्होंने 'अमृताशीति' में आ. समन्तभद्र, आ. अकलंक देव, विद्यानन्दिस्वामी, जटासिंहनन्दि, भर्तृहरि आदि के नाम से सात पद्य उद्धृत कर उन्हें मूल ग्रंथ में समाहित किया है।

इनमें से आचार्य समन्तभद्र व भर्तृहरि के नाम से उद्धृत पद्यों के अतिरिक्त अन्य कोई भी पद्य भट्ट श्री अकलंक आदि आचार्यों के उपलब्ध साहित्य में प्राप्त नहीं होता है। आ. विद्यानन्दि के नाम से उद्धृत जो पद्य हैं वे उन्होंने भी अपने ग्रंथों में कहीं अन्यत्र से उद्धृत किये हैं। अतः यह निर्धारण करना कि जोइन्दु किस समय हुये इन पद्यों व इनके कर्ता आचार्यों के निर्धारण पर निर्भर करता है। यही इनके काल निर्धारण का प्रमुख आधार होगा। भाषा आदि पर आधारित निर्णय तो अनुमान मात्र हैं। तथा दो आचार्यों की विषय व शैलीगत समानता भी काल-सामीप्य या काल-ऐक्य का कोई बड़ा आधार नहीं हैं। अतः इन उल्लिखित आचार्यों के स्थितिकाल के आधार पर जोइन्दु का काल छठी से दसवीं शताब्दी ई. के मध्य संभाव्य है।

जीवन परिचय

जोइन्दु के जीवन के बारे में जितने अंधकार में अनुसंधान कर्ता हैं, संभवतः इतनी निरूपायता अन्य किसी आचार्य के बारे में वे महसूस नहीं करते हों। एकमात्र सूत्र 'प्रभाकर भट्ट' नामक शिष्य का उल्लेख है, किन्तु वह भी कोई ऐतिहासिक व्यक्तित्व नहीं है। यहाँ तक कि जोइन्दु साहित्य के बाहर कहीं उनका नाम उल्लेख तक नहीं हैं। अतः हमें तो जोइन्दु का व्यक्तित्व उनके कृतित्व से भिन्न कुछ भी कहने योग्य नहीं रह जाता है। जोइन्दु के कृतित्व के आधार पर इनके व्यक्तित्व का अनुमान एक अनासक्त योगी तथा उत्कृष्ट साधक के रूप में लगाया जा सकता है। इनके विचार क्रियाकाण्ड व रूढ़िवाद के प्रति खण्डनपरक तथा क्रांतिकारी हैं। इससे प्रतीत होता है कि संभवतः ये एकल विहारी ही रहे होंगे। क्योंकि न तो इनकी गुरु परम्परा का कोई स्पष्ट लेख मिलता है, और अन्य किसी परवर्ती आचार्य या विद्वान ने अपने गुरु के रूप में इनका स्मरण किया हो—ऐसा भी कोई उल्लेख नहीं मिला। महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने इनका निवास क्षेत्र राजस्थान होने की संभावना व्यक्त की है।[2]

रचनायें

जोइन्दु के नाम से श्री 'परमात्मप्रकाश' व 'योगसार' ग्रन्थ तो असंदिग्ध प्रामाणिक कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त अमृताशीति, निजात्माष्टक, नौकारश्रावकाचार, अध्यात्मसंदोह, सुभाषिततन्त्र, तत्त्वार्थटीका व दोहापाहुड़ ये सात रचनायें और जोइन्दु कृत मानी गयी है। इनमें से दोहापाहुड़ तो मुनि रामसिंह की कृति है—यह प्रमाणित हो चुका है। तथा अमृताशीति व निजात्माष्टक के अतिरिक्त कोई कृति उपलब्ध नहीं है, अतः ये दोनों ही विचारणीय रह जाती है।

अमृताशीति के टीकाकार आचार्य बालचन्द्र अध्यात्मी ने टीका के प्रारंभ में कहा है कि "श्री योगीन्द्रदेवरु प्रभाकर भट्टप्रतिषोधनार्थममृताशीत्य-भिधानग्रन्थं माडुत्तम........" इत्यादि। इसमें प्रभाकर भट्ट का नामोल्लेख परमात्मप्रकाश कर्त्ता जोइन्दु से अभिन्न सिद्ध करने के लिये पर्याप्त प्रमाण है। परमात्मप्रकाश में वे कहते हैं "भट्ट प्रहायर-कारणंइ मइं पुणु वि पउत्तु", अर्थात् इस ग्रंथ की रचना में मैं भट्टप्रभाकर के कारण प्रवृत्त हुआ हूँ।" अतः अमृताशीति तो सुनिश्चितरूप से परमात्मप्रकाश कर्ता जोइन्दु की ही रचना है।

निजात्माष्टक की जैनमठ, मूड़बद्री के ग्रंथागार में प्राप्त एक कन्नड़ ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि के आरंभ में "निजात्माष्टकम् श्रीयोगीन्द्रदेव विरचितम्" तथा अंत में "इति श्री योगीन्द्रदेव विरिचित-निजात्माष्टकं परिसमाप्तम्"—प्राप्त ये वाक्यद्वय इसे भी जोइन्दु की ही रचना संकेतित करते हैं।

अतः निष्कर्षतः परमात्मप्रकाश (अपभ्रंश), योगसार (अपभ्रंश) अमृताशीति (संस्कृत) तथा निजात्माष्टक (प्राकृत)—ये चारों जोइन्दु की रचनायें हैं। अन्य पांचों रचनाओं की जोइन्दु कर्तृता सभी विद्वानों ने संदिग्ध ही मानी है।

यहाँ एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होता है कि जोइन्दु मात्र अपभ्रंश के ही कवि या विद्वान् नहीं थे, जैसा कि पं. परमानन्द शास्त्री[3] आदि विद्वानों ने स्वीकार किया है। अमृताशीति के संस्कृत में तथा निजात्माष्टक के प्राकृत में निबद्ध होने से ये संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश के समान अधिकारी विद्वान् प्रमाणित होते हैं।

कृतियों का परिचय

1. **परमात्मप्रकाश**—इसके 2 अधिकार है, प्रथम में 136 व द्वितीय में 219 (कुल 345) दोहे हैं। टीकाकार ब्रह्मदेव ने इनमें क्षेपक तथा स्थल संख्याबाह्य प्रक्षेपक भी सम्मिलित माने हैं। इनमें 7 पद्यों (5 गाथायें, 1 स्रग्धरा, 1 मालिनी) की भाषा अपभ्रंश नहीं है। जोइन्दु के अनुसार यह ग्रंथ प्रभाकर भट्ट के अनुरोध पर 'परमात्मा' का स्वरूप पाने के लिये लिखा गया है।[4]

इस ग्रंथ पर ब्रह्मदेव सूरि विरचित संस्कृत टीका के अतिरिक्त आ. बालचन्द्रअध्यात्मी विरचित कन्नड़-टीका, कुक्कुटासन मलधारी बालचन्द्र विरचित अन्य कन्नड़ टीका, एक अज्ञातनामा (संभवतः मुनिभद्रस्वामी के शिष्य) विरचित कन्नड़ टीका तथा पं. दौलतराम जी कृत भाषा टीका[5]—ये टीकायें मानी गयी हैं। मुझे मूड़बद्री के ग्रंथागार में 'पद्मनन्दि-मुनीन्द्र' विरचित एक कन्नड़ टीका की प्रति प्राप्त हुई है, जिसके प्रारंभ में लिखा है—

'पद्मनन्दिमुनीन्द्रेण, भावनार्य्यावबुद्धये।
परमात्मप्रकाशस्य, रुच्यावृत्तिर्विरच्यते।।"

इस पद्य के अनुसार उक्त टीका का नाम 'रुच्यावृति' तथा टीका का निमित्त, 'भावना' नाम की कोई आर्या (कुलीन स्त्री अथवा साध्वी) को बताया है।

2. **योगसार**—इसमें 108 दोहे हैं जिनमें एक चौपाई व एक सोरठ छंद भी

शामिल है। इस ग्रंथ पर प्राचीन टीकाओं का कोई उल्लेख नहीं मिलता। दो आधुनिक टीकायें प्रकाशित हुई हैं जिनमें एक है ब्र. शीतलप्रसाद विरचित 'योगसार भाषाटीका', जोकि आचार्य अमृतचन्द्र स्मृति ग्रंथमाला, सिवनी से मार्च 1989 में प्रकाशित हुई है, तथा दूसरी है, पं. पन्नालाल चौधरी द्वारा विरचित 'योगसार वचनिका' जो कि गणेशवर्णी दि. जैन संस्थान से (1987 में) प्रकाशित है।

आ. कुन्दकुन्द व श्री पूज्यपाद स्वामी के ग्रंथों से निषेचित अध्यात्म को इन ग्रन्थों में अधिक क्रांतिकारी (आधुनिक भाषा में आध्यात्मिक रहस्यवाद) बनाते हुए जोइन्दु ने ध्यान-योग व अध्यात्म की सुन्दर त्रिवेणी प्रवाहित की है।

3. **निजात्माष्टक**—इसमें प्राकृत के (स्रग्धरा-सदृश) आठ पद्यों द्वारा 'परमपदगत निर्विकल्प निजात्मा' का नित्य ध्यान करने की भावना के साथ ध्यान व योग संबंधी विवेचन प्रस्तुत किया है। इस पर अज्ञातकर्तृक (अभी तक अप्रकाशित) कन्नड़ टीका भी प्राप्त होती है, जो भाषा व शैली के आधार पर अमृताशीति के टीकाकार आ. बालचन्द्र अध्यात्मी से काफी साम्य रखती है।

इनमें से योगसार, अमृताशीति और निजात्माष्टक का प्रथम-प्रकाशन माणिकचन्द्र ग्रंथमाला के अंतर्गत 'सिद्धांतसारादिसंग्रह' पुस्तक पं. पन्नालाल सोनी द्वारा सम्पादित होकर सन् 1922 ई. में हुआ था। तथा परमात्मप्रकाश को सर्वप्रथम सन् 1909 में देवबन्द के बाबू सूरजभान वकील ने हिंदी अनुवाद सहित प्रकाशित कराया था। बाद में परमात्मप्रकाश व योगसार के तो कई संस्करण अनेकों विद्वानों व संस्थाओं ने प्रकाशित कराये हैं। किन्तु आचार्य बालचन्द्र अध्यात्मी विरचित कन्नड़ टीका सहित अमृताशीति का वैज्ञानिक संपादन, अनुवाद, विशेष विवेचन तथा विशद प्रस्तावना सहित, श्री दि. जैन मुमुक्षु मंडल ट्रस्ट उदयपुर के द्वारा प्रकाशन हाल में ही किया गया है। निजात्माष्टक अभी तक प्रायः अनछुआ ही शेष है।

4. **अमृताशीति का परिचय**—संस्कृत गाथा में निबद्ध यह 80 पद्यों वाला ग्रंथ है, जैसा कि इसके नाम (अशीति-अस्सी) से भी स्पष्ट है। इसमें 8 पद्य ऐसे हैं, जो कि मूल में 'उक्तञ्च' तथा 'चोक्तम्' कहकर लिखे गये हैं, अन्यथा-अशीति (80) संख्या की पूर्ति नहीं होती। टीकाकार ने भी इन पर

अन्य पद्यों की ही तरह टीका करके इनके मूल में समाविष्ट होने की पुष्टि की है।

इस ग्रंथ को जैनेन्द्र सिद्धांत कोशकार[6] व अन्य कुछ विद्वानों ने पता नहीं किस आधार पर 'अपभ्रंश' भाषाबद्ध बताया है, जबकि यह ग्रंथ 1922 ई. में ही मूल रूप में प्रकाशित हो चुका था।[7]

ग्रंथ की शैली – प्रसादगुण युक्त तथा प्रवाहमयी है। "भ्रात! सखे!" आदि संबोधनों से इसमें बातचीत रूप उपदेश जैसा पुट मिलता है, जो कि विषय प्रतिपादन को और अधिक जीवन्त बना देता है।

इस ग्रंथ में वसंततिलका (37 पद्य), मालिनी (29 पद्य) स्रग्धरा (6 पद्य), शार्दूलविक्रीड़ित (3 पद्य), शिखरिणी (1 पद्य), उपजाति (1 पद्य), मंदाक्रांता (1 पद्य), तथा अनुष्टुप् (1 पद्य) इस प्रकार कुल मिलाकर 9 प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है।

अमृताशीति के टीकाकार–अमृताशीति ग्रंथ पर अभी तक एकमात्र टीका प्राप्त हुई है। ग्रंथ की प्रशस्ति में 2 पद्यों के द्वारा टीकाकार ने अपना नाम 'व्रतीश (आचार्य) बालचन्द्र अध्यात्मी' तथा अपने गुरु का नाम 'सिद्धांतचक्रेश्वर-चरित्र चक्रेश्वर नयकीर्तिदेव बताया है।[8]

सिद्धांत चक्रवर्ती नयकीर्तिदेव मूलसंघ, देशीयगण पुस्तक गच्छ व कुंदकुंदावय के आचार्य गुणचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती के शिष्य थे। इनकी शिष्य मण्डली में मेघचन्द्रवतीन्द्र, मलधारी स्वामी, श्रीधर देव, दामनन्दि त्रैविद्य, भानुकीर्ति मुनि, बालचन्द्र अध्यात्मी, माघनन्दि मुनि, प्रभाचन्द्र मुनि, पद्मनन्दि मुनि और नेमीचन्द्र मुनि के नाम मिलते हैं। इनका स्वर्गवास शक् संवत् 1099 (सन् 1177) में वैशाख शुक्ल चतुर्दशी, शनिवार को हुआ था।[9] श्रवणबेलगोल के बीसों शिलालेखों में इनकी व इनके शिष्यों की प्रशंसा प्राप्त होती है। महामंत्री हुल्ल नागदेव आदि शिष्यों ने इनकी स्मृति में जो स्तम्भ स्थापित किया था वह चन्द्रगिरि पर्वत पर आज भी विद्यमान है। नयकीर्ति देव के शिष्यों में बालचन्द्र अध्यात्मी प्रमुख थे।[10]

आपके द्वारा विरचित समस्त टीकायें कन्नड़ भाषा में हैं, किन्तु जिन ग्रंथों पर आपने ये टीकायें लिखी हैं, वे संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश तीनों भाषाओं में हैं। अतः स्पष्ट है कि इन तीनों भाषाओं के भी आप अधिकारी विद्वान् थे। विषय के विशद विवेचन को देखते हुए सिद्धांत एवं अध्यात्म–दोनों विषयों में आपकी विद्वत्ता असंदिग्ध है ही।

आपका स्थितिकाल ईस्वी की बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है।

अमृताशीति का विषय–विषय की दृष्टि से इसका मूल विषय योग है जिसकी

भाषा व शब्दावली तो हठयोग-परम्परा आदि से मिलती है, किन्तु उसका विवेचन जैन आध्यात्मिक व सैद्धान्तिक परिधि में मर्यादित रहा है। प्रासंगिक रूप में पुण्य, समता तथा संसार-शरीर व भोगों की दुखमयता एवं अनित्यता के भी संक्षिप्त किन्तु प्रभावी व्याख्यान उपलब्ध हैं। योगशास्त्रीय विवेचन में नादानुसंधान विषयक विवेचन संभवतः सर्वथा नवीन एवं तुलनीय रहा है।

निष्कर्ष—इस ग्रंथ के टीकाकार आचार्य बालचन्द्र अध्यात्मी ने भी इसकी व्याख्या की शैली भले ही सरल रखी है, किन्तु उन्होंने अध्यात्मपरक विवेचन व विषय के साथ निश्चयव्यवहार दृष्टि का संतुलन बनाते हुये भरपूर न्याय किया है। और उसे व्याख्या-विधि की उत्कृष्टता का सुन्दर निदर्शन बना दिया है।

इस प्रकार मूलग्रंथकार व टीकाकार की आदर्श युति ने इस ग्रंथ को योग और अध्यात्म-शास्त्र के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान किया है। आचार्य जोइन्दु ने अपनी साहित्य साधना के द्वारा जैन योग एवं अध्यात्म को वे क्रांतिकारी आयाम प्रदान किये हैं, जिनके द्वारा वह सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना सका है। न केवल जैन परम्परा, अपितु सम्पूर्ण भारतीय परम्परा, योग व अध्यात्म विषयक अवदानों के लिये जोइन्दु की चिरऋणी रहेगी।

संदर्भ एवं टिप्पणियां

1. वीरशासन के प्रभावक आचार्य, पृष्ठ 71-72
2. अपभ्रंश और अवहट्ट : एक अंतर्यात्रा, पृष्ठ 61
3. जैन धर्म का इतिहास, पृष्ठ 128।
4. परमात्मप्रकाश 1.8-10, 2.211।
5. परमात्मप्रकाश,-योगसार-डॉ. उपाध्ये विरचित प्रस्तावना का हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ 128-134
6. जैनेन्द्र सिद्धांत कोश, भाग-3 पृष्ठ, 386। पृष्ठ 29-134
7. सिद्धांत सारादि संग्रह
8. देखें-प्रशस्ति।
9. जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, पं. परमानन्द शास्त्री, 373
10. वीर शासन के प्रभावक आचार्य, पृष्ठ 107

दिल्ली **सुदीप जैन**

आचार्य कुन्दकुन्द और उनका प्रवचनसार

वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्दः
कुन्दप्रभाप्रणयिकीर्तिविभूषिताशः।
यश्चारुचारण कराम्बुजचञ्चरीक-
श्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम्।।

(चन्द्रगिरि-शिलालेख)

निर्ग्रन्थ दि. परम्परा में विश्ववन्द्य आ. कुन्दकुन्द का प्रमुख स्थान है। उन्होंने स्वान्तः सुखाय के साथ लोकहिताय विस्तृत रूप से श्रुत का प्रणयन किया था। वर्तमान तक भगवान महावीर का मोक्षमार्ग जिस सुगठित आचार-संहिता के अन्तर्गत श्रमण-संघ के रूप में निरबाध गति से प्रवहमान है, उसका श्रेय उन्हीं को प्राप्त है।

'प्रवचनसार'- परमागम वह प्रकाश-स्तम्भ है जिसके आलोक में मानव कर्मबन्धन रहित होकर अनन्त सुख प्राप्त करने का मार्ग ग्रहण कर सकता है तो फिर ऐहिक सुख-प्राप्ति तो सरल ही है। इस ग्रन्थराज के गाथा-सूत्रों से ही "असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय" की भक्त की कामना ध्वनित होती है। इस वाक्य के तीन खंडों का उद्घोष 'प्रवचन सार' के तीन अध्याय क्रमशः करते हैं

1. ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन—नास्तिकता का परिहार, पदार्थों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप अस्तित्व अर्थात् सत् की पुष्टि, जीव को अपने स्वरूप की श्रद्धा का संकेत, रत्नत्रय की प्रेरणा, ज्ञान-तत्त्व की रुचि रूप सम्यग्दर्शन एवं मुमुक्षु को असत् (अकल्याण, बुराई) से सत् (कल्याण) की ओर इंगित (गाथायें 82) असतो मा सद्गमय की धारणा की पुष्टि करती है।

2. ज्ञेय तत्त्व प्रज्ञापन-अज्ञान अन्धकार से निवृत्ति, ज्ञान में प्रतिबिम्बित पदार्थों का प्रकाशन, द्रव्य-गुण-पर्याय, षट्द्रव्य, पञ्चास्तिकाय, सत्संख्या, क्षेत्र आदि अनुयोगद्वारों से जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल का वर्णन, जीव की कर्म, कर्मफल व ज्ञान चेतना का वर्णन (गाथा संख्या 108) सुखकामी

को 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' भावना की प्रेरणा देती है।

3. **चारित्राधिकार**—"पडिवज्जदुसामण्णं जइ इच्छइ कम्मपरिमोक्खं" अर्थात् 'यदि कर्मबन्धन से मुक्ति चाहते हो तो श्रामण्य अङ्गीकार करो' का उपदेश मृत्यु से अमरता की ओर इंगित करता है। चारित्र ही मोक्ष का उपाय, श्रमणत्व-प्राप्तिक्रम, निर्ग्रन्थ लिंग की मोक्षसाधकता, श्रमण की चर्या, 28 मूलगुण, छेदोपस्थापन, अप्रमाद रूप ही अहिंसा, स्त्री के मोक्षप्राप्ति का निषेध, उत्सर्ग-अपवाद की मैत्री, मुनि के सराग एवं वीतराग चारित्र का वर्णन (गाथायें 75) 'मृत्योर्मामृतं गमय इस भव्येच्छा' की स्पष्टता का सूचक है।

प्रवचनसार की उपर्युक्त त्रिलक्षणता अन्य मतों से तुलनात्मक चिन्तन एवं शोध का विषय है। यहाँ मात्र संकेत प्रस्तुत किया है।

आ. कुन्कुन्द स्वामी ने शुद्ध आत्म स्वरूप 'समयसार' की पात्रता निर्माण करने हेतु सम्पूर्ण साधन रूप 'प्रवचन सार' प्रणीत किया है। इसका बिना पालन किए 'समयसार' में गति नहीं है। यह बहुआयामी कृति है। यहाँ हम इसके अन्तर्गत उपयोग की चर्चा करेंगे। आ. कुन्दकुन्द ने कहा है :—

"परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयं त्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेदव्वो।।8।।
जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणाम सब्भावो।।9।।"

द्रव्य जिस समयं पर्याय रूप से परिणमन करता है उस समय वह उससे तन्मय होता है ऐसा जिनागम में वर्णित है। अतः धर्म रूप से परिणत आत्मा को स्वयं धर्म समझना चाहिए। जब जीव परिणमनशील होने के कारण शुभ-अशुभ या शुद्ध रूप से परिणमन करता है तब स्वयं शुभ-अशुभ या शुद्ध होता है। अर्थात् जीव तीनों उपयोगों से तन्मय है एकीभूत है। यह परिणाम द्रव्यान्तर नहीं है। यहाँ स्पष्ट है कि धर्मी और धर्म एक वस्तु है। जो पर्याय को द्रव्य से सर्वथा त्रिकाल भिन्न मानते हैं उनके लिए आ. कुन्दकुन्द की ये गाथायें द्रष्टव्य हैं। अन्दर आत्मा और उसके गुण शुद्ध हों और पर्याय मात्र में अशुद्धि हो, यह मान्यता ठीक नहीं। यह तो सांख्यमत का ऐकान्तिक दृष्टिकोण है। समयप्राभृत में जीव को रागद्वेष से भिन्न कहा है वह शुद्ध स्वरूप के ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का कथन है। अशुद्ध निश्चय भी निश्चय नय हैं। जो वर्तमान विकारी परिणति को विषय करता है। उसकी दृष्टि में जीव

रागादि परिणाम का अभिन्न तन्मय रूप से कर्ता है। उपरोक्त गाथा नं 9 में यही दर्शाया है।

अशुभोपयोग—कषाय की तीव्रता विषय-भोगादि संक्लेश परिणाम को अशुभोपयोग कहते हैं। अकल्याणकर एवं अप्रशस्त होने से ही इसका नाम अशुभ है। हिंसादि पाँच पापों का भाव, आर्त्तरौद्रध्यान, सप्तव्यसन-सेवन परिणाम, धर्मायतनों की निन्दा, इन्द्रिय विषयों में लम्पटता इसमें गर्भित है। इस परिणाम से पाप प्रकृतियों का बन्ध होता है। पूर्व में सत्ता में विद्यमान पुण्य कर्म संक्रमित होकर पाप के रूप में परिणत हो सकता है। पुण्य कर्म के स्थिति-अनुभाग घट सकते हैं। पाप प्रकृतियों में स्थिति बढ़ती है। तथा अनुभाग दृष्टान्तानुसार निम्ब से कांजीर, विष, हलाहल हो सकता है। अतः सदैव पाप-परिणाम से मन-वचन-काय को बचाना चाहिए।

कहा भी है—

असुहोदयेण आदा कुणरोतिरियोभवीय णेरइयो।
दुक्खसहस्सेण सदा अभिंदुदो भमदि अच्चंतं।।12।।

अशुभ के उदय से आत्मा कुमनुष्य, तिर्यञ्च एवं नारकी होकर सहस्रों दुःखों से अत्यन्त पीड़ित होता हुआ संसार में सदा भ्रमण करता है। यहाँ सदा शब्द से ज्ञात होता है कि अशुभ में तो मोक्ष हेतु अवकाश ही नहीं है। इसीलिए अशुभोपयोग को निर्विवाद रूप से अधर्म अर्थात् हेय कहा गया है।

शुभोपयोग—शुद्ध अर्थात् मन्दकषाय भाव को शुभोपयोग कहते हैं। पुण्य भाव-प्रशस्त परिणाम, धर्मरुचि, प्रशम, संवेग, अनुकम्पारूप उपयोग एवं प्रशस्त राग एकार्थवाची हैं। इससे अशुभ का संवर एवं निर्जरा होती है। पाप प्रकृतियों का संक्रमण पुण्य में होता है। पाप की स्थिति व अनुभाग घटते हैं। पुण्य प्रकृतियों का अनुभाग बढ़ता है। अनुभाग दृष्टान्तानुसार गुड़ से खांड, शर्करा व अमृत रूप होकर वृद्धिंगत होता है। इसमें देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान, अहिंसा धर्म, जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान एवं अणुव्रत, महाव्रत आदि चारित्र रूप व्यवहार मोक्ष मार्ग गर्भित है। पुण्य की व्युत्पत्ति देखिये, "पुनाति आत्मानं पूयते अनेन वा इति पुण्यं।" जो आत्मा को पवित्र करता है वह पुण्य है। यद्यपि इससे कर्म का आस्रव होता है किन्तु वह शुभ होने के कारण हानिकारक नहीं है, क्योंकि इससे व्यबहार रूप धर्म का प्रारम्भ होता है। पुण्य को संसार का कारण कहा है वह मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से है क्योंकि आगम

वाक्य है :—

"सम्माइट्ठी पुण्णं ण होइ संसार कारणं णियमा।
मोक्खस्स होइ हेदू जइ णिदाणं ण कुणइ।। (भाव संग्रह)।

—सम्यग्दृष्टि का पुण्य संसार का कारण नहीं है, मोक्ष का हेतु है। स्पष्ट है इसी से इसे धर्म का उपादेय कहा है। देखिये :—

भावं तिविह पयारं सुहासुहं च सुद्धमेव णायव्वं।
असुहं अट्टरउद्दं सुहधम्मं जिणवरिंदेहिं।।79।। (भावपाहुड)

यह शुभोपयोग चौथे गुणस्थान से वृद्धिंगत होता हुआ सातवें तक होता है। शुद्धोपयोग का साधक है। निष्कषाय भाव यानी वीतराग भाव का कारण है। परम्परा से मोक्ष हेतु है।

पुण्णफला अरहंता तेसिं किरिया पुणो हि ओदइया।
रागादीहिं विरहिया तम्हासा खाइगी त्ति मदा।।45।।

—अर्हन्त भगवान् पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के फल ही हैं.....। समयसार जी में आ. कुन्दकुन्द ने शुद्ध नय की दृष्टि से पाप और पुण्य को समान कहा है। यह कथन कर्म सामान्य की दृष्टि से है। शुद्धोपयोग की अपेक्षा दोनों अशुद्ध व हेय हैं। पाप को प्रयत्न करके छोड़ना पड़ता है, पुण्य स्वयं छूट जाता है। निचली (अपरम साधक) दशा में व्यवहार नय कार्यकारी है। इस दृष्टि से पाप-पुण्य में महान अन्तर है। कहा भी है :—

वरवय तवेहिं सग्गो मा दुक्खं होइ णिरयतिरियेहिं।
छायातवट्ठियाणंपडिवालंताण गुरुभेयं।25। (मोक्ष पाहुड)

शुद्धोपयोग-रागादि रहित एकत्व परिणाम शुद्धोपयोग है। 'शुद्धश्चासौ उपयोगः शुद्धोपयोगः'। ज्ञान-दर्शन की कर्म संयोगज भावों से व्युपरत प्रवृत्ति शुद्धोपयोग है। इसे यथाख्यात चारित्र के भेद (निश्चय) रत्नत्रय, कारण-समयसार कह सकते हैं। यह पुण्य संपर्क से भिन्न स्फटिक मणि के समान अमेचक एक रूप उज्ज्वल होता है। ऐसे स्वरूप की श्रद्धामात्र का नाम शुद्धोपयोग नहीं है। किन्तु प्रवचन-सार की गाथा नं. 9 के अनुसार शुद्ध परिणति से शुद्धोपयोग कहते हैं।" ("शुद्धाय उपयोगः शुद्ध उपयोगः" यह व्युत्पत्ति प्रकृत में नियोजित नहीं की जा सकती)। यह सातवें सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान से लेकर बारहवें तक होता है। तेरहवें और चौदहवें में शुद्धोपयोग का फल होता है। शुद्धोपयोग

में शुद्धात्मा का रागरहित अनुभव होता है। इसके धारक मुनि हो सकते हैं, गृहस्थ नहीं। इसी से मुनि अविलम्ब केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। इसमें निर्विकल्पता होती है। वीतराग चारित्र का अविनाभावी है। इसमें ध्यान-ध्याता-ध्येय, प्रमाण-नय-निक्षेप सब विलीन हो जाते हैं।

जो लोग विषय कषायों में साक्षात् प्रवर्त्तन करते हुए अपने को भ्रम से शुद्धोपयोगी मान लेते हैं उनका अकल्याण ही है। वर्तमान में मुनिराज तक उस अनुपम भाव को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं तो गृहस्थ को उसका पात्र कहना आगम का व साधु का अवर्णवाद है। प्रवचनसार में आ. कुन्दकुन्द ने स्पष्ट रूप से लिखा है :—

सुविदिदपयत्थ सुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवजोगोत्ति।।14।।

—भली प्रकार जान लिया है पदार्थों को और सूत्रों को जिसने, जो संयम-तप से युक्त और वीतरागी है, जिसे सुख-दुख समान हैं, वह श्रमण (मुनि) शुद्धोपयोगी कहा गया है।

श्रमणों के दो भेदों का वर्णन प्रवचनसार में है। 1. शुद्धोपयोगी 2. शुभोपयोगी।

समणा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता य होंति समयम्हि।
तेसिं सुद्धवजुत्ता अणासवा सासवा सेसा।।245।।

गृहस्थों के उपरोक्त दो भेद कहीं भी वर्णित नहीं हैं। वह तो अधिकतम शुभोपयोगी हो सकते हैं। उपरोक्त गाथा में शुभोपयोगी भी मुनि हैं और वे गृहस्थ द्वारा पूज्य हैं। आ. कुन्दकुन्द ने गाथा नं. 11 में शुभोपयोगी मुनि को भी धर्म परिणत कहा है। देखिए :

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोग जुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं।।11।।

उन्होंने वीतरागचर्या के साधन के रूप में सरागचर्या की पुष्टि भी की है।

"दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणं जिंणिद पूजोवदेसो य।।248।।

दर्शन-ज्ञान का उपदेश, शिष्यों का ग्रहण और उनका पोषण तथा जिनेन्द्र भगवान की पूजा का उपदेश सराग चारित्र के धारी साधुओं की चर्या है।

प्रवचनसार परमागम में उपरोक्त उपयोग त्रय के वर्णन से सूर्य प्रकाश सदृश स्पष्ट है कि शुद्धोपयोग के धारी मुनि ही होते हैं। आ. जयसेन स्वामी ने मुनि को ही (आचार्य को) दीक्षा गुरु और शिक्षागुरु कहा है। धार्मिक क्षेत्र में गुरु की श्रेणी में निर्ग्रन्थ दि. श्रमण ही आते हैं। जो गृहस्थ दशा में ही अहंकार वश एवं भ्रमवश अपने को शुद्धोपयोगी एवं निर्बन्ध मानकर एकान्त निश्चयाभास में संतुष्ट हैं, वे 'इतो भ्रष्टा ततो भ्रष्टा' होकर दोनों लोक बिगाड़ रहे हैं तथा समाज को दिग्भ्रमित कर पाप का संचय कर रहे हैं। जो कार्य कर सकते हैं उसे हेय कहकर उपेक्षा कर पाप पंक में आकण्ठ डूब रहे हैं। प्रवचनसार समुचित दिशा निर्देशक है। आ. कुन्दकुन्द की नय विवक्षा तो माध्यस्थ भाव की ग्राहक है। समसयार नयपक्षातीत है। एकान्त का व्यवहाराभास भी निश्चयाभास के समान अग्राह्य है। प्रवचनसार को बिना जीवन में उतारे समयसार का गूढ़ रहस्य हृदयंगम नहीं किया जा सकता। प्रवचनसार में आ. श्री ने अध्यात्म-अमृतकलश का प्रबल प्रवाह सकारात्मक विधि के रूप में उंड़ेला है। वे आज भी अपने वाङ्मय द्वारा अमर हैं।

मैनपुरी **पं० शिवचरण लाल जैन**

आचार्य जिनसेन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रतिभा और कल्पना के धनी आचार्य जिनसेन संस्कृत काव्य-गगन के पूर्णचन्द्र हैं। ये ऐसे प्रबुद्धाचार्य हैं, जिनकी वर्णन-क्षमता और काव्य-प्रतिभा अपूर्व है। महापुराण के रचयिता दो विद्वान् हैं—आचार्य जिनसेन और उनके योग्य शिष्य गुणभद्राचार्य। यह विशाल रचना 76 पर्वों में विभक्त है। सैंतालीस पर्व तक की रचना का नाम 'आदिपुराण' है, और उसके बाद अड़तालीस से छियन्तर पर्व तक का नाम 'उत्तरपुराण' है। आदि पुराण के सैंतालीस पर्वों में प्रारम्भ के बयालीस पर्व और तैंतालीसवें पर्व के तीन श्लोक स्वामी जिनसेन द्वारा रचित हैं और अवशिष्ट पांच पर्व तथा उत्तरपुराण श्री जिनसेनाचार्य के प्रमुख शिष्य भदन्त गुणभद्र द्वारा विरचित हैं।

संस्कृत-कवियों में अंगुलिगण्य ही ऐसे हैं, जिन्होंने अपने विषय में कोई ऐतिहासिक विवरण दिया हो। उनमें भगवज्जिनसेनाचार्य अन्यतम हैं। स्वामी जिनसेन का जन्म किस जाति-कुल में हुआ, वे किसके पुत्र थे, जन्म-स्थान और जन्म-काल क्या था आदि बातों के सम्बन्ध में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। पुनरपि अन्तःसाक्ष्यों और बाह्य साक्ष्यों के आधार पर तत्तद्विषयक जो भी सामग्री उपलब्ध होती है, वही मान्य है।

आदिपुराण के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य जिनसेन का जन्म किसी ब्राह्मण परिवार में हुआ होगा। क्योंकि आदिपुराण पर मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति और ब्राह्मण ग्रन्थों का पर्याप्त प्रभाव दिखलाई पड़ता है। समन्वयात्मक उदार दृष्टिकोण के साथ ब्राह्मणधर्म के अनेक तथ्यों को जैनत्व प्रदान करना, इन्हें जन्मना ब्राह्मण सिद्ध करने का प्रबल अनुमान है। निश्चित रूप से इनका पाण्डित्य ब्राह्मण का है और तपश्चरण क्षत्रिय का। अतएव यह आश्चर्य नहीं कि जिनसेन 'ब्रह्मक्षत्रिय' रहे हों। देवपारा के सेनराजाओं के शिलालेखों में 'ब्रह्मक्षत्रिय' शब्द आया है।[1] सेन नामान्त जैनाचार्य सेन राजाओं से सम्बद्ध थे। इस परिस्थिति में आचार्य जिनसेन को ब्रह्मक्षत्रिय मानने में कोई विप्रतिपत्ति दिखलाई नहीं पड़ती। आदिपुराण के उल्लेखों से भी इनका ब्रह्मक्षत्रीय होना ध्वनित होता है। इस ग्रन्थ में अक्षत्रिय को क्षत्रिय-कर्म में दीक्षित होने तथा सम्यक् चारित्र का पालन कर क्षत्रिय होने का उल्लेख आया है।[2] यहाँ प्रकरणवशात् अक्षत्रिय का अर्थ ब्राह्मण ध्वनित होता है।

गुरु-परम्परा—

वंश दो प्रकार का होता है—एक लौकिक वंश और दूसरा पारमार्थिक वंश। लौकिक वंश का सम्बन्ध योनि से है और पारमार्थिक वंश का सम्बन्ध विद्या से है। आचार्य जिनसेन के लौकिक वंश का कोई पता नहीं चलता कि ये कहाँ के रहने वाले थे, किसके पुत्र थे? इसका उल्लेख न तो इनकी ग्रन्थप्रशस्तियों में मिलता है और न ही इनके परवर्ती आचार्यों की ग्रन्थ-प्रशस्तियों में। वस्तुतः गृहवास से विरत साधु अपने लौकिक वंश का परिचय देना उचित नहीं समझते थे। इसके विपरीत आचार्य जिनसेन के पारमार्थिक वंश—गुरुवंश (गुरुपरम्परा) का अवश्य पता चल चुका है। आचार्य जिनसेन मूलसंघ के उस पंचस्तूपान्वय के प्रबुद्ध आचार्य थे, जो आगे चलकर सेनसंघ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिनसेन स्वामी के गुरु वीरसेन ने तो अपना वंश पंचस्तूपान्वय ही लिखा है।[1] परन्तु जिनसेन के शिष्य गुणभद्राचार्य ने सेनान्वय लिखा है। इन्द्रनन्दी ने अपने श्रुतावतार में लिखा है कि जो मुनि पंचस्तूपनिवास से आये, उनमें किन्हीं को सेन और किन्हीं को भद्र नाम दिया गया।[2] किंतु कुछ आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि जो गुहाओं से आये, उन्हें नन्दी, जो अशोकवन से आये उन्हें देव और जो पंचस्तूप से आये, उन्हें सेन नाम दिया गया।[3] श्रुतावतार के उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि सेनान्त और भद्रान्त नाम वाले मुनियों का समूह ही आगे चलकर सेनान्वय या सेनसंघ कहलाने लगा है।

जिनसेन स्वामी के गुरु का नाम वीरसेन था[4] और दादा गुरु का नाम आर्यनन्दि था। वीरसेन के एक गुरुभाई जयसेन थे। जिनसेनाचार्य ने अपने आदिपुराण ग्रन्थ में जयसेन का भी गुरु-रूप में स्मरण किया है।[5] इनके सधर्मी या सतीर्थ दशरथ नाम के आचार्य थे। उत्तरपुराण की प्रशस्ति में गुणभद्राचार्य ने लिखा है कि जिस प्रकार समस्त लोक का एक चक्षु स्वरूप सूर्य चन्द्रमा का सधर्मा होता है, उसी प्रकार अतिशय धीमान् दशरथ गुरु जयसेन के सधर्मा (सतीर्थ) थे; जो अपने वचन रूपी किरणों से समस्त जगत् को उसी प्रकार प्रकाशमान करते थे, जिस प्रकार सूर्य अपनी निर्मल किरणों से संसार के समस्त पदार्थों को प्रकट करता है।[6] अर्थात् सांसारिक पदार्थों का अवलोकन कराने के लिए जो अद्वितीय नेत्र थे तथा जिनकी वाणी से जगत् का स्वरूप अवगत किया जाता था।

आचार्य जिनसेन और दशरथ का शिष्य गुणभद्र हुआ, जो व्याकरण, सिद्धान्त और काव्य में पारंगत था। जैसा कि पहले वर्णित किया जा चुका है कि गुणभद्राचार्य ने महापुराण-आदिपुराण के शेषांश और उत्तरपुराण की रचना की।

वीरसेन स्वामी को जिनसेन और दशरथ गुरु के अतिरिक्त विनयसेन मुनि भी शिष्य थे, जिनकी प्रबल प्रेरणा पाकर आचार्य जिनसेन ने 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य की रचना की थी। इन्हीं विनयसेन के शिष्य कुमारसेन ने आगे चलकर काष्ठासंघ की स्थापना की थी, ऐसा देवसेनाचार्य ने अपने 'दर्शनसार' में लिखा है।[2] जयधवला टीका में श्रीपाल, पद्मसेन और देवसेन इन तीन विद्वानों का उल्लेख और भी आता है, जो सम्भवतः जिनसेन के सधर्मा या गुरुभाई थे।[3] श्रीपाल को तो जिनसेन ने जयधवला टीका का संपालक कहा है[4] और आदिपुराण के पीठिकाबन्ध में उनके गुणों की काफी प्रशंसा की है।[5]

अब तक के अनुसंधान के आधार पर जिनसेनाचार्य की गुरुपरम्परा (गुरुवंश) निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट की जा सकती है—

आर्य चन्द्रसेन
|
आर्य आर्यनन्दि
|
वीरसेन — जयसेन
|
(वीरसेन के शिष्य:) दशरथगुरु, जिनसेन, विनयसेन, श्रीपाल, पद्मसेन, देवसेन

दशरथगुरु, जिनसेन → गुणभद्र → लोकसेन

विनयसेन → कुमारसेन (काष्ठासंघप्रवर्तक)

स्थान-विचार—दिगम्बर मुनियों को पक्षियों की भांति अनियतवास बतलाया गया है। प्रावृड्योग के अतिरिक्त उन्हें किसी बड़े नगर में पांच दिन-रात और छोटे ग्राम में एक दिन-रात से अधिक ठहरने की आज्ञा नहीं है। इसलिये किसी भी दिगम्बर मुनि के मुनिकालीन निवास का उल्लेख प्रायः नहीं मिलता है। अतः निश्चित रूप से यह कह सकना कठिन है कि जिनसेन अमुक नगर में उत्पन्न हुए थे और अमुक स्थान पर रहते थे। पुनरपि इनसे सम्बन्ध रखने वाले तथा इनके अपने ग्रन्थों में बंकापुर, बाटग्राम तथा चित्रकूट का उल्लेख आता है[1] अपने साहित्यिक जीवन में आचार्य जिनसेन का निश्चित ही इन तीन स्थानों से सम्बन्ध था—चित्रकूट, बंकापुर तथा वाटग्राम।[2]

चित्रकूट वर्तमान चित्तौड़ है। इसी चित्रकूट में सिद्धान्तग्रन्थों के रहस्यवेत्ता श्रीमान्एलाचार्य निवास करते थे, जिनके पास जाकर जिनसेन

स्वामी के गुरु वीरसेन ने समस्त सिद्धान्तग्रन्थों का अध्ययन कर उपरितन, निबन्धन आदि आठ अधिकारों को लिखा था।" यही बात श्रीधर विबुध ने भी अपने गद्यात्मक श्रुतावतार में कही है। अतः दोनों श्रुतावतारों (इन्द्रनन्दी-श्रुतावतार और श्रीधरविबधु-गद्यात्मक श्रुतावतार) के आधार पर यह बात सिद्ध होती है कि वीरसेन के गुरु एलाचार्य थे। परन्तु यह एलाचार्य कौन थे, इसका पता नहीं चलता। वीरसेन के समयवर्ती एलाचार्य का अस्तित्व किन्हीं अन्य ग्रन्थों से समर्थित नहीं होता। धवला में स्वयं स्वामी वीरसेन ने "अज्जज्जनंदिसिस्सेण. .." आदि गाथा द्वारा जिन आर्यनन्दि गुरु का उल्लेख किया है, सम्भवतः वही एलाचार्य कहलाते हों। अमोघवर्ष के राज्यकाल शक् सम्वत् 788 की एक प्रशस्ति 'एपिग्राफिआ इण्डिका' भाग 6, पृ0 102 पर मुद्रित है। उसमें लिखा है कि गोविन्दराज ने, जिनके उत्तराधिकारी अमोघ वर्ष थे, केरल, मालवा, गुर्जर और चित्रकूट को जीता था और सब देशों के राजा अमोघवर्ष की सेवा में रहते थे। हो सकता है इनमें वर्णित चित्रकूट वही चित्रकूट हो, जहाँ श्रुतावतार के उल्लेखानुसार एलाचार्य रहते थे और जिनके पास जाकर वीरसेनाचार्य ने सिद्धान्तग्रन्थों का अध्ययन किया था। मैसूर राज्य के उत्तर में एक चित्तलदुर्ग का नगर है। यहाँ बहुत सी पुरानी गुफाएं हैं और पांच सौ वर्ष पुराने मंदिर हैं। श्वेताम्बर मुनि शीलविजय ने इसका उल्लेख 'चित्रगढ़' नाम से किया है। कदाचित् एलाचार्य का निवास स्थान यही चित्रकूट हो।"

वटग्राम या वाटग्राम या वटपद को एक मानकर डॉ0 आलतेकर जैसे कुछ विद्वानों ने बड़ौदा के साथ इसका साम्य स्थापित किया है। वाटग्राम में रहकर जिनसेनाचार्य के गुरु वीरसेनाचार्य ने आनतेन्द्र के बनवाये हुए जैन मंदिर में बैठकर संस्कृत-प्राकृत-भाषा मिश्रित 'धवला' नामक टीका 72 हजार श्लोक-प्रमाण में लिखी थी और फिर दूसरे कषायप्राभृत के पहले स्कन्ध भी चारों विभक्तियों पर 'जयधवला' नाम की 20 हजार श्लोक-प्रमाण टीका लिखी। उनके स्वर्गवासी हो जाने पर उनके शिष्य श्री जिनसेन आचार्य ने चालीस हजार श्लोक और बनाकर जयधवला टीका पूर्ण की। इस प्रकार जयधवला टीका 60 हजार श्लोक-प्रमाण में निर्मित हुई।

वाटग्राम कहाँ पर है, इसका भी पता नहीं चलता, परन्तु वह गुर्जरार्यानुपालित था। अर्थात् अमोघवर्ष के राज्य में था और अमोघवर्ष के राज्य के उत्तर में मालवा से लेकर दक्षिण तक फैले होने के कारण निश्चित रूप से यह कह सकना कठिन है कि वाटग्राम इतने विस्तृत राज्य में कहाँ पर रहा होगा।

बंकापुर उस समय वनवास देश की राजधानी था और जो इस समय कर्नाटक प्रान्त के धारवाड़ जिले में है। इसे राष्ट्रकूट के नरेश अकालवर्ष के सामन्त लोकादित्य के पिता बंकेयरस ने अपने नाम से राजधानी बनाया था। जैसा कि उत्तरपुराण की प्रशस्ति के श्लोकों से सिद्ध होता है।[1] बंकापुर में रहकर जिनसेनाचार्य और भदन्त गुणभद्र ने महापुराण की रचना की थी। जिनसेन के समय में राजनैतिक स्थिति सुदृढ़ थी और शास्त्र-समुन्नति का युग था। तत्कालीन राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष (सन् 815-877 ई) स्वामी जिनसेन के अनन्यभक्तों में से था। अमोघवर्ष स्वयं कवि और विद्वान् था। अमोघवर्ष का राज्य केरल से लेकर गुजरात, मालवा और चित्रकूट तक फैला हुआ था। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष की राजधानी मान्यखेट, जो इस समय मलखेड़ नाम से प्रसिद्ध है, उस समय कर्नाटक और महाराष्ट्र इन दोनों की राजधानी थी। आचार्य जिनसेन का सम्बन्ध चित्रकूट आदि से होने तथा अनन्यभक्त राजा अमोघवर्ष द्वारा सम्मानित होने से इनके जन्मस्थान अथवा निवास-स्थान का अनुमान महाराष्ट्र और कर्नाटक के सीमावर्ती प्रदेशों में किया जा सकता है।

श्वेताम्बर मुनि शीलविजय ने अपनी तीर्थयात्रा में चित्रगढ़ बनौसी और बंकापुर का एक साथ उल्लेख किया है। इससे सिद्ध होता है कि इन स्थानों के बीच अधिक अन्तर नहीं होगा।[2]

समय-विचार—आदिपुराण से जिनसेनाचार्य के काल का पता नहीं चलता, तथापि अन्य प्रमाणों से ज्ञात होता है कि स्वामी जिनसेन हरिवंशपुराणकार जिनसेन के ग्रन्थकर्तृत्वकाल (शक् सम्वत् 705, ई. 783) में जीवित थे। हरिवंशपुराण के कर्ता जिनसेन ने आदिपुराणकार जिनसेनाचार्य के गुरु वीरसेन और जिनसेन का बड़े गौरव के साथ उल्लेख किया है जिन्होंने परलोक को जीत लिया है और जो कवियों के चक्रवर्ती हैं, उन वीरसेन गुरु की कलंकरहित कीर्ति प्रकाशित हो रही है। जिनसेन स्वामी ने श्री पार्श्वनाथ भगवान् के गुणों की जो अपरिमित स्तुति बनायी अर्थात् पार्श्वाभ्युदय काव्य की रचना की है, वह उनकी कीर्ति का अच्छी तरह कीर्तन कर रही है और उनके वर्द्धमान पुराण रूपी उदित होते हुए सूर्य की उक्ति रूपी किरणें विद्वत्पुरुषों के अन्तःकरण रूपी स्फटिक भूमि में प्रकाशमान हो रही हैं।[1]

उपर्युक्त संदर्भ में प्रयुक्त 'अवभासते', 'संकीर्तयति', 'प्रस्फुरन्ति' जैसे वर्तमानकालिक क्रियापद आदि पुराण के रचयिता जिनसेन को हरिवंशपुराणकार जिनसेन का समकालीन सिद्ध करते हैं। साथ ही इस बात का भी ज्ञान होता

है कि हरिवंश पुराण की रचना होने के समय तक जिनसेन स्वामी पार्श्वजिनेन्द्र स्तुति तथा वर्द्धमान पुराण नामक दो ग्रन्थों की रचना कर चुके थे और इन रचनाओं के कारण उनकी विशद एवं विमल कीर्ति विद्वानों के हृदय में अपना घर कर चुकी थीं। आचार्य जिनसेन की जयधवला टीका तथा महापुराण की रचना नहीं हुई होगी। पार्श्वाभ्युदय तथा वर्धमान पुराण की रचनाओं का काल प्रारम्भिक काल मालूम होता है। इस समय जिनसेन स्वामी की आयु 25-30 वर्ष की रही होगी।

हरिवंशपुराण के अन्त में दी गई प्रशस्ति से हरिवंशपुराण की रचना शक्सम्वत् 705 (सन् 783) में पूर्ण हुई[2] सिद्ध होता है। दस-बारह हजार श्लोक संख्यक हरिवंशपुराण जैसे विशाल ग्रन्थ-रचना में कम से कम पांच वर्ष का समय अवश्य लगा होगा। यदि रचनाकाल में से ये पांच वर्ष घटा दिये जाएं, तो हरिवंश पुराण का प्रारम्भकाल शक् सम्वत् 700 सिद्ध होता है। हरिवंशपुराण की रचना को प्रारम्भ करते समय आदिपुराणकार जिनसेन की आयु कम से कम 25 वर्ष की रही होगी। इस प्रकार शक् सम्वत् 700 में से ये पच्चीस वर्ष कम कर देने पर आदिपुराण के कर्ता जिनसेन का जन्म काल शक् सम्वत् 675 के लगभग सिद्ध होता है। स्व0 पं0 नाथूराम प्रेमी ने अनुमान किया है कि जिनसेन का जीवन 80 वर्ष के लगभग रहा होगा और वे शक् सम्वत् 685 (सन् 763) में जन्मे होंगे।3

जयधवला टीका की प्रशस्ति से विदित होता है कि स्वामी जिनसेन ने अपने गुरुदेव वीरसेन स्वामी के द्वारा प्रारम्भ किंतु गुरु के स्वर्गवासी हो जाने के कारण अपूर्ण वीरसेनीया टीका[1] शक् सम्वत् 759 (सन् 837) फाल्गुन शुक्ला दशमी के पूर्वार्द्ध में जब आष्टाह्निक महोत्सव की पूजा हो रही थी, पूर्ण की थी[1], इससे यह मानने में कोई संदेहावकाश नहीं रह जाता कि जिनसेन स्वामी शक् सम्वत् 759 तक विद्यमान थे। 40 हजार श्लोक प्रमाण टीका के कार्य में जिनसेन स्वामी का बहुत समय निकल गया। सिद्धान्तग्रन्थों की टीका के पश्चात् जब उनको विश्राम मिला, तब उन्होंने अपने चिरभिलषित कार्य को हाथ में लिया और उस पुराण की रचना प्रारम्भ की, जिसमें त्रेसठ शलाका पुरुषों के चरित्र-चित्रण की प्रतिज्ञा की गई थी। जिनसेन स्वामी के ज्ञानकोश में न शब्दों की कमी थी और न अर्थों की। अतः वे विस्तार के साथ किसी भी वस्तु का वर्णन करने में सिद्धहस्त थे। स्वामी जिनसेन ने आदिपुराण का प्रारम्भ वृद्धावस्था में ही किया होगा, इसी कारण वे 42 पर्व ही लिख सके और ग्रन्थ को पूर्ण करने के पूर्व ही दिवंगत हो गये। इस प्रकार जयधवला

टीका की समाप्ति के बाद आदि पुराण की रचना मानने से जिनसेन स्वामी का अस्तित्व ई0 सन् की नवम शती के उत्तरार्ध तक माना जा सकता है।

व्यक्तित्वः—

आचार्य जिनसेन के वैयक्तिक जीवन के सम्बन्ध में जानकारी अत्यल्प ही प्राप्त होती है। इनकी अन्यतम कृति जयधवलाटीका के अन्त में दी गई पद्यरचना से इनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कुछ झलक मिलती है। आचार्य जिनसेन ने बाल्यकाल में ही जिनदीक्षा ग्रहण कर ली थी। ये सरस्वती के बड़े आराधक थे। इनका शरीर कृश, आकृति भी रम्य नहीं थी। बाह्य व्यक्तित्व के मनोज्ञ न होने पर भी तपश्चरण, ज्ञानाराधन एवं कुशाग्र बुद्धि के कारण इनका अन्तरंग व्यक्तित्व बहुत ही भव्य था। ये ज्ञान और अध्यात्म के अवतार थे। जयधवला की प्रशस्ति में जिनसेनाचार्य ने अपना परिचय बड़ी ही अलंकारिक भाषा में इस प्रकार दिया है—उन वीरसेन स्वामी का शिष्य जिनसेन हुआ, जो श्रीमान् था और उज्ज्वल बुद्धि का धारक भी। उसके कान यद्यपि अबिद्ध थे, तथापि ज्ञान रूपी शलाका से बींधे गये थे। निकट भव्य होने के कारण मुक्तिरूपी लक्ष्मी ने उत्सुक होकर मानों स्वयं ही वरण करने की इच्छा से जिनके लिए श्रुतिमाला की योजना की थी।

जिसने बाल्यकाल से ही अखण्डित ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया था। जो न बहुत सुन्दर थे और न अत्यंत चतुर ही, फिर भी सरस्वती ने अनन्यशरणा होकर उनकी सेवा की थी। बुद्धि, शान्ति और विनय ये ही जिनके स्वाभाविक गुण थे, इन्हीं गुणों से जो गुरुओं की आराधना करते थे। सच ही तो है, गुणों के द्वारा किसकी आराधना नहीं होती। जो शरीर से यद्यपि कृश थे, पुनरपि तप रूपी गुणों से कृश नहीं थे। वास्तव में शरीर की कृशता, कृशता नहीं है। जो गुणों से कृश हैं, वही कृश है। जिन्होंने न तो कापालिका (सांख्यशास्त्र पक्ष में तैरने का घड़ा) को ग्रहण किया और न अधिक चिन्तन ही किया, फिर भी जो अध्यात्मविद्या के अद्वितीय (परम) पार को प्राप्त हो गये। जिनका काल निरंतर ज्ञान की आराधना में ही व्यतीत हुआ और इसीलिये तत्त्वदर्शी जिन्हें ज्ञानमयपिण्ड कहते हैं।[1]

आदिपुराण के अन्त में कोई प्रशस्ति नहीं दी गई है। परन्तु 'उत्तरपुराण' के अन्त में जो प्रशस्ति प्राप्त होती है, उससे भी कवि जिनसेनाचार्य के विद्वत्तापूर्ण जीवन की स्पष्ट झाँकी प्रदर्शित होती है। गुणभद्राचार्य ने उत्तरपुराण की प्रशस्ति में अपने गुरु जिनसेनाचार्य के सम्बन्ध में उचित ही लिखा है—जिस प्रकार हिमालय पर्वत से गंगा नदी का प्रवाह प्रकट होता

है, सर्वज्ञ देव से समस्तशास्त्रों की मूर्तिस्वरूप दिव्यध्वनि प्रकट होती है अथवा उदयाचल के तट से देदीप्यमान सूर्य प्रकट होता है, उसी प्रकार उन वीरसेन स्वामी से जिनसेन मुनि प्रकट हुए।[2] पद और वाक्य की रचना में प्रवीण होना, दूसरे पक्ष का निराकरण करने में तत्परता होना, आगम विषयक उत्तम पदार्थों को अच्छी तरह समझना, कल्याणकारी कथाओं के कहने में उत्तममार्ग युक्त कविता का होना—ये सब गुण जिनसेनाचार्य को पाकर कलिकाल में भी चिरकाल तक कलंकरहित होकर स्थिर रहे थे।[1] जिस प्रकार चन्द्रमा में चाँदनी, सूर्य में प्रभा और स्फटिक में स्वच्छता स्वभाव से ही रहती है, उसी प्रकार जिनसेनाचार्य में सरस्वती भी स्वभाव से ही रहती हैं।[2] जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्बित सूर्य के मण्डल को बालक लोग भी शीघ्र समझ जाते हैं, उसी प्रकार जिनसेनाचार्य के शोभायमान वचनों में समस्त शास्त्रों का सद्भाव था, यह बात अज्ञानी लोग भी शीघ्र ही समझ जाते थे।[3]

जिनसेन सिद्धान्तज्ञ तो थे ही, साथ ही उच्चकोटि के कवि भी थे। उनकी कविता में ओज, माधुर्य और प्रसाद है, प्रवाह है, अलंकार हैं, सरसता एवं सुबोधता का मणि-काञ्चनमय संयोग है। जिनसेनाचार्य को वस्तुतत्त्व का यथार्थ निरूपण करना ही रुचिकर था, दूसरों की प्रसन्नता को तोड़-मरोड़कर अन्यथा रूप से प्रस्तुत करना उनका स्वभाव नहीं था। वह स्पष्ट रूप से कहते थे कि दूसरा व्यक्ति सन्तुष्ट हो अथवा न हो, कवि को अपना कर्तव्य करना चाहिए।

साहित्यिक सेवा

स्वामी वीरसेन के शिष्य जिनसेनाचार्य काव्य, व्याकरण, नाटक, अलंकारशास्त्र, दर्शन, आचार, कर्मसिद्धान्त प्रभृति अनेक विषयों के बहुज्ञ विद्वान् थे। जिनसेन स्वामी कृत चार रचनाओं का उल्लेख तो अवश्य मिलता है। किन्तु उपलब्ध रचनाएँ केवल तीन ही हैं। यथा— 1. पार्श्वाभ्युदय, 2. वर्धमानपुराण (अनुपलब्ध), 3. जयधवलाटीका और 4. आदिपुराण। इन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

पार्श्वाभ्युदय—पार्श्वाभ्युदय महाकवि कालिदास-रचित विश्वविश्रुत मेघदूत नामक खण्डकाव्य की समस्यापूर्ति रूप है। इसमें मेघदूत के कहीं एक और कहीं दो पादों को लेकर श्लोक-रचना की गई है। इस प्रकार इस पार्श्वाभ्युदय काव्यग्रन्थ में सम्पूर्ण मेघदूत समाविष्ट एवं अन्तर्विलीन हो गया है। पार्श्वाभ्युदय मेघदूत के ऊपर समस्यापूर्ति के द्वारा रचा हुआ सर्वप्रथम स्वतंत्र ग्रन्थ है। इसकी भाषा और शैली बहुत ही मनोहर है। मेघदूत के

पाठशोधन के लिये भी इस ग्रन्थ का महत्त्व कम नहीं है। शृंगार रस से ओत-प्रोत मेघदूत को शान्तरस में परिवर्तित कर दिया गया है। साहित्यिक दृष्टि से यह काव्य बहुत ही सुन्दर और काव्यगुणों से मण्डित है। इसमें चार सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में 118 पद्य, द्वितीय सर्ग में 118 पद्य, तृतीय सर्ग में 57 पद्य और चतुर्थ सर्ग में 71 पद्य हैं। कविता अत्यंत प्रौढ़ और चमत्कारपूर्ण है। श्री पार्श्वनाथ भगवान दीक्षाकल्याणक के बाद प्रतिमायोग धारणकर विराजमान हैं। वहाँ से उनके पूर्वभव का विरोधी कमठ का जीव संवर नामक ज्योतिष्क देव निकलता है और अवधिज्ञान से उन्हें अपना शत्रु समझकर नाना कष्ट देने लगता है। बस इसी कथा को लेकर पार्श्वाभ्युदय की रचना हुई है। इसमें संवर देव को यक्ष, ज्योतिर्भव को अलका और यक्ष के वर्षशाप को संवर का वर्षशाप माना गया है। समस्यापूर्ति में कवि ने सर्वथा नवीन भाव-योजना की है। मार्गवर्णन और वसुन्धरा की विरहावस्था का चित्रण मेघदूत के समान ही है, परन्तु इसका संदेश मेघदूत से भिन्न है। संवर, पार्श्वनाथ के धैर्य, सौजन्य, सहिष्णुता और अपारशक्ति से प्रभावित होकर स्वयं वैरभाव को त्यागकर उनकी शरण में पहुँचता है और पश्चाताप करता हुआ अपने अपराध की क्षमायाचना करता है। कवि ने काव्य के बीच में 'पायापाये प्रथममुदितं कारणं भक्तिरेव' जैसी सूक्तियों की भी सुन्दर योजना है। इस काव्य में कुल 364 मन्दाक्रान्ता छन्दोबद्ध पद्य हैं।

मेघदूत का कथानक दूसरा और पार्श्वाभ्युदय का कथानक दूसरा है, फिर भी उन्हीं शब्दों के द्वारा विभिन्न कथानक को निरूपित करना, यह कवि का महान् कौशल है, कवि चातुरी का ही प्रभाव है। समस्यापूर्ति में कवि को बहुत ही परतंत्र रहना पड़ता है और उस परतंत्रता के कारण संदर्भ-रचना में अवश्य ही नीरसता आ जाने का अवकाश रहता है। किन्तु प्रसन्नता की बात है कि इस काव्य-ग्रन्थ पार्श्वाभ्युदय में कहीं भी नीरसता नहीं आने पाई है। इस काव्य की रचना श्रीजिनसेन स्वामी ने अपने सधर्मा विनयसेन[1] की प्रेरणा से की थी और यह उनकी प्रथम रचना प्रतीत होती है।

पार्श्वाभ्युदय की प्रशंसा में श्रीयोगिराट् पण्डिताचार्य ने लिखा है कि श्रीपार्श्वनाथ से बढ़कर कोई साधु, कमठ से बढ़कर कोई दुष्ट और पार्श्वाभ्युदय से बढ़कर कोई काव्य नहीं दिखाई देता है।[2] प्रो0 के0 वी0 पाठक के अनुसार—जिनसेन अमोघवर्ष (प्रथम) के राज्यकाल में हुए, जैसा कि उन्होंने

पार्श्वाभ्युदय में कहा है। 'पार्श्वाभ्युदय' संस्कृतसाहित्य में एक कौतुकजन्य उत्कृष्ट रचना है। यह उस समय के साहित्य-स्वाद का उत्पादक और दर्पण रूप है, अनुपम काव्य है। यद्यपि सर्वसाधारण की सम्मति से भारतीय कवियों में कालिदास को पहला स्थान दिया गया है तथापि जिनसेन मेघदूत के कर्ता की अपेक्षा अधिकतर योग्य समझे जाने के अधिकारी हैं।[1]

वर्धमान पुराण[2]—जिनसेन स्वामी की द्वितीय रचना वर्धमान पुराण मानी जाती है, जिसका उल्लेख हरिवंशपुराणकार जिनसेन ने अपने ग्रन्थ हरिवंशपुराण में किया है; परन्तु वह कहाँ है, इसका आज तक पता नहीं चला है। ग्रन्थ के नाम से यही स्पष्ट होता है कि इसमें अंतिम तीर्थंकर श्रीवर्धमान स्वामी का कथानक होगा।

जयधवलाटीका—कषायप्राभृत के प्रथम स्कन्ध की चारों विभक्तियों पर जयधवला नाम की बीस हजार श्लोक-प्रमाण की टीका लिखने के अनन्तर जब जिनसेनाचार्य के गुरु वीरसेनाचार्य दिवंगत हो गये, तब उनके शिष्य जिनसेन स्वामी ने उसके अवशिष्ट भाग पर चालीस हजार श्लोक-प्रमाण टीका लिखकर उसे पूर्ण किया। यह टीका जयधवला टीका अथवा वीरसेनीया टीका के नाम से प्रसिद्ध है। इस टीका में जिनसेनाचार्य ने गुरु वीरसेन स्वामी की संस्कृत मिश्रित प्राकृत की शैली को ही अपनाया है, अतः कहीं संस्कृत और कहीं प्राकृत के द्वारा पदार्थ का सूक्ष्मतम विश्लेषण किया है। टीका की भाषा प्रवाहपूर्ण एवं मनोज्ञ है। स्वयं ही अनेक विकल्प और शंकाएँ उठाकर विषयों का सूक्ष्म रूप से निरूपण एवं स्पष्टीकरण किया गया है।

आदिपुराण—महापुराण जिनसेनाचार्य और गुणभद्राचार्य की उस विशाल रचना का नाम है जो 76 पर्वों में विभक्त है। इसके दो खण्ड हैं—प्रथम आदिपुराण और द्वितीय उत्तरपुराण। आदिपुराण में 47 पर्व हैं, जिनमें प्रारम्भ के 42 पर्व और 43वें पर्व के तीन श्लोक भगवज्जिनसेनाचार्य द्वारा रचित हैं और अवशिष्ट पांच पर्व तथा उत्तरपुराण श्री जिनसेनाचार्य के प्रमुख शिष्य भदन्त गुणभद्राचार्य द्वारा विरचित हैं।

आदिपुराण में कुलकर तीर्थंकर और चक्रवर्ती जैसे पुण्यपुरुषों के आख्यान के साथ स्वामी जिनसेन ने ग्रन्थ की उत्थानिका में अपने से पूर्ववर्ती सुप्रसिद्ध विद्वानों, आचार्यों एवं कवियों का उनके वैशिष्ट्य के साथ स्मरण किया है। आदिपुराण की महत्ता बतलाते हुए गुणभद्राचार्य ने लिखा है—"यह आदिनाथ का चरित्र कवि परमेश्वर द्वारा कही हुई गद्य-कथा के आधार पर

बनाया गया है। इसमें समस्त छन्द तथा अलंकारों के लक्षण हैं, इसमें सूक्ष्म अर्थ और गूढ़ पदों की रचना है। वर्णन अत्यंत उत्कृष्ट है, समस्त शास्त्र के उत्कृष्ट पदार्थों का साक्षात् कराने वाला है, अन्य काव्यों को तिरस्कृत करता है, श्रवण करने योग्य है, व्युत्पन्न बुद्धि वाले पुरुषों के द्वारा ग्रहण करने के योग्य है, मिथ्या कवियों के गर्व को नष्ट करने वाला है और अत्यंत सुंदर है। इसे सिद्धान्त ग्रन्थों की टीका करने वाले तथा चिरकाल तक शिष्यों का शासन करने वाले भगवान् जिनसेन ने कहा है। इसका अवशिष्ट भाग निर्मल बुद्धि वाले गुणभद्रसूरि ने अतिविस्तार के भय से और हीनकाल के अनुरोध से संक्षेप में संगृहीत किया है।[1]

आदिपुराण सुभाषितों का भण्डार है। इस सम्बन्ध में गुणभद्राचार्य ने लिखा है कि जिस प्रकार समुद्र से बहुमूल्य रत्नों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार इस पुराण से सुभाषित रूपी रत्नों की उत्पत्ति होती है। अन्य ग्रन्थों में जो सुभाषित पद्य बहुत समय तक कठिनाई से भी नहीं मिल सकते थे, वे इस पुराण में पद-पद पर सुलभ हैं और इच्छानुसार संगृहीत किये जा सकते हैं।[2]

जिनसेनाचार्य ने अपनी कृति को पुराण और महाकाव्य दोनों नाम से कहा है। आचार्य ने पुराण और महाकाव्य दोनों की परिभाषा को परिमार्जित करते हुए लिखा है— जिसमें क्षेत्र, काल, तीर्थ, सत्पुरुष और उनकी चेष्टाओं का वर्णन हो, वह पुराण है।[3] महाकाव्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि जो प्राचीन काल के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाला हो, जिसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों का चरित्र-चित्रण हो तथा जो धर्म, अर्थ और काम के फल को दिखाने वाला हो, उसे महाकाव्य कहते हैं।[4] इस प्रकार परिमार्जित परिभाषा के द्वारा पुराण और महाकाव्य के बीच समन्वय स्थापित किया गया है।

आदिपुराण के विस्तृत कलेवर में हम पुराण, महाकाव्य, धर्मकथा, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, आचारशास्त्र और युग की आदि व्यवस्था को सूचित करने वाले एक वृहत् इतिहास का दर्शन करते हैं। आचार्य ने स्वयं आदिपुराण को धर्मानुबन्धिनी कथा कहा है और बड़ी दृढ़ता के साथ प्रकट किया है कि जो पुरुष यश रूपी धन का संचय और पुण्यरूपी पण्य का व्यवहार करना चाहते हैं, उनके लिये धर्मकथा का निरूपण करने वाला यह काव्य मूलधन के समान माना गया है।[5]

वास्तव में आदिपुराण संस्कृतसाहित्य का एक अनुपम रत्न है। ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसका इसमें प्रतिपादन न किया गया हो।

सकल शास्त्रवेत्ता मुनिराज लोकसेन कवि, (जो गुणभद्राचार्य के मुख्य शिष्य थे,) ने आदिपुराण और उसके रचयिता जिनसेन स्वामी के सम्बन्ध में उचित ही कहा है—जो कवियों के द्वारा स्तुत्य हैं, निर्मल मुनियों के सभूह जिनकी स्तुति करते हैं, भव्य जीवों का समूह जिनका स्तवन करता है, जो समस्त गुणों से युक्त हैं, जो दुष्टवादी रूपी हाथियों को जीतने के लिये सिंह के समान हैं, समस्त शास्त्रों को जानने वाले हैं और सब राजाधिराज जिन्हें नमस्कार करते हैं, वे जिनसेनाचार्य जयवन्त रहें। हे मित्र! यदि तुम सारे कवियों की सूक्तियों को सुनकर सह्रदय बनना चाहते हो, तो कविवर जिनसेनाचार्य के मुख-कमल से कहे हुए आदि पुराण को सुनने के लिये अपने कानों को समीप लाओ।[6]

मुजफ्फरनगर

डा. जयकुमार जैन
डा॰ सुषमा

आचार्य पूज्यपाद और उनकी कृतियाँ

चिरन्तनकाल से ऋषियों, महर्षियों, आचार्यों एवं चिन्तकों ने अपना परिचय देश, काल, कुल आदि को अनावश्यक समझकर नहीं दिया। ये आत्मश्लाघा तथा प्रसिद्धि से अपने को दूर रखना चाहते थे। इनका लक्ष्य आत्मोत्कर्ष एवं जिनधर्म की प्रभावना था। भगवान महावीर के सिद्धान्तों को आत्मसात् कर जन-जन तक पहुंचाने वालों की परम्परा के अन्तर्गत बहुमुखी प्रतिभा के मान्य व्यक्तित्व, साहित्यसाधना के गम्भीर साधक, अनेक शास्त्रों के धीमान् पण्डित, व्याकरण, दर्शन, अध्यात्म आदि परस्पर निरपेक्ष शास्त्रों के अधिवेत्ता आचार्य पूज्यपाद अपना वंश, समय तथा स्थानगत परिचय देने में कुन्दकुन्द आदि पूर्वाचार्यों का अनुसरण करते हुए मौन रहे हैं।

यद्यपि आचार्य पूज्यपाद अपने कुल, देश, काल आदि के विषय में स्वयं मौन रहे हैं तथापि परवर्ती आचार्यों एवं विद्वानों ने इनके व्यक्तित्व और कृतित्व के बहुआयामी पक्षों को विस्तार के साथ प्रतिपादित किया है। तदनुसार यहाँ उसे प्रस्तुत किया जा रहा है।

पूज्यपाद एक महान् साधक थे, जिन्हें विविध नामों से परवर्ती आचार्यों ने स्मरण, वन्दन किया है। अनेक संज्ञाओं की सहेतुकता का स्पष्ट प्रमाण श्रवणवेलगोल के शिलालेख संख्या 40 में मिलता है। उसमें लिखा है कि उनका प्रथम नाम देवनन्दि था। बुद्धि की अतिशयता के कारण जिनेन्द्रबुद्धि कहलाये तथा देवों के द्वारा चरणों की पूजा किए जाने से पूज्यपाद नाम प्रख्यात हुआ।[1] मंगराज कवि के शक संवत् 1365 के शिलालेख से भी इन्हीं पूज्यपाद और जिनेन्द्रबुद्धि नामों की पुष्टि होती है।[2] अधिकांशतः देवनन्दि और पूज्यपाद नाम से ज्ञात आचार्य को केवल पूज्यपाद अथवा केवल देवनन्दि नाम से भी स्मरण किया जाता है और दोनों को वैयाकरण भी माना है। आचार्य जिनसेन[3] और वादिराजसूरि[4] ने इन्हें 'देव'' एक देश पद से स्मरण किया है।

जैनेन्द्र की प्रत्येक हस्तलिखित प्रति के प्रारंभ में जो श्लोक मिलता है, उसमें ग्रन्थकर्ता ने ''देवनन्दित पूजेशं'' पद में जो कि भगवान् का विशेषण है, अपना नाम भी प्रकट कर दिया है।4

यथार्थनामा आचार्य के विशिष्ट गुणों का वर्णन परवर्ती अनेक आचार्यों ने बड़ी श्रद्धा के साथ किया है। आचार्य शुभचन्द्र ने अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए लिखा है–

अपाकुर्वन्ति यद्वाचः कायवाक्चित्तसम्भवम्।
कलङ्कमङ्गिनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते।।1/15 पाण्डवपुराण

अर्थात् जिनकी शास्त्र पद्धति प्राणियों के शरीर, वचन और चित्त के सभी प्रकार के मल को दूर करने में समर्थ है, उन देवनन्दी आचार्य को मैं प्रणाम करता हूँ।

अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परदोष चिन्तन विरक्ति, प्राणियों पर दया, निर्लोभता, मृदुता, शीलवंतता, अचंचलता, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, निरभिज्ञानता, निर्ग्रन्थता आदि गुणों के अधिष्ठाता आचार्य पूज्यपाद मूलसंघ के अन्तर्गत नन्दिसंघ बलात्कार गण के पट्टाधीश थे।[1] इनका गच्छ 'सरस्वती' नाम से विख्यात था।

दर्शन, तर्क, काव्य, सिद्धान्त, अध्यात्म आदि विविध विषयों के उद्भट मनीषी पूज्यपाद का कृतित्व सम्पूर्ण अध्येताओं के लिए श्रद्धास्पद है। इनका व्यक्तित्व किंवदन्तियों और भक्तिवश लिखे आख्यानों से घिरा हुआ है। इन्हीं का आश्रय लेकर माता, पिता, कुल, स्थान आदि का वर्णन प्रस्तुत करना शक्य है।

चन्द्रय्य नामक कन्नड़ भाषा के काव्यकार द्वारा रचित "पूज्यपादचरिते" ग्रन्थ में लिखा है कि कर्णाटक प्रदेशस्थ कोले नामक ग्राम के निवासी ब्राह्मणवर्ण के माधवभट्ट और श्रीदेवी के यहाँ अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न तेजस्वी बालक ने जन्म लिया। ज्योतिषियों ने जिसे त्रिलोक पूज्य बताया पूज्यपाद नाम रखा। माधवभट्ट ने अपनी सहधर्मिणी के अनुरोध पर जैन धर्म स्वीकार किया था। श्रीदेवी के भाई का नाम पाणिनि था उसे भी जिनधर्म अंगीकार करने की प्रेरणा दी किन्तु वह जैनधर्म के प्रति आकृष्ट न होकर मुण्डीकुण्ड ग्राम में वैष्णव संन्यासी हो गया था। पूज्यपाद की कमलिनी नामक छोटी बहिन हुई, वह गुणभट्ट को व्याही गई। कमलिनी और गुणभट्ट के यहाँ नागार्जुन नामकपुत्र हुआ।[2]

पूज्यपाद बाल्यकाल से ही जिनधर्म से प्रभावित थे, उनके परिणाम निर्मल थे दूसरे जीवों के दुःखों से स्वयं को दुःखी अनुभव करते थे। इसीलिए एक दिवस सांप के मुंह में फंसे मेंढक को देखकर पूज्यपाद को वैराग्य हो गया और उन्होंने निर्ग्रन्थ दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली।[3]

दैगम्बरी दीक्षा के अनन्तर इन्हें विविध ऋद्धि-सिद्धि उत्पन्न हो गयीं। श्रवणवेल के शिला संख्या (108-258) में इनकी विशेषताओं को दर्शाते हुए लिखा है—

श्री पूज्यपादमुनिरप्रतिमौषर्द्धिर्जीयाद्विदेहजिनदर्शनपूतगात्रः।
यत्पादधौतजलसंस्पर्शप्रभावात् कालायसं किलतराकनकी चकार।।

पूज्यपाद के जीवन में तीन विशिष्टताएँ अद्भुत हुईं। यथा—(1) तप के प्रभाव से औषध ऋद्धि प्राप्त हुई थी। (2) विदेह क्षेत्र में जाकर भगवान् सीमंधर की दिव्यध्वनि सुनकर उन्होंने अपना जीवन पवित्र किया था। चारणऋद्धि भी प्राप्त की थी।(3) उनके पाद प्रक्षालन द्वारा पवित्र जल के संस्पर्श से लोहा भी स्वर्ण बन जाता था।

इनके विषय में किंवदन्ती भी हैं कि पूज्यपाद के पास कई विद्यायें थीं। वे पैरों पर गगनगामी लेप लगाकर विदेहक्षेत्र तक जाया करते थे।

पूज्यपाद ने नागार्जुन को मंत्र दिया और उसके उपयोग को बताया जिससे उसे सिद्धरस की प्राप्ति हुई उसने उससे सोना बनाया। उसे घमण्ड हो गया। तब उसके घमण्ड को दूर करने के लिए पूज्यपाद ने साधारण वनस्पति से कई घट सिद्ध रस तैयार कर दिया।

इनके विषय में एक महत्त्वपूर्ण घटना भी घटित हुई थी। इन्होंने लम्बे समय तक योगाभ्यास किया। अनन्तर तीर्थयात्रा करते समय मार्ग में इनकी नेत्र-ज्योति विलुप्त हो गई। शान्त्यष्टक[1] का एक निष्ठा से पाठ करने पर उनकी लुप्त नयन ज्योति पुनः लौट आई। कुछ समय के अनन्तर उन्होंने समाधि ले ली थी।

समयनिर्णय—आचार्य पूज्यपाद ने अपने जन्मस्थान आदि के विषय में जिस प्रकार कुछ नहीं लिखा, उसी प्रकार अपने समय अथवा अपने ग्रन्थ की रचना तिथि आदि का उल्लेख भी नहीं किया है। फिर भी उनके ग्रन्थों में आये हुए उल्लेखों और अन्य आचार्यों द्वारा लिखित स्तुतियों के आधार पर पूज्यपाद का समय निर्धारण किया जा रहा है।

आचार्य श्री पूज्यपाद का समय छठी शताब्दी का पूर्वार्द्ध स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि "जैनेन्द्रव्याकरण" के **'वेत्ते सिद्धसेनस्य'** (5.1.7) सूत्र में सिद्धसेन का उल्लेख है। सिद्धसेन का समय विद्वानों ने पाँचवीं शताब्दी माना है।[1] अतः इन्हें पांचवीं शताब्दी से परवर्ती ही मानना संगत है। सातवीं शताब्दी के आचार्य जिनसेन ने इन्हें तीर्थकर तुल्य मानकर लिखा है—

कवीनां तीर्थकृद्देवः किं तरां तत्र वर्ण्यते।
विदुषा वाङ्मलध्वंसि तीर्थं यस्य वचोमयम्।।

अर्थात् जो कवियों में तीर्थंकर के समान थे और जिनका वचन रूपी तीर्थ विद्वानों के वचनमल को धोनेवाला है, उन देव अर्थात् देवनन्दि (पूज्यपाद)

की स्तुति करने में कौन समर्थ हैं?

आचार्य देवसेन ने वि०स० 990 में (दर्शनसार) नामक ग्रन्थ पूर्वाचार्यों द्वारा रचित गाथाओं के संग्रहपूर्वक लिखा है। उनके अनुसार पूज्यपाद का शिष्य पाहुडवेदि वज्रनन्दि द्राविड संघ का कर्ता हुआ और दक्षिण-मथुरा में वि०सं० 526 में यह महामिथ्यात्वी संघ उत्पन्न हुआ था।[2] अतः संघ-स्थापना के पूर्व आचार्य पूज्यपाद विद्यमान थे क्योंकि दाविड़ संघ का संस्थापक उनका ही शिष्य था, जो पाण्डव पुराण में आचार्य शुभचन्द्र द्वारा प्रदत्त गुर्वाविली से भी स्पष्ट है। नन्दिसंघ की पट्टावली में भी देवनन्दि के बाद गुणनन्दी वज्रनन्दी नाम है।[3] जैनेन्द्र व्याकरण में **''चतुष्टयं समन्तभद्रस्य''** (4.4.140) सूत्र आया है। इससे ज्ञात होता है कि श्री समन्तभद्र स्वामी के परवर्ती पूज्यपाद स्वामी थे किन्तु श्री समन्तभद्र ने 'आप्तमीमांसा' नामक कृति श्री पूज्यपाद रचित **''मोक्षमार्गस्यनेतारं''** मंगलाचरण पर की है। इससे प्रतीत होता है कि समन्तभद्र पूज्यपाद से बाद के हैं। आचार्य विद्यानन्दि ने भी आप्तपरीक्षा की रचना उक्त मंगलाचरण पर ही की है। मंगलाचरण पूज्यपाद रचित ही है ऐसा विद्वानों ने अनेकों तर्क उपस्थति कर सिद्ध किया है।[1]

विविध प्रमाणों के आधार पर यह निर्णय निकलता है कि श्री समन्तभद्र और पूज्यपाद स्वामी समकालीन थे और छठी शताब्दी में उन्होंने साहित्य सृजन कर छठी शताब्दी का समय अपनी स्मृति का हेतु बनवाकर सार्थक किया।

आचार्यपूज्यपाद की विविध विषयों से संबंधित कृतियों के पर्यालोचन करने के अनन्तर उन्हें निम्नलिखित विशेषणों से समलंकृत किया जा सकता है।

विलक्षण प्रतिभाशाली—आचार्य पूज्यपाद का जीवन विविध गुणों का समवाय था। साहित्य के क्षेत्र में आचार्य श्री ने जो भी दिया, वह अनुपम हैं। आगमिक तथ्यों को तर्क की भूमिका पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय उन्हें है। उनके साहित्य में भक्ति, धर्म, दर्शन, संस्कृति के स्वर मुखर होते हुए भी मूल में अध्यात्म तत्त्व विद्यमान है। अध्यात्मवाद की पृष्ठभूमि पर ही उनका साहित्य सृजन हुआ है। अपने साहित्य के माध्यम से भव्यात्माओं को अनुभूति कराने की शक्ति इनकी प्रतिभा का वैशिष्ट्य है। दशभक्तियों के माध्यम से श्रमणों के लिए शुद्धोपयोग से विरत होने पर शुभोपयोग में लगाया। भक्तियों में तीर्थंकरों की स्तुतियां हैं। भाव मधुर है, भाषा ललित है, शैली सुन्दर है। 'हरिवंश पुराण' के कर्त्ता जिनसेन (प्रथम) ने श्री पूज्यपाद की वाणी को इन्द्र, चन्द्र, सूर्य और जैनेन्द्र व्याकरण का अवलोकन करनेवाली बताया है।[2]

वैयाकरण—आचार्य पूज्यपाद पाणिनि व्याकरण, कात्यायन के वार्तिक और पतञ्जलि के महाभाष्य के पूर्णज्ञाता मनीषी थे। इन्होंने अपने जैनेन्द्र व्याकरण में पाणिनि व्याकरण के स्वर-वैदिक प्रकरण को छोड़कर उनके अधिकांश व्याकरण की संरक्षा की। पाणिनीय गणपाठ को बहुलरूप में स्वीकार किया है। पाणिनि व्याकरण का निराकरण न करके उसके बहुभाग को प्रकारान्तर से ग्रहण किया है। कात्यायन के वार्तिक और पतञ्जलि के महाभाष्य के माध्यम से जिन नवीन-नवीन रूपों को सिद्ध किया गया है, उन्हें देवनन्दी पूज्यपाद ने सूत्रों में स्वीकार कर लिया है।

शब्दशास्त्र के उद्भट मनीषी पूज्यपाद व्याकरण वेत्ताओं में श्रेष्ठतम थे। इनकी कृति 'जैनेन्द्र व्याकरण' एक आदर्श रचना है। इसीलिए आचार्य गुणनन्दि ने इसके सूत्रों का आश्रय लेकर जैनेन्द्र प्रक्रिया लिखी और मंगलाचरण में लिखा है—

नमः श्रीपूज्यपादाय लक्षणं यदुपक्रमम्।
यदेवात्र तदन्यत्र यन्नात्रास्ति न तत्क्वचित्।।

अर्थात् जिन्होंने लक्षणशास्त्र की रचना की, मैं उन आचार्य पूज्यपाद को प्रणाम करता हूँ। उनके इस लक्षणशास्त्र की महत्ता इसी से स्पष्ट है कि जो इसमें है, वही अन्यत्र है और जो इसमें नहीं है, वह अन्यत्र भी नहीं है।

अध्यात्मज्ञानी—पूज्यपाद अध्यात्म के अनुभवशील तत्त्व साक्षात्कारी वीतरागी सन्त थे। साधु का जीवन ही अध्यात्मपरक होता है। इनके द्वारा रचित समाधितंत्र, इष्टोपदेश, दशभक्त्यादि रचनाएं आत्मतत्त्व की प्रतिपादिका हैं। इनमें वर्णित तत्त्वों/तथ्यों को एक अनुभवशील तत्त्वद्रष्टा मनीषी ही प्रस्तुत कर सकता है। उन्होंने जीवन का सूक्ष्म एवं गम्भीर परिशीलन तथा अवलोकन किया था। उनके द्वारा प्रतिपादित विषय उनके हृदय से निकले हुए शुद्धभाव हैं, जिनमें न आडम्बर है और न वञ्चना एवं छलना। आत्मतत्त्व का प्रतिपादन पूज्यपाद जैसे परिपक्व विचारों वाले अनुभूति युक्त मनीषी द्वारा किया जाना बिल्कुल संभव है। उनका जीवन शुद्ध आचार और विचार सम्पन्न था। अतएव अध्यात्मविद्या के पूर्ण अधिकारी थे। उन्होंने धर्मस्वरूप को शब्दों से ही नहीं अपितु आचार से व्यक्त किया। अध्यात्मिक प्रभाव की यही विशेषता होती है कि वह आन्तरिक दृष्टि से कठोर और तपस्वी होता है तथा बाह्यतः नम्र और क्षमाशील होता है। वस्तुतः पूज्यपाद ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी थे।

दार्शनिक—पूज्यपाद गम्भीर विचारक, युगद्रष्टा, जीव के कलापक्ष को उजागर करने वाले महान् दार्शनकि थे। इनकी दार्शनिकता का प्रबल प्रमाण इनके

द्वारा रचित सर्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थ है। तत्त्वार्थसूत्र में गृद्धपिच्छ आचार्य ने जिन दार्शनिक उद्‌भावनाओं का उद्‌भावन किया था, उनका पूज्यपाद ने विस्तार के साथ सर्वार्थसिद्धि में प्रतिपादन किया। इसके नामकरण का प्रयोजन यह है कि इस 'सर्वार्थसिद्धि' नामक वृत्ति ग्रन्थ के मनन-चिन्तन करने से सब प्रकार के अर्थों की अथवा सब अर्थों में श्रेष्ठ मोक्षसुख की प्राप्ति होती है। तत्त्वार्थ सूत्र के जिस प्रमेय का इसमें वर्णन है, वह सब पुरुषार्थों में प्रधानभूत मोक्ष पुरुषार्थ का साधक है।

भारतीय दर्शनों के मूल में मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति का ही लक्ष्य रहा है। प्रत्येक दर्शन ग्रन्थ का मंगलाचरण मोक्ष के साधन रूप में वर्णित है। सर्वार्थसिद्धिकार सर्वप्रथम **"सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः"** सूत्र पर सविस्तार वृत्ति लिखने को उद्यत हुए थे। उन्होंने सभी दर्शनों के सार रूप में अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया। सर्वार्थसिद्धि के विविध स्थलों में अन्य दर्शन सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए अनेकान्त-सिद्धि की है। मोक्ष के यथार्थ स्वरूप प्रतिपादन इसकी विशेषता है। दर्शन का आधार बुद्धि प्रसूत तर्क होता है, जिसका आश्रय पूज्यपाद ने पूर्णरूप से लिया है। अतः सच्चे अर्थ में वे दार्शनिक थे।

उपर्युक्त विशेषताओं के पर्यालोचन से स्पष्ट है कि आचार्य पूज्यपाद ने आध्यात्मिक विकास पर अत्यधिक बल देकर भारतीय गौरव-गरिमा को बढ़ाने में अपूर्व सहयोग दिया है। वह श्रमणसंस्कृति के अग्रदूत थे। उन्होंने सम्पूर्ण जगत् को आध्यात्मिक विकास का सन्देश दिया है। जैन संस्कृति के श्रमण का मूल उद्देश्य ही होता है-विभाव से हटकर स्वभाव में रमण करना, परभाव से हटकर स्वभाव में आना। प्रदर्शन में विश्वास न कर आत्मदर्शन करना। उन्होंने मात्र आत्मोन्नति के लिए दीक्षा अंगीकार की थी। आत्मसन्तुष्टि हेतु विविध विषयों का आश्रय लेकर साहित्य-सृजन किया जिसका विवरण अभीप्सित होने से प्रस्तुत है—

सर्वार्थसिद्धि—उमास्वामी रचित तत्त्वार्थसूत्र पर आचार्य पूज्यपाद द्वारा संस्कृत गद्य में लिखी हुई टीका को "सर्वार्थसिद्धि" नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुई। दस अध्यायों में सम्पूर्ण वृत्ति ग्रन्थ है। दार्शनिक दृष्टि से इसकी अत्यधिक महत्ता है।

तत्त्वार्थ सूत्र के प्रत्येक सूत्र की विशद व्याख्या इसमें की गयी है। ग्रन्थकार पूज्यपाद स्वामी ने स्वयं इसे वृत्ति ग्रन्थ कहा है। ग्रन्थान्तर्गत प्रत्येक

अध्याय की समाप्ति प्रसंग में उन्होंने लिखा है—**"इति सर्वार्थसिद्धि संज्ञायां तत्त्वार्थवृत्तौ प्रथमोऽध्यायः समाप्तः"**।

सूत्रगत प्रत्येक पद पर साङ्गोपांग विचार करना इस ग्रन्थ की विशेषता है। मत-मतान्तरों को भी उपस्थित किया गया है। सर्वार्थसिद्धि में जगह-जगह व्याकरण के नियमों का निर्देश करते हुए रचना में भी काठिन्य नहीं आया। अन्य दर्शन सिद्धान्तों को बखूबी से प्रस्तुत कर उनका निराकरण भी सरलता से किया गया है।

आचार्य पूज्यपाद ने इसमें आगमिक परम्परा का पूरा निर्वहन किया है। सिद्धान्तच्युति कहीं भी नहीं है। इसकी रचना शैली की विशिष्टता तत्त्वार्थसूत्र के प्रथम अध्याय के द्वितीय सूत्र में केवल 'तत्त्व' या 'अर्थ' पद न रखकर तत्त्वार्थ पद की सहेतुकता का विवेचन दर्शनान्तरों का निर्देश करते हुए विशद रूप से प्रस्तुत करना है। इसमें भाषा-सौष्ठव का भी पूर्ण ध्यान दिया गया है। इस ग्रन्थ की प्रशंसा में टीकाकार स्वयं लिखते हैं—

स्वर्गापवर्गसुखमाप्तुमनोभिरार्यैः जैनेन्द्रशासनवराभृसारभूता।
सर्वार्थसिद्धिरिति सद्भिरुपात्तनामा तत्त्वार्थवृत्तिरनिशंमनसा प्रधार्या।।

अर्थात् जो आर्य स्वर्ग और मोक्षसुख के इच्छुक हैं, वे जैनेन्द्र शासनरूपी उत्कृष्ट अमृत में सारभूत और सज्जन पुरुषों द्वारा रखे गये 'सर्वार्थसिद्धि' इस नाम से प्रख्यात इस तत्त्वार्थ वृत्ति को निरन्तर मनःपूर्वक धारण करें।

पूज्यपाद स्वामी ने स्वयं इसके प्रयोजन को बतलाया हैं। इसके चिन्तन-मनन से पुरुषार्थों में शिरोमणि मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि होती है।

जैनेन्द्र व्याकरण

'पूज्यपाद' ने "पाणिनीय शब्दानुशासन" के आधार पर जैनेन्द्र व्याकरण की रचना की है। इसमें पाणिनीय और चान्द्र दोनों व्याकरणों का आश्रय लिया गया है। इस जैनेन्द्र शब्दानुशासन में 5 अध्याय, 20 पाद और 3067 सूत्र हैं।

इसका प्रथम सूत्र **"सिद्धिरनेकान्तात्"** अर्थात् शब्द की सिद्धि अनेकान्त से होती है। सूत्र का अधिकार ग्रन्थ परिसमाप्ति तक है। संज्ञा प्रकरण सांकेतिक है। इसमें धातु, प्रत्यय, प्रातिपदिक, विभक्ति, समास आदि के लिए अतिसंक्षिप्त संज्ञाएं हैं। इसमें सन्धि के सूत्र चतुर्थ एवं पञ्चम अध्याय में है। सन्धि प्रकरण पाणिनि सदृश होने पर भी प्रक्रिया की दृष्टि से सरल है। स्त्री प्रत्यय, समास एवं कारक सम्बन्धी विशिष्टताओं से विशिष्ट है। पञ्चमी विभक्ति के बाद चतुर्थी, तृतीया, सप्तमी एवं षष्ठी विभक्ति का प्रतिपादन है। इसमें तिङन्त, तद्धित और कृदन्त प्रकरणों में भी पाणिनि की

अपेक्षा कुछ विशेषताएं हैं।

इष्टोपदेश

यह उपदेश प्रधान अध्यात्मिक रचना है। विषयोन्मुख को विषय-विमुख करना या पराश्रित को आत्माश्रित करना इसका मुख्य लक्ष्य है।

संसारी प्राणी निरन्तर आर्त्त और रौद्र ध्यान में रहता है, जिसके कारण आत्मशक्ति का अवमूल्यन करता है। आत्मा किस प्रकार से स्वरूप की प्राप्ति कर सकता है इसको आचार्य पूज्यपाद ने अपनी इस 'इष्टोपदेश' नामक इक्यावन छन्द वाली प्रभावात्मक कृति में वर्णित किया है। आत्मशक्ति के विकास के लिये अनुभूति की अपेक्षा होती है। इष्टोपदेश का स्वाध्याय आत्मा की अनुभूति कराने में परम सहायक है। आचार्य पूज्यपाद इसके अंतिम श्लोक वसन्ततिलका छन्द में लिखते हैं—

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्।
मानापमानसमतां स्वमताद्वितव्य।।
मुक्ताग्रहो विनिवसेन् सजने वने वा।
मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः।

अर्थात् इसके अध्ययन से आत्मा की शक्ति विकसित हो जाती है और स्वात्मानुभूति के आधिक्य के कारण मान-अपमान, लाभ-अलाभ, हर्ष-विषाद आदि में समताभाव प्राप्त होता है। संसार की यथार्थ स्थिति प्राप्त होने से राग, द्वेष, मोह की परिणति घटती है।

आचार्य श्री ने इसमें बिन्दु में सिन्धु समाहित करने की उक्ति को चरितार्थ किया है। यह लघु कृति विषय की दृष्टि से महान है। समयसार के सार रूप में रचित इष्टोपदेश सरल सुबोध शैली वाली अध्यात्म रस परिपूर्ण कृति है, मुमुक्षुओं को विशेषतः ग्राह्य है।

समाधितन्त्र

अध्यात्म रस का प्रवाह प्रवाहित करने वाली इस कृति में 105 पद्य हैं। यह रचना आचार्य पूज्यपाद ने संभवतः अन्तःपरीक्षण के लिए की थी। अध्यात्म प्रधान इसमें आत्मस्वरूप चित्रक है। इसका अपरनाम समाधिशतक है। आचार्य कुन्दकुन्द के समय- प्राभृत एवं नियमप्राभृत की गाथाओं का अनुसरण भी किया गया है। आचार्य कुन्दकुन्द स्ववामी के शब्दों को मात्र भाषा परिवर्तन करके स्वीकार किया है। यथा—

जं मया दिस्सदेरूपंतं ण जाणदि सव्वहा।
जाणगो दिस्सदे णतं तम्हा जंपेमि केण हं।

मोक्षप्राभृत, इसी को श्री पूज्यपाद ने समाधितंत्र में ठीक इन्हीं शब्दों

में अनुवर्तन किया है। यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानति सर्वथा। जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम्।।

अन्य भी गाथाओं को ज्यों का त्यों ग्रहण किया है। समाधितंत्र एक हृदयग्राही रचना है।

दशभक्ति

भक्तियॉ बारह हैं। भक्तियाँ मूलरूप में प्राकृत भाषा में आचार्य कुन्दकुन्द प्रणीत मानी गयी हैं। पण्डित श्री प्रभाचन्द्र प्राकृत सिद्ध भक्ति के अन्त में सूचना करते हैं कि सभी संस्कृत भक्तियां पूज्यपाद द्वारा रची गयीं हैं और प्राकृत भक्तियाँ आचार्य कुन्दकुन्द की हैं।[1] भक्तियाँ–(1) सिद्धभक्ति, (2) श्रुतभक्ति, (3) चारित्र भक्ति, (4) योगभक्ति, (5) आचार्यभक्ति, (6) पञ्चगुरुभक्ति, (7) तीर्थङ्कर भक्ति, (8) शान्ति भक्ति, (9) समाधिभक्ति, (10) निर्वाण भक्ति, (11) नन्दीश्वर भक्ति, (12) चैत्यभक्ति ये बारह हैं। पूज्यपाद स्वामी की संस्कृत में सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्र भक्ति, योगिभक्ति, निर्वाण भक्ति और नन्दीश्वर भक्ति ये सात भक्तियां हैं। इनमें मात्र नन्दीश्वर भक्ति ही संस्कृत में है, शेष प्राकृत और संस्कृत दोनों में हैं।

शान्त्याष्टक

'चन्द्रय्य' नामक कवि ने श्री पूज्यपाद स्वामी के विषय में एक घटना का उल्लेख किया है कि एक बार श्री पूज्यपाद की आँखों की ज्योति समाप्त हो गयी थी, उन्होंने 'शान्त्याष्टक का पाठ किया, उन्हें ज्योति प्राप्त हो गई थी। इसी आधार पर पं0 प्रभाचन्द्र ने 'शान्त्याष्टक की उत्थानिका में लिखा है कि पूज्यपाद स्वामी "**न स्नेहाच्छरणं**" पद से प्रारम्भ होने वाले 'शान्त्याष्टक' नामक स्तुति के रचयिता हैं।

सारसंग्रह

आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने इस ग्रन्थ की रचना की थी इसका संकेत धवला के इस उल्लेख से ज्ञात है "सारसंग्रहेऽप्युक्तं पूज्यपादैः अनन्तपर्यायात्मकस्य वस्तुनोऽन्य तम पर्यायाधिगमे कर्तव्ये जात्य हेत्वपेक्षो निरवद्य प्रयोगोनय इति"

सर्वार्थसिद्धि में वर्णित नय स्वरूप से साम्य होने के कारण पूज्यपाद स्ववामी द्वारा सारसंग्रह की रचना की गयी थी ऐसा सोचा जाता है।[1]

जैनेन्द्र और शब्दावतारन्यास

शिमोगा जिले के नगर तहसील के 46वें शिलालेख में उल्लेख मिलता है कि पूज्यपाद ने एक जैनेन्द्र नामक न्यास और दूसरा शब्दावतारन्यास लिखा था।[2]

जैनाभिषेक

श्रवण वेलगोल के शिलालेख नं. 40 में "जैनेन्द्र निज शब्दभागमतुले" आदि श्लोक हैं।[3] यह जिनाभिषेक के प्रारम्भ का भागमात्र है और रचयिता पूज्यपाद थे।

कुछ विद्वानों ने "सिद्धिप्रिय स्तोत्र" को, जिसमें 26 छन्द हैं और जो 24 तीर्थङ्करों की स्तुतिपरक हैं, आचार्य पूज्यपाद की रचना माना है। किन्तु भाषा और विषय की दृष्टि से यह स्तोत्र पूज्यपाद का नहीं हो सकता; क्योंकि असाधारण प्रतिभा के धनी आचार्य पूज्यपाद की भाषिक त्रुटियां असंभव हैं जो उसमें हैं।

चिकित्साशास्त्र

शिमोगा जिले के शिलालेख में श्री पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित वैद्यक ग्रन्थ का उल्लेख है। ग्रन्थ का वैद्यक नाम चिकित्सा सम्बन्धी सामग्री की सूचना देता है।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त श्री पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित कुछ अन्य रचनाओं का उल्लेख है। यथा—"पूज्यपाद चरित" में अर्हत्त् प्रतिष्ठा लक्षण" आदि।

अध्यात्मवाद से अनुप्राणित व्यक्तित्व वाले पूज्यपाद महर्षि महान् विभूति थे। उनके कृतित्व से यह अवगत हुआ। उनकी रचनाएं ही उनका साकार रूप हैं। जड़ शब्दों का समूह ही साहित्य नहीं है अपितु पूज्यपाद का जीवनदर्शन और उनकी साधना का प्रतिरूप है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. आदिपुराण
2. जैनेन्द्र व्याकरण (श्रीनाथूरमाप्रेमी)
3. जैन सिद्धान्त भाग 1
4. सर्वार्थसिद्धि
5. पाण्डवपुराण (शुभचंद्राचार्य कृत)
6. शान्त्याष्टक
7. भारतीयविद्या भाग 3 अंक 5 (श्री सुखलाल संघवी)
8. जैन शिलोलख संग्रह प्रथम भाग

रीडर संस्कृत विभाग, दि. जैन कालेज, बड़ौत — **डॉ. श्रेयांसकुमार जैन**

आचार्य वीरसेन और धवला की गणितीय प्ररूपनायें

आ. वीरसेन का परिचय,

षट्खंडागम के सशक्त टीकाकार आ0 वीरसेन का वंशगत परिचय उपलब्ध नहीं है। पर उनका साधु जीवन और रचनाकाल उनके ही द्वारा लिखित प्रशस्ति से अनुमानित होता है। संशोधकों ने उनका काल 743-823 ई. के लगभग माना है। वे पंचस्तूपान्वय के आचार्य थे और एलाचार्य ने वर्तमान चित्तौड़गढ़ में उन्हें शिक्षा-दीक्षा दी थी। उसके बाद वे वटग्राम (वर्तमान बड़ौदा गुजरात) गये और कुछ काल बाद वे राष्ट्रकूटों के राज्य- क्षेत्र में पहुंचे। यह कहना कठिन है कि वे उत्तरभारत के थे या दक्षिण भारत के। फिर भी, उनका झुकाव दक्षिण प्रतिपत्ति की ओर था। इससे उनके दक्षिण भारत या उसके समीपवर्ती क्षेत्र का होना संभावित है। ऐतिहासिक तथ्यों से पता चलता है कि वीरसेन के समय में आधुनिक गुजरात का बड़ौदा सहित काफी क्षेत्र राष्ट्रकूटों के अधीन था फलतः उन्हें शौरसेनी उत्तरभारत के मूल का माना जा सकता है।

संभवतः बड़ौदा में वप्पदेव कृत 'षट्खंडागम' की 'व्याख्या प्रज्ञप्ति' नामक अधूरी टीका मिली। इसने उन्हें इस पर पूरी टीका लिखने की प्रेरणा दी। उनकी यह टीका 72000 श्लोक प्रमाण है जिसे उन्होंने संभवतः 3000 श्लोक प्रति वर्ष के हिसाब से 24 वर्ष में पूर्ण किया होगा। यह रचना 816 ई0 के अक्तूबर मास में पूर्ण हुई। इसके बाद उन्होंने जयधवला टीका भी प्रारंभ की, पर वे उसके केवल 20,000 श्लोक ही रच पाये और संभवतः 823 ई0 में उनका देहावसान हो गया। इस टीका को उनके शिष्य जिनसेन ने 837 ई. में पूरा किया। ये टीकायें संभवतः गुजरात में लिखी गई होंगी।

आ० वीरसेन अत्यंत प्रतिभाशाली, अन्तर्ज्ञान के धनी और महाविद्वान् थे। धवला टीका के अवलोकन से उनकी न्यायदर्शन, धर्मशास्त्र, गणित, ज्योतिष, संस्कृत-प्राकृतभाषा और व्याकरण तथा काव्य आदि की बहुश्रुतता एवं बौद्धिक तीक्ष्णता का सहज ही अनुमान होता है। संभवतः वे सिद्धसेन के इस मत के अनुयायी थे कि हेतुगम्य विषयों को बुद्धि से और तर्कातीत

अध्यात्म विषय को आगम से अनुगमित करना चाहिए। इसीलिये अपने विविध प्रकार के मंतव्यों में उन्होंने अपने विविध रूप व्यक्त किये हैं ।

(1) वे अपने ही द्वारा उठाई गई शंकाओं के निवारण में 'आप्तवचन', 'जिनवचन' का प्रमाण प्रस्तुत कर कहते हैं कि आगम अतर्क्य है।

(2) वे 'स्वभावोऽतर्कगोचरः' कहकर अपनी निरीक्षण क्षमता को व्यक्त करते हैं।

(3) अनेक अवसरों पर वे तर्कवाद के आधार पर तत्त्व का निर्णय करते हैं और अनेक मतों का खंडन करते हैं।

(4) अधिकांश अवसरों पर उन्हें 'आप्तवचन' की प्रामाणिकता में शंका ग्राह्य नहीं है।

(5) अपनी तार्किक शैली के द्वारा वे पर्याप्त बौद्धिक स्वतंत्रता के पक्षधर प्रतीत होते हैं और शिष्यों को तार्किक बनने के लिये परोक्ष रूप से प्रेरित करते हैं।

आचार्य के विषय में उनके शिष्य जिनसेन ने जो विशेषण दिये हैं, वे पूर्णतः सत्य सिद्ध होते हैं।

आगमतुल्य ग्रंथ

आचार्य गुणधर का 'कषाय प्राभृत' और आ0 पुष्पदंत-भूतबलि का 'षट्खंडागम' दिगंबर संप्रदाय के मान्य आगमतुल्य ग्रन्थ हैं। इनका विषय मार्गणा और गुणस्थान द्वारों के माध्यम से जीवतत्व का अंतरंग और बहिरंग विवरण है। ये दोनों ही ग्रंथ ईस्वीपूर्व प्रथम सदी से ईसोत्तर प्रथम सदी के बीच रचे कहे जाते हैं। प्रायः समस्त दिगम्बर जैन साहित्य इन्हीं के आधार पर विकसित किया गया हैं। कषाय प्राभृत, गाथा ग्रंथ है और षट्खंडागम सूत्र-ग्रंथ है। दोनों की भाषा शौरसेनी प्राकृत है। इन ग्रंथों की अनेक टीकायें लिखी गई हैं पर वीरसेन की धवला और जयधवला टीकायें अपूर्व और सर्वमान्य हैं। इनका उद्धार बड़े परिश्रम, लगन और चतुराई के साथ बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक में हो सका।

आगम ग्रंथों में साधुगण को गणित और ज्योतिष विद्याओं में प्रवीण होने का निर्देश है। इसी का अनुसरण करते हुए वीरसेन जी कहते हैं कि द्रव्यानुयोग के अध्ययन के लिये गणित ही सारभूत है। गणित को विद्याओं का शीर्ष कहा जाता है। समस्त प्रकार के लौकिक व्यवहार के लिये तथा एकाग्रता के अभ्यास द्वारा साधनापथ को उत्कर्ष देने के लिये गणित का ज्ञान आवश्यक है।

जैन साहित्य में गणित के स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में महावीराचार्य के 'गणितसार संग्रह' का नाम आता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि इसके पूर्व के ग्रन्थों में गणित का विवेचन नहीं है। श्वेतांबर आगम ग्रंथ में प्रमाण (माप) के रूप में चतुर्विध मानों का और दस प्रकार के संस्थानों का उल्लेख पाया जाता है। 'अनुयोग द्वार सूत्र' में तो प्रमाणों का विस्तृत विवरण है। इनमें गणितीय, बौद्धिक एवं भावप्रमाण भी समाहित हैं। यतिवृषभाचार्य की त्रिलोकप्रज्ञप्ति में भी अंकगणित, बीजगणित तथा क्षेत्रमिति का पर्याप्त विवरण पाया जाता है। यह माना जाता है कि महावीराचार्य 850 ई. में विद्यमान थे। इस आधार पर वीरसेनाचार्य उनके वरिष्ठ समकालीन प्रतीत होते हैं। इसलिये उन्होंने श्री वीरसेन स्वामी के गणित को विकसित किया होगा, ऐसा सोचना अनुपयुक्त नहीं होगा। फिर, यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि नेमिचंद्र आचार्य ने धवला के गणित को विकसित किया और उनका अनुसरण उत्तरवर्ती ग्रंथकारों ने किया। आचार्य वीरसेन के पर्याप्त पूर्ववर्ती ग्रंथकार यतिवृषभ (500 ई0) के गणित को उन्होंने कितना विकसित किया, यह तत्व अवश्य उद्धरणीय है। वस्तुतः आठवीं सदी के उत्तरार्ध से नवमी सदी के अंत तक का काल जैन साहित्य की दृष्टि से राष्ट्रकूट क्षेत्र के लिये स्वर्णकाल माना जा सकता है। जब पुराणकार जिनसेन, प्राणावायी उग्रादित्य, व्याकरणविद् शाकटायन, टीकाकार वीरसेन तथा जिनसेन जैसे आचार्य समकालिक रहे।

गणित की उपयोगिता के आधार पर षट्खंडागम के समान आगमतुल्य ग्रंथों में गणित-विद्या का तत्कालीन विवरण एवं अभ्यास दिया गया है। गणित ज्ञान की ये सूचनायें ऐतिहासिक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण हैं ही, क्योंकि इनके आधार पर इन ग्रंथकारों के समय के गणित-विज्ञान की स्थिति का पता चलता है। इसके साथ ही, ये सूचनायें इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं कि इनके आधार पर गुणस्थान एवं मार्गणाओं के अंतर्गत जीवादि तत्त्वों एवं कर्म सिद्धान्त की विवेचना की गई है जो जटिल होते हुए भी प्रामाणिक वोधगम्यता की श्रेणी में आ जाती है। वस्तुतः समुचित गणितीय प्रक्रियाओं के बिना इनका समझना, कठिन ही था। इन ग्रंथों के सैद्धान्तिक एवं गणितीय विवेचनों में जैन समुच्चय एवं राशि सिद्धान्त का मूल पाते हैं। डा0 सिंह के अनुसार, किसी भी ग्रंथ में वर्णित सिद्धान्त को ग्रंथकार के समय तक विकसित होकर लिखित रूप में आने तक दो-तीन सौ वर्ष लग जाते हैं। इस आधार पर षट्खंडागम व धवला में वर्णित विषयवस्तु का विकास 0-400 ई0 के बीच का होना चाहिये।

यह कालखंड भारतीय इतिहास का अंधकार युग है जिसका समुचित विवरण उपलब्ध नहीं होता। इस दृष्टि से इन ग्रंथों में वर्णित गणित की प्ररूपणा में भारतीय गणितशास्त्र के पांचवीं सदी से पूर्व के इतिहास के लिये प्रमुख सूचना स्रोत का काम करते हैं।

यह पाया गया है कि जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर से प्रकाशित धवला ग्रंथ के प्रथम, तृतीय (सर्वाधिक) चतुर्थ एवं दशवें खंड में षट्खंडागम का मुख्य गणितीय भाग आ जाता है। कुछ गणितीय प्रकरण अन्य भागों में भी स्फुट रूप से पाये जाते हैं। प्रस्तुत लेख में कुछ प्रमुख प्रकरणों का समीक्षण किया जायेगा। सामान्यतः गणितशास्त्र के प्रारंभिक विभाग हैं—अंकगणित, अव्यक्त गणित (बीजगणित) और क्षेत्र गणित (ज्यामिति)। इन तीनों विभागों से संबंधित प्रकरण यहां दिये जा रहे हैं।

अंकगणित : संख्यान और प्रमाण

स्थानांग (10/994) में गणित को संख्यान के नाम से उल्लिखित करते हुए उसके 10 भेद बताये हैं—जिसमें अंकगणित के सभी रूपों—(परिकर्म, मौलिक प्रक्रियायें, त्रैराशिक आदि), व्यवहार, राशि, वर्ग, धन, वर्गवर्ग, कलासवर्ण (भिन्न), यावत्-तावत् (गुणकार) के साथ क्षेत्रमिति (रज्जु और कल्प) समाहित होते हैं। कुछ शोधक यावत्-तावत् को बीजगणित समीकरणों के रूप में लेते हैं। सूत्रकृत वृत्ति में एक नाम (पुद्गल वनाम कल्प) के परिवर्तन के साथ ये नाम उपलब्ध होते हैं। ये संख्यान, श्री अकलंक स्वामी के अनुसार, गणना कोटि के लौकिक मानों में समाहित होने चाहिये। संभवतः अकलंक स्वामी को यह श्रेय दिया जाना चाहिये कि उन्होंने गणित के दो भेद किये—लौकिक और लोकोत्तर। इसके पूर्व के ग्रंथों में ये भेद दृष्टिगोचर नहीं होते।

स्थानांग और अनुयोग द्वार सूत्र के समान षट्खंडागम में भी इन भेदों का उल्लेख नहीं है। यह तथ्य इन ग्रंथों की अकलंक स्वामी से पूर्ववर्तिता प्रकट करता है। फिर भी यह भाव देखा गया है कि इन ग्रन्थों में प्रमाण के चार भेद किये गये हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं षट्खंडागम (एवं धवला टीका) की तुलना में अनुयोग द्वार का एतद्विषयक विवरण पर्याप्त विकसित प्रतीत होता है। इससे यह स्पष्ट है कि यह ग्रंथ षट्खंडागम से उत्तरवर्ती होना चाहिये। सारणी 1 से स्पष्ट होता है कि षट्खंडागम में मुख्यतः लोकोत्तर गणित है जैसा जैन ने भी सुझाया है। श्री अकलंक स्वामी ने, ऐसा प्रतीत

होता है कि, धवला के द्रव्य प्रमाण को सत्संख्यादि सूत्र के 'संख्या' पद के समकक्ष मानकर उसके धवला के समान ही तीन भेद किये हैं। इसे लौकिक गणनामान के समकक्ष माना जा सकता है। इस प्रकार, विविध ग्रंथों में विभिन्न प्रकार से किये गये भेद-प्रभेदों के कारण पूर्व की परिभाषायें किंचित् जटिलता में परिवर्तित हुई है। वस्तुतः लोकोत्तर पद से ऐसे मान ग्रहण करने चाहिये जो सामान्य व्यवहार-मानों की तुलना में अमापनीय कोटि में आते हैं। उदाहरणार्थ सूक्ष्मतम परमाणु, प्रदेश समय तथा बृहतर संख्यात, असंख्यात और अनंत के मान। इस आधार पर अनुयोग द्वार के प्रदेश निष्पन्न मान तथा संख्यामान (भाव-प्रमाण) लोकोत्तर कोटि में आवेंगे। तथा विभाग-निष्पन्न मान लौकिक कोटि में माने जाने चाहिए। लेकिन यहां भी अपवाद हो सकते हैं।

यहां यह बताना अनुपयुक्त न होगा कि जैन शास्त्रों में गणित विद्या की उत्थनिका दृष्टिवाद अंग के परिकर्म खंड में भी प्राप्त होती है। नन्दीसूत्र के अनुसार, परिकर्म के सात भेदों के उपभेदों में राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, अवगाढ़ श्रेणी आदि अंकगणितीय तथा क्षेत्रमितीय सूचनायें हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह विवरण स्थानांग के दस संख्यानों से पूर्ववर्ती है। फिर भी, यह अनुसंधेय विषय है।

सारणी 1 आगमतुल्य जैन ग्रंथों में माप के भेद

ग्रंथ	कोटि	द्रव्यप्रमाण	क्षेत्रप्रमाण	काल प्र.	भाव प्र.
1. षटखंडागम	लोकोत्तर	संख्यात, असंख्यात, अनंत (9/11)	प्रदेश-लोक	समय-उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी	ज्ञान
2. अनुयोगद्वार सूत्र :	लौकिक, लोकोत्तर	मूलयूनिट-परमाणु	एकादि प्रदेश	समय-आवलि	गुण, नय, संख्या
	व्युत्पन्न यूनिट	5 प्रकार (भार, लंबाई, आयतन आदि)		अंगुल-लोक अव.	उत्स. अवस.
3. राजवार्तिक	लोकोत्तर	1. एक-परमाणु-महास्कंध उत्तम, मध्यम, जघन्य 2. उपमामान उ.म.ज.	एकप्रदेश-सर्वलोक	एकसमय-अनंतकाल	ज्ञान दर्शन
4. राजवार्तिक	लौकिक	व्युत्पन्न यूनिट- 6 प्रकार			

विभिन्न प्रमाणों की सूक्ष्म स्थूलता

धवला में यह माना गया है कि स्थूल और अल्पवर्णनीय वर्णन पहले किया जाता है। इस दृष्टि से जीव या द्रव्य सर्वाधिक स्थूल है, उसके बाद काल, क्षेत्र व भाव मान का क्रम आता है। फिर भी, प्रमाणक्रम में द्रव्य के बाद क्षेत्र, काल व भाव मान का क्रम है। क्षेत्र की प्ररूपणा काल की तुलना में विस्तारी से बताई जाती है। वीरसेन स्वामी ने इस मत का खंडन किया है कि सूक्ष्म का अर्थ बहु-प्रदेशोपचित (पर अदृश्य) लिया जावे, क्योंकि अंगुल के असंख्यातवें भाग में असंख्यात कल्पों के समान एक द्रव्यांगुल में अनंत क्षेत्रांगुल होंगे। फलतः द्रव्य प्रमाण को क्षेत्र प्रमाण से सूक्ष्मतर मानना पड़ेगा। उसी प्रकार भावप्रमाण का विस्तार क्षेत्र प्रमाण से भी अधिक मानकर उसका वर्णन अंत में किया गया है। यहां स्थूल की बरीय वर्णनीयता तो समझ में आती है पर द्रव्यप्रमाण अल्पवर्णनीय है, यह मान लेना किंचित् दुरूह लगता है। प्रमाणों की सूक्षम-स्थूलता की चर्चा धवला में पायी गई है, अन्यत्र नहीं।

संख्या की गणना दो के अंक से : संख्यात, असंख्यात और अनंत

जैन सिद्धान्त के अनुसार, द्रव्यों से संबंधित परिमाणात्मक विवरणों के लिये संख्याओं का उपयोग किया जाता है। जीव शास्त्रों में इनका निरूपण विविध प्रकार से किया जाता है। अनुयोग द्वार में संख्या के आठ भेद बताये गये हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य, उपमा, परिमाण, ज्ञान, गणना और भाव। इसे भाव प्रमाण में समाहित किया गया है। इसका कारण अन्वेषणीय है। इन सभी में गणना-संख्या ही सर्वाधिक उपयोगी है और इसका विवरण भी सर्वाधिक है।

सामान्यतः संख्या दो प्रकार की होती है—वास्तविक और काल्पनिक। वास्तविक संख्यायें परिमेय होती हैं जबकि काल्पनिक असंख्यात व अनंत की संख्यायें उपमेय तथा पराज्ञान-ज्ञेय होती हैं। जैन शास्त्रों में प्रारंभ से ही दोनों प्रकार की संख्याओं का उपयोग हुआ है। वर्तमान गणित में अपरिमेय संख्याओं का वास्तविक उपयोग उन्नीसवीं सदी से ही हुआ है।

वास्तव में संख्या मान का प्रारंभ उस अंक से होता है जिसका वर्ग करने पर उसके मूलमान में वृद्धि हो। इस दृष्टि से एक के अंक को संख्या नहीं माना जाता। फलतः वास्तविक संख्यामान दो से ही प्रारंभ होता है। इसीलिये परमाणुओं में बंध के लिये द्वधिकता एवं लघुगुणक का प्रथम मूलाचार दो ही माना गया है।

जैनाचार्यों ने संख्याओं को तीन रूपों में वर्गीकृत किया है—संख्यात, असंख्यात और अनंत। इनमें संख्यात गणनीत संख्या है। इसके तीन भेद हैं—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। इनमें जघन्य संख्यात का मान दो है, मध्यम संख्यात का मान तीन, चार आदि से प्रारंभ होकर उत्कृष्ट संख्यात—1 तक माना जाता है। इसका उच्चतम मान 10^{168} तक माना जाता है। उत्कृष्ट संख्यात का मान उपमा मान द्वारा पल्योपम आदि के रूप में परिकलित किया जाता है। मुनि महेन्द्र ने इसका मान 10^{19783} से भी अधिक परिकलित किया है। उन्होंने यह भी बताया है कि इसका वास्तविक मान व्यावहारिक गणित से प्राप्त करना असंभव प्रतीत होता है। शायद कंप्यूटर-युग इस असंभव को संभव बना दे।

इससे उत्तरवर्ती मान असंख्यात की कोटि में आते हैं। ये लौकिक गणित में नहीं आते। ये मान परीत, युक्त और असंख्यात के मूल तीन भेदों के उत्तम, मध्यम और जघन्य उपभेदों के आधार पर नौ प्रकार के होते हैं।

धवला में बताया गया है कि अनंत वह राशि है जो व्ययित होने पर भी अनंत काल तक समाप्त न हो। इसके ग्यारह भेद बताये गये हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य, शाश्वत, गणना, अप्रदेशिक (परमाणु), एक, उभय, विस्तार, सर्व और भाव। अन्य अनंतों की तुलना में गणनानंत ही महत्त्वपूर्ण है। इसी के आधार पर अनेक राशियों का विवरण दिया जाता है। फिर भी, वीरसेन स्वामी ने सभी अनंतों की परिभाषायें दी हैं। अनंत संख्या का यह विभाजन भी श्री वीरसेन स्वामी की विशेषता है। इनमें से द्रव्यानंत का विवरण अनुयोग द्वार के भाव-प्रमाणी द्रव्यसंख्या के समान ही है। इसके संख्याष्टक में अनंत का समाहरण गणना संख्या के तीन भेदों में हुआ है। श्री अकलंक स्वामी ने अनंत का समाहरण संख्या में ही किया है। अनंत के 11 भेदों की तुलना में अनुयोग द्वार में उसके आठ भेद ही बताये हैं जो गणनानंत को निरूपित करते हैं।

सामान्यतः अनंत के भी तीन भेद हैं—परीत, युक्त और अनंतानंत। धवला के अनुसार, सभी कोटि के ये अनंत उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से तीन-तीन प्रकार के होते हैं। फलतः अनंत के 9 भेद होते हैं। इसके विपर्यास में अनुयोग द्वार कुल 8 भेद ही मानता है। इस प्रकार दिगंबर मत से संख्यामान के 21 भेद होते हैं और अनुयोगद्वार मत से 20 भेद ही होते हैं। अनुयोग द्वार अनंतानंत का उत्कृष्ट भेद स्वीकार नहीं करता। कुछ शोधकों ने इन सभी संख्यामानों के लिये नये युग के अनुरूप संकेतों के सुझाव दिये हैं जो अभी लोकप्रिय नहीं हो पाये हैं। उदाहरणार्थ, संख्यात के लिये

S, असंख्यात के लिये A, अनंत के लिये I, उत्कृष्ट के लिये U, मध्यम के लिये m और जघन्य के J आदि। संख्याओं का यह वर्गीकरण जैन अंक गणित की विशेषता है।

वृहत्तर या उच्चतर संख्याओं का निरूपण - वर्णि-संवर्णि राशियां

वृहत्तर राशियों को संक्षेप में व्यक्त करने के लिये जैन गणितज्ञों ने वर्गण-संवर्गण और शलाकात्रय-निष्ठापन की विधि का अनूठा प्रयोग किया है। धवला में प्रथम विधि का अनेक बार उल्लेख आया है। इसके पूर्ववर्ती श्री अकलंक स्वामी ने भी इसका उल्लेख किया है। इस विधि में किसी भी राशि को पहले वर्गित करते हैं फिर उसके वर्ग को वर्गित करते हैं इस प्रक्रिया को जिनती बार किया जावे, उसी आधार पर वर्गित-संवर्गित राशि का नामकरण होता है। उदाहरणार्थ, दो की संख्या को तीन बार वर्गित-संवर्गित करने पर—
प्रथम बार, $2^2 = 4$, द्वितीय बार $4^4 = 256$
तृतीय बार, $256^{256} = 617$ अंक की राशि प्राप्त होती है। इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति से और भी वृहत्तर संख्यायें प्राप्त हो सकती हैं। इस विधि से वृहत्तर राशियों को सरल रूप में व्यक्त करने की कला स्पष्ट व्यक्त होती है। इस प्रक्रिया को बीजगणितीय रूप (अव्यक्त) में भी व्यक्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि मूल राशि a है, तो उसका तृतीय वर्गित-संवर्गित रूप निम्न होगा :

a+1
a+1+a
a^a

शलाका निष्ठापन विधि की वर्गण-संवर्गण का एक रूप है जिसमें और भी वृहत्तर संख्याओं को संक्षिप्त रूप में लिखा जा सकता है।

संख्याओं का अभिव्यक्तिकरण : स्थानार्त्त पद्धति संकेतन

सिंह और जैन ने बताया है कि वीरसेनाचार्य संख्याओं के संकेतन की तीन प्रचलित पद्धतियों से परिचित थे :

1. **अंकों के स्थान के आधार पर संख्या-संकेतन** : उदहारणार्थ, 79999998 संख्या को आदि में 7, अंत में 8 तथा मध्य में छह, 9 अंकों के रूप में व्यक्त करना।

2. **संख्या को दक्षिण दिशा (विपरीत) से प्रारंभ कर पढ़ना** : उदाहरणार्थ, उपरोक्त संख्या को 98, 900, 99, 99000 और 7 कोटि के रूप में व्यक्त करना। इस विधि में संकेतन सैकड़ों में होता है, दहाइयों में नहीं होता। साथ ही, संकेतन लघुत्तर संख्या की कोटि से प्रारंभ होता है। यह विधि अब प्रचलित नहीं है।

3. **अंकों को बांयी ओर से पढ़ना** : यही वर्तमान पद्धति है। इसमें किसी भी संख्या के अंकों को बांयी ओर से पढ़ना प्रारम्भ करते हैं और उच्चतर

संख्या से आरंभ करते हैं। उदाहरणार्थ, उपरोक्त संख्या को ही इस विधि से सात करोड़ निन्यानवें-लाख निन्यानवे हजार नौ सौ अठानवे के रूप में व्यक्त किया जायेगा। यह लाख की इकाई को शत-सहस्त्र के रूप में व्यक्त किया गया है।

धवला में अधिकांश संख्या-संकेतन इसी विधि से किया गया है। एक समय ऐसा भी रहा है जब अंकों को वर्णों से संकेंतित करते थे और संख्या वर्णों के रूप में व्यक्त की जाती थी। इस प्रक्रम के स्फुट प्रयोग धवला में भी देखने को मिलते हैं।

संख्याओं के संकेतन में शून्य का महत्त्व स्पष्ट है। जैन शास्त्रों में शून्य का अनेक अर्थों में प्रयोग हुआ है। पं. टोडरमल ने इसे ऋण के संकेत के रूप में बताया है। वीरसेन ने इसे इन्द्रिय-आधारित जीवों को सूचित करने तथा अन्तराल या रिक्तियों को पूर्ण करने का सूचक बताया है। लेकिन गणित में इसका महत्वपूर्ण उपयोग संख्याओं के स्थान-मूल्यों के लिये किया जाता है। उदाहरणार्थ 65000 को लिखने के लिये 65°3 का संकेत प्रयुक्त होता है। जिसका अर्थ है 65 के बाद तीन शून्य। वीरसेन स्वामी ने कोड़ाकोड़ी आदि की संख्याओं के निरूपण में इसका उपयोग किया है। त्रिलोक प्रज्ञप्ति में भी शून्य का इसी रूप में उपयोग है। इस प्रकार, स्थानार्हापद्धति में शून्य के उपयोग का महत्व स्पष्ट है।

अंकगणित की मूलभूत प्रक्रियायें और भिन्न-भिन्न संख्यायें

धवला में स्थान-स्थान पर गणित की सामान्य प्रक्रियाओं का उपयोग किया गया है। इनमें परिकर्म-अष्टक (जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल) समाहित हैं। पूर्वप्रयुक्त परिकर्म पद के अर्थ से यह अर्थ भिन्न-सा है। इन प्रक्रियाओं का परिज्ञान धवलाकाल से पूर्व के ग्रन्थों-त्रिलोकप्रज्ञप्ति, अंगग्रंथ आदि में भी पाया गया है। यह अवश्य है कि प्रारंभ में इन क्रियाओं के संकेत अक्षरात्मक होते थे। वर्तमान में इन्हें अनक्षरात्मक प्रतीकों से व्यक्त किया जाता है।

ये प्रक्रियायें पूर्णाक की संख्याओं के साथ भिन्नांकी संख्याओं के लिये भी प्रयुक्त हुई हैं। सिंह ने इस विषय में धवलागत अनेक सूत्र व्यक्त किये हैं जिनमें दो निम्न हैं :

(1) $$\frac{a}{4 \pm c} = \frac{r}{(r/q \pm 1)} = \frac{q}{1 \pm q/r}$$

(2) $$\frac{a}{4 \pm c} = \frac{r}{(r/q \pm 1)} = \frac{q}{1 \pm q/r}$$

जैन ने इस संबंध में 11 समीकरण दिये हैं।

लघुगुणक या लोगोरिथ्म (Logorythm) का विवरण

लघुगुणक की प्रक्रिया भी वृहत्तर संख्याओं को सरल रूप में व्यक्त करने और मूलभूत प्रक्रियाओं को ऋण-धन के रूप में संपन्न करने की एक सरल पद्धति है। धवला में अनेक स्थानों पर वर्तमान में प्रचलित लोगोरिथ्म विधि का उपयोग किया गया है। लेकिन उसकी आधार संख्या Lig_{10} या Ln नहीं है। इसके विपरीति में, यहां इसे अर्धच्छेद, त्रिकछेद, चतुर्थ छेद के नाम से व्यक्त किया गया है जहां आधार संख्या क्रमशः 2,3 व 4 है। इसके साथ ही वर्गशलाका के रूप में $Lig\, z\, Lig_2$ का भी उपयोग पाया जाता है। इनके विषय में सिंह ने अनेक लेख लिखे हैं।

इन विभिन्न प्रकार के छेदों के सामान्य सूत्र निम्न हैं :

$$lig\ z^{2m} = m$$

$$lig\ 2\ Lig^{22} = m$$

$$lig\ 3^{3m} = m$$

$$lig\ 4^{4m} = m$$

सिंह ने बताया है कि समसामयिक भारतीय गणित में इस प्रकार के लघुगुणक नहीं पाये जाते हैं। यह जैन गणित की ही विशेषता है। फिर भी उन्होंने इस तथ्य को प्रकट किया है कि इस विधि का अधिक प्रचलन इसलिये नहीं हो पाया है कि जैनाचार्यों ने वर्तमान समय के समान लोगेरिथ्म सारणियां नहीं बनाई, इनसे संख्यात्मक परिकलनों में बड़ी सरलता हो जाती।

धवला में वर्णित अनेक प्रकरणों के आधार पर छेदों के संबंध में वर्तमान के निम्न सूत्र उद्घघटित होते हैं :

1. $Lig\ \frac{a}{u} = liga - logl = \quad Log\ (a^a)^{a^a} = a^a \log a^a$

2. $Lig2\ ab = loga + logl =$

वीरसेन के परिकालनो के अनुसार,

$$Lig_2\ lig_2\ X]^{1} < \{ x]^{1} \}^2$$

$$log_2\ X]^3 \qquad = x]^2\ lig_2\ x]^2$$

जहां 7 वर्गण-संवर्गण के लिये है। इस आधार पर वर्गण-संवर्गण को भी लोगारिथ्म रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

घातांकों का उपयोग (Use of Indices)

धवला के अनेक प्रकरणों में घातांकों के अनेक उपयोग और परिकलन दिये गये हैं। पर्याप्त मिथ्यादृष्टि मनुष्यों की संख्या कोड़ा-कोड़ी-कोड़ी तथा कोड़ा-कोड़ी–कोड़ी, कोड़ी (1 करोड़ $=10^7$) के बीच बताई जाती है। इसका सामान्य अर्थ $(10^7)^3 = 10^{21}$ और $(107)^4 = 10^{28}$ के बीच आती है। इसकी व्याख्या में धवला में इन्हें 2^{2^6} एवं 2^{2^7} के समकक्ष बताया है। फलतः यह संख्या 10^{19} - 10^{38} के बीच आती है। जैन ने इस संख्या को 29 अंक प्रमाण परिकलित किया हैं पर उन्होंने सामान्य राशि के लिये जटिल अर्थ लेने के वीरसेन के प्रयत्न की व्याख्या नहीं की जो आवश्यक है।

वीरसेन ने इसी प्रकार एक अन्य घात संबंधी परिकलन दिया है :

$$2^{2^7} \div 2^{2^6} = 2^{2^6}$$

इन तथा अन्य परिकलनों से घातांक संबंधी निम्न सूत्र प्रकाशित होते हैं :

1. $x^a x4^b = x\ (a+b)$
2. $x^a/x4^b = x\ (a-b)$
3. $(x^a)^b = xab$

इनके अतिरिक्त अन्य नियम भी उद्घघाटित किये जा सकते हैं। जैन ने बताया है कि घातांक संबंधी धवलागत विवरण पांचवीं सदी से पूर्व का तथा प्रारंभिक प्रतीत होता है। इसके अंतर्गत वर्ग, वर्गवर्ग, वर्गमूल, घन, घन-घन, घनमूल, स्वघात, वर्गमूलमूल, घन-मूल-मूल आदि के घात समाहित होते हैं।

ज्यामितीय गणित

गणित के प्रारंभिक विकास के समय गणित शास्त्र आज के समान अनेक शाखाओं में विभक्त नहीं था फिर भी अंकगणित के समान क्षेत्रमितीय गणित भी पर्याप्त प्रचलन में था। पांच प्रकार की आकृतियों के क्षेत्रमितीय परिकलन किये जाते हैं। मध्यलोक की गोलाकार मान्यता के कारण वृत्तीय क्षेत्र का गणित विकसित हुआ। बहुआयामी क्षेत्रों के साथ आयतन, विषम आदि के सूत्र विकसित हुए। यद्यपि त्रिलोकप्रज्ञप्ति की तुलना में धवला में क्षेत्रगणित कम है, फिर भी उसमें कुछ विशिष्ट प्रकरण आये हैं। इनमें से तीन यहां दिये जा रहे हैं :

1 पाइ (Pi) का मान : वृत्तीय क्षेत्र के विवरण को जानने के लिये उसकी परिधि c व्यास d या अर्धव्यास r के अन्योन्य संबंधों का ज्ञान आवश्यक है।

इनके संबंध को पाइ द्वारा व्यक्त किया जाता है, जहां

$$pi = x\,\frac{C}{D} = 3\ ;\ \text{या}\ \sqrt{10} = 3.16 \quad (i)$$

$$c = 3D + \frac{16}{113}D = \frac{355}{113}D = 3.14 \quad (ii)$$

त्रिलोक प्रज्ञप्ति आदि ग्रंथों में इसके प्रायः दो मान दिये गये हैं, 3 या √10 -। धवलाकार ने अनेक स्थानों पर √10 के मान का उपयोग किया है, पर उन्होंने एक उद्धरण देते हुए पाइ का सूक्ष्मतर मान भी (11) के रूप में व्यक्त किया है। यह सम-सामयिक 3.16 के बदले आधुनिक मान 3.14 के अधिक निकट है। आजकल यह मान 22 दशमलव अंकों तक उपलब्ध है। वीरसेन स्वामी ने अनेक प्रकरणों में इस मान का उपयोग किया है।

2. शंकु-छिन्नक का आयतन : धवला के चौथे खंड में लोक के आकार की व्याख्या के संबंध में वीरसेन ने शंकु-छिन्नक (शंकवाकर लोक का एक खंड) के आयतन को ज्ञात करने के लिये उसे असंख्यबार सम-खंड विदारित कर प्रत्येक खंड के आयतन प्राप्त करने की अपूर्व प्रक्रिया अपनाई। इन विभिन्न आयतनों के गुणश्रेणीगत संकलन से जैन ने शंकु-छिन्नक का निम्न आयतन पाया है:

$$V = 1/3\ \Pi\, h\,(a^2 + b^2 + 2ab)$$

इस विषय पर सिंह और जैन ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। जैन का कथन है कि वीरसेन स्वामी अनंत विदारण-प्रक्रिया अपनाने के बदले अन्य सरल प्रक्रिया भी इस हेतु अपना सकते थे।

श्री वीरसेन स्वामी ने लोक को परिवेशित करने वाले विभिन्न बलयों का आयतन भी ज्ञात किया है। इसमें वृत्तीय क्षेत्र ज्यामिति समाहित हो जाती है। त्रिलोक प्रज्ञप्ति इस विषय में अधिक विवरण देती है।

जैन ने एक प्रकरण में एक बीजगणितीय समीकरण को क्षेत्रमितीय रूप में प्रस्तुत करने का भी उदाहरण दिया है।

भावप्रमाण के माध्यम से राशियों का परिकलन

वीरसेन स्वामी के भावप्रमाण के विवरण में पूर्वोक्त मृत्यु प्रक्रियाओं के अतिरिक्त आठ अन्य विधियां बताई हैं जिनसे अनेक जीवराशियों का परिकलन किया जा सकता है। इनके नाम है—प्रमाण (माप), कारण, निरुक्ति (व्याख्या), विकल्प (पृथक्करण), खंडित (भिन्नकरण), भाजित, विरलन और अपहरण

(घटाना या निराकरण)। इनमें से गणित में अंतिम पांच विधियों का उपयोग किया गया है। वस्तुतः कोई भी माप हो, संख्या की इकाइयों के माध्यम से ही व्यक्त किया जाता है। संभवतः वीरसेन स्वामी के अतिरिक्त इन विधियों का निरूपण समन्वित रूप से कहीं भी नहीं मिलता। इनके निरूपण में ध्रुवराशि पद का भी उपयोग किया गया है। इन सभी विधियों से विभिन्न धाराओं के माध्यम से मिथ्यादृष्टि जीवराशि का संगत परिकलन किया गया है।

इन विधियों में खंडित, भाजित, विरलन और अपहरण सुगम हैं। अतः उनका विशेष विवरण न देकर विकल्प-विधि के भेद-प्रभेद बताये हैं। विकल्प के दो भेद हैं-अधस्तन और उपरिम। अधस्तन विकल्प द्विरूपधारा के लिये संभव नहीं है, पर यह घन, घनाघन आदि धाराओं के लिये संभव है। इनमें द्विगुणाधिकरण विधि का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ, यदि संपूर्ण जीवराशि को 16 माना जाये और ध्रुवराशि 256/13 मानी जावे तो :

मिथ्यादृष्टि जीव राशि $= 16 \times 256/13 = \frac{4096}{13}$; $\frac{4096}{1} \times \frac{13}{4096} = 13$

उपरिम विकल्प के तीन भेद बताये गये हैं : गृहीत, गृहीतगृहीत और गृहीत गुणकार। इनके अनेक प्रकार से दिये गये परिकलनों में सरलतम निम्न हैं :

1. गृहीत $= \frac{\text{जीवराशि वर्ग}}{\text{ध्रुवराशि}} = \frac{256}{256/13} = 13$ (प्रथम परिकलन)

2. गृहीत-गृहीत $= \frac{\text{जीवराशि का इतिहास वर्ग}}{\text{इच्छित वर्ग/मिथ्यादृष्टि जीवराशि}} = \frac{65536}{65536} \times 13 = 13$

3. गृहीत गुणकार $= \frac{\text{इच्छित वर्ग}^2}{\frac{\text{इच्छित वर्ग}^2}{\text{मिथ्यादृष्टि जीवराशि}}} = \frac{65536^2}{65536^2} = 13$

इसी प्रकार नारक मिथ्यादृष्टि जीवराशि हेतु एक अन्य उदाहरण से विकल्प हेतु निम्न सूत्र प्राप्त होता है :

$$[\frac{T}{N}] \text{ Lign} = \frac{T^2}{g} g$$

जहां n असंख्येय राशि है, T जीवों का समुच्चय है तथा g मिथ्यादृष्टि जीव

राशि है। इसी प्रकार, विकल्प के अंतर्गत अन्य अनेक सूत्र प्राप्त किये गये हैं।

कुछ अन्य प्रकरण : (अ) धाराओं का निरूपण

धारा शब्द से कुछ विशेष प्रकार की राशियों का बोध होता है। इनका जैन गणित में पर्याप्त उपयोग किया गया है। यद्यपि धवला में पृथक् से धाराओं का सामान्य विवरण नहीं है, पर त्रिलोकसार में 14 धाराओं का सोदाहरण उल्लेख है। इनके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के श्रेणी-व्यवहार का समाहरण होता है। उदाहरणार्थ—सर्वधारा में समांतर श्रेणी की राशियां समाहित होती हैं। इसी प्रकार, समधारा, विषमधारा, कृतिधारा (वर्गराशि), अकृतिधारा, घनधारा, अघनधारा, वर्गमान्तृका (वर्गमूल), अवर्गमातृका, घनमात्तृका (घनमूल), अघनमातृका, द्विरूपवर्गधारा (दो के वर्ग पर आधारित) द्विरूप घन घारा और द्विरूप घनाघन धारा नामक अन्य धारायें हैं। इनमें वीरसेन स्वामी ने अपने विवरणों में अनेक धाराओं (उदाहरणार्थ, विकल्पों के परिकलन में) का उपयोग किया है। इन धाराओं में गुणश्रेणी समाहित नहीं दिखती। इसके बावजूद भी, गुणहानि और गुणवृद्धि आदि के रूप में वीरसेन ने इनका भी उपयोग किया है।

(ब) क्रमचय और समुच्चय

धाराओं के समान ही, यद्यपि वीरसेन ने क्रमचय और समुच्चय का विवरण नहीं दिया है, पर वे इन प्रक्रियाओं से परिचित थे। इसीलिये तो उन्होंने श्रुतज्ञान के पदों की संख्या स्वर और व्यंजन संख्या के आधार पर $2^{64}-1$ के रूप में व्यक्त की है और उसका मान दिया है।

(स) अल्प बहुत्व की धारणा

जैन शास्त्रों में विभिन्न जीवों से संबंधित मार्गणा, एवं गुणस्थानों आदि के विवरणों में अल्पबहुत्व, सापेक्ष संख्या या स्थिति और राशियों का निरूपण किया गया है। प्रज्ञापना, अनुयोग द्वार, जीवाभिगम आदि ग्रन्थों में इस निरूपण का प्राथमिक रूप देखने को मिलता है। त्रिलोकप्रज्ञप्ति एवं धवला में इनका रूप भिन्न प्रकार से ही प्रदर्शित किया गया है। उमास्वामि ने भी अल्पबहुत्व को एक अनुयोगद्वार के रूप में स्वीकृत किया हैं यह सचित्त, अचित्त और भिन्न (जीव-अजीव-संबद्ध) के भेद से तीन प्रकार का बताया गया है। त्रिलोक प्रज्ञप्ति के 19 द्वीप-सागरगत अल्पबहुत्व की तुलना में वीरसेन स्वामी ने

व्यापक लोक के लिये सोलह राशिगत अल्पबहुत्व निरूपत किया है। (सारणी 2)। इन विद्वानों की विशेषता यह है कि इनमें परिमेय राशियां प्रायः नहीं हैं, अपरिमेय राशियां ही अधिक हैं। इसलिये इनका व्यावहारिक मान देना असंभव-सा है। साथ ही, 'विशेष अधिक' पद के अर्थ भी प्रायः अपरिमेय राशियों में ही हैं। सारणी 2 से यह स्पष्ट है कि वर्तमान काल (एक समय) से अतीत काल पर्याप्त अधिक है और अनागत काल तो अंतहीन एवं अतीत से बहुगुणी अनंत है। संभवत अल्पबहुत्व लोकोत्तर श्रेणी की कोटि की राशि है।

सारणी 2 : धवला में सोलह राशिगत अल्पबहुत्व

1. वर्तमान काल	अल्पतम
2. अभव्य जीव	अनन्त गुणे
3. सिद्धकाल	अनंतगुणा
4. सिद्ध	संख्यात गुणे
5. असिद्ध	असंख्यात गुणे
6. अतीत काल	विशेष अधिक
7. भव्य मिथ्यादृष्टि	अनंतगुणे
8. भव्यजीव	विशेष-अधिक
9. सामान्य मिथ्यादृष्टि	विशेषाधिक
10. संसारी जीव	विशेषाधिक
11. संपूर्ण जीव	विशेषाधिक
12. पुद्गल द्रव्य	अनंत गुणे
13. अनागत काल	अनंतगुणा
14. संपूर्ण काल	विशेषाधिक
15. अलोकाकाश	अनंत गुणा
16. संपूर्ण आकाश	विशेषाधिक

उपसंहार

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वीरसेन स्वामी ने धवला टीका में न केवल तत्कालीन प्रचलित गणित विद्याओं का प्रयोग किया है, अपितु अनेक नवीन स्थापनायें एवं विधायें भी प्रस्तुत की हैं। इनके तुलनात्मक अध्ययन से जैन ने यह मत व्यक्त किया है कि सम-सामयिक गणित-विद्या के विकास

की दृष्टि से कुछ विशिष्ट क्षेत्रों (लोकोत्तर गणित) में जैनों का और विशेष रूप से धवला का महत्वपूर्ण योगदान है। लौकिक गणित की दृष्टि से यह योगदान समकक्ष ही माना जायेगा। जैन गणित के क्षेत्र में अनेक शोधकों के बावजूद भी इस योगदान के समग्र मूल्यांकन का काम अभी अपर्याप्त है। इस बात की भी आवश्यकता है कि जैन गणित की शब्दावली को आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया जावे जिससे इसका मूल्यांकन बहु-विद्वत्-सुलभ हो सके।

संदर्भ पाठ

1. वीरसेन आचार्य, **धवला टीका** 1,3,4,10 खंड, सोलापुर, 1940-43
2. यति वृषभ, आ. : **त्रिलोक प्रज्ञप्ति** 1-2, सोलापुर, 1949-51
3. पद्मनंदि, आ. : **जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति**-1, सोलापुर, 1958
4. भट्ट अकलंक : **राजवार्तिक**-1, भा. ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1953
5. एल.सी.जैन : (अ) **ऑन जैन स्कूल आफ मैथेमेटिक्स**, छोटेलाल स्मृति ग्रंथ, कलकत्ता, 1967 पेज 265

   (ब) **बेसिक मैथेमेटिक्स**-1, प्राकृत भारती, जयपुर, 1982
6. जैन, एल.सी. और अनुपम, **फिलास्फर मैथेमेटीसियन्स**, जंबू द्वीप शोध संस्थान, हस्तिनापुर, 1985
7. मुनि महेन्द्रकुमार; **विश्व प्रहेलिका**, जैन विश्व भारती, लाडनूं, 1970
8. सिंह, ए. एन. ; (a) षटखंडागम-iv (1942) में दिया गया अंग्रेजी लेख

   (b) जैन एन्टीक्वेरी, 1949-50 में प्रकाशित लेख
9. नेमिचंद्र शास्त्री; आचार्यकल्प टोडरमल का गणित विषयक पांडित्य, नामक लेख

रीवा (म.प्र.) **डॉ. नन्दलाल जैन**

श्रुतधराचार्य श्री गुणधर–जीवन व साहित्य पर एक दृष्टि

श्रुतधराचार्य श्री गुणधर

श्रुतधराचार्य से तात्पर्य उन आचार्यों से है जो केवली और श्रुतकेवलियों की परम्परा को प्राप्त कर अंग या पूर्वों के एकदेशज्ञाता हों। दिगम्बर आम्नाय के अनुसार आचार्य गुणधर का स्थान श्री धरसेनाचार्य की तरह ही न केवल अंगज्ञान के अंशधारियों में है बल्कि श्रुतधराचार्यों की परम्परा में आप सर्वप्रथम आचार्य हैं। किन्तु भगवान वीर के निर्वाण के बाद प्राप्त श्रुतधराचार्यों की परम्परा में आपका नाम दृष्टिगोचर नहीं होता। कोश[1] में दो परम्पराओं का उल्लेख है–प्रथम, जिसके अनुसार 62 वर्ष तक केवली परम्परा, सौ वर्ष तक पूर्ण श्रुतकेवली परम्परा फिर 183 वर्ष तक ग्यारह अंग, दस पूर्वधारी, 22 वर्ष तक ग्यारह अंगधारी, पांच आचार्यों की परम्परा, फिर 118 वर्ष तक आचारांगधारियों की परम्परा–इस प्रकार लोहाचार्य तक 683 वर्ष तक यह परम्परा विद्यमान रही। जबकि दूसरी परम्परा के अनुसार लोहाचार्य तक केवल 565 वर्ष ही हुए तथा शेष 118 वर्षों में अन्य नव आचार्यों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार आचार्य भूतबलि तक 683 वर्ष पूर्ण होते हैं। जो कुछ भी हो, इन दोनों परम्पराओं में आचार्य गुणधर का कहीं नाम नहीं है। जबकि श्रुत प्रतिष्ठापक आचार्यों में आचार्य गुणधर और आचार्य धरसेन प्रमुख और ख्याति-प्राप्त हैं। इन दोनों आचार्यों में आचार्य गुणधर अधिक ज्ञानी प्रमाणित सिद्ध होते हैं। यथा :–

1. आचार्य गुणधर को द्वादशांग के पंचम पूर्वगत पेज्जदोसपाहुड तथा महाकम्मपयडिपाहुड श्रुत का ज्ञान प्राप्त था, जबकि आचार्य धरसेन को पूर्ववत कम्मपयडिपाहुड श्रुत का ज्ञान प्राप्त था।

2. आचार्य धरसेन ने किसी श्रुत/आगम की रचना नहीं की जबकि आचार्य गुणधर ने पेज्जदोसपाहुड अपरनाम कसायपाहुडसुत्त नामक श्रुत की रचना की है। इस दृष्टि से आचार्य गुणधर प्रथम श्रुतकार भी माने जाते हैं।

3. आचार्य गुणधर पूर्वविदों की परम्परा में शामिल थे किन्तु आचार्य धरसेन पूर्वविद होते हुए भी पूर्वविदों की परम्परा में नहीं थे।

4. आचार्य गुणधर के समय में पूर्वों के आंशिक ज्ञान में उतनी कमी नहीं आई थी जितनी कमी आचार्य धरसेन के समय में आ गई थी।

5. आचार्य गुणधर की रचना अति-संक्षिप्त, बीजपद वाली, अतिगहन और सारयुक्त है जिससे उनके सूत्रकार होने में कोई संदेह ही नहीं रहता।

6. समय की दृष्टि से आचार्य गुणधर आचार्य धरसेन की अपेक्षा पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार आचार्य गुणधर आचार्य धरसेन की अपेक्षा पूर्ववर्ती, अधिक ज्ञानी और श्रुतधर-आचार्य सिद्ध होते हैं।

समय निर्धारण—श्री लोहाचार्य आठ अंग के धारी आचार्य थे। इतिहास[2] बद्ध सूची के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इनके बाद एक अंगधारी विनयदत्त श्रीदत्त नं.1, शिवदत्त और अर्हद्दत्त ये चार आचार्य हुए जो समकालीन थे। इनके बाद अर्हद्बलि नामक आचार्य एक अंग के अंशधारी थे जो वीर निर्वाण के बाद 565-593 में हुए। इन्होंने पंचवर्षीय युगप्रतिक्रमण के समय दक्षिण देश की महिमा नगरी में एक महान यति-सम्मेलन किया था। उसी समय साधुओं के मध्य पक्षपात की भावना से अवगत होकर उन्होंने नन्दि, वीर, अपराजित, गुणधर, सिंह आदि नामों से अनेक संघ स्थापित किये थे जिससे पारस्परिक वात्सल्यभाव में कमी न आ सके। तात्पर्य यह है कि आचार्य गुणधर उस समय तक इतने ख्यातिप्राप्त हो चुके थे कि उनके नाम पर ही संघ का नामकरण किया गया। इससे आचार्य गुणधर आचार्य अर्हद्बलि के पूर्ववर्ती नहीं तो समकालीन अवश्य ठहरते हैं।

यदि यह माना जाये कि उस यति सम्मेलन में शामिल होने वाले साधुओं में आचार्य गुणधर नहीं बल्कि उनके संघ के यतिगण शामिल हुए थे, तो आचार्य गुणधर आचार्य अर्हद्बलि से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। डा. नेमिचन्द्रशास्त्री ने उनकी ख्याति प्राप्त करने में सौ वर्ष का समयान्तराल मानकर वीर निर्वाण सं. 465 अर्थात् वि. पूर्व प्रथम शताब्दी का स्वीकार किया है[3]। इस प्रकार आचार्य गुणधर का समय आचार्य धरसेन से दो सौ वर्ष पूर्व ठहरता है।

आचार्य गुणधर को पेज्जदोसपाहुड का ज्ञान था जिसका उपसंहार उन्होंने 180 गाथाओं में किया था तथा जिसका पठन-पाठन मौखिक रूप से कितनी ही पीढ़ियों तक चलता रहा, जो परम्परा से आर्यमक्षु एवं नागहस्ती

आचार्य को प्राप्त हुआ[4]।

आचार्य गुणधर का कसायपाहुड षट्खण्डागम से पूर्ववर्ती श्रुतग्रन्थ है क्योंकि उनके समय में महाकम्मपयडिपाहुड का पठन-पाठन अच्छी तरह प्रचलित था इसीलिए उन्होंने उक्त विषय से सम्बन्धित व्याख्या पर केवल पृच्छारूप गाथासूत्र ही कहे।

उपर्युक्त आधार पर यह स्पष्ट होता है कि आचार्य गुणधर वि. पूर्व प्रथम शताब्दी के हैं, आचार्य धरसेन के समकालीन नहीं क्योंकि षट्खण्डागम की भाषा कसायपाहुड की भाषा की अपेक्षा अर्वाचीन मानी गई है।

सूत्रग्रन्थ की रचना

श्रुतधर आचार्य श्री गुणधर ने कसायपाहुडसुत्त की रचना की है। उन्होंने प्रारम्भ में ही ग्रन्थ निरूपण की प्रतिज्ञा के समय गाथाओं को "सुत्तगाथा" कहा है और वे पन्द्रह अर्थाधिकारों में विभक्त हैं।[5] चूंकि यह ग्रन्थ सूत्र शैली में प्रणीत हैं, अतः कहा जा सकता है कि आचार्यप्रवर गुणधर ने अत्यन्त गहन, विस्तृत और जटिल विषय को अत्यन्त संक्षेप और बीजपद रूप में प्रस्तुत कर सूत्र-परम्परा का प्रारम्भ किया था।

समस्त आगम बारह अंगप्रविष्ट अर्थात् द्वादशांग रूप हैं। इसमें बारहवें दृष्टिवाद अंग के परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका ये पांच भेद हैं। इसमें पूर्वगत के चौदह भेद हैं। इसके पांचवें ज्ञानप्रवाद नामक पूर्व के 12 वस्तुगत अवान्तर अधिकार हैं। प्रत्येक अधिकार के बीस-बीस पाहुड हैं। इनमें दसवां वस्तुगत अधिकार के अन्तर्गत आने वाले बीस पाहुडों में से तीसरे पाहुड का नाम पेज्जदोसपाहुड है, उसी से ही इस कसायपाहुडसुत्त नामक आगमग्रन्थ की उत्पत्ति हुई है। ऐसा इस ग्रन्थ की प्रथम गाथा से स्पष्ट होता है[6]। कसायपाहुडसुत्त का ही सामान्य प्रचलित नाम "कषायप्राभृत" है। "जो अर्थपदों से स्फुट, सम्पृक्त या आभृत अर्थात् भरपूर हो, उसे प्राभृत कहते हैं[7]।" राग और द्वेष के प्रतिपादक कषाय सम्बन्धी अर्थपदों से भरपूर होने के कारण इस आगमग्रन्थ को "कषायप्राभृत" कहा जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 180 गाथाओं एवं 15 अर्थाधिकारों में निबद्ध है जबकि इसमें कुल 233 गाथायें हैं। शेष 33 गाथायें कोई नागहस्ती आचार्य द्वारा रची हुई कहते हैं, तो कोई कहते हैं कि स्वयं आचार्य गुणधर ने प्रस्तुत ग्रन्थ 180 गाथा में निबद्ध करने के बाद उपसंहार या परिशिष्ट के रूप में ये गाथायें

रची हैं। इसका समाधान आचार्य वीरसेनस्वामी ने यह दिया है कि— "सम्बन्ध गाथाओं, अद्धा-परिमाण निर्देश करने वाली गाथाओं और संक्रम विषयक गाथाओं के बिना 180 गाथायें ही गुणधर भट्टारक ने कही हैं, ऐसा माना जाये तो उनके अज्ञानता का प्रसंग प्राप्त होता है, इसलिए पूर्वोक्त अर्थ ही ग्रहण करना चाहिये[8]।" स्पष्ट है कि समस्त 233 गाथायें आचार्य गुणधर रचित हैं, ऐसा स्वीकार करना चाहिये।

इस सूत्रग्रन्थ की चूर्णिसूत्र की रचना आचार्य यतिवृषभ कृत जयधवल नाम से विख्यात है। इसकी विस्तृत टीका आचार्य वीरसेनस्वामी ने की है। वस्तुतः श्रुताचार्य गुण धर के अतिरिक्त इन दोनों आचार्यों का हम पर परमोपकार है जिन्होंने इस दुरुह सूत्रग्रन्थ को समझने योग्य बनाया है तथा हमें आत्महित हेतु प्रेरित किया है।

पेज्जदोस पाहुड अर्थात् कषायप्राभृत

राग, द्वेष और मोह संसार भ्रमण के मूल कारण हैं। प्रभेदों की अपेक्षा तो यह 28 प्रकार का है किन्तु सामान्यता 14 अन्तरंग परिग्रहों में ये गर्भित हैं। इन अन्तरंग परिग्रह को छोड़ने हेतु दस बाह्य परिग्रहों को छोड़ा जाता है किन्तु बाह्य परिग्रहों के त्यागने पर भी यदि अन्तरंग परिग्रह नहीं छूटता है तो संसार भ्रमण भी नहीं छूटता। जैसे बबूल के कांटों से बचने के लिये टहनियां तोड़ने की अपेक्षा उसके मूल पर ही कुठाराघात किया जाता है, वैसे ही आचार्य ने इस संसार का मूल रागादि पर ही ध्यान केन्द्रित कर उसका विशद वर्णन इस ग्रन्थ में किया है। यह पन्द्रह अर्थाधिकारों में विभक्त है : 1. प्रयोद्वेष विभक्ति, 2. स्थितिविभक्ति, 3. अनुभागविभक्ति, 4. अकर्मबन्ध की अपेक्षा बन्धक, 5. कर्म- बन्ध की अपेक्षा बन्धक अर्थात् संक्रामक, 6. वेदक, 7. उपयोग, 8. चतुःस्थान, 9. व्यंजन, 10. दर्शनमोहोपशामना, 11. दर्शनमोहक्षपणा, 12. देशविरति, 13. सकल-संयम, 14. चारित्रमोहोपशामना और 15. चारित्रमोहक्षपणा[9]।" ये अर्थाधिकार दर्शन एवं चारित्रमोहनीय इन दोनों मोहकर्म प्रकृतियों से सम्बन्धित हैं। अद्धापरिमाण नामक काल प्रतिपादक तथा समुद्घात प्रतिपादक पश्चिमस्कन्ध अर्थाधिकार उक्त पन्द्रह अर्थाधिकारों में ही प्रतिबद्ध समझना चाहिये।

आत्महित में बाधक होने से चारों कषाय ही द्वेषरूप/अनुपादेय हैं किन्तु नैगम व संग्रह नयापेक्षा क्रोध व मान तो द्वबेषरूप और माया व लोभ प्रेयरूप

हैं। नव नोकषायों में से अरति, शोक, भय व जुगुप्सा द्वेषरूप तथा हास्य, रति व तीनों वेद प्रेय रूप हैं। कमास्रव के निमित्त होने पर भी वर्तमान व भविष्य काल की अपेक्षा द्वेष व प्रेय रूप कहा गया है। व्यवहारनय से लोभकषाय प्रेयरूप व शेष द्वेष रूप ही हैं। स्त्रीवेद एवं पुरुषवेद प्रेयरूप व शेष द्वेषरूप हैं। ऋजुसूत्रनय की दृष्टि में क्रोध द्वेषरूप, लोभ प्रेयरूप तथा मान और माया नो द्वेष व नो प्रेय रूप हैं क्योंकि इनके करने से वर्तमान में न तो अंगसंताप, चित्तवैकल्य आदि होता है और न हर्ष की उत्पत्ति देखी जाती है। शब्दनय से चारों कषाय द्वेषरूप हैं तथा प्रथम तीनों कषाय नोप्रेय व लोभ कथंचित् प्रेय है। यह महाधिकार रूप में वर्णित है जिसमें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश, क्षीणाक्षीण और स्थितिक ये छह अर्थाधिकार हैं। किन्तु इनमें अधिकार संख्या नहीं दी हुई है जबकि गाथा 13-14 में स्थिति व अनुभाग को क्रमशः दूसरा व तीसरा अर्थाधिकार कहा गया है। फिर भी इनका वर्णन स्वतंत्र अधिकार के सदृश किया गया है।

कर्म प्रकृति तो आठ हैं किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में एक मोहनीय कर्म के भेद-उत्तरभेदों का वर्णन किया गया है। स्थितिविभक्ति में मोहनीय कर्म की 28 भेदों की काल-मर्यादा को, अनुभागविभक्ति में उनके फल देने की शक्ति को तथा प्रदेशविभक्ति में मोहनीयकर्म के हिस्से में आने वाले कर्म-प्रदेशों को वर्णित किया गया है। कर्मों की स्थिति व अनुभाग की वृद्धि को उत्कर्षण, घटने को अपकर्षण, अन्य उत्तर रूप प्रकृति रूप परिणम जाने को संक्रमण, परिपाक काल पाकर फल देने को उदय और परिपाक काल के पूर्व तपादि द्वारा उदय में ला देने को उदीरणा कहते हैं। जो कर्म-प्रदेश उत्कर्षण, अपकर्षण संक्रमण और उदय के योग्य होते हैं, उन्हें क्षीणस्थितिक और जो अयोग्य होते हैं उन्हें अक्षीणस्थितिक कहते हैं। अनेक प्रकार की स्थितियों को प्राप्त होने वाले प्रदेशाग्रों अर्थात् कर्मपरमाणुओं को स्थितिक या स्थिति-प्राप्तक कहते हैं। यह चतुर्विध है—1. जो कर्म-प्रदेशाग्र बन्ध समय से लेकर कर्मस्थितिप्रमाण काल तक सत्ता में रहकर अपनी कर्म-स्थिति के अंतिम समय में उदय में दिखाई देता है, उसे उत्कृष्टस्थितिक कहते हैं 2. जो कर्म प्रदेशाग्र बंधने के समय में ही जिस स्थिति में निषिक्त कर दिये गये थे या अपवर्तित कर दिये गये थे, वे उस की स्थिति में होकर यदि उदय में दिखाई देते हैं तो उन्हें निषेकस्थितिक कहते हैं। 3. जो कर्म प्रदेशाग्र बन्ध के समय जिस स्थिति

में निषिक्त कर दिये गये थे अपवर्तना या उदवर्तना को प्राप्त न होकर सत्ता में तदवस्थ रहते हुए ही यथाक्रम से उस ही स्थिति में होकर उदय दिखाई दे, उसे यथानिषेक स्थितिक कहते हैं तथा 4. जो कर्म-प्रदेशाग्र बंधने के अनन्तर जहां कहीं भी जिस किसी स्थिति में होकर उदय को प्राप्त होता है, उसे उदयस्थितिक कहते हैं[10]।" अनन्तर इनके स्वामित्व का कथन किया गया है।

मिथ्यात्व आदि परिणामों के वश से कर्मयोग्य पौद्गलिक स्कन्धों का कर्म रूप परिणत होकर आत्मप्रदेशों के साथ एकक्षेत्रावगाह रूप से संश्लेष सम्बन्ध को प्राप्त होना बन्ध है। बन्ध अर्थाधिकार में एक प्रश्नात्मक गाथा आई है जिसका विशद वर्णन जयधवल में आचार्य वीरसेनस्वामी ने किया है।

संक्रम-अर्थाधिकार में बताया गया है कि मूल प्रकृतियों का तो परस्पर में संक्रम नहीं होता किन्तु उनकी उत्तर प्रकृतियों में संक्रमण होता है। संक्रमण नाम बदलने-परिवर्तित होने का है। मोहनीय की दोनों दर्शन व चारित्र नामक उत्तरप्रकृति मूल के समान मानी गई है। इसी प्रकार आयुकर्म की उत्तरप्रकृति मूल के समान है अर्थात् इनमें भी परस्पर संक्रमण नहीं होता। कर्मसंक्रम प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग की अपेक्षा चतुर्विध है किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में अन्य सात कर्मों के संक्रम का अध्ययन न कर मोहनीय की 28 प्रकृतियों की अपेक्षा अध्ययन किया गया है। यह संक्रमण कर्म की सजातीय उत्तरप्रकृति में हो तो प्रकृति-संक्रम कहते हैं। जैसे साता का असाता रूप या सम्यक्त्व का मिथ्यात्व रूप या अनन्तानुबंधी का अप्रत्याख्यान रूप हो जाना आदि। कर्मों की स्थिति का संक्रमण अपवर्तना, उद्वर्तना और प्रकृतिरूप परिणमन से होता है ऐसा उत्तरप्रकृतियों में होता है किन्तु मूल प्रकृतियों में अपवर्तना और उदवर्तना रूप संक्रमण ही होता है। इसी प्रकार अनुभाग और प्रदेश संक्रमण के विषय में जानना चाहिये। इन सबका विशद वर्णन उपर्युक्त स्वतंत्र अधिकारों में किया गया है।

वेदक अर्थाधिकार में उदय और उदीरणा नामक दो अनुयोगद्वारों के माध्यम से मोहनीय कर्म के वेदन का वर्णन किया गया है। कर्म का परिपाक काल में आकर फल देना उदय और परिपाक काल के पूर्व ही तपादि के द्वारा कर्म का उदय में आकर फल देना उदीरणा कहलाता है।

उपयोग-अर्थाधिकार में एक जीव का किस कषाय में उपयोग कितने काल तक होता है, सो जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहुर्त है। इनका अल्पबहुत्व

बतलाया गया है। इसमें कषायों के परिवर्तन-वार, कषायोपयोग अल्पबहुत्व, कषायोपयुक्त-भव अल्पबहुत्व, कषायोपयोग वर्गणा आदि का वर्णन है।

चतुःस्थान अर्थाधिकार में प्रत्येक कषाय के चार-चार स्थानों का वर्णन है। काल की अपेक्षा क्रोध पर्वत, पृथ्वी, बालू और पानी में खींची गई रेखा के समान काल तक ठहरता है। भावों की कठोरता के सदृश मानकषाय शैल, अस्थि, दारू और लता के सदृश पाया जाता है। कुटिल भावों की तीव्रता-मन्दता की अपेक्षा माया कषाय बाँस की जड़, मेढे के सींग, गाय के मूत्र और दातुन के समान कम-कम कुटिलता लिए हुए होता है। तथा अनुभाग की हीनाधिकता की अपेक्षा लोभ कषाय भी कृमिराग सदृश अर्थात् अत्यन्त पक्के और किसी भी प्रकार न छूटने वाले रंग से रंगे वस्त्र के समान, अक्षमल अर्थात् चक्का पर लगाये गये ओंगन के समान, धूलि के लेप के समान और कच्चे रंग से रंगे गये वस्त्र के समान चतुःस्थानीय होता है। घातिया कर्म लता, दारू, अस्थि और पर्वत के समान अधिक-अधिक कठोर होता हैं इनका प्रदेश क्रमशः अनन्तगुणित हीन-हीन है और अनुभाग क्रमशः अनन्तगुणित अधिक-अधिक है। लता समान अनुभाग देशघाती और अस्थि व शैल समान अनुभाग सर्वघाती ही होता है किन्तु दारू समान अनुभाग में उपरित अनन्त बहुभाग तो सर्वघाती और अधस्तन अनन्तवां भाग देशघाती होता है।

व्यंजन अर्थाधिकार में क्रोधादि चारों कषायों के पर्यायवाची नाम दिये गये हैं। कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, झंझा, द्वेष और विषाद ये क्रोध के, मान मद, दर्प, स्तम्भ, उत्कर्ष, प्रकर्ष, समुत्कर्ष, आत्मोत्कर्ष, परिभव और उत्सिक्त ये मान के; सातियोग, निकृति, वंचना, अनृजुता, ग्रहण, मनोज्ञमार्गण, कल्क, कुहक, गूहन और छन्न ये माया है तथा काम, राग, निदान, छन्द, स्वत, प्रेय, दोष, स्नेह, अनुराग, आशा, इच्छा, मूर्च्छा, गृद्धि, साशता, शाश्वत, प्रार्थना, लालसा, अविरति, तृष्णा, विद्या और जिह्वा ये लोभ कषाय के एकार्थक नाम हैं[11]।

उपर्युक्त सभी अधिकारों का अध्ययन ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम तथा उपयोग की स्थिरता के लिए करना चाहिये क्योंकि स्वाध्याय में प्रतिसमय असंख्यातगुणित रूप से कर्मों की निर्जरा होती है। किन्तु आत्महित के लिए सम्यक्त्व की प्राप्ति आवश्यक है जिसके प्राप्त होने पर संसार-छेद की सीमा तय हो जाती है। सम्यक्त्व अर्थाधिकार में दर्शनमोह के उपशम की प्रक्रिया

वर्णित है। दर्शनमोहोपशामक संज्ञी, पंचेन्द्रिय और पर्याप्तक तो होना ही चाहिये। इसके अतिरिक्त निजशुद्धात्मा को ध्येय बनाकर अन्तर्मुहूर्त पूर्व से ही अनन्तगुणी विशुद्धि से विशुद्ध होता हुआ आता है और यह स्वाभाविक ही है क्योंकि वह अतिदुस्तर, मिथ्यात्व गर्त से निज उद्धारक लब्धियों की सामर्थ्य से समन्वित, प्रति समय संवेग-निर्वेद द्वारा हर्षातिरेक से युक्त और अलब्धपूर्व सम्यकत्वरत्न की प्राप्ति का इच्छुक होता है। चारों कषायों में से कोई कषाय हीयमान और कोई सी शुभलेश्या वर्धमान होती है उसके कोई एक वेद, चारों मन व चारों वचन योगों में से कोई एक मनोयोग व वचनयोग तथा औदारिक या वैक्रियक काययोग होता है। उपशमन के प्रारम्भ में साकारोपयोग होता है किन्तु निष्ठापक व मध्यवर्ती जीव साकारोपयोगी भी हो सकता है और निराकारापयोगी भी हो सकता है। अनादि मिथ्यादृष्टि के सम्यक्त्व का लाभ सर्वोमशम से ही होता है किन्तु अनादि-सम-मिथ्यादृष्टि भी सर्वोपशम से सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है। सम्यक्त्व से च्युत हो मिथ्यात्व को प्राप्त होकर दोनों प्रकृति के उद्वेलक अनादिसम-सादि-मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं। जो पल्योपम के असंख्यातवें काल के अंदर अर्थात् दोनों प्रकृति की उद्वेलना न कर जल्दी ही बारम्बार सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले जीव देशोपशम से सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है। दर्शनमोह का उपशामक जीव निर्व्याघात होता है और उस समय उसके मिथ्यात्ववेदनीयकर्म का उदय रहता है और तन्निमित्तक बंध भी होता रहता है। उपशमसम्यक्त्व का काल समाप्त होने पर यदि सम्यक्त्वप्रकृति उदय में रहती है। तो वेदकसम्यग्दृष्टि, मिश्रप्रकृति के उदय में आने पर सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यात्व के उदय में आने पर मिथ्यादृष्टि बन जाता है। यदि उपशमसम्यक्त्वकाल में एक समय से छह आवलीकाल शेष रहने पर अनन्तानुबंधी किसी कषाय का उदय आ जाये तो वह सासादनसम्यग्दृष्टि कहलाता है। "सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का तो नियम से श्रद्धान करता ही है किन्तु कदाचित् अज्ञानवश सद्भूत अर्थ को स्वयं नहीं जानता हुआ गुरु के नियोग से असद्भूत अर्थ का भी श्रद्धान करता है[12]।" किन्तु अविसंवादी सूत्रान्तर से समझने/समझाये जाने पर भी वह यदि अपने दुराग्रह को नहीं छोड़ता है तो वह जीव तत्काल से मिथ्यादृष्टि हो जाता है। यह इस अधिकार का संक्षिप्त है। विशेष जिज्ञासुओं के लिए जयधवल पुस्तक 12 और 13 का अध्ययन करना चाहिये।

एक बार सम्यक्त्व प्राप्त कर लेने के बाद यह जीव अर्द्ध-पुद्गल परावर्तन काल से अधिक संसार-भ्रमण नहीं करता और यदि वेदकसम्यक्त्व कर ले तो उसके सद्भाव में छह या सात भव में मुक्त हो जाता है। किन्तु दर्शन मोह का क्षय कर लेने पर वह जीव नियम से अन्य तीन भवों के अंदर ही मुक्त हो जाता है। दर्शनमोह का क्षपकजीव नियम से कर्मभूमिज, मनुष्यगति में वर्तमान और शुभलेश्या में विद्यमान सम्यग्दृष्टि होता है। इस जबरदस्त कर्म को क्षय करने के लिए जितने विशुद्ध परिणामों को आवश्यकता होती है, वे तीर्थंकर के समवशरण में या केवली भगवान की गंधकुटी के अथवा श्रुतकेवली के पादमूल के अतिरिक्त कहीं भी प्राप्त नहीं होते। अतः उनका पादमूल आवश्यक है। तीनों करण करता हुआ वह क्षपक मिथ्यात्वकर्म के बाद सम्यग्मिमिथ्यात्त्व का सर्वद्रव्य सम्यक्त्वप्रकृति में संक्रमण कर देता है, तब उसके "प्रस्थापक" संज्ञा होती है और सम्यक्त्वप्रकृति का अंतिम स्थितिकाण्डक समाप्त होने के समय से लेकर जब तक उसकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण गुणश्रेणी गोपुच्छाओं को गलाता है, तब तक उसकी "कृतकृत्यवेदक" संज्ञा होती है,[13] इस काल के भीतर उस जीव का मरण भी हो सकता है और लेश्या परिवर्तन भी। अतः वह मरणकर चारों गतियों में उसका निष्ठापक होता है। प्रथमसमयवर्ती कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि यदि मरता है तो नियम से देवों में पैदा होता है। और यदि वह बद्धायुष्क है तो वह नियम से अन्तर्मुहुर्तकाल तक कृतकृत्यवेदक रहता है क्योंकि इतने काल के बिना उन गतियों में उत्पन्न होने के योग्य लेश्या का परिवर्तन संभव नहीं हैं[14]। वह मरकर नरकों में प्रथम नरक के भीतर ही, भोगभूमि में पुरूषवेदी मनुष्य या तिर्यंचों में या सौधर्मादि कल्पवासी देवों में ही उत्पन्न होकर दर्शनमोह की क्षपणा पूर्ण करता है। इस विषय का समस्त अध्ययन इस अधिकार में किया गया है।

कर्मों की सर्वोपशामना या क्षपणा में ही तीनों करण होते हैं क्षयोपशम में केवल दो ही करण होते हैं, तीसरा अनिवृत्तिकरण नहीं होता ऐसा नियम है। अतः संयमासंयम को प्राप्त होने वाले वेदकसम्यग्दृष्टि या वेदकप्रायोग्य-मिथ्यादृष्टि दो करण करके या अनादि-मिथ्यादृष्टि किन्तु द्रव्य-एकदेशव्रती तीनों करण करके ही संयमासंयमलब्धि को प्राप्त होते हैं और उनका पंचम गुणस्थान होता है। इसका जघन्य काल अन्तर्मुहुर्त और

उत्कृष्ट काल आठ वर्ष, अन्तर्मुहुर्त कम एक पूर्वकोटि वर्ष है। यदि कोई अति संकलेशवश संयमासंयम से च्युत हो मिथ्यात्व या असंयम को प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त काल या अविनष्ट वेदक-प्रयोग्यरूप काल से पुनः संयमासंयम को प्राप्त करता है तो उसको दोनों करण होते हैं क्योंकि उसके स्थिति व अनुभाग में वृद्धि हो जाती है। किन्तु स्थिति व अनुभाग में वृद्धि हुए बिना लघु अन्तर्मुहुर्त के द्वारा वापिस आकर संयमासंयम को प्राप्त होता है तो उसके कोई करण नहीं होते[15]। यह क्षायोपशमिक भाव है क्योंकि चार संज्वलनों एवं नव नोकषायों में से किसी एक भी कषाय के उदय होने से होता है[16] अर्थात् इनके सर्वघाती स्पर्धकों के उदयाभावी क्षय से तथा इन्हीं के देशघाती स्पर्धकों के उदय से होता है। यदि प्रत्याख्यानावरण कषाय का वेदन करता हुआ संयतासंयत शेष चारित्रमोहनीय प्रकृतियों का वेदन न करे, तो संयमासंयमलब्धि क्षयिक बन जायें[17]। स्पष्ट है कि यह क्षायोपशमिक भाव है।

अनादि मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि तीनों करण करके और चौथे व पांचवे गुण स्थानवर्ती तथा पुनः पुनः संयम को प्राप्त करने वाले वेदकसम्यग्दृष्टि या वेदक-प्रायोग्य मिथ्यादृष्टि पूर्व के दो करण करके संयमलब्धि को प्राप्त होते हैं। जो जीव संयम से च्युत होकर असंयम को प्राप्त होकर यदि अवस्थित या अनवर्धित स्थितिसत्व के साथ पुनः संयम को प्राप्त होता है तो उस जीव के न अपूर्वकरण होता है, न स्थितिघात होता है और न अनुभागघात होता है[18]। अकर्मभूमिज अर्थात् मलेच्छखण्डज भी दीक्षा धारण के योग्य होते हैं और वे भी संयमलब्धि को प्राप्त हो सकते हैं[19]। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आर्यिकायें संयमलब्धि को प्राप्त नहीं हो सकतीं, अतः उन्हें संयमी नहीं कहा जा सकता। सम्यग्दृष्टि दिगम्बर मुद्राधारी मुनि ही संयमलब्धि का पात्र होता है। जो आर्यिकाओं को उपचार से संयमी कहा जाता है सो उपचार सत्य/यथार्थ नहीं होता[20]। वीतरागियों के चारित्रलब्धि में जघन्य/उत्कृष्टपना नहीं पाया जाता क्योंकि कषायों का उदय ही परिणामों में तीव्रता/मन्दता पैदा करता है। जिनके कषायों का सर्वथा अभाव है उनके परिणामों में स्थिरता है कारण जघन्य या उत्कृष्टपना पाया जाना संभव नहीं है[21]। इन सबका विस्तृत वर्णन संयमलब्धि-अर्थाधिकार किया गया है।

चारित्रमोहोपशामना-अर्थाधिकार में उपशमश्रेणी पर आरोहक का विशद वर्णन है। वेदकसम्यग्दृष्टि तीनों करण करके सर्वप्रथम अनन्तानुबंधी कषाय

का विसंयोजन करता है। यहां अन्तरकरण नहीं होता। फिर अन्तर्मुहुर्त विश्राम कर पुनः तीनों करण करके एक अन्तर्मुहूर्तकाल तक दर्शनमोह को उपशमाता है। इसके भी अन्तरकरण नहीं होता। यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टि है तो द्वितीयोपशम नहीं करना पड़ता। कालक्षय से पतमान-उपशामक जिस क्रम से चढ़ा था, उसी क्रम से गिरता है। किन्तु आरोहक के नवीन बंधने वाले कर्मों की उदीरणा बंधावली के छह आवलीकाल के बाद ही होती थी, पतमान-उपशामक के यह नियम न होकर बंधावली के बाद ही बंधे हुए कर्मों की उदीरणा होने लगती है[22]—यह नियम हैं। पतमान-उपशामक उपशमकाल के भीतर असंयम, संयमासंयम और छह आवलियों के शेष रहने पर सासादनसम्यकत्व को भी प्राप्त हो सकता है। यदि सासादन में मरण करता है तो नियम से देवगति में ही जाता है क्योंकि पूर्व में अन्य आयु का बंध करने वाला श्रेणी आरोहण नहीं कर सकता-ऐसा नियम है।

क्षपक श्रेणी पर आरोहण करने वाले की प्रक्रिया का विशद वर्णन चारित्र-मोहक्षपणा-अर्थाधिकार में किया गया है। चारित्रमोह का क्षय कर देने पर शेष घातिया कर्मों का अभाव ध्यान के बल पर स्वतः हो जाता है। इसके बाद आचार्य महाराज ने पश्चिमस्कन्ध अर्थाधिकार भी लिखा है जिसमें केवलीभगवान की समुद्घातगत क्रियाओं का वर्णन किया गया है। सयोगी जिन आयुकर्म के अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रह जाने पर समुद्घात करने के प्रति अभिमुख होते हैं, जिसे आवर्जितकरण कहते हैं। फिर प्रथम समय में दण्ड समुद्घात करते हैं जिसमें कर्मों की स्थिति के असंख्यात बहुभागों तथा अवशिष्ट अनुभाग के अप्रशस्त अनुभाग के अनन्त बहुघात का घात करते हैं फिर दूसरे समय में कपाट-समुद्घात करते हैं जिसमें अघातिया कर्मों की शेष स्थिति के असंख्यात और अवशिष्ट अनुभाग सम्बन्धी अप्रशस्त अनुभागों के अनन्त बहुभाग का घात करते हैं। फिर तीसरे समय में प्रतरसमुद्घात में कपाट-समुद्घात के समान ही निर्जरा करते हैं। चौथे समय में लोकपूरण समुद्घात करने पर अघातिया कर्मों की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति को स्थापित करते हैं जो आयुकर्म की स्थिति से संख्यातगुणी हैं। फिर आत्मप्रदेशों को संकोच करते हैं जिसके प्रथम समय से लेकर आगे के समयों में शेष अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति के संख्यात और अनुभाग के अनन्त बहुभाग का नाश करते हैं। समुद्घात के उपसंहार के अन्तर्मुहुर्त बाद योगों का निरोध करते हैं।

जिस समय वे अन्तर्मुहुर्त काल तक कृष्टिगत योगवाले होते हैं, उसी समय सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यान को ध्याते हैं और इस तेरहवें गुणस्थान के अंतिम समय में कृष्टियों के असंख्यात बहुभाग का घात करते हैं। इस प्रकार योग निरोध हो जाने पर आयु की स्थिति के समान स्थिति वाले अघातिया कर्म हो जाते हैं। फिर वे भगवान अयोगकेवली बनकर अन्तर्मुहुर्त काल तक शैलेशी अवस्था को प्राप्त होते हैं। इस अवस्था का काल पंच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण-प्रमाण हैं। उस समय वे अयोगि-जिन समुच्छन्नाक्रियानिवृत्तिध्यान को ध्याते हैं और शैलेशी काल नष्ट हो जाने पर सर्व कर्मों से विप्रमुक्त होकर वे एक समय में सिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार संसार परिभ्रमण से व्याकुल संसारी-जन जो सच्चे व अविनाशीक सुख की खोज में हैं, परद्रव्यों, परजीवों व परभावों से पृथक् निज स्वरूप जानकर/मानकर आत्मावलम्बी बनते हैं। वे ही वस्तुतः संसार परिभ्रमण से मुक्त होकर उस श्रद्धेय आत्मतत्व को प्राप्त करते हुए अनन्तकाल तक अविनाशीक सुख का अनुभवन करते हैं। ऐसा जानकर हमें कषायों को सतत घटाने के प्रति उन्मुख होना चाहिए, यही आचार्य का उपदेश है, यही आदेश है।

रीडर एवं अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग — **डा. सुपार्श्व कुमार जैन**
16, जैन कालिज क्वाटर्स
नेहरू रोड, **बड़ौत**

संदर्भ

1. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-1, पृ. 331-332
2. वही, पृ. 332
3. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा 2 ।30
4. जयधवल, भाग 1, पृ. 88
5. कसायपाहुणसुत्त, गाथा-2
6. वही, गाथा-1
7. वही, गाथा 14 ।85-86, पृ. 29
8. जयधवल, भाग-1, पृ. 183
9. कसायपाहुणसत्त, गा. 13-14
10. वही, स्थितिक अधिकार, गा. 4-11, पृ. 235-236

11. वही, गा. 86-90
12. वही, गा. (54), 107, पृ. 637
13. वही. गा. 114 ।74-80, पृ. 652-653
14. वही, गा. 114 ।81-85, 87-89, पृ. 653-654
15. वही, गा. 115 ।28-32, पृ. 662-664
16. वही, 86-90, पृ. 667
17. वही
18. वही, गा. 115 ।38, पृ. 671-672
19. वही, गा. 115 ।38, पृ. 673
20. धवला 14 ।5, 6, 16 ।13
21. कसायपाहुणसुत्त, 115 ।66, पृ. 674
22. वही, गा. 123 ।479-481, पृ. 721

गोम्मटसार के प्रणेता सिद्धान्तचक्रवर्ती

नेमिचन्द्राचार्य : एक अध्ययन

समीचीन ज्ञान की करणानुयोगपद्धति से प्रणीत महान् गम्भीर ग्रन्थ गोम्मटसार के नाम सुनने से एवं उसके अध्ययन करने से यह जिज्ञासा स्वाभाविक रूप से हो जाती है कि इस ग्रन्थ के रचयिता कौन से आचार्य हैं? कारण कि कृतित्व से व्यक्तित्व का अनुमान होता है और व्यक्तित्व की प्रमाणता से कृतित्व में प्रमाणता सिद्ध होती है। नीति यह है 'वक्ता की प्रमाणता से वचनों में प्रमाणता सिद्ध होती है।'

'गोम्मटसार' इस पवित्र नामकरण से ही इष्टदेव, गुरु एवं शिष्य के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का निश्चय हो जाता है। श्रीनेमिचन्द्राचार्य श्री गोम्मटदेव के परमभक्त थे, तथा गोम्मटराजा (चामुण्डराय) श्रीनेमिचन्द्र के परमशिष्य थे। नेमिचन्द्राचार्य के शुभ आदेश से, प्रविऽदेशीय प्रतापी राजा चामुण्डराय ने बाहुबलि स्वामी की उत्तुंग रम्य मूर्ति का निर्माण कराया और उसकी प्रतिष्ठा कराने का प्रयत्न किया। इस प्रतिष्ठा में सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य प्रतिष्ठाचार्य ने प्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न कराया।

ज्ञानपिपासु गोम्मटराजा ने अपने गुरुवर्य से श्रेष्ठ धर्मोपदेश देने की प्रार्थना की। प्रार्थना पर ध्यान देकर नेमिचन्द्राचार्य ने गोम्मटसार ग्रन्थ का प्रणयन किया। अतः उपर्युक्त कारणों से इस ग्रन्थ का नाम गोम्मटसार निश्चित किया। चामुण्डराय का जन्मकालिक नाम 'गोम्मट' रखा गया था। राज्यपद प्राप्त करने परं 'गोम्मटराय' इस नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस विषय में डा. ए. एन. उपाध्ये के विचार स्वरचित लेख में इस प्रकार है—

"चामुण्डराय का घरूनाम गोम्मट था। उनके इस नाम के कारण ही उनके द्वारा स्थापित बाहुबलि की मूर्ति गोम्मटेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुई। डा. उपाध्ये के अनुसार गोम्मटेश्वर का अर्थ है, चामुण्डराय का देवता। इसी कारण विन्ध्यगिरि जिस पर गोम्मटेश्वर की मूर्ति स्थित है, वह भी गोम्मट, गिरि कहा गया। इसी गोम्मट उपनामधारी चामुण्डराय के लिये नेमिचन्द्राचार्य

ने अपने गोम्मटसार नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसी से इस ग्रन्थ को 'गोम्मटसार' की संज्ञा दी गई है। अतएव यह स्पष्ट है कि गंगनरेश राजमल्लदेव के प्रधान सचिव और सेनापति चामुण्डराय का आचार्य नेमिचन्द्र के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।"।

(तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भा. 2 पृ. 421) श्रीबाहुबलि की प्रतिष्ठा के विषय में एक उद्धरण, स्तोत्र के अन्तर्गत उपलब्ध होता है वह इस प्रकार है :-

कलक्यब्दे षट्शताख्ये विनुतविभवसंवत्सरे मासि चैत्रे,
पंचम्पांशुक्लपक्षे दिनमाणिदिवसे कुम्भलग्ने सुयोगे।
सौभाग्ये हस्तनाम्नि प्रकटितभगणे सुप्रशस्तां चकार।

सौभाग्ये हस्तनामि प्रकटितभगणे सुन्प्रशस्तां चकार,
श्रीमच्चामुण्डराजो वेल्गुलनगरे गोम्मटेश प्रतिष्ठाम्।।

सारांश--कल्किसं (कलि सं., शक सं.) 600 में, विभवसम्वत्सर में, चैत्र शुक्ला पंचमी, रविवार को कुम्भलग्न, सौभाग्ययोग, मृगशिरानक्षत्र में श्रीचामुण्डराय ने वेल्गुलनगर (श्रवण वेल्गोल) नगर में प्रशस्त गोम्मटेश्वरमूर्ति की प्रतिष्ठा को सम्पन्न कराया। 96 हजार दीनार (32 रत्तीसुवर्ण सिक्का) का ग्राम मूर्ति के पूजन सुरक्षा हेतु प्रदान किया।

(श्रीबाहुबलि स्तुति, श्लोक 8) (गो. जी. का प्रस्तावना पृ. 13 पं. खूबचन्द्रजैन कृत, सन् 1916)।

गोम्मटसारग्रन्थ की रचना चामुण्डराय के निमित्त से हुई है। इस विषय के उल्लेख अनेक स्थानों पर प्राप्त होते हैं।

गोम्मटसार की श्रीचामुण्डरायकृत एक कर्नाटक वृत्ति, ग्रन्थकर्ता श्री नेमिचन्द्र जी सि. च. के समक्ष ही पूर्ण बन चुकी थी। उसी के अनुसार श्रीकेशववर्णीकृत एक संस्कृत टीका भी है। उसकी उत्थानिका में एक संस्कृतगद्य का उल्लेख है वह इस प्रकार है--

"श्रीमदप्रतिहत प्रभावस्याद्वाद शासन गुहाभ्यन्तरनिवासि-प्रवादिसिन्धुरसिंहायमान सिंहनन्दि नन्दित गंगवंशललाम-राजसर्वज्ञाद्यनेक गुणनामधेय-श्रीमद्राजमल्लदेव- महीवल्लभमहामात्मपदविराजमान-- रणरंगमल्लासहायपराक्रमगुणरत्नभूषणसम्यक्त्वरत्ननिलयादिविविधगुण नामसमासादित कीर्तिकान्त- श्रीमच्चामुण्डरायप्रश्नावतीर्णैकच--

त्वारिंशत्पदनामसत्त्वप्ररूपणद्वारेणाशेष विनेयजन निकुटम्ब ॥ सम्बोधनार्थं श्रीमन्नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक चक्रवर्ती समस्तसैद्धान्तिकजन प्रख्यातविशदयशाः विश्सालमतिरसौ भगवान्......गोम्मट् सारपंचसंग्रह प्रपंचमारचयंस्तदादौ निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्तिनिमित्तं.......देवताविशेषं नमस्करोति।"

उपरिकथित गोम्मटसार की संस्कृत टीका की उत्थानिका में जो संस्कृतगद्य का उल्लेख किया गया है उससे यह वृत्त ज्ञात होता है कि गोम्मटसार ग्रन्थ की रचना चामुण्डराय के प्रश्नानुसार सम्पन्न हुई है। इस विषय में निम्नलिखित जनश्रुति प्रसिद्ध है।

एक समय श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती षट्खण्डागम-धवलादि महासिद्धान्त ग्रन्थों में से किसी एक सिद्धान्त ग्रन्थ का स्वाध्याय कर रहे थे। उसी समय गुरु श्री नेमिचन्द्राचार्य का दर्शन करने के लिये श्रीचामुण्डराय आये। शिष्य को आते हुए देखकर नेमिचन्द्राचार्य ने स्वाध्याय करना बन्द कर दिया। जब चामुण्डराय गुरु जी को नमस्कार कर बैठ गये, तब उन्होंने पूछा, हे गुरुवर! आपने स्वाध्याय स्थगित क्यों कर दिया? तब गुरुवर्य ने उत्तर दिया कि श्रावक को इन सिद्धान्तग्रन्थों के श्रवण करने का अधिकार नहीं है। यह सुनकर चामुण्डराय ने कहा, गुरुवर्य! हम श्रावकों को इन महान् ग्रन्थों का ज्ञान कैसे हो सकेगा कृपाकर कोई उेसा उपाय कीजिये कि जिससे हम श्रावक भी इन महान् शास्त्रों का परिज्ञान कर सकें।यह सुनते ही श्रीनेमिचन्द्राचार्य ने उक्त धवलादि महान् ग्रन्थों का सारतत्त्व लेकर गोम्मटसार ग्रन्थ की रचना को 11वीं शती में पूर्ण कर दिया। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'पंचसंग्रह' भी है कारण कि इस ग्रन्थ में महाकर्मप्राभृत के सिद्धान्त सम्बन्धी (1) जीवस्थान, (2) क्षुद्रबन्ध, (3) बन्धस्वामी, (4) वेदनाखण्ड, (5) वर्गणाखण्ड इन पंचविषयों का वर्णन किया गया है। मूलग्रन्थ शौर सेनीप्राकृत में लिखा गया है। यद्यपि इस ग्रन्थ के मूल लेखक श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ही हैं तथापि कहीं-कहीं पर कोई कोई गाथा श्रीमाधवचन्द्र त्रैविद्यदेव ने भी लिखी हैं, यह वृत्त टीका में लिखी हुई गाथाओं की उत्थानिका के पठन से ही ज्ञात होता है। माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव, श्रीनेमिचन्द्र सि. च. के प्रधान शिष्यों में एक थे। ज्ञात होता है कि तीन विद्याओं के अधिपति होने के कारण ही आपको त्रैविद्यदेव का पद मिला होगा। इससे यह भी अनुमान कर लेना चाहिये कि श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की विद्वत्ता कितनी असाधारण थी।

गोम्मटसार षट्खण्डागम की परम्परा का ग्रन्थ है यह ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है (1) जीवकाण्ड, (2) कर्मकाण्ड। जीवकाण्ड में 734 गाथाओं में बीस-प्ररूपण के द्वारा जीवतत्त्व का वर्णन किया गया है। कर्मकाण्ड में 962 गाथाओं के माध्यम से कर्मसिद्धान्त का सूक्ष्मरीत्या वर्णन किया गया है।

यह ग्रन्थ इतना गंभीर और क्लिष्ट है कि इसकी निम्नलिखित टीका और व्याख्या होने पर भी यह सागर के समान गंभीर है। :—

(1) श्रीज्ञानभूषण मुनि के शिष्य श्रीनेमिचन्द्र सूरिकृत "जीवतत्त्व प्रदीपिका" नामक संस्कृतटीका (सम्पूर्ण)।

(2) श्री अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कृत 'मन्दप्रबोधिनी' नामक संस्कृतटीका (अपूर्ण)।

(3) श्री अभयचन्द्राचार्य के शिष्य केशववर्णीकृत संस्कृतटीका।

(4) श्रीचामुण्डराय कृत कर्नाटक वृति (पंजिका)।

(5) श्रीकेशववर्णी कृत कन्नड़वृत्ति टीका।

(6) पण्डितप्रवर टोडरमल्ल कृत 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका' नामक हिन्दी टीका।

(7) पं. खूबचन्द्र शास्त्रीकृत 'बालबोधिनी' नामक संक्षिप्त हिन्दी टीका।

(8) पं. मनोहर लाल शास्त्री कृत संक्षिप्त हिन्दी टीका।

(9) आर्यिका आदिमतीकृत 'सिद्धान्त ज्ञान दीपिका' नामक हिन्दी की विस्तृत टीका।

(10) पं. कैलाशचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री कृत, केशववर्णीकृत संस्कृत टीका के आधार पर नवीन हिन्दी विस्तृत टीका।

(11) ब्र. दौलतराम शास्त्री कृत हिन्दी पद्यानुवाद (अप्रकाशित)

(12) बैरिस्टर जुगमन्दिरदास कृत अंग्रेजी टीका।

(13) स्व. नेमिचन्द्रजी वकील उस्मानावाद कृत मराठी टीका।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रचर्ती नन्दिसंघ के देशीय गण के आचार्यों में से एक प्रमुख आचार्य थे। विक्रम की नवमी शती में षट्खण्डागम की धवला और जयधवला की टीकाओं के सृजन के अनन्तर इनका अध्ययन-अध्यापन देश में प्रारंभ हुआ। इन सिद्धान्तग्रन्थों के पारगामी विद्वान् एक उच्चकोटि के मनीषी देश में मान्य होने लगे। जब कुछ समय के पश्चात् समुद्र जैसे गम्भीर ये सिद्धान्त ग्रन्थ कठिन प्रतीत होने लगे तब इनके सारभाग को सरल एवं संक्षिप्त रूप से सृजन करने के लिये नेमिचन्द्राचार्य ने पुरुषार्थ किया। फलतः गोम्मटसार के नाम से विरचित इन ग्रन्थों के कारण ही नेमिचन्द्र को 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' का पद प्रदान किया गया।

सिद्धान्तशास्त्र के पारगामी विज्ञ को 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित करने की प्रथा उस समय से पूर्व भी भारत में प्रचलित थी। आचार्य वीरसेन ने स्वरचित जयधवला की प्रशस्ति में दर्शाया है कि 'भरतचक्रवर्ती की आज्ञा के समान जिनकी भारती षट्खण्डागम के अनुशीलन में स्खलित नही हुई'। अतः अनुमान किया जाता है कि वीरसेन स्वामी के समय से ही सिद्धान्तग्रन्थों के पारगामी विज्ञ को 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' का पद दिया जाने लगा था। नेमिचन्द्राचार्य निश्चय ही सिद्धान्तग्रन्थों के पारगामी मनीषी थे। इस कारण ही आपने षट्खण्डागम (धवलाटीका) का अनुशीलन कर गोम्मटसार ग्रन्थ और जयधवला टीका का परिशीलन कर लब्धिसार ग्रन्थ का सृजन किया है।

आपने गोम्मटसार कर्मकाण्ड में भी इसी विषय का संकेत किया है—

जह चक्केणयचक्की, छक्खण्डं साहियं अविग्घेण।
तह मइ-चक्केणमया, छक्खण्डं साहियं सम्मं।।

(गो. कर्मकाण्ड-गाथा 397)

सारांश

जिस प्रकार चक्रवर्ती अपने चक्ररत्न से भरतक्षेत्र के छह खण्डों को निर्विघ्नरूप से अपने आधीन करता है, उसी प्रकार मैंने (नेमिचन्द्र ने) अपनी बुद्धि रूपी चक्ररत्न से षट्खण्डों (षट्खण्डागम सिद्धान्त) को सम्यक्रीति से पारायण किया है।

इस कथन से कोई व्यक्ति नेमिचन्द्राचार्य के प्रति आत्मप्रशंसा या दोषारोपण सिद्ध नहीं होता है। यथार्थ में इस कथन का अभिप्राय यह है, कि षट्खण्डागम एक क्लिष्ट एवं गंभीर ग्रन्थ है उसका परिज्ञान करने के लिये हमारे समान ही कठोर एवं सतत पुरुषार्थ करना होगा, यह शिक्षा मानव समाज को रचनात्मक रूप से प्रदान की है।

नेमिचन्द्राचार्य के प्रधान गुरु श्री अभयनन्दी आचार्य प्रसिद्ध थे एवं गौणरूप से श्री वीरनन्दी और इन्द्रनन्दी भी कहे गये हैं अर्थात् गुरुत्रय के शिष्य नेमिचन्द्र आचार्य थे।

इस प्रकार आपने गुरुत्व को पूज्य मानकर एवं अपने को शिष्यत्व स्वीकृत कर, भगवान् महावीर की आचार्य परम्परा का यथार्थ रूप से निर्वाह किया है।

कर्नाटक प्रान्तीय आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती का समय अनेक प्रमाणों एवं प्रशस्तियों से परामर्श करने पर ई. सन् दशमशती का उत्तरार्ध या वि.सं. 11वीं शती का पूर्वार्ध सिद्ध होता है।

(तीर्थंकरमहावीर और उनकी आचार्य परम्परा: भा. 2; पृ. 422)

श्री नेमिचन्द्र सि.च. सिद्धान्तगगन के कलाधर थे। आपने अधोलिखित आगमग्रन्थों का सृजनकर सिद्धान्त की परम्परा को प्रवाहित किया।

(1) गोम्मटसार (जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड)

(2) त्रिलोकसार,

(3) लब्धिसार,

(4) क्षपणासार,

गोम्मटसार ग्रन्थ के मूलतः दो विभाग हैं (1) जीवकाण्ड, (2) कर्मकाण्ड। जीवकाण्ड में गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, 14 मार्गणा और उपयोग इन 20 प्ररूपणाओं के माध्यम से जीवों का विस्तृत वर्णन किया गया है। कर्मकाण्ड में जैनदर्शन के मौलिकतत्त्व का कर्मसिद्धान्त का विस्तृत वर्णन किया गया है। ग्रन्थकर्ता श्री नेमिचन्द्राचार्य साहित्य के भी श्रेष्ठ ज्ञाता थे उन्होंने जीवकाण्ड के प्रारंभ में शब्दालंकार और अर्थालंकार से अलंकृत जो मंगलाचरण किया है वह अनुभव करने योग्य इस प्रकार है :—

सिद्धं सुद्धं पणमिय, जिणिंदवरणेमिचंदमकलंकं।
गुणरयणभूसणुदयं, जीवस्स परूवणं वोच्छं।।1।।

तात्पर्य :—जो सिद्धदशा को या स्वात्मोपलब्धि को प्राप्त हो गया है, नय एवं से सिद्ध है, घाति चतुष्टय के अभाव होने से शुद्ध, मिथ्यात्व, राग, द्वेष आदि भावकर्मों के नाश से अकलंक हो गया है, जिसके सदा ही सम्यक्त्व, ज्ञान आदि गुणरूपी रत्नाभूषणों की कान्ति रहती है, इस प्रकार के श्रीजिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र तीर्थंकर को प्रणाम करके उस जीवप्ररूपण नामक ग्रन्थ का प्रणयन करता हूं, जो उपदेश द्वारा पूर्वाचार्य परम्परा से सिद्ध है, पूर्वापर विरोध आदि दोषों से रहित शुद्ध है, दूसरे की निन्दा आदि से रहित है, राग, द्वेष आदि से रहित निष्कलंक है, जिससे सम्यक्त्व, ज्ञान आदि गुणरूपी रत्नाभूषणों की प्राप्ति होती है, जो विकथा आदि की तरह, राग-द्वेष का कारण नहीं है। पूर्व में श्री नेमितीर्थंकर के पश्चात् ग्रन्थ के विशेषण हैं।

इस मंगलाचरण के नव प्रकार के अर्थ द्योतित होते हैं :—

(1) 24 तीर्थंकर, (2) भगवान् महावीर, (3) सिद्धपरमेष्ठी, (4) आत्मा, (5) सिद्धचक्र, (6) पंचपरमेष्ठी, (7) नेमिनाथतीर्थंकर, (8) जीवकाण्डग्रन्थ, (9) नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती। इन नव अर्थों को संस्कृत टीका (जीवकाण्ड) से जानना चाहिये।

इसी प्रकार कर्मकाण्ड का मंगलाचरण भी अलंकारों से विभूषित है। उसमें भी दो अर्थ व्यक्त होते हैं (1) नेमिनाथ तीर्थंकर को नमस्कार किया गया है। (2) महावीर तीर्थंकर को प्रणाम किया गया है। इस ग्रन्थ में 9 अधिकारों के द्वारा कर्म सिद्धान्त का वर्णन किया गया है—(1) प्रकृति समुत्कीर्तन, (2) बन्धोदयसत्त्व, (3) सत्त्वस्थानभंग, (4) त्रिचूलिका, (5) स्थानसमुत्कीर्तन, (6) प्रत्यय (7) भावचूलिका, (8) त्रिकरणचूलिका, (9) कर्मस्थितिबन्ध।।

त्रिलोकसार

करणानुयोग के इस प्रसिद्ध महान् ग्रन्थों में कुछ 1018 गाथाएं हैं। इसका आधार निमित्त तिलोयपण्णत्ति एवं तत्त्वार्थवार्तिक है। इसमें 6 अधिकारों द्वारा तीन लोक का वर्णन विस्तार से किया गया है—(1) लोकसामान्याधिकार, (2) भवनाधिकार, (3) व्यन्तरलोकाधिकार, (4) ज्योतिर्लोकाधिकार, (5) वैमानिक लोकाधिकार, (6) मनुष्यतिर्यक् लोकाधिकार। इसमें गणित का विषय विस्तृत है।

लब्धिसार एवं क्षपणासार

नेमिचन्द्राचार्य की तृतीय महत्त्वपूर्ण रचना लब्धिसार के नाम से प्रसिद्ध है इस ग्रन्थ में 649 प्राकृत गाथाओं के माध्यम से सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की लब्धि (प्राप्ति) का विस्तृत विवेचन किया गया है, अतः इस ग्रन्थ का नाम सार्थक है। लब्धि पांच प्रकार की होती हैं—(1) क्षयोपशमलब्धि, (2) विशुद्धि लब्धि, (3) देशनालब्धि, (4) प्रायोग्य-लब्धि, (5) करणलब्धि।।

क्षपणासार

यह ग्रन्थ लब्धिसार का ही एक विभाग उत्तरार्ध के रूप में प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में 653 गाथाओं के माध्यम से आठ कर्मों के क्षपण (क्षय) करने की विधि का क्रमशः विस्तृत वर्णन किया गया है। इसकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि श्री माधवचन्द्र त्रैविद्य ने बाहुकी मंत्री की प्रार्थना के निमित्त से इस ग्रन्थ पर संस्कृत टीका लिख दी है।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती का शिष्यत्व चामुण्डराय ने ग्रहण किया था। यह चामुण्डराय, गंगवंशी राजा राजमल्ल का प्रधान मंत्री और सेनापति था। उसने अनेक समरों में विजय का बिगुल बजाया। विजय के उपलक्ष्य में अनेक उपाधियां प्राप्त कर यश को दिगन्तव्यापी किया। प्रथम उपाधि-वीरमार्तण्ड, द्वितीय-सम्यक्त्वरत्ननिलय, तृतीय-गुणरत्नभूषण, चतुर्थ-देवराज, पंचम-सत्ययुधिष्ठिर आदि। चामुण्डराय ने श्रवणवेलगोला-(मैसूर) में शोभित विन्ध्यगिरि पर बाहुबलि स्वामी की 57 फीट उन्नत अतिशय मनोज्ञ प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी जो आज भी नवीन आश्चर्य के साथ भारत का मस्तक उन्नत कर रही है। श्रीबाहुबलि ने एक वर्ष तक खड्गासन दिगम्बर मुद्रा में मौनधारण कर आत्मध्यान किया। उनकी स्मृति में उनके श्रेष्ठ भ्राता भरत चक्री ने उत्तर भारत में एक प्रतिमा स्थापित कराई थी। वह कुक्कुटसर्पों से व्याप्त हो जाने के कारण कुक्कुटजिन के नाम से प्रसिद्ध हुई। वह वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं। उत्तरभारत की इस मूर्ति से भिन्नता दर्शाने के लिये चामुण्डराय के द्वारा दक्षिण भारत में स्थापित वह मूर्ति 'दक्षिणकुक्कुट जिन' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

—तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भा. 2, पृ. 420

नेमिचन्द्राचार्य का जीव विज्ञान

श्री नेमिचन्द्राचार्य अपने अन्तर्विज्ञान से किसी तत्त्व का सूक्ष्मरीत्या

निरीक्षण करते थे। जीवकाण्ड में आपने जीवों की जातियों का जो वर्गीकरण किया है। वह जीवसमास के प्रकरण से सूक्ष्म एवं व्यापक प्रतीत होता है। उस जीव जाति विज्ञान से तीन लोक के समस्त जीवों का संग्रह हो जाता है, कोई भी जीव अवशिष्ट नहीं रहता। जीवकाण्ड की गाथा नं. 73 से 80 तक मौलिकरूप से जो जीवों का वर्गीकरण किया गया है वह अंकसंदृष्टि से सहज ही बुद्धिगत हो जाता है दृष्टिपात करें :—

1. पृथिवी, 2. जल, 3. अग्नि, 4. वायु, 5. नित्यनिगोद, 6. इतरनिगोद।
6x2 बादर-सूक्ष्म
12x2 सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित
14x5 द्वीन्द्रिय, त्री. चतुरि. असं. पंचे, संज्ञी पंचे.
19x9 सामान्य की अपेक्षा
19 मूलभेद
19x2 पर्याप्त-अपर्याप्त
38 स्थूल भेद
19x3 पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त
57—6 (जलचर 2, थलचर-2, नभचर-2, संज्ञी असंज्ञी के भेद से)
51+30 = 12 गर्भजतिर्यंच, 18 सम्मूर्च्छन के भेद।
81+4 भोगभूमिजतिर्यंचभेद (थलचर 2, नभचर 2)
85+3 आर्य मनुष्य भेद
88+2 म्लेच्छ मनुष्य भेद
90+8 = भोगभूमिजनर 2। कुभोगभूमिजनर 2। देव 2। नारकी 2
98 जीवसमास कुल.

जीव के विशेष भेद

(जीनतत्त्वप्रबोधिनी टीका के अनुसार)
14+शुद्धपृथिवी आदिभेद
10+सप्रतिष्ठित तृण आदि
3 द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय
27x3 पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त।
81+12 कर्मभूमिज पंचेन्द्रिय गर्भज तिर्यंच
93+18 सम्मूर्च्छनजीव भेद
111+12 उत्तम-मध्यम-जघन्यभोगभूमिजभेद।

123+1 आर्यखण्ड सम्मू. लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य
124+ भवनवासी-10
व्यन्तर- 8
ज्येतिष्क- 5
वैमानिक- 63
नारकी- 49
135+ योग
कर्मभूमिगर्भजमनुष्यादि-6
141X2 पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त
282
पूर्वोक्त भेद 124
406 कुल भेद
अन्य प्रकार से जीव भेदों की गणना—
3. (1) सामान्य— 1+19=20÷2 = 10X19 = 190।
(2) पर्याप्त-निर्वृत्यपर्याप्त—2+38 = 40÷2 = 20X19 = 380।
(3) पर्याप्त, निर्वृ., लब्ध्य.—3+57 = 60÷2 = 30X19 = 570।
प्रथम प्रकार वर्गीकरण — 18 जीवजातियां
द्वितीय प्रकार वर्गीकरण— 406 जीवजातियां
तृतीय प्रकार वर्गीकरण—570 जीवजातियां
इस प्रकार नेमिचन्द्राचार्य का आत्मिक जीव विज्ञान सूक्ष्मरीति से जीवों का वर्गीकरण करने में समर्थ है।

भौतिक विज्ञान की अपेक्षा जीवों का वर्गीकरण

भौतिकविज्ञान की अपेक्षा जीव का लक्षण :- जिसमें चलन, श्वसन, पोषण, जनन, कम्पन आदि क्रियाएं पाई जाती है वे जीव कहे जाते हैं और क्रिया की अभिव्यक्ति ही जीवन है।

जीववर्गीकरण विज्ञान एवं उसका इतिहास

अध्ययन की सुगमता के लिये समानताओं के आधार पर प्राणियों को विशिष्ट समूहों में संकलित किया गया है तथा प्रत्येक समूह को उसमें संकलित किये गये प्राणियों की विशेषताओं के आधार पर एक निश्चित नाम प्रदान किया गया है। विभाजन की इस प्रक्रिया को वर्गीकरण नाम दिया गया है।

जीववर्गीकरण का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव इतिहास, कारण कि, विज्ञान आते ही मनुष्य ने अपने नैकटिक प्राणियों को नाम देना शुरू कर दिया था। पुरातन काल में मनुष्य ने अपने हिसाब से जन्तुओं को घातक-अघातक, भक्ष्य-अभक्ष्य, लाभदायक-हानिकारक इत्यादि अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया था किन्तु यह वर्गीकरण प्राकृतिक नहीं था। जीव वर्गीकरण को विशेष रूप से इन वैज्ञानिकों ने आगे बढ़ाया।

(1) ग्रीक दार्शनिक ऐरिस्टोट्ल—सन् 384-322

(2) वैज्ञानिक जॉनरे – सन् 1628-1705

(3) स्वीडन के वनस्पतिज्ञ कैरोलस लिनिपस-1707-1778

वर्गीकरण के समूह—(1) जगत् (2) संघ (फाइलम) (3) उपसंघ (सबफाइलम) (4) वर्ग (क्लास) (5) उपवर्ग (सबक्लास) (6) गण (आर्डर) (7) कुल (फैमिली) (8) वंश (जीनस) (9) जाति (स्पीशीज)।

जन्तुविज्ञान की शाखाएं—(1) आकारिकी, (2) शारीरिकी, (3) औतिकी, (4) कोशिकाविज्ञान, (5) वर्गिकी, (6) शरीर क्रियाविज्ञान, (7) भ्रौणिकी, (8) आनुवंशिकी, (9) पारिस्थितिकी, (10) विकास, (11) जीवाश्म विज्ञान, (12) प्राणिभूगोल, (13) अन्तःस्रावी विज्ञान, (14) एंजाइम विज्ञान, (15) जीव-रसायन, (16) जीवभौतिकी, (17) अन्तरिक्षजीवविज्ञान, (18) परजीवी विज्ञान, (19) रोग विज्ञान, (20) अस्थिविज्ञान।।

जन्तु विज्ञान के प्रकार

(1) कृमि विज्ञान, (2) कीटविज्ञान, (3) मत्स्यविज्ञान, (4) उभयसृपविज्ञान, (5) पक्षीविज्ञान, (6) स्तनधारीविज्ञान, (7) जीवाणु विज्ञान, (8) प्रोटोजूलोजी विज्ञान।

जीवविज्ञान में जीव के निम्नविषयों पर विवेचन किया गया है:—

(1) जीवनधारियों में जीवन प्रक्रियाएं।

(2) आनुवांशिकी एवं जैव विकास के मूलतत्व।

(3) जीवन प्रक्रियाएं एवं मानवकल्याण।

(4) मनुष्य एवं उसका पर्यावरण।

(5) जीवविज्ञान एवं मानवजीव विज्ञान का सामाजिक पक्ष।

(जन्तुविज्ञान—ले. डा. वीरबाला रस्तौगी; पृ. 7, 142)

सारांश—यह कि आध्यात्मिक विज्ञान के द्वारा जीवों का वर्गीकरण किया गया है वह सूक्ष्म एवं व्यापक है। इस प्रकार का वर्णन भौतिक विज्ञान के द्वारा नहीं किया गया है वह तो स्थूल एवं सीमित है और मध्यलोक के अल्पक्षेत्र में ही सम्बन्ध रखता है।

उपसंहार

सिद्धान्तग्रन्थों के प्रणयन से जिनका प्रामाण्य सिद्ध होता है। उन नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने प्रत्यक्ष में चामुण्डराय के निमित्त से एवं परोक्ष में प्राणिमात्र के हितार्थ गोम्मटसार ग्रन्थ की रचना की। वीरप्रतापी चामुण्डराय ने श्रवणवेगोल के विन्ध्यगिरि पर, श्रीनेमिचन्द्राचार्य के सान्निध्य में बाहुबलि प्रथमकामदेव की प्रतिष्ठापना की। गोम्मटसार (पंचसंग्रह) की सार्थगंभीरता 13 टीकाओं से प्रमाणित होती है। इनकी रचनाओं में सार का प्रयोग होने से सारपूर्ण सिद्ध हैं। नेमिचन्द्राचार्य संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, गणितशास्त्र के पारगामी सिद्धान्तचक्रवर्ती थे। वे अपने गुरु के श्रेष्ठशिष्य जिस तरह प्रसिद्ध थे, उसी तरह अपने प्रतापी चामुण्डराय विशिष्ट शिष्य के प्रतिष्ठित गुरु थे। उनके स्वरचित सिद्धान्त वस्तुतः सिद्धान्त हैं। आचार्यप्रवर ने आध्यात्मिक दृष्टि से जीवकाण्ड में त्रिलोक के अन्तर्गत जीवों का महत्त्वपूर्ण वर्गीकरण किया है। इस उच्चस्तर के तुल्य, भौतिकदृष्टि से वर्णित जीवों का वर्गीकरण नकारात्मक है। भौतिकवाद जहां समाप्त होता है, वहां से अध्यात्मवाद प्रारंभ होता है।

अन्त में—

णिक्खेवे एयत्थे, णयप्पमाणे णिरुत्ति अणियोगे।
मग्गइ वीसं भेयं, सो जाणइ अप्पसब्भावं।।

सागर **डॉ0 दयाचन्दसाहित्याचार्य**

वादीभसिंह : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

वादीभसिंह का यथार्थ नाम अजितसेन था। उनका युग शास्त्रार्थों का युग था। वादी इभों (गजों) के लिए सिंह के समान होने के कारण उनका नाम वादीभसिंह पड़ा। मल्लिषेण प्रशस्ति से ज्ञान होता है कि ये बहुत बड़े वादी और स्याद्वाद विद्या के वेत्ताओं के और अन्तरङ्ग का अन्धकार दूर करने के लिए सूर्य थे। अष्टसहस्री के टिप्पणकार लघु समन्तभद्र अष्टसहस्री के मंगलश्लोक पर टिप्पण करते हुए लिखते हैं–

"तदेवं महाभागैः तार्किकार्व्कैरूपज्ञातां श्रीमता वादीभसिंहेन उपलालितामाप्त–मीमांसामलञ्चिकीर्षवः..... प्रतिज्ञा श्लोकमाहुः श्रीवर्द्धमानमित्यादि।" इससे पता चलता है कि आप्तमीमांसा पर वादीभसिंह ने कोई टीका बनायी थी और वह टीका अष्टसहस्त्री से पहले बनी थी।[1]

वादिभसिंह ने जिन पुष्पसेन गुरु का उल्लेख किया है, उनका निर्देश मल्लिषेण प्रशस्ति में अकलङ्कके सधर्मा–गुरुभाई के रूप में किया गया है। ऐसी स्थिति में उनका समय ईसा की सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध प्रमाणित होता है।

वादिभसिंह की गद्यचिन्तामणि पर बाणभट्ट की कादम्बरी का प्रभाव है। अतः वादीभसिंह का समय बाणभट्ट के बाद का होना चाहिए। बाणभट्ट राजा हर्ष की राजसभा में रह चुके थे। हर्ष का जन्म 590 ई. में हुआ था और उन्होंने सम्पूर्ण उत्तर भारत पर 606 ई. से 647 ई तक शासन किया था। 629 ई. में आए हुए चीनी यात्री ने उस समय काव्यकुब्ज के सिंहासन पर बैठे हर्षवर्द्धन का उल्लेख किया है। बाणभट्ट को पश्चात् कालीन मानने पर वादीभसिंह का समय सातवीं शताब्दी ई. का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है।

आदि पुराण के रचनाकार आचार्य जिनसेन ने वादिसिंह नामक एक आचार्य का निम्नलिखित रूप में स्मरण किया है–

"कवित्वस्य परा सीमा वाग्मितस्य परं पदम्।
गमकत्वस्य पर्यन्तो वादिसिंहो ऽर्च्यते न कैः।।"

आदिपुराण 1/54

वे वादिसिंह किसके द्वारा पूज्य नहीं हैं, जो कि कवि, प्रशस्त व्याख्यान देने वाले और गमकों-टीकाकारों में सबसे उत्तम थे।

पार्श्वनाथ चरित के प्रारम्भ में वादिराज ने वादिसिंह का स्मरण इस प्रकार किया है—

"स्याद्वादगिरमाश्रित्य वादिसिंहस्य गर्जिते।
दिङ्नागस्य मदध्वंसे कीर्तिभङ्गो न दुर्घटः।।

इस श्लोक में बौद्धाचार्य दिङ्नाग और कीर्ति (धर्मकीर्ति) का ग्रहण करके वादिसिंह को उनका समकालीन बतलाया है। पं. नाथूराम प्रेमी का मत है कि वादीभसिंह और वादिसिंह एक ही व्यक्ति हैं।

वादीभसिंह का जन्मस्थान—यद्यपि वादीभसिंह के जन्मस्थान का कोई उल्लेख नहीं मिलता तथापि आपके ओडयदेव नाम से श्री पं. के. भुजबली शास्त्री ने अनुमान लगाया है कि आप तमिल प्रदेश के निवासी थे। श्री बी. शेषगिरि राव ने कलिंग (तेलुगु) के गंजाम जिले के आसपास का निवासी होना अनुमित किया है। गंजाम जिला मद्रास के उत्तर में है और अब उड़ीसा में जोड़ दिया गया है। वहाँ राज्य के सरदारों की ओडेय और गोडेय नाम की दो जातियाँ हैं, जिनमें पारस्परिक सम्बन्ध भी है, अतः उनकी दृष्टि में वादीभसिंह जन्मतः ओडेय या उड़िया सरदार होंगे।[1]

श्री पं. के. भुजबली शास्त्री ने लिखा है कि यद्यपि आपका जन्म तमिल प्रदेश में हुआ था, तथापि इनके जीवन का बहुभाग मैसूर (कर्नाटक) प्रान्त में व्यतीत हुआ था। वर्तमान कर्नाटक के अन्तर्गत पोम्बुच्च आपके प्रचार का केन्द्र था। इसके लिये पोम्बुच्च एवं मैसूर राज्य के भिन्न-भिन्न स्थानों में उपलब्ध आपसे सम्बन्ध रखने वाले शिलालेख ही ज्वलन्त साक्षी हैं।[2]

वादीभसिंह की कृतियाँ—वादीभसिंह की सम्प्रति 3 कृतियाँ उपलब्ध हैं—(1) स्याद्वाद सिद्धि (2) गद्यचिन्तामणि और (3) छत्र चूड़ामणि।

1. स्याद्वाद सिद्धि—इसमें 14 अधिकार हैं—(1) जीवसिद्धि (2) फल भोक्तृत्वाभावसिद्धि (3) युगपदनेकान्तसिद्धि (4) क्रमानेकान्त सिद्धि (5) भोक्तृत्वाभावसिद्धि (6) सर्वज्ञाभावसिद्धि (7) जगत्कर्तृत्वाभावसिद्धि (8) अर्हत्सर्वज्ञसिद्धि (9) अर्थापत्तिप्रामाण्यसिद्धि (10) वेदपौरुषेयत्वसिद्धि (11) परतः प्रामाण्य सिद्धि (12) अभावप्रमाणदूषणसिद्धि (13) तर्क प्रामाण्य सिद्धि और (14) गुण-गुणी अभेद सिद्धि।

ग्रन्थ अपूर्ण है। प्राप्त भाग अनुष्टुप् छन्द में है। अधिकारों के अन्त में पुष्पिकावाक्य से इनके कर्ता वादीभसिंह निश्चित होते हैं।

गद्यचिन्तामणि—भगवान् महावीर के समकालीन राजा जीवन्धर के चरित्र को आधार बनाकर इस गद्यात्मक कृति की रचना की गई है। इसे ग्यारह लम्भों में विभक्त किया गया है। इसकी कथावस्तु पौराणिक है। पौराणिक कथानक को काव्यरचना का आधार बनाया गया है। मूल कथावस्तु छोटी है, किन्तु कवि की वर्णनाशक्ति के कारण यह विस्तार को प्राप्त हुई है। कथा में सरलता है, जटिलता नहीं है। कथानक का तारतम्य निरन्तर बना रहता है। कहानी का बहुत बड़ा गुण उत्सुकता और जिज्ञासा को जागृत करके उसे अन्त तक बनाए रखना है। इस दृष्टि से गद्यचिन्तामणि की कथा बहुत सफल है। राजा सत्यन्धर की रानी तीन स्वप्न देखती है। वह उन स्वप्नों का फल राजा से पूछती है। राजा बताते हैं कि तुम्हारे पुत्र होगा, उसकी आठ स्त्रियाँ होंगीं, पर तीसरे स्वप्न अशोकवृक्ष के गिरने का फल राजा ने नहीं बतलाया। पाठकों की जिज्ञासा यहीं से प्रारम्भ होती है और आगे तक किसी न किसी रूप में जिज्ञासा चलती रहती है। जीवन्धर के पूर्वभव को छोड़कर सब जगह मुख्य कथा ही चलती है। कथा के प्रधान नायक जीवन्धर हैं, किन्तु नायिकायें अनेक हैं। काष्ठाङ्गार प्रतिनायक है। कथा में वर्णन लम्बे लम्बे नहीं हैं। कवि प्रवाहपूर्ण वर्णन कर आगे बढ़ता जाता है, इससे पाठक को ऊब पैदा नहीं होती है। अलौकिक प्रसङ्ग उतने ही हैं, जो कथानक को गति प्रदान करते हैं। इन प्रसङ्गों से पुनर्जन्म के सिद्धान्त को बल मिलता है। कहीं-कहीं कथानक रूढ़ियों का भी प्रयोग हुआ है। पात्र के दोषों को भी वादीभसिंह ने छिपाया नहीं है। उदाहरणार्थ सत्यन्धर का अत्यधिक विषयासक्त होना, मंत्रियों की सलाह पर ध्यान न देना और मन्त्री काष्ठाङ्गार पर अत्यधिक विश्वास करना। जीवन्धर प्रारम्भ से नायकोचित सभी गुणों से युक्त है। वह परिपुष्ट, बलवान और सुन्दर है। सभी विद्याओं का उन्होंने विधिवत अध्ययन किया है वह अत्यन्त विनीत और नम्र है। गुरु के सामने उसकी नम्रता दर्शनीय है। उसका पराक्रम अद्वितीय है। औदार्य और सहानुभूति उसके अन्दर पर्याप्त मात्रा में हैं। वह मरते हुए कुत्ते को भी णमोकार मंत्र सुनाकर उसकी सद्गति की प्राप्ति में सहायक बनता है। वह सुन्दर है। रूपवती कन्यायें उसके प्रति आकृष्ट होती है। उसमें धीरता का गुण है। जिन्हें वह चाहता है, उन कन्याओं के सामने तत्काल प्रणय निवेदन नहीं करता है। एक बार किसी के प्रति

प्रेम हो जाने पर वह किसी प्रकार कम नहीं होता। प्रेम के आगे वह कर्त्तव्य नहीं छोड़ता है।

वादीभसिंह भारतीय प्रेम के आदर्श के अनुसार काम विकार का आरम्भ पहले स्त्रियों में दिखलाते हैं, इसके बाद वह पुरुष में उत्पन्न होता हैं उनका प्रेम लौकिक है, किसी प्रकार का अलौकिक प्रेम नहीं।

क्षत्रचूडामणि—वादीभसिंह की काव्यप्रतिभा जीवन्धरचरित्र के प्रति इतनी आकृष्ट थी कि उसे गद्यचिन्तामणि जैसी प्रौढ़ कृति से भी सन्तोष नहीं हुआ है। उस प्रतिभा ने अपना प्रवाह गद्य की ओर बढ़ाया और जीवन्धर के ही चरित्र को आधार बनाकर पद्यमय काव्यरचना की तथा क्षत्रचूडामणि जैसे महाकाव्य की रचना की। यह महाकाव्य ग्यारह लम्भों में विभक्त है। प्रत्येक लम्ब की कथावस्तु मूलरूप में गद्यचिन्तामणि जैसी है, किन्तु क्षत्रचूडामणि अपनी कुछ स्वतन्त्र विशेषताओं को लिये हुए है। प्रत्येक पद्य के पूर्वार्द्ध में कवि कथा का वर्णन कर उत्तरार्द्ध में अर्थान्तरन्यास द्वारा नीति का वर्णन करता है। पद्य में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग किया गया है। इस दृष्टि से यह विश्व का अद्वितीय काव्य है। किसी सत्य कथानक के आधार पर इस प्रकार नीतिमय महाकाव्य का सृजन कवि की अनूठी प्रतिभा, कल्पनाशक्ति और भावप्रणता का अनौखा उदाहरण है। क्षत्रचूडामणि नीति का भण्डार है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सम्बन्धी व्यावहारिक, अर्थगाम्भीर्य से युक्त सुन्दर सूक्तियॉं हैं। ये सूक्तियाँ बहुत छोटी छोटी हैं, किन्तु इनमें जीवन, जगत, लोक-परलोक, यथार्थ और आदर्श, प्रेम और द्वन्द्व आदि के उपदेश भरे पड़े हैं। नीतिवाक्य रूपी रत्नों का यह आकर है। इसमें अवगाहन कर व्यक्ति अनगिनत रत्न पा सकता है। वह अपने इस जीवन को पवित्र बनाकर परलोक को भी पवित्र बना सकता है। यह अकेला काव्य कवि के व्यक्तित्व और कर्तृत्व को अमर रखने में समर्थ है।

वादीभसिंह और अन्य कवि

वादीभसिंह और बाणभट्ट—गद्यचिन्तामणि की शैली और रूपसज्जा को देखने पर ऐसा लगता है कि वे बाण से प्रभावित हैं। यद्यपि दोनों की उद्भावनायें मौलिक हैं, तथापि कथा प्रसङ्गों के संविधान में, विभिन्न प्रकार के वर्णनों में एक विचित्र प्रकार का साम्य दोनों में दिखाई पड़ता है।

कादम्बरी के प्रारंभ में बाण ने इष्टदेव की आराधना की है।

गद्यचिन्तामणि का प्रारम्भ इष्टदेव की वन्दना और स्तुति से होता है।

कादम्बरी के प्रारम्भिक श्लोकों में सज्जनों की प्रशंसा और दुर्जनों की निन्दा मिलती है। गद्यचिन्तामणि में भी सज्जन और दुर्जनों के स्वभाव पर प्रकाश डाला गया है।

बाणभट्ट ने कादम्बरी के प्रारंभिक पद्यों में अपनी वंशपरम्परा का कथन किया है। वादीभसिंह ने भी गद्यचिन्तामणि में समन्तभद्रादि मुनियों की वन्दना कर अपने गुरु का आदरपूर्वक उल्लेख किया है। वे अपने आपको मुनिपुङ्गव कहते हैं। मुनियों का कुल उनके आचार्य का संघ ही होता है।

कादम्बरी में राजा शूद्रक का वर्णन करने के पश्चात् उसकी विदिशा नामक राजधानी का वर्णन किया गया है। गद्यचिन्तामणि में हेमाङ्गद देश का वर्णन करने के बाद उसकी राजधानी राजपुरी तथा राजा सत्यन्धर का वर्णन है।

कादम्बरी में विन्ध्याटवी वर्णन के प्रसङ्ग में कहा गया है कि जिस प्रकार कर्णीसुत की कथा विपुल और अचल (नामक मित्रों) से युक्त है और शश (नामक मंत्री) से युक्त है, उसी प्रकार जिसमें विशाल पर्वत हैं और जो शश (खरगोशों) से युक्त हैं।[1]

गद्यचिन्तामणि में कहा गया है कि जिस प्रकार कर्णीसुत के मत का प्रदर्शन चोर के हृदय को सन्तुष्ट करता है.......उसी प्रकार मदन के उक्त कथन ने काष्ठाङ्गार के हृदय को अत्यन्त सन्तुष्ट किया।[2] कादम्बरी के टीकाकार भानुचन्द्र गणि ने कर्णीसुत को चौर्यशास्त्र का प्रवर्तक बतलाया है—"कर्णीसुतः करटकः स्तेयशास्त्र प्रवर्तकः।।" —कादम्बरी-टीका पृ. 70

कादम्बरी गोदावरी नदी को अगस्त्य के द्वारा पिए गए सागर के मार्ग का अनुसरण करने वाली[1] बतलाया गया है।

गद्यचिन्तामणि में फैलाए गए मणियों के समूह से युक्त गन्धोत्कट के भवन की उपमा ऐसे रत्नाकर से की गई है, जिसका सारा पानी अगस्त्य ने पी लिया था।[2]

कादम्बरी में गुरु शुकनास राजकुमार चन्द्रापीड को राजनीति का उपदेश देते हैं। गद्यचिन्तामणि में गुरु आर्यनन्दि राजकुमार जीवन्धर को राजनीति का उपदेश देते हैं।[3] कादम्बरी शुकनासोपदेश में यौवन से उत्पन्न अन्धकार की निन्दा की है। गद्यचिन्तामणि में भी यौवन से उत्पन्न मोहरूपी

महासागर की निन्दा की गई है।

शुकनाशोपदेश में लक्ष्मी की निन्दा है, गद्यचिन्तामणि में भी लक्ष्मी की निन्दा की गई है।

शुकनाशोपदेश में राजकीय अवगुणों का वर्णन कर उनसे दूर रहने का उपदेश दिया गया है। गद्यचिन्तामणि में भी राजाओं के स्वरूप तथा उनके औदृत्य का वर्णन है।

वादीभसिंह और कालिदास—वादीभसिंह की कई कल्पनायें अथवा विचार कालिदास के समान हैं। जैसे—

'अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।। अभिज्ञानशाकुन्तल अर्थात् भवितव्यता के द्वार सब जगह होते हैं।

अचिन्त्यानुभावं हि भवितव्यम्।। गद्यचिन्तामणि चतुर्थ लम्भ पृ. 208 भवितव्य की महिमा अचिन्त्य है।

कालिदास ने मेघदूत में कल्पना की है कि मेघ जब गङ्गा के जल को ग्रहण करने के लिये झुकेगा तो उसकी श्यामवर्ण परछाईं के कारण उस स्थान की शोभा गंगा यमुना के सङ्गमस्थल जैसी होगी।[4] गद्यचिन्तामणि में गन्धर्वदत्ता के कौतुकागार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जलती हुई कालागुरु के धूम के समूह से चित्रित अतएव यमुना के समागम से श्याम गङ्गानदी के प्रवाह के समान रेशमी चँदोवा से उसका ऊपरी भाग सुशोभित था।[5]

वादीभसिंह और भारवि वादीभसिंह ने भारवि के किरातार्जुनीयम को देखा था। भारवि अर्थ गौरव के लिए संस्कृत साहित्य में विशेष प्रसिद्ध हैं। हो सकता है भारवि के अर्थ गौरवमयी वाक्यों से प्रेरित होकर ही वादीभसिंह को छत्रचूडामणि जैसा सूक्ति काव्य लिखने की प्रेरणा मिली हो। किरातार्जुनीयम् में युधिष्ठिर की विषम स्थिति का वर्णन करती हुई द्रौपदी कहती हैं—

पुराधिरूढ़ः शयनं महाधनं
विबोध्यसे यः स्तुति गीतिमंगलैः।
अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थली
जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः।। —किराता. 1/38

अर्थात् जो आप पहले बहुमूल्य शय्या पर शयन करते हुए स्तुति-गीति आदि मङ्गलमय शब्दों के द्वारा जगाए जाते थे, वहीं आप आज बहुत से कुशाओं से युक्त वन भूमि पर सोकर अमङ्गलकारी सियारनों के शब्दों से नींद त्याग रहे हैं।

गद्यचिन्तामणि के द्वितीय लम्भ में जीवन्धर के जन्म के समय की विषम

स्थिति का चित्रण करते हुए वादीभसिंह ने माता विजया के मुख से कहलाया है—

अशेषजनहर्षतुमुलखसंकुलं राजकुलं अवलोक्येत, स त्वमारसद शिवशिवावक्त्र— कुहरविस्फुरदन- लकणजर्जर तमसि।

ग. चि. द्वितीय लम्भ पृ. 73

अर्थात् जो समस्त मनुष्यों की जोरदार हर्षध्वनि से व्याप्त होता, ऐसा राजकुल दिखाई देता, वह आज उस श्मसान में किसी तरह उत्पन्न हुआ है, जहाँ सब ओर शब्द करने वाली अमाङ्गलिक श्रृगालियों की मुखकन्दरा.से निकलने वाले अग्निकणों से अन्धकार जर्जर हो रहा है।

किरातार्जुनीयम् के अशिवैः शिवारुतैः तथा गद्यचिन्तमणि के आरसदशिवशिवा में साम्य है।

वादीभसिंह और माघ—शिशुपालवध के कर्त्ता महाकवि माघ के समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है। जैकोबी उनका काल छठी शताब्दी का मध्य, आर सी. दत्त बारहवीं शताब्दी तथा प्रो. पाठक अष्टम शताब्दी का अन्तिम भाग मानते हैं। माघ के शिशुपाल वध के एक पद्य तथा गद्यचिन्तामणि के एक वर्णन में पर्याप्त साम्य है—

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नैः श्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः।।

शिशुपालवध 1/10

अर्थात् महती नामक वीणा को—जिसमें वायु के आघात से पृथक् पृथक् ध्वनित होते हुए एवं व्यवस्थित श्रुतिसमूहों से युक्त (षड्जादिसप्त) स्वरों के द्वारा स्वरसंघात (ग्रामविशेष) तथा स्वरों का आरोह अवरोह (मूर्च्छना) स्पष्ट प्रकट हो रहा था—बार बार देखते हुए उन्हें श्रीकृष्ण ने 'यह नारद हैं', ऐसा समझा।

इत्येवमभिव्यक्तसप्तस्वरमुन्मिषितग्रामविशेषमुच्छ्वसित मूर्च्छनानुबन्धमति बन्धुरमाहितकर्णपारणमाकर्ण्य तस्यास्तदुपवीणनमति प्रहर्षेण परिषत्परिसरातखोऽपि कोरक व्याजेन रोमाञ्चमिवामुञ्चन्।।

गद्यचिन्तामणि—तृतीय लम्भ पृ. 176

इस तरह जिसमें सातों स्वर प्रकट थे, जिसमें ग्रामविशेष प्रकट थे, जिसमें मूर्च्छना का सम्बन्ध स्पष्ट था, जो अत्यन्त मनोहर था और जिसमें कानों के लिए पारणास्वरूप सब कुछ विद्यमान था ऐसा उस गन्धर्वदत्ता का

वीणा बजाना सुनकर तीव्र हर्ष से स्वयंवर सभा के समीपवर्ती वृक्ष भी कलिकाओं के बहाने मानों रोमांच धारण कर रहे थे।

वादीभसिंह का काव्यवैभव

'ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्' अर्थात् समास बहल ओज गुण गद्य का जीवन है। इस दृष्टि से वादीभसिंह ने गद्यचिन्तामणि में समास बहुल श्लेषमयी शैली को अपनाया है। इसके साथ-साथ उन्होंने सुललित पदों से युक्त प्रसाद गुणमयी शैली को भी प्रस्तुत किया है। उनकी शैली बाणभट्ट से मिलती है। हर्षचरित की प्रस्तावना में बाण ने अपनी शैली के आदर्श को प्रस्तुत किया है—

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।। —**हर्षचरित, प्रस्तावना, 8**

मौलिक अर्थ, सुरुचिपूर्ण, स्वाभावोक्ति, सरलश्लेष, स्पष्ट प्रतीयमान रस तथा दृढ़बन्ध पदावली का एकत्र सन्निवेश दुष्कर है।

वादीभसिंह ने इस दुष्कर कार्य को किया है। उन्होंने पाञ्चाली रीति को अपनाया है। सरस्वती कण्ठाभरण में पाञ्चाली रीति का लक्षण इस प्रकार दिया है—

'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।'

अर्थात् शब्द और अर्थ का समान गुम्फन पाञ्चाली रीति मानी जाती है।

वादीभसिंह ने विषय के अनुरूप शब्दों का चयन किया है। गद्यचिन्तामणि में मरुस्थल वर्णन में कवि ने कर्णकटु शब्दों का और समासबद्ध पदावली का प्रयोग किया है—

'ततश्चाग्रतः क्वचिदुग्रतरोष्मदुष्प्राये विस्फुलिङ्गायमान पांसूत्करे करिनिष्ठभूतकरशीकरावशिष्ट पयासि निःशेषपर्णक्षयनिविशेषाशेष विटपिनि निर्द्रवनिखिलदल निर्मितमर्मरखभरित हरिति मरुत्सखब्रह्मचारि मरुति करेणुतापहरण कृते निजकायछाया प्रदायिदन्तिनि वारण शोषितपारणा परायणपिपासातु- राकेसरिण्युदन्यादैन्यप्रपञ्चवञ्चित हरिणगण लिह्यमानस्फटिक हर्षाद......।' —गद्य चि. पंचमलम्भ, पृ. 227

लक्ष्मीवर्णन के प्रसङ्ग में वादीभसिंह ने सरल और भावप्रवण शैली को अपनाया है—

''इयं हि पारिजातेन सह जाताऽपि लोभिनां धौरेयी, शिशिरकरसोदराऽपि

परसंतापविधिपरा, कौस्तुभमणि साधारण प्रभवापि पुरुषोत्तम द्वेषिणी, पापर्द्धिरियं पापर्द्धौ, वेश्येयं पारवश्य कृतौ, द्यूतानुसंधिरियमति संधाने मृगतृष्णिकेयं तृष्णायाम्।'

अलङ्कारों का प्रयोग वादीभसिंह ने प्रचुरता से किया है। उन्होंने शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का प्रयोग किया है। उनके काव्य में अनुप्रास सर्वत्र व्याप्त है। जैसे—

'क्रीडावसाने च बलवदनिलचल किसलयमुल्लासिवेल्लल्लतालास्य लालितेऽभिनवपरागपटल स्विन्नपुनागमञ्जुमञ्जरीजालं जल्पाकमधुकरनिकरझंकार मुखरे......। —गद्य चि. लम्भं 11 पृ. 403

कहीं कहीं वादीभसिंह उपमाओं की झड़ी लगा देते हैं—सा चेन्न स्याद्व्रीहिखण्डनायास इव तण्डुलत्यागिनः, कूपखनन प्रयास इव नीरनिरपेक्षिणः, कर्णशुक्तिरिव शास्त्रशुश्रूषापराङ् मुखस्य द्रविणार्जनक्लेश इव वितरणगुणानभिज्ञस्य, तपस्याश्रम इव नैरात्म्यवादिनः, शिरोभारधारण श्रान्तिरिव जिनेश्वर चरणप्रणाम बहुमति बहिष्कृतस्य, प्रव्रज्या प्रारम्भ इवेन्द्रियदासस्य विफलः सकलोऽप्ययं प्रयासः स्यात्। —ग. चि., द्वितीय लम्भ पृ. 102

यदि आत्मतत्त्व सिद्धि नहीं हुई तो चावलों का त्याग करने वाले के धान कूटने के प्रयास के समान, जल से निरपेक्ष मनुष्य के कुआँ खोदने के प्रयास के समान, शास्त्र श्रवण करने की इच्छा से विमुख मनुष्य के कणादकी उक्ति-न्याय शास्त्र के अध्ययनजन्य श्रम के समान, दानगुण से अनभिज्ञ मनुष्य के धनोपार्जन के क्लेश के समान, अनात्मवादी के तपस्या के श्रम के समान, जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में प्रणाम करने की सद्बुद्धि से रहित मनुष्य के शिर का भार धारण करने से उत्पन्न थकावट के समान और इन्द्रियों के दास के दीक्षा प्रारम्भ के समान यह प्रयास व्यर्थ है।

कवि, कुमार जीवन्धर का वर्णन करता हुआ कहता है—'वे अवस्था के अनुकूल वचन कहने में नट के समान, संभोगसम्बन्धी चतुराई के प्रकट करने में विट के समान, वशीकरण के कार्य में वशीकरण मंत्र के समान, इच्छानुसार प्रवृत्ति करने में शिष्य के समान, विरह के सहन न करने में चक्रवाक के समान थे। —ग.चि. षष्ठलम्भ पृ. 243

राजाओं के स्वरूप वर्णन के प्रसङ्ग में विरोधाभास की छटा दर्शनीय है—

हि सत्यपि राजभावे सद्भिर्न सेव्यते, जीवत्यपि गोपतित्वे वृषशब्दं न

शृण्वन्ति, नादितेऽपि नरेन्द्रत्वे मन्त्रिकृत्यं न सहन्ते। तथा महाबलान्वेषिणोऽप्यबलान्वेषिणः, प्रतापार्थिनोऽप्यसोढव्यापिनः, सश्रुतयोऽप्यश्रुतयः, अङ्गस्पृहा अप्यनङ्गस्पृहाः, अभिषिक्ता अप्यनार्द्रभावाः, जडसंसक्ता अप्यूष्मलस्वभावाः, सुलोचना अप्यदूरदर्शिनः, सुपादा अपि स्खलितगतयः, सुगोत्रा अपि गोत्रोन्मूलिनः, सुदण्डा अपि कुटिलदण्डाः, सिंहासनस्थिता अपि पतिताः, हिंसा प्रधानविधयोऽपि मीमांसाबहिष्कृताः, ऐश्वर्यतत्परा अपि न्यायपराङ्मुखाश्च जायन्ते। —ग.चि., द्वितीय भाग पृ. 113

अर्थात् राजाओं का जो स्वरूप है, उसके वर्णन करने में इन्द्र को भी असंख्य मुखों का धारक होना चाहिए। यथार्थ में उनमें राजभाव-चन्द्रपना होने पर भी वे सत्-नक्षत्रों से सेवित नहीं होते। परिहार पक्ष में राजा होने पर भी सत्-सज्जनों से सेवित नहीं होते। गोपतित्व-गायों का पतिपना रहते हुए भी वे वृष-बैल शब्द को नहीं सुनते-गायों का पति वृष-बैल कहलाता है पर वे गायों के पति होकर भी वृष-बैल शब्द को नहीं सुनना चाहते। (परिहार पक्ष में-गोपतित्व-पृथिवीपतित्व-पृथिवी का स्वामित्व होने पर भी वे वृष-धर्म शब्द को नहीं सुनते-उन्हें धर्म का नाम सुनते ही चिढ़ उत्पन्न होती है। नरेन्द्रपना-विषवैद्यपना घोषित होने पर भी अपने आपको नरेन्द्र-विषवैद्य घोषित करके भी वे मन्त्रिकृत्य-मन्त्रवादियों के कार्य को सहन नहीं करते। (परिहार पक्ष में-नरेन्द्रपना-राजपना घोषित होने पर भी अपने आपको नरेन्द्र-राजा घोषित करके भी वे मंत्रिकृत्य-मंत्रियों के कार्य को सहन नहीं करते। वे महाबलान्वेषी-अत्यन्त बलवानों की खोज करने वाले होकर भी अबलान्वेषी-निर्बलों की खोज करने वाले हैं (पक्ष में अबला-स्त्रियों की खोज करने वाले हैं)। प्रतापार्थी-अत्यधिक ताप के इच्छुक होकर भी असोढप्रतापी-अत्यधिक ताप से युक्त पदार्थों को सहन नहीं करने वाले हैं (पक्ष में-प्रताप-तेज के इच्छुक होकर भी अन्य प्रतापी-तेजस्वी मनुष्यों को सहन नहीं करने वाले हैं)। सश्रुति-कानों से सहित होकर भी अश्रुति-कानों से रहित हैं (पक्ष में सश्रुति-कानों से सहित होकर भी अश्रुति-शास्त्रों से रहित हैं)। अंगस्पृह-शरीर में स्पृहा-इच्छा रखने वाले होकर भी अनंगस्पृह-शरीर में स्पृहा नहीं रखने वाले हैं (पक्ष में अंगस्पृह-शरीर में स्पृहा रखने वाले होकर भी अनंगस्पृह-काम में इच्छा रखने वाले हैं)। अभिषिक्ति-जल के द्वारा अभिषेक को प्राप्त होने पर भी अनार्द्रभाव—आर्द्रपन-गीलापन से रहित हैं (पक्ष में अभिषेक को प्राप्त होने पर

भी अनार्द्र भाव-निर्दय अभिप्राय से युक्त हैं)। जड संसक्त-जलसंसक्त-जल से सहित होने पर भी ऊष्मल स्वभाव-गरम स्वभाव को धारण करने वाले हैं। (पक्ष में-जडसंसक्त-मूर्खजनों के संसर्ग में रहकर भी ऊष्मल स्वभाव-तेजस्वी प्रकृति के धारक हैं)। सुलोचन उत्तम नेत्रों से युक्त होने पर भी अदूरदर्शी-दूर तक नहीं देखने वाले हैं (पक्ष में सुलोचन-सुन्दर नेत्रों से युक्त होने पर भी अदूरदर्शी-दूर तक नहीं देखने वाले हैं (पक्ष में सुलोचन—सुन्दर नेत्रों से युक्त होने पर भी अदूरदर्शी-भविष्य के विचार से रहित हैं)। सुपाद-उत्तम पैरों से युक्त होने पर भी स्खलित गति लड़खड़ाती चाल से सहित हैं (पक्ष में-सुपाद-उत्तम पैरों से) सहित होकर भी स्खलित गति-पतित दशा से युक्त हैं। सुगोत्र-उत्तम नाम के धारक होकर भी गोत्रोन्मूलि-नाम का उन्मूलन करने वाले हैं (पक्ष में सुगोत्र-उच्चकुल में उत्पन्न होकर भी गोत्रोन्मूली-अपने कुल को नष्ट करने वाले हैं)। सुदण्ड—अच्छे दण्ड से युक्त होकर भी कुटिल दण्ड-टेढ़े दण्ड से युक्त हैं (पक्ष में सुदण्ड-अच्छी सेना से युक्त होकर भी कुटिलदण्ड-भयंकर सजा देने वाले हैं)। सिंहासन पर स्थित होने पर भी पतित-नीचे पड़े हुए हैं (पक्ष में—सिंहासनारूढ़ होने पर भी पतित-भ्रष्ट हैं)। हिंसाप्रधान विधि-हिंसाप्रधान काय-हिंसापूर्ण यज्ञादि से सहित होने पर भी मीमांसाबहिष्कृत-मीमांसक दर्शन सम्मत मीमांसा से रहित हैं (पक्ष में हिंसापूर्ण कार्य करने वाले होकर मीमांसा-विचार शक्ति से रहित हैं) और ऐश्वर्य में तत्पर होकर भी न्यायपराङ्मुख-अत्यधिक आय से विमुख हैं (पक्ष में ऐश्वर्य प्रधान होकर भी न्यायपराङ्मुख योग्य निर्णय से विमुख रहते हैं—उचित न्याय नहीं करते हैं।

वादीभसिंह की उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं से पूरी गद्यचिन्तामणि व्याप्त है। उत्प्रेक्षा में वादीभसिंह बहुत कुशल हैं। उनकी कल्पना शक्ति प्रत्येक चित्रण को उत्प्रेक्षा रूपी परिधान पहिनाती है। किसी व्यक्ति या दृश्य का चित्रण करते समय एक के बाद एक उत्प्रेक्षा या उपमा प्रस्तुत करते चले जाते हैं। उदाहरणार्थ राजपुरी के विद्यामण्डप का वर्णन करते हुए वे अनेक उत्प्रेक्षाओं का सहारा लेते हैं—

मरकतमणिमयाजिरपृष्ठ प्रसारितैर्मौक्तिकवालुकाजालैः प्रतिफलितमिव सतारं तारापथं दर्शयतः, स्फटिक शिलाघटित बलिपीठोपकण्ठ प्रतिष्ठित महार्हमणिमयमानस्तम्भस्य, संस्तवव्याजेन शब्दमयमिव सर्वं जगत्कुर्वता

मस्तकन्यस्तह स्तांजलिनिवहनिभेन भगवन्तमर्चयितुमाकाशेऽपि कमलवन मापादयतेव भव्यलोकेन भासितोद्देशस्य...... ।।

—ग. चि., प्रथमो लम्भः पृ. 83-85

सूर्यास्त का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—इसी बीच सूर्यास्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानों इस अत्यधिक भयङ्कर वृत्तान्त को देखने के लिये असमर्थ होता हुआ वह समुद्र के मध्य में डूब गया था। पश्चिम दिशा में सन्ध्या की लालिमा दिखने लगी, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो राजा के मरण को साक्षात् देखने वाली पश्चिम दिशा के हृदय में शोक रूपी अग्नि ही भभक उठी थी। दिशाओं में निरन्तर अन्धकार फैल गया, उससे ऐसा जान पड़ता था मानों राजा की प्रिय वल्लभा को मनुष्य न देख सकें, इस उद्देश्य से काल ने एक कनात ही लगा दी थी।[1]

वादीभसिंह ने मानवीय सौन्दर्य कस साङ्गोपाङ्ग चित्रण किया है। सुभद्र सेठ जीवन्धर कुमार को देखकर विचार करता है—

जो अत्यन्त प्रगल्भ और मधुर दृष्टि के विक्षेप की लीला से असामयिक कमलवन के विकास की शोभा को दिखला रहा है, जिसकी भृकुटी रूपी लता चातुर्य की नृत्यविद्या से सुन्दर है, जिसके मूँगा के समान श्वेत रक्त ओष्ठ दाँतों की कान्ति रूपी चाँदनी से व्याप्त हैं, जिसके कपोल साफ किए हुए स्वर्णनिर्मित दर्पण के समान हैं, जो सीधी, ऊँची, कोमल एवं लम्बी नाक से सहित हैं, जिसके कण्ठ की रेखायें, आलिंगन को प्राप्त लक्ष्मी की भुजलता के मार्ग का अनुसरण कर रही हैं, जिसके कर्णपाश कन्धों से सटे हुए हैं, जिसकी मनोहर कन्धों से युक्त भुजलतायें पराक्रम का शिविर लगाने के लिये खड़े किए हुए खम्भों के समान हैं[2] ....।

वादीभसिंह की दृष्टि प्रकृति के विभिन्न रूपों को देखने में रमी हैं। तदनुसार उन्होंने प्रकृति के अनेक रमणीय रूपों का वर्णन किया है। गद्य चिन्तामणि के षष्ठ लम्भ का ग्रीष्म वर्णन तथा सप्तम लम्भ का वर्षावर्णन प्राकृतिक छटा से व्याप्त है। चन्द्रोदय का वर्णन करते हुए कहा गया है—

क्रमेण च मदनमहाराजश्वेतापत्रे रजनीरजतमाटङ्के स्फटिकोपल घटित मदनशरमार्जन शिल्लशकलकल्पे पुष्पबाणाभिषेक पूर्णकलश्मयमाने सर्वजनानन्द कारिणि रागराजप्रियसुहृदि राजति रोहिणीरमणे[3]..... ।

'क्रम क्रम से जो मदनरूपी महाराज का सफेद छत्र था, रात्रि रूपी

स्त्री का चाँदी का कर्णाभरण था, जो काम के बाणों के साफ करने के लिए स्फटिक पाषाण से निर्मित शिला के एक खण्ड के समान था, कामदेव के अभिषेक के लिए निर्मित पूर्ण कलश के समान जान पड़ता था, सब मनुष्यों को आनन्द उत्पन्न करने वाला था और राग रूपी राजा का मित्र था, ऐसा चन्द्रमा सुशोभित होने लगा। संसार का मध्य भाग चन्द्रमा की उन किरणों के समूह से व्याप्त हो गया जो क्षीरसमुद्र के जलकणों के समान, कपूर की पराग के समान, चन्दनरस के समूह के समान, अमृत के फेनपिण्ड के समान, पारे के रस की धारा के समान, स्फटिक की धूलि के समान अथवा कामाग्नि की भस्म के समान जान पड़ती थी।'

पुत्र के असानिध्य के कारण माता विजया की कैसी दशा हो रही थी, इसका वर्णन कवि ने बड़े मार्मिक ढंग से किया है—

'मुषितामिव मोहेन, क्रीताभिव क्रशिम्ना, वशीकृतामिव शुचा दुःखैरिवोत्खातम्, व्यसनैस्विास्वादिताम्, तापैरिवापीडिताम्, चिन्तयेवाचान्ताम्, क्लेशैरिवावेशिताम्, अभाग्यैरियासंविभक्तां मातरमत्यादरमभ्येत्य प्रणनाम।'

उनकी वह माता ऐसी जान पड़ती थी मानों मोह से लुटी हुई हो, दुर्बलता से मानों खरीदी गई हो, शोक के द्वारा मानों वश में की गई हो, दुःखों के द्वारा मानों उखाड़ी गई हो, व्यसनों से मानों आस्वादित हो, सन्ताप से मानों पीड़ित हो, चिन्ता से मानों आचान्त हो-चॉटी गई हो, क्लेशों से मानों युक्त हो और अभाग्य से मानों परिपूर्ण हो। सामने जाकर उन्होंने उस माता को बड़े आदर से प्रणाम किया।

गद्य चिन्तामणि,-अष्टम लम्भ पृ. 310

रस योजना—गद्यचिन्तामणि तथा छत्रचूडामणि दोनों का प्रधान रस शान्त है। अन्य आठ रसों का यथावसर अच्छा प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ सप्तम लम्भ में पुत्र मोह से ग्रस्त माता के सामने शरीर की बीभत्स स्थिति का वर्णन करते हुए विरक्त जीवन्धर कहते हैं—

जो रस, रुधिर और अपवित्र वस्तुओं से भरा हुआ है, समस्त अपवित्रताओं का कुलगृह है, बिना विचार किये ही रम्य जान पड़ता है और क्षण क्षण में नष्ट हो रहा है, ऐसे शरीर नामक परिपुष्ट मांस के पिण्ड को देखकर क्यों अत्यन्त मोहित हो रही हो। देखो, हम लोगों के देखते देखते जो नष्ट हो जाता है, केवल हड्डियों का पिंजड़ा है, चमड़े का यन्त्र है, नशों

से संकीर्ण है, खून का तालाब है, मांस की राशि है, चर्बी का कलश है, मल रूपी शैवाल का स्वल्प जलाशय है और रोगों का घोंसला है........ऐसे चर्मयन्त्र के समान इस शरीर में तुम अधिक आदर मत करो।

—ग. चि. लम्भ 7 पृ. 281-282

माता विजया जब आश्रम में देवी के द्वारा ले जायी गई तो उसकी कारुणिक स्थिति का वर्णन वादीभसिंह ने किया है—

सा च तत्र संतापकृशानु कृशतरा कृशोदरी करेणुरिव कलभेन, धेनुरिव दम्येन, श्रद्धेव धर्मेण, श्रीखि प्रश्रयेण, प्रज्ञेव विवेकेन, तनुजेन विप्रयुक्ता विगतशोभा सती विमुक्तभूषण तापसवेषधारिणाी करुणाभिखि मूर्तिमतीभिर्मुनि पत्नीभिरुपलाल्यमाना........ग. चि. प्रथम लम्भ पृ. 79

सन्ताप से जिसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था, ऐसी कृशोदरी विजया रानी उस आश्रम में बच्चे से रहित हस्तिनी के समान, बछड़े से रहित गाय के समान और विवेक से रहित प्रज्ञा के समान पुत्र के बिना सुशोभित नहीं हो रही थी। उसने सब आभूषण उतारकर दूर कर दिए तथा तपस्विनी का वेष धारण कर लिया। जो मूर्तिमती दया के समान जान पड़ती थीं ऐसी मुनि पत्नियाँ बड़े प्रेम से उसका लालन करती थीं।

सुरमञ्जरी के सामने जीवन्धर का वृद्ध रूप धारण कर जाने तथा नाटकीय ढंग से उपस्थित होने में हास्य रस की अवतारणा हुई है।

आठ कन्याओं के साथ जीवन्धर कुमार का विवाह हो जाने पर शृंगार का अच्छा वर्णन किया गया है।

जीवन्धर के दीक्षा ग्रहण करने के प्रसङ्ग में शान्त रस का परिपाक हुआ है।

इसी प्रकार अन्य रसों के उदाहरण भी वादीभसिंह के काव्यों में प्राप्त होते हैं।

सूक्ति वैभव—वादीभसिंह की क्षत्र चूडामणि जीवन और जगत सम्बन्धी अनुभवों से भरी हुई सूक्ति- प्रधान रचना है। गद्यचिन्तामणि में भी स्थान-स्थान पर सूक्तियों का प्रयोग किया गया है। जैसे—

दारिद्र्यादपि धनार्जने तस्मादपि तद्रक्षणे ततोऽपि तत्परिक्षये परिक्लेशः सहस्रगुणः प्राणिताम्। ग. चि. द्वि. लम्भ पृ. 133

दरिद्रता की अपेक्षा धन कमाने में, धन कमाने की अपेक्षा उसकी रक्षा

में और रक्षा की अपेक्षा उसके नष्ट होने में प्राणियों को हजार गुना क्लेश होता है।

'स्वदेशगतः शशः कुञ्जरातिशायी।' —ग. चि., द्वि. लम्भ पृ. 127

अपने स्थान पर स्थित खरगोश भी हाथी को पराजित कर देता है।

अचिन्त्यानुभावं हि भवितव्यम्।। —ग. चि., चतु. लम्भ पृ. 208

भवितव्य की महिमा अचिन्त्य है।

विकारहेतौ सति मनश्चेद्विक्रियते विद्यास्फूर्तिः कर्मार्थका।।

—ग. चि., सप्तमलम्भ पृ. 284

विकार का कारण मिलने पर यदि मन विकृत हो जाता है तो फिर विद्या की स्फूर्ति किसलिए है?

जीवतां जगति किं नाम न श्रव्यं श्रोतव्यम्।।

—ग. चि., अष्टम लम्भ, पृ. 308

संसार में जीवित रहने वाले प्राणियों को क्या नहीं सुनने को प्राप्त नहीं होता है?

परिपन्थिजनगृह्याः खलु निगृह्याः पुरंध्रयः पुमांसश्च।

—ग. चि., अष्टम लम्भ पृ. 312

शत्रुजन के वश में पड़ी स्त्रियाँ और पुरुष वास्तव में निगृह्य होते हैं।

उग्रतरव्यसनवाधिवर्द्धनेन्दुः खलु वार्द्धकं च।।

—ग. चि. नवम लम्भ पृ. 328

बुढ़ापा अत्यन्त तीव्र दुःखरूपी सागर को बढ़ाने के लिए चन्द्रमा है।

जीवानामुदय एव न केवलं जीवितमपि बलवदधीनम्।।

—ग. चि., लम्भ 11 पृ. 406

न केवल जीवों का अभ्युदय ही बलवान के अधीन है, अपितु उनका जीवन भी बलवान के अधीन है।

तत्त्वज्ञानविवेकतो विमलीकृतहृदयाः कृतिनिः खलु जगति दुष्कर कर्मकारिणो भवन्ति।। —ग. चि., लम्भ 11 पृ. 407

तत्त्वज्ञान के विवेक से जिनके हृदय निर्मल हो गए हैं, ऐसे भाग्यशाली कुशल मनुष्य ही संसार में दुष्कर कठिन कार्य करने वाले होते हैं।

स्नेहप्रयोगमनपेक्ष्य दशां च पात्रं धुन्वंस्तमांसि सुजनापररत्नदीपः।
मार्गप्रकाशनकृते यदि नाभविष्यत्सन्मार्गगामि जनता खलु नाभविष्यत्।।

—गद्य चिन्तामणि, 1.7

जो स्नेह प्रयोग-प्रीति का प्रकृष्ट संयोग (पक्ष में तेल का संयोग) दशा-अवस्था (पक्ष में बत्ती) और पात्र व्यक्ति (पक्ष में भाजन) की अपेक्षा न कर अज्ञानान्धकार को नष्ट करता है, ऐसा सज्जन रूपी श्रेष्ठ रत्नमय दीपक मार्ग को प्रकाशित करने के लिए नहीं होता तो निश्चय से जनता सन्मार्ग में गमन करने वाली नहीं होती।

वादीभसिंह के काव्य में राजनीति

वादीभसिंह राजनीतिक विचारों में परिपक्व थे। उनके काव्य के अध्ययन से हमें राजनीति सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती हैं। यहाँ उनके राजनैतिक विचारों पर प्रकाश डाला जाता है—

राज्य—राज्य, योग और क्षेम की अपेक्षा विस्तार में तप के समान है; क्योंकि तप तथा राज्य से सम्बन्ध रखने वाले योग और क्षेम के विषय में प्रमाद होने पर अधः पतन होता है और प्रमाद न होने पर भारी उत्कर्ष होता है।[1]

राजा का महत्त्व—राजा के द्वारा समस्त पृथ्वी एक नगर के समान रक्षित होने पर राजन्वती (श्रेष्ठ राजा वाली) और रत्नसू (रत्नों की खान) हो जाती है।[1] राजा जन्म को छोड़कर सब बातों में प्रजा का माता, पिता है, उसके सुख और दुःख प्रजा के आधीन हैं[2]। उत्तम राजा से युक्त भूमि सुख देती है।[3] राजा अधःपतन से होने वाले विनाश से रक्षा करता है। अतः संसार की स्थिति रहती है, ऐसा न होने पर संसार की स्थिति नहीं रह सकती है[4]। राजा की आज्ञा से भूमण्डल पर कहीं से भी भय नहीं रहता है। राजा की आज्ञा के विपरीत प्रवृत्ति करने पर सच्चरित्र व्यक्तियों का भी चरित्र स्थिर नहीं रहता है।[5] इस लोक में राजा लोग देवों की और प्राणियों की भी रक्षा करते हैं, किन्तु देव अपनी भी रक्षा नहीं करते हैं, इसलिए राजा ही उत्तम देवता है।[6] इस संसार में देव देवों से डरने वाले प्राणी को ही दुःख देते हैं, किन्तु राजा राजद्रोहियों के वंश और धन दौलत आदि को उसी समय नष्ट कर देता है।[7] अर्थीजनों के जीवन के उपाय को और तिरस्कार करने वालों के नाश को करने वाले राजा अग्नियों के समान सेवन करने योग्य हैं।[8] अर्थात् राजा अपने इच्छित कार्य के लिये प्रार्थना करने वालों की तो इच्छा पूर्ण कर देते हैं, किन्तु अपमानादि करने वालों का नाश कर देते हैं, अतः जिस प्रकार अग्नि का डरकर सेवन किया जाता है, उसी प्रकार राजा की सेवा भी डरकर करना चाहिए। राजा लोग चूँकि प्राणियों के प्राण हैं, अतः राजाओं के प्रति किया

हुआ अच्छा और बुरा व्यवहार लोक के विषय में किया हुआ व्यवहार ही होता है[1]। राजा लोग समस्त देवताओं की शक्ति का अतिक्रमण करने वाले होते हैं। जो देवताओं का अपमान करता है, वह परभव में विपत्ति को प्राप्त होता है और नहीं भी होता है, किन्तु जो राजा के विषय में मन से भी विपरीत चेष्टा करना चाहते हैं, उन पर विचार करते ही विपत्ति टूट जाती है। समस्त सम्पत्ति के साथ राजद्रोही के कुल का संहार एक साथ हो जाता है, दूसरे लोक में भी उस प्राणी की अधोगति होती है।[1] अविवेकी मनुष्य के यातायात से जो खुदा हुआ है, अपयश रूपी कीचड़ के समूह से जो गीला है, जो दोनों ओर फैलते हुए दुःखरूपी करोड़ों काँटों से व्याप्त है, समस्त मनुष्यों के विद्वेष रूपी साँपों के संचार से जो भयङ्कर है और अनन्त निन्दा रूपी दावाग्नि से जो व्याप्त है, ऐसे राजविरुद्ध मार्ग का सेवन वे ही लोग करते हैं, जो स्वभाव से मूढ़ हैं। ऐसे मनुष्य ही सौजन्य को छोड़ते हुए, समस्त दोषों का संग्रह करते हुए, कीर्ति को दूर हटाते हुए, अपकीर्ति को स्वीकार करते हुए, किए हुए कार्य को नष्ट करते हुए, कृतघ्नता को चिल्लाते हुए प्रभुता को छोडकर, मूर्खता को अपनाकर, गौरव को दूर कर, लघुता को चढ़ाकर, अनर्थ को भी अभ्युदय, अमङ्गल को भी मङ्गल और अकार्य को कार्य समझते हैं[1] यथार्थ में राजा गर्भ का भार धारण करने के क्लेश से अनभिज्ञ माता, जन्म की कारणमात्रता से रहित पिता, सिद्धमातृका (वर्णमाला) के उपदेश के क्लेशरहित गुरु, दोनों लोकों का हित करने में तत्पर, बन्धु, निद्रा के उपद्रव से रहित नेत्र, दूसरे शरीर में संचार करने वाले प्राण, समुद्र में न उत्पन्न होने वाले कल्पवृक्ष, चिन्ता की अपेक्षा से रहित चिन्तामणि, कुल परम्परा की आगति के जानकार, भक्तों के जानकार, सेवकों के कृपापात्र, व्रज की प्रजा की रक्षा करने वाले, शिक्षा के उद्देश्य से दण्ड देने वाले शत्रुसमूह को दण्डित करने वाले होते हैं।[2]

राजा के गुण—वादीभसिंह ने राजा के निम्नलिखित गुणों का उल्लेख किया है—

1. **वीरता**—राजा को वीर होना चाहिए, क्योंकि यह पृथ्वी वीर मनुष्यों के द्वारा भोगने योग्य होती है।[3]

2. **त्रिवर्ग का अविरोध रूप से सेवन**—यदि परस्पर विरोध के बिना धर्म, अर्थ और काम सेवन किए जाते हैं तो बाधारहित सुख मिलता है और क्रम से

मोक्ष भी मिलता है[4] यदि राजा सुख चाहता है तो (काम के कारण) धर्म और अर्थ पुरुषार्थ नहीं छोड़ें; क्योंकि बिना मूल कारण के सुख नहीं हो सकता है।[5]

जो अपयश रूपी पंक को उत्पन्न करने के लिऐ वर्षा ऋतु के समान हैं, धर्मरूपी कमलवन को निमीलित करने के लिए रात्रि के प्रारम्भ के समान है, जो अर्थ पुरुषार्थ को नष्ट करने के लिए कठोर राजयक्ष्मा के समान है, मूर्खजनों से जिसमें भीड़भाड़ उत्पन्न की जाती है और विवेकीजन जिसकी निन्दा करते हैं ऐसे काम के मार्ग में बुद्धिमान अपना पैर नहीं रखते हैं। अतः धर्म और अर्थ का विरोध न कर, काम सुख का उपभोग कर, राजधर्म को न छोड़ते हुए पृथ्वी का पालन करना चाहिए।[1] राजा जब अनत्यसुलभ परस्पर बाधा न पहुँचाने वाले धर्म, अर्थ एवं काम का संचय करता है, उनके अधीन रहने वाली प्रजा बड़े आदर के साथ उन्हें लगान देती है, यदि प्रमादवश कुछ भूल हो जाती है तो उसका पश्चाताप करती है, उनकी आज्ञा का पालन करती है, विनयपूर्वक गुरुजनों के अनुकूल प्रवृत्ति करती है, प्रतिज्ञापूर्वक सदाचार का पालन करती है, विचारपूर्वक कार्य का प्रारम्भ करती है, उसके आचार सफल रहते हैं, उसकी उत्तम चेष्टायें दूसरों के प्रयोजन से युक्त होती हैं और उत्सवों की सब तैयारियाँ दान और पूजा सहित होती हैं। इन सब कार्यों सहित प्रजा राजा को उपार्जन के क्लेश से रहित धनसमूह, जन्म में उपयोग न देने वाले पिता, टिमकार से रहित नेत्र, पालन पोषण के खेद से रहित पुत्र, मूर्तिधारी विश्वास, चलने फिरने वाला कल्पवृक्ष अथवा अपने प्राणों की राशि के समान मानती है।[2]

3. **अरिषड्वर्गविजय**—बाह्य शत्रु तो अस्थायी और दूरवर्ती हैं, अतः छह प्रकार के आन्तरिक शत्रुओं[3] पर विजय प्राप्त करना चाहिए। क्रोध रूपी अग्नि अपने आपको ही जलाती है, दूसरे पदार्थ को नही। इसलिए क्रोध करता हुआ पुरुष दूसरे को जलाने की इच्छा से अपने शरीर पर ही अग्नि फेंकता है।[4] अपने आपको भी नष्ट करने वाले क्रोधीजन हर प्रकार का दुष्कर्म कर सकते हैं[5] यदि अपकार करने वाले मनुष्य पर कोप है तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के नाशक क्रोध पर ही क्रोध करना चाहिए।[6] रागासक्त जनों में योग्य-अयोग्य का विचार नहीं रहता है।[7] समस्त कार्य छोड़कर स्त्रियों में आसक्त रहना समस्त अनर्थों से सम्बन्ध जोड़ने वाला है। समस्त सुर और

असुरों के साथ युद्ध की खाज रखने वाले भुजदण्ड की मण्डली से अनायास उठाए हुए कैलाशपर्वत के द्वारा जिसका पराक्रम कण्ठोक्त था और प्रताप के भय से नमस्कार करने वाले अनेक विद्याधरों के मुकुटरूप मणिमय पादचौकियों पर जिनके चरण लोट रहे थे, ऐसा रावण भी स्नेहातिरेक से सीता के विषय में विवश हो रण के अग्रभाग में लक्ष्मण को मारने के लिये छोड़े हुए चक्ररत्न से मृत्यु को प्राप्त हुआ।[1] इस लोक और परलोक सम्बन्धी हित को नष्ट करने वाली तृष्णा और क्रोध में भेद नहीं है।[2] धन से अन्धे मनुष्य सत्पथ को न सुनते हैं, न समझते हैं, न उस पर चलते हैं और चलते हुए भी कार्य की पूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकते हैं।[3] संसार में एक ही पदार्थ के विषय में इच्छा के कारण स्पर्द्धा सभी के बढ़ती है[4], किन्तु मात्सर्य से सभी नष्ट हो जाता है।[5] ईर्ष्या करने वाले व्यक्तियों को क्या-क्या खोटे कार्य रुचिकर नहीं लगते हैं अर्थात् सभी लगते हैं[6]। मत्सरयुक्त पुरुषों के वस्तु के यथार्थस्वरूप का विचार नहीं होता है।[7] प्राणियों में ममत्वबुद्धि से उत्पन्न हुआ मोह विशेष होता है[8] इसके अतिरिक्त पंचेन्द्रियों से उत्पन्न मोह एक दूसरे से बढ़कर होता है।[9] मोह का त्याग करना चाहिए; क्योंकि थोड़ा भी मोह देहधारियों की आस्था को अस्थान (अयोग्यस्थान) में गिरा देता हैं[10]।

4. जागृति—राजा को अपने हृदय का भी विश्वास नहीं करना चाहिए; फिर दूसरों की तो बात ही क्या है? स्वभाव से सरल अपने हृदय से उत्पन्न सब लोगों पर विश्वास करने की आदत समस्त अनर्थों का मूल हैं। राजा लोग नटों के समान मंत्रियों के ऊपर अपने विश्वास का अभिनय करते हैं, परन्तु हृदय से उन पर विश्वास नहीं करते हैं; क्योंकि चिरकाल के परिचय से बढ़े हुए विश्वास के कारण मंत्रियों पर राज्य का भार रखने वाले राजा उन्हीं मंत्रियों द्वारा मारे गए हैं, ऐसी लोककथायें सुनने में आती हैं[11]। सब उपायों को करने में उद्यत सबको शत्रु की कपटवृत्ति से प्राप्त होने वाले अपने विनाश के उपाय का सदा निराकरण करते रहना चाहिए। शत्रुओं के वश में पड़ी स्त्रियाँ और पुरुष निगृह्य (तिरस्कार के पात्र) होते हैं कितने ही लोग खाना, सोना, पीना और वस्त्र धारण करते समय कष्ट उत्पन्न करने वाला विष मिलाकर मारने का यत्न कर सकते है[12]

5. नियमपूर्वक कार्य करना—राजा को रात्रि और दिन का विभाग करके नियत कार्यों को करना चाहिए; क्योंकि समय निकल जाने पर करने योग्य कार्य बिगड़ जाता है।[1]

राज्य को प्राप्त कर श्रेष्ठ राजा समस्त गुणों से सुशोभित होता है।

हार में पिरोया गया काच निन्दापने को प्राप्त करता है, किन्तु मणि प्रशस्तपने को ही प्राप्त होती है।[2] दुःसह प्रताप के रहने पर भी श्रेष्ठ राजा में सुखोप सेव्यता, सुकुमार रहने पर भी आर्यजनों के योग्य उत्तम आचार, अत्यधिक साहसी होते हुए भी समस्त मनुष्यों की विश्वासपात्रता, पृथिवी का भार धारण करने पर भी अखिन्नता, निरन्तर दान देने पर भी कोश की अक्षीणता, शत्रुओं के तिरस्कार की अभिलाषा होने पर भी परमकारुणिकता, काम की परतन्त्रता होने पर भी अत्यधिक पवित्रता देखी जाती है। उनकी इष्टफल की प्राप्ति कार्यारम्भ को, विद्या की प्राप्ति बुद्धि को, शत्रुओं का क्षय पराक्रम को, मनुष्यों का अनुराग परहित तत्परता को, अनाक्रमण प्रताप को, विरुदावली दान को, कवियों का संग्रह काव्यरस की अभिज्ञता को, कल्याण रूप सम्पत्ति दृढ़ प्रतिज्ञा को, लोगों के द्वारा अपने कार्यों का उल्लंघन न होना न्यायपूर्ण नेतृत्व को, धर्मशास्त्र के श्रवण करने की इच्छा तत्त्वज्ञान को, मुनिजनों के चरणों में नम्रता दुष्ट अभिमान के अभाव को, दान के जल से गीला किया हुआ हाथ माननीयता को, जिनेन्द्रदेव की पूजा परमधार्मिकता को और क्षुद्र पशुओं का अभाव नीतिनिपुणता को चुपचाप सूचित करता है।[3] जिस प्रकार धान के खेत में बीज बोने वाले किसान आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार (उत्तम) राजा को कर देना भी प्रीतिकर होता है।[4] वह मन्द मुस्कान से इष्टकार्य सिद्ध कर आए हुए सामन्तों में कटाक्षपात से प्रसन्नता को प्राप्त मनुष्यों के लिए हजारों दीनारों के देने में, कर्णदान से अनेक देशों से आने वाले गुप्तचरों के वचन सुनने में, प्रतिबिम्ब के बहाने विद्याधर राजाओं के मुकुटों में, नेत्र से मित्र के शरीर में निवास करता है।[5] उसके दान गुण के द्वारा कल्पवृक्ष की महिमा मन्द पड़ जाती है।वह पराक्रम से राजाओं के शरीर अथवा युद्ध को नष्ट करता है।[1] रणरूपी सागर को जीतने के लिए जहाज, तलवार रूपी सर्प के विहार के लिए चन्दन वृक्षों के वन और क्षत्रियधर्म रूप सूर्य के लिये उदयाचल स्वरूप उसके द्वारा पृथिवी खरीद ली जाती है तथा प्रत्येक दिशा में उसके जयस्तम्भ गाड़ दिये जाते हैं।[2] उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त बड़ों की सेवा करना, विशेषज्ञता, नित्य उद्योगी और निराम्भी होना,[3] विद्वानों का एकान्त सेवनीय होना[4], कानों को आनन्द देने वाले चरित्र का धारण[5], प्रकृति (मंत्री आदि) को वश में करना[6], कवियों की मधुरध्वनि सुनने के लिए लालायित रहना[7] तथा याचकों का मनोरथ पूर्ण करना[8] राजा के प्रधान गुण हैं।

6. राजा का गोपनीयता गुण

अपनी बात को गोपनीय रखना राजा का बहुत बड़ा गुण है। क्षत्रचूडामणि के अनुसार जब तक इष्ट कार्य की सिद्धि नहीं होती है, तब तक शत्रु की आराधना करे[9]। इसी नीति का अवलम्बन जीवन्धर स्वामी के मामा गोविन्दराज ने किया था। यद्यपि वे पापी काष्ठाङ्गार का विनाश हृदय से चाहते थे, फिर भी अनुकूल समय की प्रतीक्षा करते हुए उन्होंने काष्ठाङ्गार के साथ प्रत्यक्ष रूप में अपना स्नेहभाव प्रदर्शित करने में किसी प्रकार कमी न की। जिसके प्राणों के वे प्यासे थे, उसके ही पास उन्होंने भेंट भेजकर बाह्य रूप से सन्मान का भाव प्रदर्शित किया था।[10] मुद्राराक्षस में राजनीति की विचित्रता इन शब्दों में वर्णित की गई है—कभी तो उसका स्वरूप स्पष्ट प्रतीत होता है, कभी वह गहन हो जाती है और उसका ज्ञान नहीं हो पाता, प्रयोजनवश कभी वह सम्पूर्ण अङ्गयुक्त होती है और कभी अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है, कभी तो उसका बीज ही विनष्ट प्रतीत होता है और कभी वह फल वाली हो जाती है। अहो! नीतिज्ञ की नीति दैव के सदृश विचित्र आकार वाली होती है।[11]

7. अनीतिपूर्ण आचरण का परित्याग—अनीतिपूर्ण आचरण करने का परिणाम बुरा होता है, इस बात का निश्चय इससे होता है कि राजा को धोखा देने वाला काष्ठाङ्गार जीवन्धर महाराज के द्वारा मारा गया। इस पर आचार्य ने कहा है—'स्वयं नाशी हि नाशकः[1]' अन्य का विनाश करने वाले का स्वयं नाश होता है। इस पृथ्वी का शासन दुर्बल व्यक्तियों द्वारा नहीं हो सकता, यहवसुन्धरा वीरों के द्वारा भोगने योग्य है।[2] अत्याचारी काष्ठाङ्गार ने प्रजा का उत्पीड़न किया था। उसने बलात् प्रजा का खून चूसा था, इस कारण महाराज जीवन्धर ने राज्य का शासन सूत्र हाथ में लेते ही 12 वर्ष के लिए पृथ्वी को कर रहित कर दिया था। इसका कारण कविवर यह बतलाते हैं—भैंसों के द्वारा गंदा किया गया पानी शीघ्र निर्मल नहीं होता।[3]

8. धार्मिकता—अनावश्यक हिंसा आदि से भय रखने के कारण क्षत्रिय व्रती माने गये हैं[4] धार्मिक नरेश सफलता प्राप्त करने के अनन्तर सफलता के मूल कारण वीतराग परमात्मा के चरणों की आराधना को नहीं भूलते हैं, इसी बात को जानने के लिये जीवन्धर स्वामी के द्वारा युद्ध में विजय होने के पश्चात् राजपुरी में जाकर जिनभगवान के अभिषेक करने का वर्णन किया गया है;

क्योंकि भगवान की दिव्य समीपता होने पर सिद्धियाँ बिना बाधा के हो जाती हैं।[5]

राजा के भेद—राजाओं के प्रमुखतः तीन भेद किये जाते थे—1. शत्रुराजा 2. मित्र राजा और 3. उदासीन राजा। इन्हीं के आधार पर देश भी तीन प्रकार के हो जाते थे। एक दूसरी अपेक्षा से राजा को मण्डलाधीश्वर[6], सामन्त[7], अधिराट्[8], युवराज[9] तथा विद्याधर (नभश्चर[10]) और भूचर[11] के रूप में विभाजित किया गया है।

राज्याभिषेक—जब वैराग्य आदि के कारण राजा राज्य का परित्याग करता था, तब वह वृहस्पति के समान कार्य करने वाले (बुद्धि में श्रेष्ठ) मंत्रियों, नगरनिवासियों एवं पुरोहितों को बुलाता था। उनके साथ मंत्रणा कर यदि भाई अनुकूल हुआ तो भाई से राज्य सँभालने की याचना करता था। यदि वह भी विरक्ति आदि के कारण राज्य स्वीकृत नहीं करता था तो वंश के ज्येष्ठ, श्रेष्ठ गुणों के पात्र पुत्र को राज्य देता था।[12] इस प्रकार राज्य का स्वामी कुलक्रमागत होता था। बलवान् शत्रु यदि राज्य को जीत लेता था तो वह भी राज्य का स्वामी होता था। ऐसे शत्रु को भी कभी यदि मूल राजकीय वंश का राजकुमार मार देता था अथवा युद्ध में परास्त कर देता था तो उस राजकुमार का ही राज्याभिषेक होता था। राज्याभिषेक के समय समस्त तीर्थों का जल लाकर स्वर्णमय कलशों से राजा का अभिषेक किया जाता था। अभिषेक का जल उत्तम औषधियों के संसर्ग से निर्मल होता था। इस समय देव, किन्नर तथा वन्दीगण तरह-तरह के बाजे बजाते थे। दूसरे राजा लोग अभिषिक्त राजा को प्रणाम करते थे।[1] अभिषिक्त राजा अपने लाभ से प्रसन्नचित्त पुरवासियों को सोने का कड़ा, कम्बल तथा वस्त्र आदि देकर सन्तुष्ट करता था।[2] अनन्तर महत्त्वपूर्ण नियुक्तियाँ[3] कर वह चाण्डालाधिकारी के द्वारा निम्नलिखित घोषणा करता था—समीचीन धर्म बुद्धि को प्राप्त हो। समस्त भूमि का अधिपति राजा कल्याण से युक्त हो, चिरकाल तक विघ्नबाधाओं से पृथिवीमण्डल की रक्षा करे। पृथिवी समस्त ईतियों (प्राकृतिक बाधाओं) से रहित और समस्त धान्यों सहित हो। भव्य जीव दिव्य जिनागम के श्रद्धालु, विचारवान्, आचारवान्, प्रभाववान्, ऐश्वर्यवान्, दयालु, दानी, सदा विद्यमान गुरुभक्ति, जिनभक्ति, दीर्घायु, विद्वत्ता और हर्ष से युक्त हों। धर्मपत्नियाँ धार्मिक कार्य, पातिव्रत्य, पुत्र और विनय सहित हों।[4]

मंत्रिपरिषद् और उसका महत्त्व—मन्त्रवित् राजा को मन्त्रशाला में मंत्रियों के साथ विचार करना चाहिए। विचार किए बिना किसी कार्य का निश्चय नहीं करना चाहिए तथा (किसी कार्य के विषय में) निश्चय हो जाने पर मंत्रणा नहीं करना चाहिए।[5] मंत्रियों के वचनों का उल्लंघन करना अभाग्य[6] को निमंत्रण देता है।[7] समय आ पड़ने पर अपने स्वामी के प्रति गाढ़ भक्ति रखने वाला सचिव (मंत्री) अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करता है और अपने प्राणों का नाश करने वाले वचन बोलता है।[8] गद्यचिन्तामणि से ज्ञात होता है कि राजा के प्रति निष्ठा रखने वाले कितने ही मंत्रियों को मार डाला गया और कितने ही को काले लोहे की बेड़ियों से बद्धचरण कर चोर के समान कारागृह में डाल दिया गया[9] मंत्री के गुणों से प्रभावित होकर कभी-कभी राजा उन पर शासन का भार रखकर अपने दिन सुखपूर्वक बिताते थे। इसका परिणाम अच्छा और कभी-कभी बुरा भी होता था। सत्यन्धर राजा द्वारा काष्ठाङ्गार के ऊपर शासन का भार रखना उनकी मृत्यु और राज्यापहरण रूप अनिष्ट का कारण बना।

गद्यचिन्तामणि के प्रथम लम्भ में काष्ठाङ्गार के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है—राजा सत्यन्धर काष्ठाङ्गार नामक उस मंत्री पर राज्य का भार रखने को तैयार हो गया, जिसने अपने स्वभाव से तीक्ष्णबुद्धि के द्वारा इन्द्र के पुरोहित वृहस्पति को तिरस्कृत कर दिया था, जो राजनीति के मार्ग को अच्छी तरह जानता था। सफलता को प्राप्त हुए साम आदि उपायों के द्वारा जिसका यश बढ़ रहा था, पराक्रम रूप सिंह के निवास करने के लिए जो चलता फिरता पर्वत था, गाम्भीर्य गुण से जिसने समुद्र को निन्दित कर दिया था, अपनी स्थिरता से जिसने कुलाचल की खिल्ली उड़ाई थी, जिसका मन वज्र के समान कठोर था, जो संकट के समय भी खेदखिन्न नहीं होता था, जो समस्त शत्रुदल पर आक्रमण करने को तैयार बैठा था एवं अनुत्साह को जिसने दूर भगा दिया था।[1]

उपर्युक्त विवरण से मंत्रियों के निम्नलिखित सामान्य गुणों पर प्रकाश पड़ता है—

1. तीक्ष्ण बुद्धि होना।
2. राजनीति के मार्ग को अच्छी तरह जानना।
3. साम आदि उपाय से सफलता प्राप्त कर यश की वृद्धि करना।

4. गाम्भीर्य और स्थैर्य गुणों से युक्त होना।
5. वज्र के समान कठोर मन वाला होना।
6. संकट के समय न घबराना।
7. शत्रु पर आक्रमण करने के लिए तैयार होना।
8. उत्साही होना।

एक अन्य स्थान पर सुयोग्य मंत्रियों की राजनीति में कुशलता, सरलबुद्धि, कुलक्रमागत खोटे कर्मों से विमुख एवं वृद्धावस्था में विद्यमान होना रूप गुणों का कथन हुआ है।[2]

मंत्रियों की नियुक्ति—मंत्रियों की नियुक्ति राजा करता था। गद्यचिन्तामणि के दशम लम्भ में राजा द्वारा महामात्र (महामंत्री) की नियुक्ति के किए जाने का उल्लेख हुआ है।[3]

अन्य अधिकारी—मंत्रियों के अतिरिक्त अन्य अधिकारियों में राजश्रेष्ठी[1], प्रतीहार[2], महत्तर[3], दौवारिक[4], आरक्षक[5], कराधिकृत[6], दैवज्ञ[7] (ज्योतिषी), सौविदल्ल[8] (कंचुकी), पुरोधस[9] (पुरोहित), चाण्डालाधिकृत[10], भाण्डागारिक[11] तथा चमूपति[12] के नामों का उल्लेख किया गया है।

कोष[13] और उसकी उपयोगिता—प्राणियों को निरन्तर अपने कोष की वृद्धि करना चाहिए; क्योंकि दरिद्रता (निर्धनता) जीवों का प्राणों से न छूटा हुआ मरण है[14]। मनुष्यों को यह नहीं सोचना चाहिए कि हमारे पिता और पितामह द्वारा संचित बहुत धन विद्यमान है; क्योंकि वह धन अपने हाथ से संचित धन के समान उदात्तचित्त मनुष्य के चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न नहीं करता अथवा करे तो भी आय से रहित धन अविनाशी नहीं हो सकता है। निरन्तर उपभोग होने पर पर्वत भी क्षय हो जाता है। निर्धनता से बढ़कर मर्मभेदक अन्य वस्तु नहीं हो सकती है। निर्धनता शस्त्र के बिना की हुई हृदय की शल्य है। अपनी प्रशंसा से रहित हास्य का कारण है, आचरण के विनाश से रहित उपेक्षा का कारण है, पित्त के उद्रेक के बिना ही होने वाला उन्माद सम्बन्धी अन्धापन है और रात्रि के आविर्भाव के बिना ही प्रकट होने वाली अमित्रता का निमित्त है। दरिद्र का न वचन जीवित रहता है, न उसकी कुलीनता जागृत रहती है, न उसका पुरुषार्थ दैदीप्यमान रहता है, न उसकी विद्या प्रकाशमान रहती है, न शील प्रकट होता है, न बुद्धि विकसित रहती है, न उसमें धार्मिकता की सम्भावना रहती है, न सुन्दरता देखी जाती है, न विनय प्रशंसनीय होती

है, न दया गिनी जाती है, निष्ठा भाग जाती है, विवेक नष्ट हो जाता है अथवा क्या नष्ट नहीं होता अर्थात् सब कुछ नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत धन का संचय रहने पर दोनों लोकों के योग्य पुरुषार्थ भी प्रार्थना किए बिना स्वयं आ जाता है। अतः धन के लिये यत्न करना चाहिए।[15] इसी अभिप्राय को क्षत्रचूडामणि में व्यक्त किया गया है। पिता के द्वारा कमाया हुआ बहुत सा धन विद्यमान रहे, फिर भी पुरुषार्थी जन के लिए अन्योपार्जित द्रव्य से निर्वाह करने में दीनता प्रिय नहीं लगती। यदि स्व स्वामिक धन आय रहित होता हुआ खर्च होता है तो बहुत होता हुआ भी नष्ट हो जाता है; क्योंकि हमेशा भोगा जाने वाला पर्वत भी नष्ट हो जाता है। प्राणियों को निर्धनता से बढ़कर कोई दूसरा हार्दिक दुःखदायक नहीं है। गरीब का प्रशंसनीय गुण प्रकट नहीं रहता। निर्धन के विद्यमान ज्ञान भी शोभायमान नहीं होता। निर्धनता से ठगाया गया दरिद्र पुरुष किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है और चाह के अभिप्राय पूर्वक लक्ष्मीवानों के भी मुख को देखता है।[1]

सेना (चमू)—गद्यचिन्तामणि के द्वितीय लम्भ में पदाति, अश्व, हाथी और रथ चार प्रकार की सेना का निर्देश किया गया है।[2] आक्रमण का मुकाबला करने के लिए अथवा आक्रमण करने के लिए सेना का उपयोग किया जाता था। सबसे पहले राजा सेनापति को आज्ञा देता था, पश्चात् सेनापति की आज्ञानुसार सेना कार्य करती थी।[3] वादीभसिंह ने सेना के प्रमाण का गद्यचिन्तामणि के दशम लम्भ में एक सुन्दर चित्र खींचा है। गोविन्द महाराज काष्ठाङ्गार के यहाँ ससैन्य जा रहे हैं; उस समय अत्यन्त सफेद वारवाणों से सुशोभित श्रेष्ठ कंचुकी वेत्रलताओं से राजा के उपकरण धारण करने वाले लोगों को प्रेरित कर रहे थे। राजा के अत्यन्त दूरवर्ती स्थान तक यह सामान भेजना है, यह समाचार सुनने के लिए भण्डारियों का समूह एकत्रित होकर शीघ्रता कर रहा था। गुरुजन विनयपूर्वक नमस्कार करते हुए लोगों को आशीर्वाद दे रहे थे। लौटने की आशा से रहित योद्धा गाढ़े हुए धन से युक्त कोने दिखला रहे थे। आगे जाने वाले लोग बड़े पेट वाले दासीपुत्रों को बार-बार बुलाने से खिन्न और पसीना से तर हो रहे थे। भूले हुए आश्चर्यजनक आभूषणों को लाने के लिए भेजे हुए सेवक अस्पष्ट तथा विरोधी वचन कह रहे थे। तेजी से जाने वाले सम्बन्धी पीछे देखने के बाद लौटकर पुनः पीछे-पीछे चलने लगते थे। गोणू गिरा देने वाले बैल के द्वारा डरे हुए यात्रियों की भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। क्रोधी चाण्डाल मजबूत कुल्हाड़ों से वृक्ष चीरकर रास्ता चौड़ा करते जाते थे। खोदने वाले (खनित्रगण) कुयें बनाते जाते थे। तात्कालिक कार्य में निपुण बढ़ई नदियाँ तैरने के लिए नावें तैयार कर देते

थे। सेना के कोलाहल से सिंह भयभीत होकर भाग जाते थे। बड़े-बड़े हाथी वृक्षों के लट्ठे उखाड़कर मार्ग में रुकावट पैदा करते थे। वनचर हाथियों की रगड़ से छिटकी हुई वृक्षों की छाल देखकर हाथियों के शरीर का अनुमान करते थे। हाथी की गन्ध सूँघकर बिगड़ने वाले जंगली हाथियों को पकड़ने वाले योद्धाओं का शब्द चारों दिशाओं में हो रहा था। अन्न और वस्त्र से युक्त सब शस्त्र हाथी, घोड़े, ऊँट, भैंसे, मेढे, बैल, रथ तथा गाड़ी आदि प्रमुख वाहनों पर लाद दिये गये थे। इस प्रकार की सेना जब समीपवर्ती हेमाङ्गद देश में पहुँचने के लिए उद्यत हुई तब शिल्पि समाज के प्रमुखों ने पर्णकुटी बनाई। काष्ठाङ्गार के द्वारा सम्मानित गोविन्द महाराज ने उसमें प्रवेश किया।[1]

उपर्युक्त वृत्तान्त के आगे सेना के पड़ाव का वर्णन मिलता है। उक्त वर्णन में घोड़े द्वारा जलाशयों का पानी पीना, हाथियों का बाँधा जाना, रसोइयों (पौरोगव) के द्वारा रसोईघरों में उपस्थित होना, वणिकों का बाजार में पहुँचना, पानी के लिए स्त्रियों द्वारा कुयें या नदियों की खोज करना, ईंधन लाने वालों की ईंधन की खोज, स्नानानुलेपन के बाद वेश्याओं का आभूषण धारण करना, दम्पतियों द्वारा मार्ग की कथा की चर्चा करना, तरुण पुरुषों का स्त्रियों की गोद में थकान मिटाने के लिए शिर रखना, मालाकारों की स्त्रियों द्वारा मालायें गूँथा जाना, दिशाओं का पंक्तिबद्ध सैनिकों से युक्त होना तथा गोविन्द महाराज द्वारा काष्ठाङ्गार द्वारा उपहार में दिए गए घोड़ों और हाथियों का समूह देखा जाना तथा बदले में भेंट भेजना चित्रित किया गया है।[2] युद्ध के समय महावत और घुडसवार अधोवस्त्र पहनकर और शिरस्त्राण धारण कर तैयार हो जाते थे। चक्रव्यूह और पद्मव्यूह जैसे व्यूहों की रचना होती थी तथा धनुर्धारी धनुर्धारियों के साथ, महावत महावतों के साथ, घुड़सवार घुड़सवारों के साथ और रथारोही (स्यन्दनारोही) रथारोहियों के साथ युद्ध करते थे।[3] गद्यचिन्तामणि के अष्टम लम्भ में (मंत्री आदि) मौल और पृष्ठबल (सहायक) सेना का उल्लेख किया गया है।[4]

शासन व्यवस्था—दुर्बल राजा के होने पर चोर, लुटेरों वगैरह का भय हो जाता था। व्याधादि जंगली जातियाँ समीपवर्ती ग्रामों वगैरह से गोधनादि सम्पत्ति लेकर भाग जाती थीं अथवा सेना द्वारा मुकाबला करती थीं, पराक्रमी राजा ही इनको दबाने में समर्थ होता था और दुःखी प्रजा ऐसे ही राजा का स्मरण करती थी।[5]

दुर्ग—आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा के लिए प्राचीन काल में दुर्ग बनाए जाते थे। दुर्गों में भी गिरिदुर्ग (पहाड़ी दुर्ग) का विशेष महत्त्व था। क्षेमपुरी नामक नगर का वर्णन करते हुए गद्यचिन्तामणि में कहा गया है—यह पहाड़ी दुर्ग

है, यह समझकर कल्याण के अभिलाषी मनुष्य इस नगर की सेवा करते हैं[1] इस उल्लेख से गिरिदुर्ग का महत्त्व स्पष्ट द्योतित होता है। बलवान् शत्रु का मुकाबला दुर्गों का आश्रय कर किया जा सकता था; क्योंकि अपने स्थान पर स्थित खरगोश भी हाथी से बलवान हो जाता है।[2]

दूत[3] (सन्देशहर[4])—दूतों को राजाओं का मुख कहा जाता है। गद्यचिन्तामणि के द्वितीय लम्भ में बाण की दूत के रूप में सम्भावना कर दूत को कान में बात कहने वाला तथा हृदय के भेदने में चतुर व्यंजित किया गया है।[5]

गुप्तचर—'चारैः पश्यन्ति राजानः' उक्ति प्रसिद्ध है। गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणि के अनुसार बड़ी सावधानी के साथ गुप्तचर रूपी नेत्रों को प्रेरित करने वाले जीवन्धरस्वामी शत्रु, मित्र और उदासीन राजाओं के देश में उनके द्वारा अज्ञात समाचार को भी जान लेते थे।[6]

राजद्रोह—जो व्यक्ति राजद्रोही होता है, वह सभी का द्रोही हो सकता है, ऐसी स्थिति में वह पाँच पापों (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह) का कर्ता होता है।[7]

शत्रुविजय—शत्रु अपने मनोरथ की सिद्धिपर्यन्त प्रसन्न करने योग्य होते हैं।[8] अपने शत्रु के कार्यों की प्रबलता और उसके विचार को जानकर प्रतीकार करना चाहिए।[9] इस प्रकार उत्तम उपायों से प्रसिद्ध मनुष्य कार्य को पूर्ण करने में रुकावट रहित होते हैं।[10]

वादीभसिंह की कृतियों का सांस्कृतिक महत्त्व—स्याद्वादसिद्धि जहाँ विशुद्ध दार्शनिक कृति है, वहाँ गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणि विशुद्ध साहित्यिक कृतियाँ हैं। इन दोनों कृतियों का सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से भी विशेष महत्त्व है। इस हेतु स्वतन्त्र अध्ययन अपेक्षित है। इन सब विशेषताओं के कारण वादीभसिंह का व्यक्तित्व और कर्तृत्त्व महान सिद्ध होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. न्यायकुमुद चन्द्र
2. जैनसाहित्य और इतिहास
3. सत्र चूड़ामणि
4. कादम्बरी
5. गद्यचिन्तामणि
6. मेघदूत
7. अनेकांत मासिक वर्ष 5

अध्यक्ष संस्कृत विभाग, वर्धमान कालेज **डॉ. रमेशचंद्र जैन**
विजनौर (उ.प्र.)

आचार्य रविषेण : व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व

भारतीय साहित्य की सुविस्तृत परम्परा को जैन साहित्यकारों ने अपना अनर्घ-अर्घ देकर अर्घवान बनाया है। माँ सरस्वती के शृंगार में चार चांद लगाते हुए इन साहित्यकारों ने तीर्थङ्करों की दिव्य ध्वनि को दिगृदिगन्त-व्यापिनी बनाया है। पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण, प्राकृत से हिन्दी और भूत से वर्तमान काल (आज) तक जैन साहित्यकार अपनी साहित्य सृजनात्मकता से भारतीय ज्ञानकोष के एक स्तम्भ बने रहे हैं।

प्राचीन काल में गुणधर, धरसेन जैसे महान् आचार्य हुए जिन्होंने तीर्थङ्करों की वाणी को साहित्य के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। इसीलिए श्रमण परम्परा में तीर्थङ्करों के बाद शास्त्र को महत्त्व दिया गया है। परिमाण और गुणवत्ता दोनों दृष्टियों से जैन साहित्य को अपर्याप्त और असंतोषजनक नहीं कहा जा सकता किन्तु खेद का विषय है कि जैन साहित्य और साहित्यकारों के योगदान को भारतीय साहित्य के इतिहास में उस रूप में परिभाषित नहीं किया जा सका जिस रूप में उसे किया जाना चाहिए था। इतिहास ग्रन्थों में मात्र दो चार पंक्तियाँ देकर इतिश्री समझ ली गई है। जैन साहित्य के महत्त्व के सन्दर्भ में विदेशी विद्वान् विण्टरनित्ज ने लिखा है-"I was not able to do full justice the literary achievements of the Jainas. But I hope to have shown that the Jainas have contributed their full share to the reliqious, ethica and scientific literature of ancient India."

सौभाग्य से उन्नीसवीं-बीसवीं शती में प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान इस ओर गया, फलतः अनेक ग्रन्थों के सुसंपादित और अनूदित संस्करण निकले। तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक दृष्टि से भी अनेक शोधपरक प्रबंध और निबन्ध लिखे गये प्रस्तुत निबन्ध इसी सारणि की एक कड़ी है।

जैन साहित्य परम्परा में आगम और कर्म-साहित्य के बाद पुराण साहित्य विशाल रूप में उपलब्ध है। प्रथमानुयोग का विषय होने के कारण पुराण साहित्य ही ऐसा साहित्य है जो घर-घर में पढ़ा जाता है। सामान्य ज्ञान वाला ज्ञानी भी इसे आसानी से पढ़ और समझ लेता है, इस दृष्टि से पुराण साहित्य का अपना अलग ही महत्त्व है।

शास्त्रीय परिभाषाओं के अनुसार पुराण का अर्थ प्राचीन या पुराना है। इसमें प्राचीन-कथानक, वंशावली इतिहास, भूगोल, ज्ञान-विज्ञान आदि सभी तत्त्वों का समावेश होता है। व्यक्ति या व्यक्तियों का चरित्र इनका प्रधान वर्ण्य विषय है। आदिपुराण में कहा गया है कि जिसमें क्षेत्र, काल, तीर्थ, सत्पुरुष एवं सत्पुरुषों की चेष्टायें वर्णित हों वह पुराण हैं।[1]

जैन संस्कृत पुराणकारों में आचार्य रविषेण का नाम अत्यन्त आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है, उनकी एक ही कृति 'पद्मपुराण' या 'पद्मचरित' आज उपलब्ध हैं।

आचार्य रविषेण का जीवन वृत्त अन्य प्राचीन कवियों की भाँति अन्धकाराच्छन्न नहीं हैं। पद्मचरित की पुष्पिका में उन्होंने अपने समय के सन्दर्भ में कुछ संकेत दिये हैं उन्होंने लिखा है—

'द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्ध चतुर्थवर्षयुक्ते।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धे चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम्।।'[2]

अर्थात्—जिन सूर्य भगवान महावीर के निर्वाण होने के 1203 वर्ष छह महीने बाद यह पद्ममुनि का चरित निबद्ध किया गया। यदि वीर निर्वाण से 470 वर्ष बाद विक्रम संवत् प्रारम्भ माना जाये तो इस ग्रन्थ की रचना वि. सं. 734 (ई. सन् 677) में पूर्ण हुई चूंकि कवि की 'पद्मपुराण' ही एक रचना उपलब्ध होती है, इसमें इस अनुमान को पर्याप्त आधार मिल जाता है कि यह उनके अंतिम समय की रचना होगी, अन्यथा इस प्रकार का प्रौढ़ विद्वान् अपनी अन्य कोई रचना और रचता। अतः कवि का जीवन काल ईसा की सातवीं शती का उत्तरार्ध मानना समीचीन होगा।

बाह्यसाक्ष्य भी इसी समय का समर्थन करते हैं। रविषेण के उत्तरवर्ती आचार्य पुन्नाटसंघीय जिनसेन ने अपने हरिवंशपुराण में रविषेण के पद्मचरित या पद्मपुराण की प्रशंसा की है—

"कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता।
मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया।।"[3]

अर्थात् आचार्य रविषेण की काव्यमयी मूर्ति सूर्य के समान लोक में प्रिय है। जिस प्रकार सूर्य कमलों को विकसित करता है उसी प्रकार रविषेण ने पद्म (रामचरित) को विकसित किया है। हरिवंशपुराण का समय वि. सं. 840 निश्चित है अतः रविषेण निश्चय ही उनसे पूर्ववर्ती हैं।

एक अन्य उत्तरवर्ती आचार्य उद्योतनसूरि ने अपनी कुवलयमाला में विमलसूरि के विमलांक (पउमचरिय-प्राकृत) और रविषेण के पद्मचरित की प्रशंसा की है—

'जेहि कए रमणिज्जे वरंग-पउमाणचरिय वित्थारे।
कहव ण सलाहणिज्जे ते कइणो जडिय-रविसेणे।।"[4]

अर्थात् जिन्होंने रमणीय 'वरांगचरित' वा 'पद्मचरित' काव्य लिखे वे रविषेण कवि कैसे प्रशंसनीय नहीं हैं? अपितु अवश्य ही प्रशंसनीय है। कुवलयमाला की रचना वि.स. 835 (ई. सन् 778) में हुई। अतः रविषेण का समय इससे पूर्व ई. की सातवीं शती का उत्तरार्ध ही समीचीन है।

आचार्य रविषेण किस संघ/गण/गच्छ के थे इसका उल्लेख उन्होंने नहीं किया है, किन्तु सेन नाम से इस अनुमान को पर्याप्त आधार मिल जाता है कि वे सेनसंघ के होंगे। यद्यपि श्री नाथूराम प्रेमी ने लिखा है कि—'नामों से संघ का निर्णय सदैव ठीक नहीं होता'[5] डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री[6] ने इन्हें सेन संघीय आचार्य माना है।

पद्मचरित में निर्दिष्ट रविषेण की गुरु परम्परा निम्न है—
इन्द्रसेन—दिवाकर सेन—अर्हत्सेन—लक्ष्मणसेन—रविषेण[6]

जिस प्रकार रविषेण ने अपने संघ/गण/गच्छ का उल्लेख नहीं किया है, उसी प्रकार अपने जन्म स्थान का भी उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। पद्मचरित के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर डॉ. नेमिचन्द्रशास्त्री ने उनके दक्षिणभारतीय होने का अनुमान लगाया है। वे लिखते हैं—

रविषेण ने पद्मचरित के 42वें पर्व में जिन वृक्षों का वर्णन किया है, वे वृक्ष दक्षिण भारत में पाये जाते हैं। कवि का भौगोलिक ज्ञान भी दक्षिण भारत का जितना स्पष्ट और अधिक है उतना अन्य भारतीय प्रदेशों का नहीं। अतएव कवि का जन्मस्थान दक्षिण भारत का भूभाग होना चाहिए।"[8]

इसके विपरीत डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने रविषेण को उत्तर भारतीय सिद्ध करने का प्रयास किया है। श्री रमाकान्त शुक्ल को लिखे अपने दि. 8-2-1966 के पत्र में वे लिखते हैं—

"रविषेण ने अपने ग्रन्थ में किसी स्थल पर भी अपने जन्मस्थान या निवासस्थान का संकेत नहीं किया है।.......वैसे मेरा अनुमान है कि वह दक्षिण भारतीय नहीं थे। उत्तर में ही और बहुत करके मध्यभारत में किसी स्थान

पर उन्होंने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। यों तो वह दिगम्बराचार्य थे, किसी एक स्थान पर रहते नहीं थे, भ्रमण ही करते रहते थे, तथापि संभावना उनके उत्तर भारतीय होने की ही अधिक है। अपने जिन गुरु आदिक का उन्होंने उल्लेख किया है, वे भी उत्तर की ओर के ही प्रतीत होते हैं।"[9]

रविषेण ने जैसे बहुआयामी वर्णन किये हैं, उनसे यही लगता है कि उन्होंने समग्र भारत का भ्रमण किया था वर्णनों से उनके उत्तरभारतीय अधिक होने की पुष्टि होती है।

पद्मपुराण के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर ऐसा लगता है कि रविषेण ने दीक्षा लेने से पूर्व विलासी जीवन जिया था। सम्भव है यौवनावस्था में ही उन्हें पत्नी-विरह सहन करना पड़ा हो, जिससे विरक्त होकर उन्होंने जिन-दीक्षा ली हो।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, रविषेण की एक ही कृति 'पद्मपुराण' या 'पद्मचरित' आज उपलब्ध है। यह जैन रामकाव्य परम्परा का संस्कृत भाषा में लिखा गया प्रथम और प्रधान ग्रन्थ है। माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला बम्बई से वी. नि. सं. 2454 में प्रकाशित 'पद्मचरितम्' (मूलभाग) के प्राक्कथन में श्री नाथूराम प्रेमी ने लिखा है—"आचार्य रविषेण का यद्यपि इस समय केवल यही ग्रन्थ उपलब्ध है, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इसके सिवाय उनके और भी कुछ ग्रन्थ होंगे, जिनमें से वरांगचरित का उल्लेख 'हरिवंश पुराण' के प्रारम्भ में इस प्रकार किया गया है—

"वरांगेनेव सर्वाङ्गैर्वराङ्गचरितार्थवाक्।
कस्यनोत्पादयेद्गढमनुरागं स्वगोचरम्।।"

श्वे. सम्प्रदाय के आचार्य उद्योतनसूरि ने अपने 'कुवलयमाला' नामक प्राकृत ग्रन्थ में भी जो शक् संवत् 700 (वि.सं. 835) की रचना है, रविषेण के पद्मचरित और वरांगचरित' का उल्लेख किया है'—

'जेहिं कए........(पूरी गाथा ऊपर देखें)

अर्थात् जिसने रमणीय वरांगचरित और पद्मचरित का विस्तार किया उस कवि रविषेण की कौन सराहना नहीं करेगा? (अर्थात् वे सभी के द्वारा प्रशसंनीय हैं)

अभी तक इनके वरांगचरित का किसी भी पुस्तक भंडार में पता नहीं लगा है।[10]

किन्तु 'वरांगचरित' जटिल मुनि (जयसिंहनन्दि मुनि) की रचना प्रसिद्ध है, जिसे प्रेमी जी ने स्वयं स्वीकार किया है।[11] सम्भव है कोई अन्य वरांगचरित आज भी काल के गर्त में पड़ा किसी अन्वेषक की वाट जोह रहा हो, जो आचार्य रविषेण की रचना हो।

इस काव्य के 'पद्मचरित' और 'पद्मपुराण' ये दो नाम प्रचलित हैं पर वस्तुतः इसका नाम पद्मचरित ही है, जैसा कि स्वयं रविषेण ने कहा है–

"पद्मस्य चरितं वक्ष्ये पद्मालिगितवक्षसः"

"चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धमे"[13]

चूँकि इसमें पुराण और काव्य इन दोनों के लक्षण उपलब्ध होते हैं साथ ही प्रथमानुयोग की अधिकांश कथायें पुराणों में आई हैं, अतः इसे पद्मपुराण कहा जाने लगा। बाद में सं. 1818 में पं. दौलतराम जी ने 'पद्मपुराण' नाम से इसका हिन्दी भाषानुवाद किया, तब से ही यह ग्रन्थ 'पद्मपुराण' नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हो गया है। वर्तमान में इसका 'पद्मपुराण' नाम ही अधिक प्रचलित है। सर्गांत पुष्पिकाओं में 44वें पर्व तक 'पद्मचरित' तथा 45वें सर्ग से 'पद्मपुराण' नाम मिलता है। वैष्णवों में जो स्थान रामचरित मानस का है वही स्थान जैनों में 'पद्मपुराण' का है, इसी कारण इसे 'जैनरामायण' भी कहा गया है।

नामानुसार इस ग्रन्थ में पद्म = राम का चरित्र जैन परम्परानुसार वर्णित है। इसके आधार की चर्चा करते हुए ग्रन्थारम्भ में कहा गया है–

'वर्धमानजिनेन्द्रोक्तः सोऽयमर्थो गणेश्वरम्।
इन्द्रभूतिं परिप्राप्तः सुधर्मं धारिणीभवम्।।
प्रभवं क्रमतः कीर्तिं ततोऽनुत्तरवाग्मिनम्।
लिखितं तस्य संप्राप्य रवेर्यत्नोऽयमुद्गतः।।[14]

अर्थात् वर्धमान जिनेन्द्र के द्वारा कहा हुआ यह अर्थ इन्द्रभूति नामक गौतम गणधर को प्राप्त हुआ, फिर धारिणी के पुत्र सुधर्माचार्य को प्राप्त हुआ, फिर प्रभव को प्राप्त हुआ, फिर अनुत्तरवाग्मी अर्थात् श्रेष्ठ वक्ता कीर्तिधर आचार्य को प्राप्त हुआ। तदनन्तर उनका लिखा प्राप्त कर यह रविषेणाचार्य का प्रयत्न प्रकट हुआ है।

इसी प्रकार का उल्लेख ग्रन्थ के अन्त में भी पाया जाता है–

"निर्दिष्टं सकलैर्नतेन भुवनैः श्रीवर्धमानेन यत्,
तत्वं वासवभूतिना निगदितं जम्बोः प्रशिष्यस्य च।
शिष्येणोत्तर वाग्मिनाप्रकटित पद्मस्य वृत्तं मुनेः
श्रेयः साधुसमाधिवृद्धिकरणं सर्वोत्तमं मङ्गलम।।"[15]

यहाँ उत्तरवाग्मी से कीर्तिधर का उल्लेख है।

महाकवि स्वयम्भू ने 'पउमचरिउ (अपभ्रंश) की रचना रविषेण के 'पद्मचरित' के आधार पर की है। उन्होंने रविषेण की ग्रन्थ परम्परा का वही आधार बताया है, जो रविषेण ने। इतना ही नहीं उन्होंने उक्त वर्धमान जिनेनोक्तः...' को सामने रखकर पद्य भी लिखे हैं।[16]

इस प्रकार स्पष्ट है कि पद्मचरित का आधार कीर्तिधर मुनि द्वारा रचित रामकथा हो। किन्तु यह कीर्तिधर कौन हैं? किस गण/संघ/गच्छ के हैं? इनकी रामकथा कौन सी है? यह स्पष्ट नहीं। आचार्यों में भी कीर्तिधर का उल्लेख नहीं मिलता। हमारा अनुमान है कि या तो इन कीर्तिधर की रामकथा उस समय कुछ समय के लिए प्रचलित रही होगी और उसी समय नष्ट हो गई होगी, अथवा हो सकता है वह भविष्य में किसी पुस्तकालय में उपलब्ध हो जावे।

एक और विचारणीय प्रश्न है। रविषेण से पूर्व आचार्य विमलसूरि ने प्राकृत भाषा में 'पउमचरिय' की रचना की, जिनका समय स्वयं उन्हीं के अनुसार वि. सं. 60 है। रविषेण ने विमलसूरि के 'पउमचरिय' के समान ही सर्गादि के नाम दिये हैं, शैली में भी एकता हो, किन्तु रविषेण ने कहीं भी विमलसूरि का उल्लेख नहीं किया है।

'पद्मचरित' में आधिकारिक कथावस्तु राम की है। रामकथा जैनों के समान हिन्दुओं और बौद्धों में भी प्रचलित है। प्रस्तुत काव्य का प्रधान रस अन्य धार्मिक काव्यों की तरह शान्त है। शृंगार, करुण आदि भी अत्यधिक मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। रविषेण अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल हुए हैं। ग्रन्थ की लोकप्रियता के कारण उसके अनुवाद और प्रकाशन भी अनेक हुए हैं।

रविषेणाचार्य बहुश्रुत विद्वान् थे। जैन होने के कारण जैन धर्म/साहित्य/दर्शन के तो वे मर्मज्ञ थे ही, हिन्दू पुराणों और शास्त्रों के भी अप्रतिम ज्ञाता थे। स्थान-स्थान पर वैदिक सिद्धान्तों के खण्डन से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

रविषेण लोक-परम्परा के भी अशेष ज्ञाता थे। समाज के व्यापारों, पाखण्डों, उपद्रवों, लोक-व्यवहारों का उन्हें सांगोपांग ज्ञान था। समाज में फैली कुरीतियों से वे अपरिचित नहीं थे। स्थापत्य कला के भी वे पारगामी थे। नारियों के भावालाप, उनकी तरुणाई उत्सवों पर उनकी उक्तियाँ, पुरुषों की वृद्धावस्था, मुख की श्वेतिमा आदि का सजीव वर्णन उन्होंने किया है। वे राजनीति, शकुन, कला, संगीत, ज्योतिष, युद्ध सभी के अद्वितीय वेत्ता थे।

'पद्मचरित' की कथावस्तु को कुल छह खण्डों में विभक्त किया गया है जिन्हें काण्ड भी कहते हैं। (1) विद्याधर काण्ड (2) जन्म और विवाह काण्ड (3) वन-भ्रमण काण्ड (4) सीता हरण और अन्वेषण काण्ड (5) युद्ध काण्ड (6) उत्तर काण्ड। यद्यपि अनेक विद्वानों ने अन्य भी नाम दिये हैं किन्तु यही सर्वाधिक प्रचलित नाम हैं। रविषेणाचार्य के निम्न कथन के आधार पर कथा निम्न सात अधिकारों में विभक्त है—(1) लोकस्थिति (2) वंशों की उत्पत्ति (3) वनगमन (4) युद्ध (5) लवणा-कुश की स्थिति (6) भवान्तर निरूपण (7) रामचन्द्र का निर्वाण।

'स्थितिर्वंशः समुत्पत्तिः प्रस्थान संयुगं ततः।
लवणाकुश सम्भूतिर्भवोक्तिः परनिर्वृतिः।।
भवान्तरभवैर्भूरिप्रकारैश्चारुपर्वभिः।
युक्ताः सप्त पुराणेऽस्मिन्नाधिकारा इमे स्मृताः।।17

इसके 123 पर्वों में कुल 18023 श्लोक हैं। कथावस्तु का प्रारम्भ अन्य जैन पुराणों की भाँति ही हुआ है। भ. महावीर के समवसरण में राजा श्रेणिक ने इन्द्रभूति गणधर को नमस्कार करते हुए उनसे रामकथा जानने की इच्छा प्रकट करने पर उन्होंने यह कथा कही।

'पद्मचरित' की कथावस्तु विशाल है, इसकी पूरी कथा वस्तु देना यहाँ सम्भव नहीं अतः हम सभी पर्वों के नाम यहाँ दे रहे हैं, जिनसे कथावस्तु का भी संक्षेप में परिज्ञान हो जावेगा। कोष्ठक में पर्वसंख्या दर्शित है :

(1) सूत्रविधानं (2) श्रेणिकचिन्ताभिधानं (3) विद्याधर लोकाभिधानं (4) ऋषभमाहात्म्याभिधानं (5) राक्षसवंशाभिधानं (6) वानरवंशाभिधानं (7) दशग्रीवाभिधानं (8) दशग्रीवाभिधानं (9) बलिनिर्वाणाभिधानं (10) दशग्रीवप्रस्थाने सहस्ररश्म्य नरण्य श्रामण्याभिधानं (11) मरुत्तयज्ञध्वंसनपदानुगाभिधानं (12) इन्द्रपराभिधानं (13) इन्द्रनिर्वाणा–

भिधानं (14) अनन्तबधधर्माभिधानं (15) अञ्जनासुन्दरोविवाहाभिधानं (16) पवनांजना संभोगाभिधानं (17) हनूमत्संभवाभिधानं (18) पवनांजनासमागमाभिधानं (19) रावणसामान्याभिधानं (20) तीर्थङ्करादिभवानुकीर्तनं (21) सुव्रतबज्रबाहुकीर्तिमाहात्म्य वर्णनं (22) सुकोशलमाहात्म्ययुक्तदशरथोपत्यभिधानं (23) विभीषण व्यसनवर्णनं (24) केकयावर प्रदानं (25) चतुर्भ्रातृसंभवाभिधानं (26) सीताभामण्डलोत्पत्त्यभिधानं (27) म्लेच्छपराजयसंकीर्तनं (28) रामलक्ष्मणरत्नमालाभिधानं (29) दशरथवैराग्य सर्वभूतहितागमाभिधानं (30) भामण्डलसमागमाभिधानं (31) दशरथप्रव्रज्याभिधानं (32) दशरथरामभरतानां प्रव्रज्यावनप्रस्थानराज्याभिधानं (33) वज्रकर्णोवाख्यानं (34) बालिखिल्योपाख्यानं (35) कपिलोपाख्यानं (36) वनमालाभिधानं (37) अतिवीर्यनिष्क्रमणाभिधानं (38) जितपद्मोपाख्यानं (39) देशकुलभूषणोपाख्यान (40) रामार्गर्युपाख्यानं (41) जटायूपाख्यानं (42) दण्डकारण्यनिवासाभिधानं (43) शम्बूकवधाभिख्यानं (44) सीताहरणरामविलापाभिधानं (45) सीतावियोगदाहाभिधानं (46) मायाप्रकाराभिधानं (47) विटसुग्रीववधाख्यानं (48) कोटिशिलोत्क्षेपणाभिधानं (49) हनुर्मप्रस्थानं (50) महेन्द्रदुहितासमागमाभिधानं (51) गन्धर्वकन्यालाभामिधात्रं (52) हनूमल्ल ङ्कासुन्दरीकन्यालांभाभिधानं (53) हनुमत्प्रत्यभिगमनं (54) लङ्काप्रस्थानं (55) विभीषण समागमाभिधानं (56) उभयबलप्रमाणविधानं (57) रावणबलनिर्गमनं (58) हस्तप्रहस्तवधाभिधानं (59) हस्तप्रहस्तनलनीलपूर्वभवानुकीर्त्तनं (60) विद्यालाभ (61) सुग्रीवभामण्डलसमाश्वासन (62) शक्तिसतापाभिधानं (63) शक्तिभेदरामविलापाभिधानं (64) विशल्यापूर्वभवाभिधानं (65) विशल्यासभागमाभिधानं (66) रावणदूतागमाभिधानं (67) शांतिगृहकीर्तनं (68) फाल्गुनाष्टान्हिकामहिमाविधानं (69) लोकनियमकरणाभिधानं (70) सम्यग्दृष्टिदेवप्रातिहार्यकीर्त्तनं (71) बहुरूपविद्यासन्निधानाभिधानं (72) युद्धनिश्चय– कीर्त्तनाभिधानं (73) उद्योगाभिधानं (74) रामलक्ष्मणयुद्धवर्णनाभिधानं (75) चक्ररत्नोपत्तिवर्णनं (76) दशग्रीववधाभिधानं (77) प्रीतिंकरोपाख्यानं (78) इन्द्रजीता–दिनिष्क्रमणाभिधानं (79) सीतासमागमाभिधानं (80) मयोपाख्यानं (81) साकेतनगरीवर्णनं (82) रामलक्ष्मणसमागमाभिधानं (83) त्रिभुवनालंकार क्षोभाभिधानं (84) त्रिभुवनालंकारशमाभिधानं (85) भरतत्रिभुवनालंकारसमाध्यनुभवानुकीर्तनं (86) भरत के क्रमानिष्क्रमणाभिधानं (87) भरतनिर्वाणगमनं (88) राज्याभिषेकाभिधानं विभागदर्शनम् (89) मधुसुन्दरवधाभिधानं

(90) मथुरोपसर्गाभिधानं (91) शत्रुघ्नभवानुकीर्त्तनं (92) मथुरापुरीनिवेश कृषिदानगुणोपसर्गहननाभिधानं (93) मनोरमालंभाभिधानं (94) रामलक्ष्मणविभूतिदर्शनीय-भिधानं (95) जिनेन्द्रपूजादोहदाभिधानं (66) जनपरीवादचिन्ताभिधानं (97) सीतानिर्वासनवि- प्रलापवज्रजंघाभिधानं (98) सीतासमाश्वासनं (99) रामशोकाभिधानं (100) लवणांकुशोद्भवा-भिधानं (101) लवणांकुशदिग्विजयकीर्तनं (102) लवणांकुशसमेत युद्धाभिधानं (103) रामलवणांकुशसमागमाभिधानं (104) सकलभूषणदेवागमनाभिधानं (105) रामधर्म- श्रवणाभिधानं (106) सपरिवारवामदेवपूर्वभवाभिधानं (107) प्रव्रजितसीताभिधानं (108) लवणांकुशपूर्वभवाभिधानं (109) मधूपाख्यानं (110) कुमाराष्टकनिष्क्रमणाभिधानं (111) प्रभामंडलपरलोकाभिधानं (112) हनुमान्निर्वेदं (113) हनुमान्निर्वाणाभिधानं (114) शक्रसुरसंकथाभिधानं (115) लवणांकुशतपोभिधानं (116) रामदेवविप्रलाप (117) लक्ष्मणावियोग विभीषण संसारस्थितिवर्णनम् (118) लक्ष्मणसंस्कारकरणंकल्याणमित्रदेवाभिगमा-भिधानं (119) बलदेवनिष्क्रमणाभिधानं (120) पुरसंक्षोभाभिधानं (121) दानप्रसंगाभिधानं (122) केवलोत्पत्यभिधानं (123) बलदेवसिद्धिगमनाभिधानं।

आचार्य रविषेण की रामकथा में प्रचलित हिन्दू एक-रषा की अपेक्षा ये विशेषतायें हैं :—

रामलक्ष्मण और रावण को जैन परम्परा में त्रेसठ शलाका पुरुषों (महापुरुषों) में स्थान दिया गया है। पद्मचरित में ये तीनों क्रमशः आठवें बलदेव[19], नारायण[20] और प्रतिनारायण[21] के रूप में वर्णित हैं। हनुमान, सुग्रीव वानर नहीं, विद्याधर थे, उनके छत्र आदि में वानर का चिन्ह होने से वे वानर कहलाये।[22] राक्षस द्वीप के रक्षक राक्षस कहलाये[23], इन्हें राक्षसवंशीय भी कहा गया है।[24]

रावण का नाम दशानन उसकी माला के मौक्तिकों में मुंह के नौ मणि प्रतिबिम्ब होने से पड़ा।[25] सीता जनक की औरस कन्या थी। उसका एक भाई था, जिसका नाम भामण्डल था।[26]

राम दशरथ की आज्ञा से नहीं स्वेच्छा से वन गये।[27] वालि स्वयं लघु भ्राता सुग्रीव को राज्य देकर दिगम्बर मुनि हो गया[28], राम ने उसे नहीं मारा। रावण ने अनन्तवीर्य केवली के पास किसी स्त्री से उसकी इच्छा के विरुद्ध सम्भोग न करने का व्रत लेने के कारण सीता का शीलभंग नहीं किया।[29]

रावण की मृत्यु राम के नहीं लक्ष्मण के हाथ से हुई[30]। राम के पुत्रों के नाम अनङ्गलवणा और मदनाङ्कुश कहे गये हैं।[31] अन्त में राम दिगम्बर दीक्षा धारण कर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

पद्मचरित की भाषा सरल, सरस, गम्भीर और पुराणशैली के अनुरूप है। अलंकारों का प्रयोग रविषेणाचार्य का लक्ष्य नहीं रहा तथापि वे काव्य में यत्र-तत्र स्वयमेव आ गये हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, रुपक, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का तथा लगभग 41 प्रकार के छन्दों का प्रयोग पद्मचरित में हुआ है। भूगोल की दृष्टि से भी पुराण महत्त्वपूर्ण है। इसकी सूक्तियाँ तो सहृदयों को कण्ठहार हैं।

पद्मचरित में वर्णित जैन रामकाव्य परम्परा परवर्ती जैन कवियों का उपजीव्य तो रही ही हैं, जैनेतर कवियों ने भी इसे पूर्ण या आंशिक रूप में उपजीव्य बनाया है। उपेक्षित पात्रों के प्रति सहानुभूति जैन रामकाव्य परम्परा की अपनी विशेषता है। प्रसिद्ध समालोचक डॉ. नगेन्द्र ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है—"जैन परम्परा के अनुसार रामायण के पात्रों का जो स्वरूप सम्मुख आता है, वह आस्था एवं परम्परा में पोषित विचारकों को किंचित् भिन्न एवं अग्राह्य भी प्रतीत हो सकता है, किन्तु संशय की भाव-भूमि में पल्लवित आधुनिक मनीषा को वह कुछ अधिक आकृष्ट करता है। प्रतिपात्रों में नायकीय महद्गुणों की कल्पना तथा उपेक्षित पात्रों के प्रति सहानुभूति, जो आधुनिकता का गुण कहा जा सकता है, जैन रामकाव्य-परम्परा में इन दोनों तत्त्वों का स्पष्ट आभास मिलता है।

अन्त में हम आचार्य रविषेण के साथ यही कहना चाहेंगे कि सत्पुरुषों की कथा से उत्पन्न यश 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' रहता है। अतः उनका कीर्तन कर अपना यश स्थायी बनाना चाहिए—"अल्पकालमिदं जन्तोः शरीरं रोगनिर्भरम्।

> यशस्तु सत्कथाजन्म यावच्चन्द्रार्कतारकम्।।
> तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषेणात्मवेदिना।
> शरीरं स्थास्तु कर्तव्यं महापुरुष कीर्तनम्।।[33]

सन्दर्भ

(1) स च धर्मः पुराणार्थः पुराणं पञ्चधा विदुः।
क्षेत्र कालश्च तीर्थं च सत्पुसस्तद्विचेष्टितम्।।"
आदिपुराण 2/38

(2) पद्मपुराण (भा. ज्ञानपीठ) 123/182

(3) हरिवंशपुराण (भा. ज्ञानपीठ) 1/34
(4) कुवलयमाला अनुच्छेद 6, पृष्ठ 4
(5) जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ 273
(6) तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 2 पृष्ठ 276
(7) 'आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योस्य चार्हन्मुनिस्तस्माल्लक्ष्मण-सेनसन्मुनिरदः शिष्यो रविस्तु स्मृतम्।।' —पद्मचरित, 123/168
(8) ती. म. और उनकी आचार्य परम्परा भाग 2, पृष्ठ 277
(9) पद्मपुराण और रामचरित मानस (दिल्ली 1974) पृष्ठ 11-12
(10) 'पद्मचरित' (मूलमात्र) पृष्ठ 2.3
(11) जैन साहित्य और हतिहास, पृष्ठ 273
(12) पद्मपुराण 1/16
(13) वही 123/182 आदि
(14) पद्मपुराण 1/41-42
(15) वही 123/167
(16) 'वड्ढमाण-मुह-कुहरविणिग्गय/रामकहाणए एह कमागय पच्छइ इदंभूइ आयरिएं। पुणु धम्मेण गुणालंकरिएं। पुणु पहवे संसाराराएं। कित्तिहरेण अवुत्तरवाएं। पुणु रविषेणायरियपयाएं। बुद्धिए अवगाहिय कइराएं।—पउमचरियं
(17) पद्मचरित 1/43-44
(18) वही 1/45-47 (19) वही 21/1 (20) वही 35/44 (21) वही 73/99-102 (22) वही 6/214 (23) वही 43/38 (24) वही 5/378 (25) वही 7/222 (26) वही पर्व 26 (27) वही पर्व 31 (28) वही 9/85-90 (29) वही 46/65-68 (30) वही 76/28-34 (31) वही 100/21 (32) 'पद्मपुराण एवं रामचरित मानस', 'डॉ रमाकान्त शुक्ल पृष्ठ' च (33) वही 1/25-26

डॉ. कपूरचंद जैन
अध्यक्ष संस्कृत विभाग
श्री कुन्दकुन्द जैन कॉलेज
खतौली (उ.प्र.)

चतुर्थ खण्ड

विविधा

मुस्लिम युग के जैनाचार्य

13वीं शताब्दी से ही देश में मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे। इन आक्रमणों से त्रस्त एवं भयभीत होकर महापंडित आशाधर को मांडलगढ़ छोड़कर धारा नगरी जाकर रहना पड़ा था। अलाउद्दीन खिलजी के दिल्ली राजदरबार में दिगम्बराचार्य माधवसेन का दो ब्राह्मण पंडितों से शास्त्रार्थ हुआ तथा उसमें माधवसेनाचार्य की विजय हुई थी। इसके पश्चात् फिरोजशाह तुगलक के दरबार में भी आचार्य प्रभाचन्द्र का दो विद्वानों राघो चेतन से शास्त्रार्थ हुआ तथा ब्राह्मण विद्वानों द्वारा अनेक चालबाजियां अपनाने के उपरान्त भी जीत प्रभाचन्द्र की हुई थी। प्रभाचन्द्र दिगम्बर मुद्रा धारक आचार्य थे लेकिन भट्टारक कहलाते थे। आचार्य प्रभाचन्द्र को बादशाह के हरम में जाना पड़ा तथा रानियों को सम्बोधित करना पड़ा था। इस प्रकार भट्टारक प्रभाचन्द्र का स्वतः ही प्रभाव बढ़ गया और वे चारों ओर जन-जन के पूज्य बन गये।

सन् 1351 से 1850 तक भट्टारक ही आचार्य, उपाध्याय एवं सर्वसाधु के रूप में जनता द्वारा पूजित थे। ये भट्टारक प्रारम्भ में नग्न होते थे इसलिये भट्टारक सकलकीर्ति को निर्ग्रन्थराज कहा गया है। ऑवा (राजस्थान) में भट्टारक शुभचन्द्र, जिनचन्द्र एवं प्रभाचन्द्र की जो निषेधिकाएं हैं वे तीनों ही नग्नावस्था की हैं। ये भट्टारक अपना आचरण श्रमण परम्परा के पूर्णतः अनुकूल रखते थे। वे अपने संघ के प्रमुख होते थे और संघ की देखरेख का सारा भार इन पर ही होता था। इनके संघ में मुनि, उपाध्याय, ब्रह्मचारी एवं आर्यिकाएं होतीं थीं। प्रतिष्ठा महोत्सवों एवं विविध व्रत-उपवासों की समाप्ति पर होने वाले आयोजनों के संचालन में इनका प्रमुख हाथ होता था। राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में ऐसी हजारों पाण्डुलिपियां संग्रहीत हैं जो इन भट्टारकों की विशेष प्रेरणा से विभिन्न श्रावक-श्राविकाओं ने व्रतोद्यापन के अवसर पर लिखवाकर इन शास्त्र-भण्डारों में विराजमान कीं थीं। इस दृष्टि से इन भट्टारकों का सर्वाधिक योग रहा। संवत् 1350 से सवत् 1900

तक जितनी भी देश में पंच कल्याणक प्रतिष्ठाएं सम्पन्न हुईं वे प्रायः इन्हीं भट्टारकों के तत्वावधान में आयोजित हुईं थीं। संवत् 1548, 1664, 1746, 1783, 1826, 1852 एवं 1861 में देश में जो विशाल प्रतिष्ठाएं हुई थीं वे इतिहास में अद्वितीय थीं और उनमें हजारों मूर्तियां प्रतिष्ठापित हुई थीं। उत्तर भारत के प्रायः सभी मंदिरों में आज इन संवतों में प्रतिष्ठापित मूर्तियां अवश्य मिलती हैं।

ये भट्टारक पूर्ण संयमी होते थे। इनका आहार एवं विहार पूर्णतः श्रमण परम्परा के अन्तर्गत होता था। मुगल बादशाहों तक ने इनके चरित्र एवं विद्वत्ता की प्रशंसा की थी। मध्यकाल में तो वे जैनों के आध्यात्मिक राजा कहलाने लगे थे, किन्तु यही उनके पतन का प्रारम्भिक कदम था।

संवत् 1351 से संवत् 1900 तक इन भट्टारकों का कभी उत्थान हुआ, तो कभी वे पतन की ओर अग्रसर हुए लेकिन फिर भी ये समाज के आवश्यक अंग माने जाते रहे। यद्यपि दिगम्बर जैन समाज में तेरापन्थ के उदय से इन भट्टारकों पर विद्वानों द्वारा कड़े प्रहार किये गये तथा कुछ विद्वान् इनकी लोकप्रियता को समाप्त करने में भारी साधक बने, फिर भी समाज में इनकी आवश्यकता बनी रही और व्रत-विधान एवं प्रतिष्ठा समारोहों में तो इन भट्टारकों की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती रही। शुभचन्द्र, जिनचन्द्र, सकलकीर्ति, ज्ञानभूषण जैसे भट्टारक किसी भी दृष्टि से आचार्यों से कम नहीं थे क्योंकि उनका ज्ञान, त्याग, तपस्या और साधना सभी तो उनके समान थी और वे अपने समय के दिगम्बर समाज के आचार्य थे। उन्होंने मुगलों के समय में जैन धर्म की रक्षा ही नहीं कि किंतु साहित्य एवं संस्कृति की रक्षा में भी अत्यधिक तत्पर रहे। भट्टारक शुभचन्द्र को यतियों का राजा कहा जाता था तथा भट्टारक सोमकीर्ति अपने आपको आचार्य लिखना अधिक पसन्द करते थे। भट्टारक वीरचन्द्र महाव्रतियों के नायक थे। उन्होंने 16 वर्षों तक नीरस आहार का सेवन किया था।

ये भट्टारक पूर्णतः प्रभुत्व सम्पन्न थे। वैसे ये आचार्यों के भी आचार्य थे क्योंकि इनके संघ में 6 आचार्य एवं 33 उपाध्याय थे। 40 ब्रह्मचारी एवं 10 ब्रह्मचारिणियां थीं। इसी तरह मंडलाचार्य गुणचन्द्र के शिष्यों में 9 आचार्य, एक मुनि, 27 ब्रह्मचारी एवं 12 ब्रह्मचारिणियां थीं। मुनि एवं आचार्य नग्न रहा करते थे, केवल भट्टारकों में कुछ-कुछ अपवाद आ गया था। इस परम्परा के अधिकांश भट्टारक साहित्य सेवी थे। भट्टारक रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, सोमकीर्ति, जयसागर, महीचन्द्र आदि पचासों भट्टारकों एवं आचार्यों ने साहित्य निर्माण में अत्यधिक रुचि ली थी। साहित्य निर्माण के अतिरिक्त साहित्य-सुरक्षा में

में इन्होंने सबसे अधिक योगदान दिया। शास्त्र भंडारों की स्थापना, नवीन पाण्डुलिपियों का लेखन एवं उनका संग्रह इनके अद्वितीय कार्य थे। अजमेर, नागौर, आमेर जैसे नगरों के शास्त्र भंडार इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। अकेले राजस्थान में तीन लाख से भी अधिक पाण्डुलिपियों का संग्रह एक अभूतपूर्व कार्य है।

इन 500-600 वर्षों में देश में सैकड़ों भट्टारक हुए जिन सबका विस्तृत परिचय देना संभव नहीं हैं। यहां हम केवल 10 भट्टारकों का ही परिचय देना चाहेंगे। इनके नाम निम्न प्रकार हैं :—

(1) भट्टारक पद्मनन्दि	(6) आचार्य सोमकीर्ति
(2) भट्टारक सकलकीर्ति	(7) भट्टारक ज्ञानभूषण
(3) भट्टारक शुभचन्द्र	(8) भट्टारक शुभचन्द्र
(4) भट्टारक जिनचन्द्र	(9) भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र
(5) भट्टारक प्रभाचन्द्र	(10) भट्टारक जगत्कीर्ति

भट्टारक पद्मनन्दि जी

पद्मनन्दि पहले जैनाचार्य थे। ये भट्टारक प्रभाचन्द्र के संघ के प्रतिनिधि के रूप में गुजरात में विहार करते थे। एक बार गुजरात में प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया। राजस्थान से भट्टारक को बुलवाया गया। लेकिन वे उसमें नहीं पहुंच सके। इसलिये आचार्य पद्मनन्दि के आचार, विद्वत्ता एवं व्यक्तित्व को देखकर गुजरात की जनता ने इन्हें भट्टारक पद प्रदान किया जिससे प्रतिष्ठा आदि कराने का अधिकार मिल गया। एक भट्टारक पट्टावली में इसका वर्णन इस प्रकार लिखा हुआ है :—

भट्टारक बुलवाये सो पहुंचे नहीं।
तब सबै पंचनि मिलि यह ठानी सही।
सूरि मन्त्र वाहि आचारिज को दियौ।
पद्मनन्दि भट्टारक नाम सुं यह कियो।।

भट्टारक पद्मनन्दि जी 99 वर्ष 5 मास 28 दिन जीवित रहे। इनमें से 10 वर्ष 7 महीने की अवस्था में दीक्षा धारण की। 23 वर्ष 5 महीने तक मुनि एवं आचार्य के रूप में रहे तथा 65 वर्ष 5 मास 28 दिन तक भट्टारक रहे। जब वे भट्टारक बने तो उनकी आयु मात्र 34 वर्ष की थी। वे पूर्ण युवा थे। श्री पद्मनन्दि जी पर सरस्वती की असीम कृपा थी और एक बार उन्होंने

पाषाण की सरस्वती को मुख से बुला दिया था।

पद्मनन्दि गुरुर्जातो बलात्कार गणाग्रणी।।

पाषाणघटिता येन वादिता श्री सरस्वती।।1।।

एक अन्य पद्यावली में उनकी निम्न प्रकार स्तुति की गयी है :—

श्रीमत्प्रभाचन्द्रमुनीन्द्रपट्टे शश्वतप्रतिष्ठः प्रतिभागरिष्टः।

विशुद्ध-सिद्धान्त-रहस्यरत्नः, रत्नाकरो नन्दतु पद्मनन्दि।।

पद्मनन्दि संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में इनकी 15 रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं। इन रचनाओं में पद्मनन्दि श्रावकाचार, (2) अनन्त व्रत कथा, (3) द्वादश व्रतोद्यापन पूजा, (4) देवशास्त्र-गुरुपूजा, (5) नन्दीश्वर पंक्तिपूजा, (6) लक्ष्मी स्तोत्र, (7) पार्श्वनाथ स्तोत्र, (8) वीतराग स्तोत्र, (9) रत्नत्रय पूजा, (10) भावना चौंतीसी, (11) परमात्मराज स्तोत्र, (12) सरस्वती पूजा, (13) सिद्ध पूजा, (14) शान्तिनाथ स्तवन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आचार्य पद्मनन्दि ने बहुत लम्बे समय तक साहित्य एवं संस्कृति की सेवा की और संवत् 1470 के किसी समय पश्चात् आपका समाधिमरण हो गया। क्योंकि संवत् 1470 की इनके द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमायें टोंक नगर के बाहर की नशियां में विराजमान हैं।

भट्टारक सकलकीर्ति जी

भट्टारक सकलकीर्ति का जन्म संवत् 1443 को हुआ था। इनका जन्मनाम पूर्णसिंह था। 14वें वर्ष में ही माता-पिता ने इनका विवाह कर दिया। लेकिन घर गृहस्थी में इनका जरा भी मन नहीं लगा। 26वें वर्ष में इन्होंने घर-बार छोड़ दिया और नैणवां (राजस्थान) जाकर भट्टारक श्री पद्मनन्दि जी के पास अध्ययन करने लगे। प्रतिभा संपन्न होने के कारण उन्होंने सभी शास्त्रों का शीघ्र ही अध्ययन कर लिया। 34वें वर्ष इन्होंने आचार्य पद धारण कर लिया और अपना नाम आचार्य सकलकीर्ति रख लिया। इन्होंने बागड़ प्रदेश में भट्टारक गादी की स्थापना की और स्वयं भट्टारक कहलाने लगे क्योंकि उस युग में आचार्य से भट्टारक का पद एवं प्रतिष्ठा ऊँची थी। विभिन्न ग्रंथों में भट्टारक सकलकीर्ति जी को निर्ग्रन्थराज, महाकवि, शुद्धचारित्रधारी, तपोनिधि, निर्ग्रन्थ श्रेष्ठ आदि उपाधियों सेसम्बोधित किया गया है।

आचार्य सकलकीर्ति प्राकृत, संस्कृत के धाकड़ विद्वान् थे। संस्कृत भाषा

तो उनके लिये मातृभाषा बन गयी थी। इसलिये वे जन-जन का ध्यान स्वतः ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। वे पुण्यमूर्ति स्वरूप थे। कभी वे अपने आप को मुनि लिखते, कभी आचार्य और कभी भट्टारक लिखते थे। वे स्वयं नग्न रहते थे इसलिये निर्ग्रन्थकार अथवा निर्ग्रन्थराज के नाम से भी उनके शिष्य उन्हें सम्बोधित करते थे।

सकलकीर्ति की अब तक संस्कृत की 27 कृतियां और हिन्दी की 7 रचनायें उपलब्ध हो चुकीं हैं। इनमें आदिपुराण, उत्तरपुराण, शान्तिनाथपुराण, वर्धमान चरित्र, यशोधर चरित्र, धन्यकुमार चरित्र, सुकुमाल चरित्र, जम्बूस्वामीचरित्र, आगमसार, व्रतकथाकोष, द्वादशानुप्रेक्षा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। पूजा ग्रंथों में अष्टाह्निका पूजा, सोलहकारण पूजा, गणधर वलय पूजा के नाम लिये जा सकते हैं। आचार परक ग्रंथों में मूलाचार-प्रदीप प्रश्नोत्तरोपासकाचार, उल्लेखनीय हैं। व्रतकथाकोश लिखकर श्री सकलकीर्ति जी ने व्रत कथाओं को एकरूपता प्रदान की।

राजस्थानी कृतियों में नेमीश्वर गीत, मुक्तावली गीत, सोलहकारण, रास, शान्तिनाथफाग, आराधना प्रतिबोधसार, सारसिखमणिरास, णमोकारफल गीत जैसी लघु कृतियां लिखकर राजस्थानी भाषा के प्रचार-प्रसार में सहयोग दिया।

श्री सकलकीर्ति जी की सभी रचनायें लोकप्रिय हैं, जिनमें अधिकांश का प्रकाशन हो चुका है।

भट्टारक शुभचन्द्र जी

शुभचन्द्र नाम वाले 6 भट्टारक हो गये हैं। ज्ञानार्णव के रचयिता आचार्य शुभचन्द्र जी इनसे अलग हैं। प्रस्तुत शुभचन्द्र भट्टारक के प्रशिष्य एवं पद्मनन्दि के शिष्य थे। इनका पट्टाभिषेक समारोह भट्टारक पद्मनन्दि जी के स्वर्गवास के पश्चात् माघ शुक्ल-पंचमी संवत् 1450 को देहली में हुआ था। ये जाति से ब्राह्मण थे। 19 वर्ष की अवस्था में इन्होंने घर बार छोड़ दिया था। 24 वर्ष तक ये अपने गुरु पद्मनन्दि के चरणों में रहे और अध्ययन करते रहे। जब इनका पट्टाभिषेक हुआ तो ये 43 वर्ष के थे। श्री शुभचन्द्र जी का राजस्थान एवं देहली में जबरदस्त प्रभाव था। आवां (राजस्थान) की टेकरी पर उनकी निषेधिका बनी हुई है। इसी तरह टोडारायसिंह में भी इनकी निषेधिका स्थापित है। जो इनके विशाल व्यक्तित्व

की द्योतक है। 57 वर्ष के लम्बे समय तक इन्होंने राजस्थान के दूढांहड़ प्रदेश में विहार करके वहां के सांस्कृतिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

भट्टारक जिनचन्द्र

भट्टारक शुभचन्द्र जी के पट्ट शिष्य भट्टारक जिनचन्द्र की गादी देहली में थी और वहीं से ये समाज का संचालन करते थे। संवत् 1548 में विशाल स्तर पर शहर मुंडासा में जीवराज पापड़ीवाल ने जिस प्रतिष्ठा का आयोजन करवाया था उसके सूत्रधार भट्टारक जिनचन्द्र ही थे। इस प्रतिष्ठा में एक लाख से अधिक मूर्तियां प्रतिष्ठापित हुईं थीं। देश में ऐसा कोई मंदिर नहीं होगा जिसमें संवत् 1548 में प्रतिष्ठित प्रतिमा नहीं हो। पं. मेधावी इनके प्रमुख शिष्य थे। मेधावी ने संवत् 1541 में धर्मसंग्रह श्रावकाचार की रचना की थी। मेधावी ने भट्टारक जिनचन्द्र के साहित्य एवं विद्वत्ता की खूब प्रशंसा की है तथा उन्हें व्याखान मरीचि, षट्तर्कनिष्णातधी जैसे विशेषणों से सम्बोधित किया है।

भट्टारक प्रभाचन्द्र (द्वितीय)

भट्टारक जिनचन्द्र जी के शिष्य भट्टारक प्रभाचन्द्र खण्डेलवाल जैन जाति के श्रावक थे। वैद इनका गोत्र था। श्री प्रभाचन्द्र अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक थे। एक लेख प्रशस्ति में इनके नाम के पूर्व, पूर्वाञ्चल-दिनमणि, षट्तार्किकचूड़ामणि, जैसे विशेषण लगाए गये हैं।

तत्पट्टस्थ श्रुताधारी प्रभाचन्द्रः श्रियांट्टनिधिः।
दीक्षितो यो लसत्कीर्तिः प्रचण्डः पण्डिताग्रणी।।

श्री भट्टारक प्रभाचन्द्र जी का पट्टाभिषेक देहली में फाल्गुन कृष्णा 2 को बड़ी धूमधाम से हुआ। ये 25 वर्ष तक भट्टारक पद पर रहे। संवत् 1593 में इन्हीं के मंडलाचार्य धर्मचन्द्र जी ने आवां नगर में होने वाले प्रतिष्ठा महोत्सव का नेतृत्व किया। उसमें भगवान श्री शान्तिनाथ की एक विशाल एवं मनोज्ञ प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी थी। शान्तिनाथ स्वामी की इतनी मनोज्ञ एवं चमत्कारिक प्रतिमा बहुत कम स्थानों में मिलती है।

ब्रह्म बूचराज भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य थे और हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् थे। इस प्रकार भट्टारक शुभचन्द्र, जिनचन्द्र एवं प्रभाचन्द्र ने 100 से अधिक वर्षों तक राजस्थान, देहली तथा उत्तर भारत में अपने विहार, उपदेश एवं साहित्य संरचना के द्वारा समाज में एक नयी क्रान्ति को जन्म दिया तथा

भट्टारक संस्था की नींव सुदृढ़ करके समाज को एक नई दिशा प्रदान की। आवां, टोडारायसिंह जैसे नगरों में निषेधिकाएं स्थापित किया जाना ही उनकी उज्ज्वल छवि का द्योतक है।

आचार्य सोमकीर्ति जी

आचार्य सोमकीर्ति 16वीं शताब्दी के उद्‌भट विद्वान्, प्रमुख साहित्य सेवी, प्रतिष्ठाचार्य एवं प्रमुख सन्त थे। वे योगी थे। आत्मसाधना में तल्लीन रहते थे। वे संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, गुजराती एवं हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने संस्कृत एवं हिंदी दोनों ही भाषाओं को अपनी रचनाओं से उपकृत किया। उनकी प्रेरणा से कितने ही मंदिरों का निर्माण हुआ। बीसों पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें इनके निर्देशन में संपन्न हुईं। वे श्रमण संस्कृति, साहित्य एवं शिक्षा के महान् प्रचारक थे। वे संवत् 1518 में भट्टारक पद पर आसीन हुए और संवत् 1540 तक भट्टारक गादी पर बने रहे। वे भट्टारक होते हुए भी अपने को आचार्य लिखना अधिक पसंद करते थे। श्री सोमकीर्ति द्वारा रचित ग्रंथों के नाम निम्न प्रकार हैं :—

संस्कृत रचनायें

1. सप्तव्यसन-कथा-समुच्चय
2. प्रद्युम्न चरित्र
3. अष्टाह्निका-व्रतकथा
4. समवसरणपूजा
5. यशोधरचरित्र

हिंदी रचनायें

1. यशोधर रास
2. गुरु नामावली
3. रिषभनाथ की धूल
4. त्रेपन क्रियागीत
5. आदिनाथ विनती
6. मल्लिगीत
7. चिंतामणि-पार्श्वनाथगीत

आचार्य सोमकीर्ति की उक्त सभी रचनायें भाषा, विषय एवं शैली आदि सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण रचनायें मानी जाती हैं। प्रद्युम्न चरित्र एवं

यशोधर चरित्र की हिन्दी गद्य टीकायें हो चुकी हैं तथा स्वाध्याय के लिये उनकी पर्याप्त मांग रहती है।[1]

भट्टारक ज्ञानभूषण जी

भट्टारक ज्ञानभूषण जी, भट्टारक भुवनकीर्ति जी के पश्चात् भट्टारक गादी पर बैठे थे। वे अपने समय के सर्वाधिक लोकप्रिय भट्टारक थे। उत्तरी भारत में एवं विशेषतः राजस्थान एवं गुजरात में उनका जबरदस्त प्रभाव था। मुस्लिम शासन काल होते हुए भी वे बराबर पद यात्रायें करते रहे और बड़े-बड़े समारोहों का आयोजन करके जैनधर्म, साहित्य एवं संस्कृति का प्रचार करते रहे। विद्वानों में उनकी बराबरी करने वाले उस समय बहुत कम थे। उनकी भाषण-शैली भी आकर्षक थी। भट्टारक ज्ञानभूषण जी का समय संवत् 1530 से 1557 तक का माना जाता है। साहित्य सृजन में इनकी विशेष रुचि थी। प्राकृत, संस्कृत, गुजराती एवं राजस्थानी पर इनका पूर्ण अधिकार था।

श्री नाथूराम प्रेमी ने इनके तत्वज्ञानतरंगिणी, सिद्धान्तसार भाष्य, परमार्थोपदेश, नेमिनिर्वाणपंजिका टीका, पंचास्तिकाय, दशलक्षणोद्यापन, आदीश्वरफाग, भक्तामरोद्यापन, सरस्वती पूजा आदि ग्रंथों का उल्लेख किया है।[1] पं. परमानन्द जी शास्त्री ने उक्त रचनाओं के अतिरिक्त सरस्वती स्तवन, आत्मसंबोधन का और उल्लेख किया है।[2] लेकिन राजस्थान के ग्रंथ भंडारों में इनकी अब तक निम्न रचनायें उपलध हो चुकी हैं :—

संस्कृत कृतियां

1. आत्मसंबोधन काव्य
2. तत्वज्ञान तरंगिणी
3. ऋषिमंडल पूजा
4. पूजाष्टक टीका
5. पंचकल्याणक व्रतोद्यापन पूजा
6. भक्तामर पूजा
7. श्रुतपूजा
8. सरस्वती पूजा
9. सरस्वती स्तुति
10. शास्त्रमंडल पूजा
11. दशलक्षणव्रतोद्यापन पूजा

हिन्दी रचनाएं

1. आदीश्वर फाग
2. जलगालन रास
3. पोसह रास
4. षट्कर्म रास
5. नागद्रा रास
6. पंचकल्याणक

हमें अभी तक ज्ञानभूषण की पंचास्तिकाय उपलब्ध नहीं हुई है।

भट्टारक शुभचन्द्र जी

भट्टारक सकलकीर्ति जी की शिष्य परम्परा में भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य भट्टारक शुभचन्द्र अपने युग के प्रभावक भट्टारक थे। भट्टारक सकलकीर्ति के समान श्री शुभचन्द्र संस्कृत, प्राकृत के प्रचण्ड विद्वान् थे। सरस्वती की उन पर विशेष कृपा थी। काव्य रचना करना उनके लिये सरल कार्य था। संस्कृत में उनकी लेखनी धारा प्रवाह चलती थी। वे षट्भाषा -कवि-चक्रवर्ती कहलाते थे। छह भाषाओं में संभवतः प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती एवं मराठी होंगी।

शुभचन्द्र जी का संवत् 1530-40 के मध्य जन्म हुआ। उन्होंने व्याकरण एवं छंद शास्त्र में निपुणता प्राप्त की। वे भट्टारक ज्ञानभूषण एवं श्री विजयकीर्ति के संपर्क में आये। श्री विजयकीर्ति के चरणों में रहने लगे तथा अपनी व्युत्पन्नमति, वक्तृत्व-कला, साहित्य-निर्माण-कला का परिचय देने लगे। इसीलिये भट्टारक विजयकीर्ति के पश्चात् इनको भट्टारक जैसे सर्वोच्च सम्मानित पद पर बैठाया गया।

भट्टारक शुभचन्द्र जी का शास्त्र ज्ञान अलौकिक था। एक पट्टावली के अनुसार ये प्रमाण परीक्षा, पत्र परीक्षा, परीक्षा मुख, प्रमाण निर्णय, न्यायमकरंद, न्यायकुमुदचन्द्र, न्यायविनिश्चय, श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड, आप्तमीमांसा, अष्टसहस्री, चिंतामणि मीमांसा, तत्वकौमुदी जैसे न्याय ग्रंथों के तथा जैनेन्द्र, शाकटायन, ऐन्द्र, पाणिनी, कातन्त्र आदि व्याकरण ग्रंथों के महान् अध्येता थे। ये ज्ञान के महान भंडार थे। अब तक इनकी 40 संस्कृत रचनायें, एवं 7 हिन्दी-राजस्थानी रचनायें प्राप्त हो चुकीं हैं। इसलिये संस्कृत ग्रंथों के रचना करने वालों में भट्टारक शुभचन्द्र जी का

नाम प्रथम पंक्ति में लिया जा सकता है। इनकी रचनायें चरित-काव्य, पुराण, पूजा, टीकायें, सुभाषित जैसे विषयों पर आधारित हैं। पुराणों में पाण्डवपुराण की रचना की थी। चरित-काव्यों में करकण्डु चरित्र, जीवन्धर चरित्र, प्रद्युम्न चरित, श्रेणिकचरित्र, चन्दनाचरित्र, जैसे काव्यों की रचना करके स्वाध्याय प्रेमियों के लिये सामग्री उपस्थित की, तथा 25 से अधिक पूजा ग्रंथों की रचना करके चारों ओर पूजा करने वालों की मांग को पूरा किया तथा धार्मिक क्षेत्र में पूजा प्रतिष्ठा को अधिक महत्व दिया। समयसार की टीका लिखकर अपने अध्यात्म प्रेम को जागृत किया, तथा समयसार के पठन-पाठन को सरल बनाया।

भ. शुभचन्द्र ने हिन्दी-राजस्थानी भाषा में सात लघु रचनायें लिखकर उन पाठकों के मन को जीत लिया जो केवल हिन्दी माध्यम से जैन तत्वज्ञान को जानना चाहते थे। इसलिये शुभचन्द्र ने तत्वसार कथा, दान छंद, महावीर छंद, नेमिनाथ छंद, विजयकीर्ति छंद, अष्टाह्निका गीत जैसी लघु रचनायें निबद्ध कीं। विजयकीर्ति छंद एवं गुरु छंद में भ. विजयकीर्ति जी का ऐतिहासिक परिचय दिया गया है।

इस प्रकार भ. शुभचन्द्र जी भट्टारक शिरोमणि एवं आचार्यों के आचार्य थे। उनके विशाल व्यक्तित्व एवं उनके ज्ञान कोष के सामने ये उपाधियां कोई महत्त्व नहीं रखतीं। भ. शुभचन्द्र जी का व्यक्तित्व जैन समाज को सदा ही प्रभावित करता रहेगा।

भट्टारक रत्नकीर्ति एवं भट्टारक कुमुदचन्द्र जी

भ. रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र जी दोनों गुरु-शिष्य थे। रत्नकीर्ति जी का जन्म गुजरात के घोधा नगर में हुआ। उनके पिता हूमड़ जातीय श्रेष्ठी देवीदास थे। माता का नाम महजबदेवी था। भट्टारक रत्नकीर्ति का पट्टाभिषेक संवत् 1630 की वैशाख शुक्ल तृतीया को हुआ था। इस गादी पर वे 26 वर्ष तक रहे। जितना परिचयात्मक साहित्य श्री रत्नकीर्ति एवं श्री कुमुदचन्द्र जी के बारे में मिलता है उतना किसी अन्य आचार्य, भट्टारक एवं साधु के बारे में नहीं मिलता। ऐसा लगता है कि दोनों भट्टारक ही जनता में इतने घुल-मिल गये थे कि जनता उनके आगमन पर पलक पावड़े बिछा देती तथा उनका गुणगान करने में नहीं थकती थी। भ. रत्नकीर्ति के संबंध में लिखा हुआ एक पद देखिये :—

सखी री श्रीरत्नकीर्ति जयकारी

अभयनंद पाट उदयो दिनकर, पंच महाव्रत धारी।

शास्त्र सिद्धान्त पुराण ए जो सो तर्क-वितर्क विचारी।

गोमट्टसार संगीत सिरोमणि, जाणी गोतम अवतारी।

साहा देवदास केरो सुत सुखकर सेजलदे उर अवतारी।

गणेश कहे तुमे वंदो रे भवियण कुमति कुसंग निवारी।

भट्टारक रत्नकीर्ति जी के अब तक 38 पद एवं 6 कृतियां प्राप्त हो चुकी हैं।[1]

भ. रत्नकीर्ति जी की तरह भट्टारक कुमुदचन्द्र भी आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे। उनके आकर्षक व्यक्तित्व के संबंध में निम्न एक पद ही पर्याप्त होगा—

आवो साहेलडी रे सहू मिलि संगे।

बांदो गुरू कुमुदचन्द्र ने मनि रंगे।

छदं आगम अलंकार नो जांण, चारू चिंतामणि प्रमुख प्रमाण।

तेर प्रकार ए चारित्र सोहे, दीठडे भवियण जन मन मोहे।

साह सदाफल जेहनो तात, धन जनम्यो पदमाबाई मात।

सरस्वती गच्छ तणो सिणगार, बेगूस्युं जीतियो दुर्द्धरमार।

महियले मोढवंशो सु विख्यात, हाथ जोडाविया वादी संघात।

जो नरनार ए गोर गुण गावे, समयसागर कहे ते सुख थापे।।

श्री कुमुदचन्द्र जी बड़े भारी साहित्यिक भट्टारक थे। साहित्य सृजन में वे अधिक विश्वास करते थे, इसलिये एक गीत में अहर्निश छंद-व्याकरण-नाटक-भाण-न्याय-आगम-अलंकार के साथ उनका स्मरण किया गया है। इनकी अब तक 28 छोटी-बड़ी रचनायें एवं 30 से भी अधिक पद मिल चुके हैं। खोज करने के पश्चात् और भी कृतियां अथवा पद मिलने की संभावना है।

भट्टारक जगत्कीर्ति जी

संवत् 1746 में चांदखेड़ी में विशाल पंचकल्याणक के प्रतिष्ठाचार्य भ. जगत्कीर्ति आमेर गादी के भट्टारक थे। उनके संबंध में निम्न उल्लेख मिलता है : —

"संवत् 1746 के साल भ. जगत्कीर्ति के बारे में चांदखेड़ी में किशनदास बेधरवाला भगवान को रथ चलाओ। कोटा बूंदी का महाराज दौन्यू लेर चाल्या।

सभा सहित भट्टारक 11/जती चालता रथ कूं बंदे कर दीनूं और कहा यहां की पूजा करया रथ चाले तो तदि आचार्य या कही हाथ्या ने खोल दी। रथ बिना हाथ्या ही चालसी। हाथी खोल्या पाछे रथ पाव कोष चाल्यो और जती न कुहवाई अब थारी सामर्थ दिखातद आचार्य के पंगा पडया। प्रतिष्ठा में रुपया पांच लाख लाग्या।"

श्री जगत्कीर्ति चमत्कारिक भट्टारक थे। समाज की किसी भी विपत्ति में वे सहायता करते थे। वे संवत् 1770 तक आमेर की गादी पर भट्टारक रहे।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि मुस्लिम युग में भट्टारक ही आचार्य से अधिक सम्मानित थे। आचार्य पद तक पहुंचने के पश्चात् भी उन्हें भट्टारक पद अच्छा लगता था और अवसर मिलने पर वे भट्टारक बन जाया करते थे। मुस्लिम शासकों द्वारा इन भट्टारकों के सम्मान का सदा ध्यान रखा जाता था और फरमानों के द्वारा उनके विहार एवं आयोजनों की रक्षा की जाती थी। उन्हें मान-सम्मान दिया जाता था।

कुन्द-कन्द का समन्वयवाद

जैन समाज के प्रवर्तमान माहोल (आचार-विचार) को आगमिक परिप्रेक्ष्य में अध्यात्मयुग, यदि कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी। लगभग छः दशक पूर्व जन साधारण अध्यात्म शब्द का अर्थ भी नहीं समझते थे, उसके प्रतिपाद्य विषय की चर्चा-मनन तो दूर की बात थी। आज स्थिति यह है कि व्यापक रूप से सर्वत्र अध्यात्मवाद की चर्चा है। तत्प्रधान शास्त्र, समयसार, प्रवचनसार, रयणसार, पंचास्तिकाय जैसे अध्यात्म प्रधान ग्रंथ सार्वदेशिक रूप में जैन समाज के न केवल मंदिरों में अपितु घर-घर में विद्यमान हैं। निश्चित ही यह स्थिति जैन तत्वज्ञान, उसके विस्मृतप्राय अध्यात्मिक पक्ष के पुनरुत्थान के रूप में हर्ष का विषय है। अन्यथा जैनागम के समकक्ष, व्यवहार-पक्ष तक ही लोगों की मनन क्षमता व प्रवृत्ति सीमित हो गई थी।

किसी भी क्षेत्र में नवीनता, क्रियात्मक सरलता और लौकिक स्वार्थों में निर्बाधता आकर्षण व उत्साहता का विषय मानी गई है। यहां भी यही हुआ। किन्तु इनके भाष्यकारों, विश्लेषणकों में अपने निरपेक्ष प्रवचनों, साहित्य सृजन द्वारा इस पक्ष पर इतना जोर दिया कि निश्चय का सहोदर ही नहीं अपितु आलम्बन साधन भूत व्यवहार पक्ष उपेक्षित होने लगा। किन्तु सैद्धान्तिक सत्य

तथ्य को अधिक काल तक दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता। गम्भीर अध्ययन-मनन एवं विश्लेषण से जैन समाज सही स्याद्वादसम्मत निष्कर्ष पर पहुंची। ऐकान्तिक निश्चयवाद (अध्यात्मवाद) के हामी लोग भी भटक कर पुनः सही मार्ग पर आरुढ़ हो आचार्य कुन्द-कुन्द के अनेकान्त मूलक, स्याद्वाद द्वारा प्रतिपाद्य सापेक्ष समन्वयवाद, सामंजस्यवाद का अनुसरण करने लगे हैं।

अनादिकाल से कर्म मलों से लिप्त आत्मा को भेद विज्ञान के बल पर एक और अविभक्त बताना ही आ. कुंद-कुंद का प्रतिपाद्य विषय है। इसीलिये अभेद दृष्टि उनने रखी है। अनेकान्त के अनुसार भेद दृष्टि भी है। किन्तु आ. कुंद-कुंद उसे गौड़ रखना चाहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें भेद दृष्टि मान्य नहीं है। यदि ऐसा होता तो वे अपनी रचनाओं में भेद दृष्टि को मान्यता न देते। यह भेद दृष्टि ही व्यवहार नय है इसलिये आ. कुंद-कुंद जी जहां गुण, स्थान, मार्गणा, कषाय स्थान, अध्यवसान, संयम स्थान आदि का निषेध करते हैं वहीं वे आत्मा में सम्यकदर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यकचारित्र का भी निषेध करते हैं।

"र्णाविणाणं ण चरितं दंसणं जाणगो शुद्धो"।

किन्तु ज्ञानदर्शन चारित्र का पिंड ही आत्मा है और आत्मा ही ज्ञान दर्शन चरित्र है। अतः आत्मा में ज्ञान दर्शन बतलाना भेद दृष्टि है। आ. कुंद-कुंद इस भेद दृष्टि को अर्थात् व्यवहार दृष्टि को गौण रखना चाहते थे, इसलिये इसका निषेध करते थे। भेद दृष्टि को अभूतार्थ और अभेद दृष्टि को भूतार्थ कहने का प्रयोजन भी कुंद-कुंद का यही है। जब वे आत्मा को एकत्व विभक्त बताना चाहते थे तब अभेद दृष्टि ही भूतार्थ हो सकती है। इसकी प्रतिपक्षी भेद दृष्टि अभूतार्थ है।

"व्यवहारोऽभूयत्थे भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ"
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्मा इट्ठी हवई जीवो।।

इस गाथा के टीकाकार आचार्य जयसेन जी ने उक्त गाथा का अर्थ इस प्रकार किया है— व्यवहारनय भूतार्थ और अभूतार्थ है तथा शुद्धनय भी भूतार्थ और अभूतार्थ है। इनमें जो भूतार्थ का आश्रय लेता है वह सम्यक दृष्टि है। इस अर्थ से श्री कुंद-कुंद आचार्य व्यवहार को भूतार्थ भी कहना चाहते थे। और निश्चय को अभूतार्थ भी कहना चाहते थे। यह अभिप्राय इस गाथा से सिद्ध होता है।

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवाय पुण्णपावं च।

आसव संवर निज्जर बंधो मोक्खोय सम्मतं।। **—गाथा नं. 13**

अर्थात् भूतार्थ रूप से जाने हुए जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आश्रव, संवर, निर्जराबंध को सम्यकत्व कहते हैं। अर्थात् व्यवहार भूतार्थ नय से जीवाजीवादि पदार्थों को जानना सम्यक दर्शन है। इससे सिद्ध होता है कि व्यवहारनय भी भूतार्थ है। सारांश यह कि दृष्टि भेद से ही हम किसी को भूतार्थ या अभूतार्थ कह सकते हैं, सर्वथा नहीं। निश्चय और व्यवहार दोनों का परस्पर विरुद्ध विषय है। अतः अपने-अपने प्रयोग क्षेत्र में वे परस्पर प्रतिसिद्ध होते हैं, सदा सर्वथा नहीं। नय तो वस्तु का एक अंश है। पूर्ण नहीं है। यदि व्यवहार नय वस्तु के एक अंश को जानता है तो निश्चय भी वस्तु के एक ही अंश को बताने वाला है। व्यवहार भेदांश को ग्रहण करता है और निश्चय अभेदांश को, किन्तु वस्तु भेदा-भेदात्मक है। आगे चलकर आचार्य कुंद-कुंद ने व्यवहार और निश्चय दोनों नयों को पक्षपात कहा है। इसी स्थिति में उनकी दृष्टि से दोनों नय समान हो जाते हैं। मोक्ष प्राप्ति में दोनों नयों का समान स्थान आचार्य कुंद-कुंद स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि निश्चय नय का आश्रय लेकर मुनि मोक्ष प्राप्त करते हैं। किन्तु जब तक मुनि उस अभेद दशा तक नहीं पहुंचेगा तब तक मोक्ष प्राप्त नहीं करेगा, लेकिन इस दशा तक पहुंचने के लिए उसे भेद अर्थात् विकल्प दशा को प्राप्त करना ही होगा अर्थात् व्यवहार नय का आश्रय लेना ही पड़ेगा। इस अभिप्राय को उन्होंने गाथा नं. 72 में निम्न प्रकार से प्रगट किया है।

सुद्धो सुद्धादेसोणायत्वो परम भाव दरसीहिं।

ववहार देसिदा पुणजेदु अपरमे ट्ठिदा भावे।।

इस तरह आचार्य कुंद-कुंद ने अपने कथन को बड़ी सन्तुलित दृष्टि से प्रतिपादित किया है। व्यवहार नय का निषेध नहीं किया अपितु उसे गौण रखा है। यदि व्यवहार का निषेध किया होता तो समयसार के प्रमुख व्याख्याकार आचार्य अमृतचन्द्र दोनों नयों को छोड़ने की बात न कहते। गाथा नं 12 में उनके निम्न श्लोक से प्रगट है।

जो जिणमयं पवज्जए सो मा व्यवहार णिच्चयं मुयअ।

एकेण विणा छिज्जइ तित्थम् अण्णेन पुण तच्चम्।।

यदि जिनेन्द्र भगवान के मत के पक्षपाती हो तो व्यवहार और निश्चय

में किसी को मत छोड़ो। व्यवहार का परित्याग करने से तीर्थ प्रवृत्ति नष्ट हो जायेगी, और निश्चय के त्याग से तत्व का स्वरूप नष्ट हो जायेगा। यद्यपि आचार्य कुंद-कुंद ने एकत्व विभक्त अद्धेत आत्मा का वर्णन करने के लिये निश्चय दृष्टि को प्रधान रखा है, किन्तु उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि सामान्य जीव भ्रमित न हो जाय, किसी सीमा तक उपयोगी व्यवहार को भुला न बैठे। अतः बीच-बीच में विषय को समझाने के लिये व्यवहार दृष्टि का संकेत किया है।

गाथा नं. 6 में आ. कुंद-कुंद कहते हैं कि यह आत्मा न प्रमत्त है न अप्रमत्त है, शुद्ध ज्ञायक है। और तो क्या आत्मा में ज्ञानदर्शन भी नहीं है। किन्तु सातवीं गाथा में कहते हैं कि आत्मा में ज्ञान दर्शन चारित्र व्यवहारनय से है। गाथा नं. 8 में लिखते हैं कि बिना व्यवहार के परमार्थ का उपदेश नहीं हो सकता। दोनों नयों के विरोध को दूर करने वाले स्याद्‌वाद से अंकित भगवान के वचनों में जो आस्था रखते हैं रमण करते हैं वे शीघ्र ही उस समयसार ज्योति को देखते हैं जो सनातन है और किसी नय से खण्डित नहीं होती।

उभय नय विरोधध्वंसिमि स्यात्यवांके
जिन वचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समय सारं ते परंज्योति रूच्चै
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव।।

आगे चलकर वर्ण, रस, गंध, रागद्वेष मार्गणा गुणस्थान आदि का जीव में निषेध किया है। परन्तु गाथा 56 में इन्हीं सब बातों का अस्तित्व आत्मा में व्यवहार नय से स्वीकारा है। तत्पश्चात् आत्मा के अस्तित्व का प्रतिपादन करते हैं। भाव्य-भावक ज्ञेय-ज्ञायक भाव का विश्लेषण करते हुए आत्मा घटपट द्रव्यों का कर्त्ता है। ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मों तथा क्रोधादि भाव कर्मों को कर्त्ता है। ऐसा मानते हैं।

इस सापेक्ष दृष्टिकोण से वर्णित विषयों में उत्पन्न होने वाली शंकाओं और प्रश्नों का 'कि आत्मा बद्ध स्पृष्ट या अबद्ध अस्पृष्ट है इसका समाधान करते हुए वे तात्विक वस्तु स्थिति को स्पष्ट करते हैं कि 'जीव में व्यवहार और निश्चय नय से क्रमशः वर्णित बद्धस्पृष्टता और अबद्धस्पृष्टता ये दोनों ही नय पक्षपात हैं। समयसार इन दोनों पक्षों से रहित हैं। आचार्य अमृतचन्द्र

जी ने इसी आशय को अपने कलश श्लोक में इस प्रकार स्पष्ट किया है।

यः एव मुक्त्वा नय पक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम्।

विकल्प जालिम च्युत शान्तचित्ता तएव साक्षादमृतं पिबन्ति।।

जो नयों के पक्षपात को छोड़कर आत्मस्वरूप में लीन रहते हैं वे सभी पक्षपातों से रहित शांत- चित्त होकर साक्षात् अमृत पान करते है।

इस तरह आ. कुंद-कुंद और उनके टीकाकार श्री अमृतचन्द्र ने निश्चय और व्यवहार को समान कोटि में रखा है। यदि व्यवहार एक पक्ष है तो निश्चय वैसा ही दूसरा पक्ष है। आत्मस्वरूप में लीन होने के लिये दोनों पक्षों की आवश्यकता नहीं, किन्तु वस्तु के निर्विवाद स्वरूप को समझने के लिये दोनों नयों के पक्षपात की आवश्यकता होती है।

आचार्य अमृतचन्द्र जी अपनी सन्तुलित समन्वयात्मक दृष्टि के लिये स्यादवाद अधिकार में प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिये उपाय-उपेयभाव को स्पष्ट स्वीकार करते हैं। जिसमें व्यवहार को उपाय और निश्चय को उपेय माना है अर्थात् दोनों में साध्य-साधन भाव माना है। व्यवहार को भेद रत्नत्रय कहकर उसे अभेदरत्नत्रय का साधन कहा है। अभेद रत्नत्रय को साध्य माना है। चूंकि सर्वज्ञ केवली प्ररूपित वस्तु स्वरूप को गणधर सुनते हैं। बाद में इसे ग्रथित किया जाता है जो श्रुत कहलाने लगता है। यह श्रुत नयप्रधान होता है। जैसा कि अमूलचन्द्राचार्य ने कहा है—"उभयनयायता हि पारमेश्वरी देशना।" इस वाक्य से स्पष्ट है कि सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट श्रुत निश्चय और व्यवहार दोनों नयों को लेकर होता है।

जैन दर्शन में वस्तु का ज्ञान, प्रमाण नय से होता है। प्रमाण वस्तु में रहने वाले परस्पर विरोधी धर्मों को एक साथ ग्रहण करता है, जबकि नय विवक्षित अंश को ग्रहण कर शेष अंशों धर्मों का अस्तित्व स्वीकार करता है उनका निषेध या विरोध नहीं। किसी व्यक्ति के साथ पृथक संबंध रखने वाले अनेक व्यक्ति अपने अभिप्रेत संबंधों से उसे संबोधित करते हैं। अन्य व्यक्तियों के साथ उसके संबंध का अपलाप नहीं करते। यही स्थिति नय की भी है। वह अभिप्रेत विषय को मुख्य और अनभिप्रेत विषय को गौण कर देता है छोड़ता नहीं, नकारता नहीं है।

एक साथ दोनों विषयों का प्रतिपादन संभव भी नहीं। उस अवस्था में वस्तु अवक्तव्य बन जाती है। नय वचनात्मक पदार्थ श्रुत के भेद हैं। अतः

वक्ता-श्रोता के उपयोग की सार्थकता देखकर ही उनका प्रयोग करता है। किसे मुख्य किया जाय और किसे गौण किया जाये यह वक्ता की इच्छा और तात्कालिक आवश्यकता पर निर्भर करता है। आ. समन्तभद्र स्वामी ने कहा है—"विवक्षितो मुख्य इतीस्यतेऽन्यो गुणो विवक्षो न निरात्मकस्ते" अर्थात् विवक्षा की जाये वह मुख्य और जिसकी विवक्षा न की जाये वह गौड़ होता है, किन्तु गौड़ अभिवात्मक नहीं होता।

नयों का निरूपण करने वाले आचार्यों ने उनका शास्त्रीय आगमिक और आध्यात्मिक दृष्टि से विवेचन किया है। शास्त्रीय दृष्टि से नय के दो भेद हैं—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। चूंकि वस्तु द्रव्य पर्याय अथवा सामान्य विशेष रूप है अतः उसका सर्वांगीण विवेचन करने के लिये द्रव्य और पर्याय दोनों पर दृष्टि देना आवश्यक होता है। शास्त्रीय दृष्टि, कार्य सिद्धि के लिये कार्य-कारण अथवा निमित्त- नैमित्तिक पर दृष्टि रखती है। अंकुरोत्पत्ति में जिस प्रकार बीज रूप उपादान आवश्यक है उसी प्रकार मिट्टी, पानी, हवा रूप निमित्त को अपनाना अनिवार्य होता है। आ. समन्त भद्र स्वामी ने कहा है—"बाह्ययेतरोपाधि समग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्य गति स्वभावः"—अर्थात् कार्य की उत्पत्ति में बाह्य (निमित्त) और आभ्यंतर (उपादान) कारणों की समग्रता-पूर्णता होना द्रव्यगत स्वभाव है। शास्त्रीय दृष्टि से जीव की शुद्ध-अशुद्ध स्वभाव-विभाव भेद-अभेदादि सभी दृष्टियों का विवेचन है। यदि जीव की कर्मोदय जनित अवस्था को स्वीकृत न कर सर्वथा सिद्ध रूप अवस्था को ही स्वीकृत किया जाय तो मोक्ष प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करना व्यर्थ हो जाता है। शास्त्रीय दृष्टि निश्चय रत्नत्रय प्राप्ति के लिये देवशास्त्र गुरु की प्रतीति, तत्त्वज्ञान तथा पंचपाप के परित्याग, देश चारित्र और सकल चारित्र को स्वीकृत करती है।

अध्यात्मिक दृष्टि से आत्म तत्व को लक्ष्य में रखकर वस्तु का विवेचन किया जाता है। 'आत्मनि इति अध्यात्मं तत्रभवं आध्यात्मकम इस व्युत्पत्ति के अनुसार समग्र प्रयत्न आत्म तत्व पर केन्द्रित किया जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से नयों के दो भेद हैं—निश्चय और व्यवहार। निश्चय नय आत्मा के यथार्थ शुद्ध स्वरूप को दिखाता है और व्यवहार नय पर निमित्त जन्य विभाव-भावों से सहित अपरमार्थ रूप को बताता है। इसी अभिप्राय को लेकर श्री कुंद-कुंद स्वामी ने निश्चय नय को भूतार्थ और व्यवहार नय को अभूतार्थ

कहा है—व्यवहार भूयत्थो भूयत्थो देसिदो य शुद्धणओ।

कुंद-कुंद स्वामी के समय सार और नियमसार में आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मस्वरूप का प्रतिपादन है। अतः इसमें निश्चय और व्यवहार दो ही नय उपलब्ध होते हैं। पर पंचास्तिकाय और प्रवचन सार में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय के माध्यम से आत्म रूप का विवेचन उपलब्ध होता है। नयों के संदर्भ में यह ध्यान रखना आवश्यक है। शास्त्रीय और आध्यात्मिक दृष्टि में परस्पर विरोध नहीं है। मात्र प्रयोजन वश उनके विवेचन में भेद परिलक्षित होता है। शास्त्रीय दृष्टि का प्रयोजन वस्तु के सर्वांगीण स्वरूप का दर्शन कराता है और आध्यात्मिक दृष्टि का प्रयोजन पर से निवृत्ति कर शाश्वत सुख की प्राप्ति कराता है। निश्चय और व्यवहार नयों में भूतार्थ ग्राही होने से निश्चय को भूतार्थ और अभूतार्थ ग्राही होने से व्यवहारनय को अभूतार्थ कहा है। अभूतार्थ तो निश्चय नय की अपेक्षा है। स्वरूप और प्रयोजन की अपेक्षा नहीं उसे सर्वथा अभूतार्थ मानने से बड़ी आपत्ति दिखती है। श्री अमृत चन्द्राचार्य ने गाथा नं. 46 की टीका में सुदृढ़ और परिस्फुट भाषा में इसका उल्लेख एवं समर्थन किया है। वे कहते हैं "व्यवहार के बिना परमार्थ नय से जीव शरीर से सर्वथा भिन्न बताया है। इस स्थिति में जिस प्रकार भस्म आदि अजीव पदार्थों का निःशंक उपमर्दन करने से हिंसा नहीं होती उसी प्रकार त्रसस्थावरों का उपमर्दन करने से हिंसा नहीं होगी। और हिंसा के बिना बंध का अभाव हो जायेगा। बंध के अभाव में संसार का अभाव हो जायेगा। संसार के अभाव में मोक्ष का अस्तित्व संभव नहीं।"

सम्पूर्ण समय सार में शुद्ध नय दृष्टि से आत्मा के दिग्दर्शन का प्रयत्न किया है। आत्मा और पर पदार्थ में जो एकता की भ्रान्ति होती है उसका एक कारण पर पदार्थों के साथ आत्मा के षट्कारक का प्रयोग भी है। आचार्य ने इस भ्रान्ति को दूर करने के लिये कर्त्ता कर्माधिकार समयसार में दिया है और यह सिद्ध किया है कि आत्मा का पर द्रव्य के साथ कोई कर्त्ता, कर्म या अन्य कारक स्वरूप से संबंध नहीं है। वे लिखते हैं—

आत्मस्वभावं परभाव निम्नभापूर्णमाथन्त विमुक्त मेकम्।
विलीन संकल्प विकल्प जालं प्रकाशयन शुद्ध नयो भुपैति।

आचार्य श्री कुंद-कुंद स्वामी ने सभी क्षेत्रों में स्याद्वादाधारित समन्वय वाद का निरूपण किया है। जीवाजीवाधिकार में श्री कुंद-कुंद स्वामी ने

जीवाश्रित तादात्म्य जैसी अवस्था को प्राप्त हो रहे रागादि परिणामों को अजीव सिद्ध किया है। रागादिभाव, मार्गणा, गुणस्थान, जीवसमासादि भावों को अजीव प्रमाणित करते हुए पुनः कहते हैं कि यह घट पटादि की तरह अजीव नहीं। यहां अजीव से तात्पर्य है कि ये जीव की निज परिणति नहीं। जीव की निजपरिणति या स्वभाव होने पर ये त्रिकाल में भी जीव से पृथक नहीं किये जा सकते थे। ये अग्नि के संबंध से उत्पन्न जल की उष्णता की भांति क्रोधादि कषायों के उदय से होने वाली रागादि रूप परिणति है, जो आत्मा के अनुभूत होती है। किन्तु ये आत्मा के विभाव भाव हैं, स्वभाव नहीं। ये आत्मा के अलावा रागादि भाव जन्य, अन्य जड़ पदार्थों में नहीं होते हैं, किन्तु आत्मा के उपादान से आत्मा से उत्पन्न होते हैं। इन्हें आत्मा का कहना व्यवहार-नय है।

पुण्य पाप के प्रकरण में आचार्य कुंद-कुंद पुण्याचरण का निषेध नहीं करते। किन्तु पुण्याचरण को वे साक्षात् मोक्ष का कारण नहीं मानते। यानि जीव अपने पद के अनुरूप पुण्याचरण करता है और उसके फलस्वरूप चक्रवर्ती जैसे लोकोत्कृष्ट पदों को प्राप्त कर सुख भोगता है। किन्तु श्रद्धा यही रखता है कि पुण्य मोक्ष का कारण नहीं है। आचार्य कुंद-कुंद का कहना है कि जिस प्रकार पापाचरण बुद्धिपूर्वक छोड़ा जाता है उस प्रकार पुण्य नहीं। वह तो शुद्धोपयोग की भूमिका पर पहुंचने पर स्वयमेव छूट जाता है। जिनागम का कथन सापेक्ष होता है। अतः शुद्धोपयोग की अपेक्षा शुभोपयोग त्याज्य कहा है। परन्तु अशुभोपयोग की अपेक्षा उसे उपादेय कहा है। अशुभोपयोग सर्वथा अनुपादेय ही है। किन्तु शुभउपयोग पात्र की अपेक्षा उपादेय-अनुपादेय दोनों हैं।

कर्त्ता कर्माधिकार में आत्मा पर द्रव्य के कर्तृत्व से रहित है। ऐसा तर्क दिया गया है कि प्रत्येक द्रव्य अपने ही गुण और पर्याय रूप परिणमन करता है अन्य द्रव्य रूप नहीं। इसलिये वह पर का कर्त्ता नहीं हो सकता। यही कारण है कि आत्मा कर्मों का कर्त्ता नहीं है। कर्मों का कर्त्ता पुद्गल द्रव्य है क्योंकि ज्ञानावरणादि रूप परिणमन् पुद्गल में ही होता है। इसी तरह रागादि का कर्ता आत्मा ही है, पर द्रव्य नहीं। क्योंकि रागादिरूप पारिणमन् आत्मा ही करता है। निमित्त प्रधान दृष्टि को लेकर पिछले अधिकार में पुद्गल-जन्य होने के कारण राग को पौद्गगिलक कहा है। यहां उपादान दृष्टि को लेकर कहा गया है कि चूंकि रागादि रूप परिणमन् आत्मा का होता है अतः वे आत्मा के हैं। श्री अमृतचन्द्राचार्य ने यहां तक कहा है कि जो जीव रागादि की उत्पत्ति में परद्रव्य को ही निमित्त मानते हैं, वे समीचीन ज्ञान

से रहित हैं संसार सागर से कभी पार नहीं हो सकते। रागादि की उत्पत्ति में पर द्रव्य निमित्त कारण हैं और स्वद्रव्य उपादान कारण हैं। इसी अधिकार में मोक्ष मार्ग से लिंग को प्रधानमान मुनिलिंग या गृहस्थ के विविध लिंगों को कारण मानकर विवाद में पड़ने वाले लोगों को श्री कुंद-कुंदचार्य कहते हैं कि कोई लिंग मोक्ष का कारण नहीं है। मोक्ष का मार्ग तो सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र है।

आत्मा की सर्वकर्मों से रहित अवस्था मोक्ष है। मोक्ष मार्ग के प्रकरण में श्री कुंद-कुंद स्वामी ने बड़ी महत्व की बात कही है। वह उत्कृष्ट बात है सम्यक् चारित्र। वे कहते हैं कि मोक्ष मार्ग विषयक तेरा श्रृदान् और ज्ञान तुझे कर्म बंध से मुक्त कराने वाला नहीं है। मुक्त कराने वाला तो यथार्थ श्रदान और ज्ञान के साथ होने वाला चारित्र पुरुषार्थ ही है। इसके बिना बंधनमुक्त होना दुर्लभ है। मात्र श्रद्धान और ज्ञान को लिये हुए तेरा सागरों पर्यन्त काल यों ही निकल जाता है, परन्तु बंधन से मुक्त नहीं होता। स्वपर भेद विज्ञानपूर्वक जो चारित्र धारण किया जाता है वही मोक्ष प्राप्ति का वास्तविक पुरुषार्थ है।

चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जोसो समोत्ति णिधिट्ठो।
मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणोंही समो।।

मोक्ष प्राप्ति के लिये यद्यपि वे किसी लिंग विशेष को आवश्यक नहीं मानते प्रत्युत ऐसे पाखंडी लोगों को जो गृहस्थ या मुनि लिंग विशेष में ममता रखते हैं उन्हें परमार्थ से समयसार के ज्ञान से रहित मानते हैं, किन्तु यह इस पक्ष (निश्चय) की एकान्तता और मोक्ष प्राप्ति में गृहस्थाचार तथा महाव्रती के चारित्र के बहिष्कार एवं उपेक्षित होने की आशंका से सचेत होकर मोक्ष की प्राप्ति में व्यवहार नय से गृहस्थ लिंग और मुनि लिंग दोनों की उपयोगिता स्वीकार करते हैं।

ववहारिओ पुण णओ दोण्णींव लिंगाणि मणइमोकखपहे।
पिच्छय णओं ण इच्छई मोक्खपहे सब्द लिंगाणि।।

अर्थात् व्यवहार नय मुनिलिंग और गृहस्थ लिंग दोनों को मोक्ष मार्ग कहता है। और निश्चय सभी लिंगों को मोक्ष प्राप्ति हेतु आवश्यक नहीं मानता। मोक्ष मार्ग से लिंग को प्रधान मान मुनि लिंग या गृहस्थ लिंग के विविध लिंगों को कारण मानकर विवाद में पड़ने वाले लोगों को श्री कुंद-कुंद आचार्य कहते हैं कि कोई लिंग मोक्ष का मार्ग नहीं है। मोक्ष का मार्ग तो सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र है।

आचार्य श्री कुंद-कुंद क्रमिक विकास के सर्वमान्य सिद्धान्त के प्रबल हामी (समर्थक) थे। पात्रों की योग्यता की तरतमता को उन्होंने कभी नहीं नकारा। यह उनके सभी ग्रंथों से प्रमाणित होता है। शुद्ध निश्चय नय के साम्राज्य में वे किन्हीं भी विकल्पों की द्वैतवाद को स्वीकार नहीं करते। इन विकल्पों की कोई गुंजाइश वहां नहीं। इस अभिप्राय या सिद्धान्त का पोषण करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र के निम्न क्लश को प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है।

> **उदयति न नयश्रीरस्त मेति प्रमाणं क्वचिदपि न विद्मो याति निक्षेपचक्रम्।**
> **किमपर भमिदध्मो धाम्नि सर्वंप्रकषेस्मिन्ननुभव मुपयाते भाति न द्वैतमेव।।**

अर्थात् एक अवस्था ऐसी आती हैं जहां व्यवहार और निश्चय दोनों नयों का अस्तित्व नहीं रहता। प्रमाण अस्त हो जाता है और निक्षेप का तो पता नहीं चलता कि वह कहां गया। उपयुक्त अविकल विवेचन से यह तथ्य सामने आता है कि आचार्य श्री कुंद-कुंद समन्वय वाद सापेक्षवाद के प्रतिपादक थे। सर्वज्ञ प्ररूपित वस्तु तत्व के निर्विरोध विश्लेषण का यही तरीका है। इस प्रकार यह धारणा निर्विवाद और निसंदेह है कि श्री कुंद-कुंद स्वामी दार्शनिक, सैद्धान्तिक और चारित्रात्मक आत्म कल्याण के सभी क्षेत्रों में समन्वयवाद के आधार पर अप्रतिम आचार्य थे।

संदर्भ ग्रंथ

1. आचार्य सोमकीर्ति एवं ब्रह्म यशोधर
2. जैन साहित्य और इतिहास
3. जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह (पं. परमानंद शास्त्री)
4. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचंद्र

जयपुर **डा० कस्तूरचंद कासलीवाल**

भक्तामरस्तोत्र में प्रतीक योजना

भक्तामरस्तोत्र जैनधर्म के चारों आम्नायों में मान्य एवं प्रचलित आराधना स्तोत्र है। इसमें भी विशेष रूप से मूर्तिपूजक दिगंबर व श्वेतांबर आम्नाय में इसकी अधिक प्रसिद्धि व मान्यता है। और अधिक कहें तो जैन स्तोत्र-साहित्य में ही नहीं अपितु संस्कृत-साहित्य में भी उसका साहित्यिक दृष्टि से अद्वितीय स्थान है। आराध्य के गुण-सौन्दर्य और महिमा (अतिशय) का त्रिवेणीसंगम उसमें अक्षय रूप से प्रवाहित होता है। भाषा का सौन्दर्य, पद-लालित्य, अलंकारों की छटा एक ही स्थान पर देखी जा सकती है। इस कला पक्ष के सौन्दर्य का रहस्य भी कवि के हृदयपक्ष या भावपक्ष की विह्वलता के कारण ही है। आराध्य की भक्ति एवं गुणकथन में तन्मय भक्त कवि मुनि श्री मानतुंगसूरि मानों स्वयं आदिनाथमय बन गये थे। भक्त और आराध्य के बीच अद्वैत संबंध बन गया था। भक्त जिस तरह भावविभोर हो जाता है वह अवर्णनीय ही है। जब भक्त भक्ति की ऐसी चरम अवस्था को प्राप्त हो जाता है तभी अन्तर के ऐसे भाव प्रस्फुटित होते हैं, अतः यह स्तोत्र स्वाभाविक रूप से ही मनोमुग्धकारी है।

इस स्तोत्र की महिमा इसकी अतिशयता एवं रिद्धि-सिद्धि के कारण भी अत्यंत प्रचलित हैं। धार्मिक दृष्टि से श्रद्धा भावना के कारण ऐसे स्तोत्रों का पाठ और उनका साधना साधक को शांति, सुख और समृद्धि प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से भी इसकी महत्ता है।

इस लेख में मेरा उद्देश्य अतिशयों की महत्ता सिद्ध करना नहीं है, परंतु इस स्तोत्र में कवि ने जिन प्रतीकों को प्रस्तुत किया है, प्रतीकों के माध्यम से जो कथ्य या भाव अंकित किये हैं, उन पर ही अपने विचार प्रस्तुत करना है।

सर्वप्रथम इस स्तोत्र के साथ मानतुंगाचार्य की जो कथा जुड़ी है, जिसमें यह उल्लेख है कि कुछ दुष्ट राजदरबारियों के भड़काने से राजा हर्षदेव ने आचार्य को बेड़ियों से जकड़कर 48 तालों वाली काल कोठरी में कैद कर

दिया था और आदेश दिया था कि 'तुम्हारे जैन धर्म में शक्ति हो तो उसकी महिमा प्रगट करो और उसी के बल पर स्वयं मुक्त हो जाओ।' उसी कारागृह में शांतचित्त, स्थिर भाव से मुनिश्री अपने आराध्य आदिनाथ के ध्यान में लीन हो गये तब भक्ति के पद स्वयं प्रस्फुटित होते गये और इस स्तोत्र की रचना हो गई। कहते हैं कि एक-एक श्लोक की रचना होती गई और कारागृह का एक-एक ताला स्वयं टूटता गया। बेड़ियाँ टूट गईं। मुनिराज पूर्ण समता भाव से, वीतराग भावों को धारण किये हुए बाहर आये। उन्होंने राजा और राजदरबारियों को उसी समता भाव से 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया।

इस कथा को भी प्रतीक ही माना जा सकता है। मनुष्य के जब अशुभ कर्म उदय में आते हैं तब वे बड़े-बड़े मुनिजनों को भी नहीं छोड़ते। उन्हें भोगना ही पड़ता है। परंतु, भेद-विज्ञान-दृष्टि प्राप्त जो सम्यक्त्वी जीव हैं वे इन आपत्तियों से घबराते नहीं हैं, चलित नहीं होते। ऐसे प्रसंगों को उपसर्ग मानकर तपस्या में अधिक लीन रहते हैं। कर्मों का क्षय करते हैं और अधिक दृढ़ बनकर ऊपर उठते हैं। आचार्य मानतुंग भी ऐसे राजा के उपसर्ग के सामने प्रभु की आराधना में लीन हो गये। उपसर्ग रूपी ग्रहण पूर्ण होते ही धर्मरूपी चन्द्र पुनः प्रकाशित हुआ। तालों में बंद करना भी इस बात का प्रतीक ही है कि मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्मों के ताले में बंद होने से चार गतियों में भ्रमण करता रहता है और, जब तक आत्मप्रदेश में स्थिर होकर उन कर्म के बंधनों को नहीं तोड़ता तब तक मुक्त नहीं हो सकता। इस प्रकार जेल ताला ये दो शब्द संसार एवं बद्धकर्मों के ही प्रतीक हैं, और आराधना उनसे मुक्त होने की क्रिया है।

मानतुंगसूरि प्रारंभ से ही आराध्य देव आदिनाथ के रूप-सौंदर्य एवं उनकी महिमा का गुणगान गाते हैं। भगवान के चरणमात्र भवसागर से तारने के लिए सक्षम हैं। यह संसार 'पवनोधत्तनक्रचक्र' जैसा है, जहाँ विषय, काम विकार के झंझावात निरंतर संसार-सागर को तूफानी बनाकर आलोडित करते रहते हैं। विषय-वासना के मगरमच्छ लील जाने के लिये मुंह फैलाये हैं। ऐसे समय भगवान आदिनाथ का नाम स्मरण ही एकमात्र आधार है। इनकी आराधना ही सहारा है।

आचार्य, बारंबार वीतराग देव, उनके गुण एवं प्रभाव की तुलना सरागी देवों से करते हैं। इस तुलना हेतु वे अनेक सुन्दर प्रतीकों का प्रयोग करते

हैं। वीतराग देव तो चन्द्रकिरण से उज्ज्वल, निर्मल और क्षीरोदधि से भरे जल से पवित्र हैं जबकि सरागी देव 'क्षारजल' जैसे हैं—संसारवृद्धि कराने वाले हैं। कौन 'क्षीर' को छोड़ 'क्षार' को ग्रहण करेगा? इस प्रकार आचार्य 'क्षीरोदधि' और 'क्षारोदधि' के प्रतीकों द्वारा तुलना प्रस्तुत करते हुए दोनों के गुणों का अंतर स्पष्ट करते हैं। समाधि में दृढ़ होने के लिये वे अटल सुमेरु पर्वत के प्रतीक का प्रयोग करते हैं। जैसे प्रलयंकारी झंझा भी सुमेरु को डिगा नहीं सकता वैसे ही कामवासना रूपी भौतिक सौन्दर्य दृढ़ तपस्वी को चलित नहीं कर पाता। इसी प्रकार केवली भगवान का ज्ञान 'निर्धूम ज्योति' : का परम प्रकाशित रूप है। यह स्थिरज्ञान (केवलज्ञान) की धवल ज्योति किसी भी प्रकार के संशय, कषाय विकार की आंधी में भी नहीं बुझती। ज्ञान भी 'धूम' अर्थात् संशय आदि से रहित है। 'ज्योति' प्रकाश का प्रतीक एवं 'सत्यदर्शन' का प्रतीक है। इन दो श्लोकों में सुमेरुपर्वत एवं निर्धूम ज्योति युक्त दीपक साधना-ज्ञान के अचल भावों के प्रतीक हैं। झंझावात आदि संसार की वासना के प्रतीक हैं। वासना पर वैराग्य की विजय का निर्देश यहाँ हुआ है। सत्य भी है—जो भौतिक सुखों में भी आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं वे ही महावीर या मुक्त बन सकते हैं।

कवि ने आदिनाथ भगवान की वंदना बुद्ध, शंकर, ब्रह्मा एवं विष्णु जैसे विशेषणों का प्रयोग कर की है, पर, उनका आशय अवतारी देव नहीं हैं। जब वे बुद्ध शब्द का प्रयोग करते हैं तब उनका अभिप्राय केवलज्ञान रूपी बोध जिसे प्राप्त है ऐसे अरिहंत भगवान के ही गुणों का अंकन करना है। 'शिव' शब्द शिवत्व अर्थात् कल्याण करने के संदर्भ में एवं आत्मा को पवित्र बनाने के परिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त किया गया है। 'ब्रह्मा' प्रतीक है उस जिनेश्वर का जो मोक्षमार्ग को प्रशस्त करने वाले हैं। 'विष्णु' अर्थात् पुरुषोत्तम। यहाँ विष्णु की कल्पना ऐसे सिद्ध पुरुष से की गई है जो सर्वपुरुषों में उत्तम मोक्षमार्ग का प्रणेता है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र से दृढ़ है एवं आत्मा को जानने वाला है। इस शब्द के द्वारा भी उत्तम पुरुष अर्थात् अरिहंत भगवान की ही कल्पना या आराधना की है।

भगवान जिनेन्द्र के जो आठ प्रतिहार्य हैं वे भी प्रतीक रूप ही हैं। ये प्रातिहार्य सत् की असत् पर विजय एवं संसार पर वैराग्य की विजय के ही सूचक हैं।

'अशोक वृक्ष' प्रतीक है कि भगवान की धर्मसभा में कोई शोक (आधि-व्याधि-उपाधि) नहीं है। पूरा वातावरण अशोकमय हैं। ऐसे वातावरण में बैठे सभी जीव संसार से मुक्त होने के भावों से युक्त शक्ति का अनुभव कर रहे हैं। उत्तम आराध्य के सान्निध्य में मनुष्य शोक-दुख-चिंता से रहित हो जाता है।

'सिंहासन' उच्च्य एवं उत्कृष्ट आसन का प्रतीक है। वह सूचित करता है कि जिसने पांचों ज्ञान प्राप्त किये हैं, कर्ममल का क्षय किया है वे ही ऊँचे आसन के अधिकारी हैं। दूसरे यह आसन सिंह-आसन है। जो पूर्ण निर्मलता का सूचक है। जो संपूर्ण निर्भय है। जिन्हें संसार की माया या भय नहीं डरा सकता; और जो मृत्युंजयी बन गये हैं वे सिंह वृत्ति वाले दृढ़ पुरुष ही इस सिंहासन पर बैठने के अधिकारी होते हैं। ऐसे आराध्य का समागम जिसे प्राप्त हो वह धर्माचारी व्यक्ति सिंह वृत्ति अर्थात् निर्भयता प्राप्त करता है। वह तपाराधना में सिंह की भांति आरुढ़ होता है।

'चँवर' जो भगवान पर ढोले जा रहे हैं जो 64 प्रकार के हैं वे 64 कलाओं के प्रतीक हैं। भगवान आदिनाथ ने संसारी पुरुषों को जीवन यापन की जो 64 कलायें सिखाई हैं उन्हीं के प्रतीक हैं।

'तीन छत्र' जो क्रमशः छोटे से बड़े होते गये हैं वे रत्नत्रय के प्रतीक हैं। वे सूचित करते हैं कि चारित्र में उत्तरोत्तर दृढ़ बन कर ही मुक्ति पथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है। या जो रत्नत्रय गुणों को धारण करता है वह सिद्धत्व प्राप्त करता है।

'दुंदुभिनाद' प्रतीक है उस उद्घोष का जो मानों यह उद्घोषणा कर रहा है कि 'हे संसार के त्रिताप से पीड़ित मनुष्य! धर्म आदि 'चत्तारि शरण' में आश्रय प्राप्त करो। जागृत बनो। धर्म की शरण ही संसार से मुक्ति दिला सकती है। 'पुष्पवृष्टि' वसंत की शोभा और शांति का प्रतीक है। जब ऐसा वासंती वातावरण होता है तभी हृदय में शांति एवं पवित्र तपयुक्त वातावरण बनता है। इन दिव्य पुष्पों की वृष्टि इस ढंग से होती है कि जिसके पत्ते अधोमुख और दंडभाग ऊपर को होता है, ये इस तथ्य के प्रतीक हैं कि जब व्यक्ति आराध्य की शरण में आये, उन्हें अहम् त्यागकर श्रद्धापूर्वक नमन करें तो पतित जन भी उर्ध्वमुखी बनकर 'धर्म की ऊँचाइयों' अर्थात् मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। जब साधक उर्ध्वमुखी बनता है तब उसका जीवन पुष्प की

तरह कोमल और सुगंधित बनता है। "आभामंडल" (प्रभामंडल) शुक्ल लेश्या अर्थात् उत्तम शुभ भावनाओं का प्रतीक है। जब साधक के समस्त मिथ्यात्व दूर हो जाते हैं, सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और तीर्थंकर भगवान स्वयं दर्पण के समान पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर दमकने लगते हैं—पारदर्शिता प्राप्त कर लेते हैं तब उनके परमौदारिक दिव्य देह से अलौकिक किरणों की प्रतिभा का मंडल दमकने लगता है। इस मंडल में जीव त्रिलोक के दर्शन करता है—स्वयं के (आत्मा के) रूप को निहारता है और निरंतर निर्मलता-प्राप्ति में लग जाता है। "दिव्यध्वनि" प्रातिहार्य भगवान केवली की ध्वनि का प्रतीक है। यह वचनामृत नवतत्त्व, षट्द्रव्य आदि धर्म के स्वरूपों को प्रगट करता है और इससे मुमुक्षु सच्चे आनंद का सुख प्राप्त करता है।

भक्तामरस्तोत्र में आचार्य ने प्रथम प्रतीकों द्वारा आदिनाथ प्रभु के रूप, गुण प्रस्तुत किये। तदुपरांत उनके अष्ट प्रातिहार्यों के प्रतीकों द्वारा उनकी महिमा का गुणगान प्रस्तुत किया और अंत में उनके प्रभाव आदि की महत्ता-शक्ति को प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

'मदोन्मत्त हाथी' भी भगवान के भक्त के समक्ष वशीभूत हो जाता है। यहाँ मदोन्मत्त-क्रोधी हाथी मन के विकारों का प्रतीक है। भक्त सम्यग्दृष्टि का प्रतीक है। सम्यग्दृष्टि, सत्त्वगुण के धारक की दृष्टि के समक्ष हाथी जैसा शक्तिशाली भी पराजित हो जाता है। यहाँ सद्वृत्ति की असद्वृत्ति पर विजय का निर्देश है। 'सिंह' जो कि हाथी के गंडस्थल को क्षत-विक्षत कर सकता है वह भी आराधना में दृढ़ व्यक्ति के सामने परास्त हो जाता है। यहाँ 'सिंह' हिंसा का प्रतीक है और आराधक अहिंसा-दृढ़ता का प्रतीक है। इस श्लोक में हिंसा पर अहिंसा की विजय प्रतिष्ठित कर अहिंसा की महिमा एवं शक्ति की स्थापना की है। 'प्रलयाग्नि' का वर्णन कवि बड़े ही उग्र स्वरूप में करता है। इस प्रलयाग्नि में समस्त संसार को भस्म करने की तीव्रता-उष्णता है। परंतु, आदिनाथ प्रभु के नाम का स्मरण शीतल जल का कार्य करता है, और अग्नि को शांत कर देता है। प्रलयाग्नि क्रोध भाव का प्रतीक है और प्रभुनाम स्मरण शीतल जल का प्रतीक है। क्रोध का शमन शांति-शीतलता से ही हो सकता है। यहाँ भी आचार्य अहिंसा का ही समर्थन करते हैं। मन की शांति ही दृढ़ता प्रदान कर सकती है। सर्प और उसकी विकरालता उसका ज़हर आदि काम-क्रोध-कषाय के प्रतीक हैं। जबकि सत्यधर्म की श्रद्धा और देव-शास्त्र-गुरु की आराधना जड़ी-बूटी औषधि है जो सर्पदंश के ज़हर को दूर करती है। साँप के डर से भी निर्भय बनाती है। यहाँ मनुष्य के मन में

स्थित विविध विषय-कषायों के सर्प को यदि दूर करना है तो एक मात्र उपाय सद्धर्म की आराधना ही हो सकती है। रणक्षेत्र में हाथी, घोड़ा एवं भयंकर शत्रुओं से घिरे हुए, भक्त श्री भगवान के स्मरण से विजय प्राप्त करते हैं। यहाँ 'रणक्षेत्र' अर्थात् संसार। संसार के जीवों को अनेक परपदार्थ पीड़ित करते हैं। आत्मा को संसार भ्रमण और सुख-दुख में परेशान करते हैं। परंतु, भक्ति के पुरुषार्थ से साधक आत्मप्रदेश को जागृत करने वाले ये सांसारिक मोह-माया कषाय रूपी हाथी घोड़ों को परास्त कर विजय प्राप्त करके मोक्ष प्राप्ति का विजेता बनता है।

ऐसे संसार-सागर में जहां मगरमच्छ अर्थात् पंच पापों से घिरे हुए हैं वहाँ भक्त भक्ति रूपी नौका से ही पार हो सकते हैं। यहाँ संसार मोह-माया, लोभ आदि को प्रतिबिंबित करता है और धर्मरूपी नौका, पार कराने का प्रतीक है। मनुष्य का शरीर अनेक रोगों का घर है। जीवन की आशा ही जिनकी टूट गई है ऐसा व्यक्ति भी भगवान के नाम की औषधि से कामदेव से भी अधिक सुन्दरता प्राप्त कर लेता है। यहाँ बाह्य शारीरिक रोग जो कि मानसिक संत्रास, अनियमितता, स्वच्छंदता के प्रतीक के रूप में है, वहीं सच्ची भक्ति औषधि का काम करती है। इसमें आराधना तत्त्व की प्रधानता है। अंत में आचार्य लौह शृंखला से जकड़े घायल शरीर की बात करते हैं। इस संदर्भ में वे प्रतीक के माध्यम से कहना चाहते हैं कि संसार के मोहनीय कर्म से उदित बंधन हमें लौह शृंखला (बेड़ियों) में जकड़कर निरंतर पीड़ित करते रहते हैं, ऐसे समय में जो प्रभू के नाम-मंत्र का स्मरण करता है वही मुक्त होता है अर्थात् नाम-मंत्र के स्मरण से वह संसार की पीड़ा को भूलकर दृढ़ता से आत्मप्रदेश में लीन अन्तर्मुखी बनता है। पीड़ा से छुटकारा पाकर मुक्ति प्राप्त करता है।

यों तो भक्तामर स्तोत्र के प्रत्येक श्लोक में कोई न कोई नवीन दृष्टि प्रस्तुत की गई है परंतु, ऊपर चर्चा जिनकी की है उन श्लोकों में अधिक प्रतीकात्मक शैली में कवि ने भगवान आदिनाथ के रूप, गुण, अतिशयों का वर्णन किया है, साथ ही संसार, मनुष्य के चंचल स्वभाव, आधि-व्याधि-उपाधि, कषाय-विषय-वासना, मोह आदि जो संसार में भटकाने वाले हैं—उनसे मुक्ति का उपाय भगवान की आराधना, ध्यान एवं आत्मचिंतन बताया है।

इस स्तोत्र में कवि ने भक्ति की उत्कृष्टता, उसका प्रभाव एवं मिथ्यात्व का त्याग करके क्रमशः प्रगति पथ पर उर्ध्वगति प्राप्त करना ही मूल उद्देश्य माना है।

अहमदाबाद **डॉ. शेखरचन्द्र जैन**

अष्टसहस्री : एक अध्ययन

अष्टसहस्री आचार्य विद्यानन्द की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसका *'आप्तमीमांसालंकार'*, *'आप्तमीमांसालंकृति'*, *'देवागमालंकार'* और *'देवागमालंकृति'* इन नामों से भी उल्लेख किया गया है। इसमें 10 परिच्छेद हैं। प्रत्येक परिच्छेद के अन्त में जो पुष्पिका-वाक्य है उनमें इसका नाम आप्तमीमांसालंकृति दिया गया है। द्वितीय परिच्छेद के प्रारंभ में आचार्य विद्यानन्द ने जो पद्य दिया है उसमें इसका नाम अष्टसहस्री बतलाया है। वह पद्य इस प्रकार है—

श्रोतव्याष्टसहस्री श्रुतैः किमन्यैः सहस्र संख्यानैः।
विज्ञायते यथैव स्वसमय पर समय सद्भावः।।

आप्तपरीक्षा में इसे देवागमालंकृति और देवागमालंकार भी कहा है। अष्टसहस्री आप्तमीमांसा की अत्यन्त विस्तृत और प्रमेयबहुल व्याख्या है। इसमें आचार्य अकलंक देव की अष्टशती को आत्मसात् कर लिया गया है। अष्टसहस्री के बिना अष्टशती का गूढ़ रहस्य समझ में नहीं आ सकता है। आचार्य विद्यानन्द ने अष्टसहस्री के अन्त में एक श्लोक लिखा है जिसमें अष्टसहस्री को कुमारसेन की उक्तियों से वर्धमान बतलाया है। वह श्लोक निम्न प्रकार है—

कष्टसहस्री सिद्धा साष्टसहस्रीयमत्र मे पुष्यात्।
शश्वदभीष्टसहस्री कुमार सेनोक्ति वर्धमानार्था।।

इसका तात्पर्य यही है कि कुमार सेन नामक आचार्य ने आप्तमीमांसा पर कुछ लिखा था और आचार्य विद्यानन्द ने उससे लाभ उठाया था। इस श्लोक में अष्टसहस्री को कष्टसहस्री भी कहा है, इससे ज्ञात होता है कि अष्टसहस्री की रचना में हजारों कष्टों को सहन करना पड़ा था। इसका अध्ययन भी कष्टकारी है। अर्थात् कोई जिज्ञासु हजारों कष्ट उठाकर ही अष्टसहस्री का अध्ययन कर सकता है।

अष्टसहस्री के रचयिता आचार्य विद्यानन्द

जैन न्याय के प्रतिष्ठापक आचार्य अकलंक के बाद श्री विद्यानन्द जी

एक ऐसे प्रतिभाशाली आचार्य हुए हैं जिन्होंने समस्त दर्शनों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करके स्वनिर्मित ग्रन्थों में अपने उच्चकोटि के पाण्डित्य का परिचय तथा उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर अकलंकन्याय को सर्वथा पल्लवित तथा पुष्पित किया है। आचार्य विद्यानन्द ने कणाद, प्रशस्तपाद, और व्योमशिव इन वैशेषिक विद्वानों के, अक्षपाद, वात्स्यायन और उद्योतकर इन नैयायिक विद्वानों के, जैमिनि, शबर, कुमारिल भट्ट और प्रभाकर इन मीमांसकों के, मण्डनमिश्र और सुरेश्वर मिश्र इन वेदान्तियों के, कपिल, ईश्वरकृष्ण और पतञ्जलि इन सांख्य-योग के आचार्यों के तथा नागार्जुन वसुबन्धु, दिग्नाग, धर्मकीर्ति, प्रज्ञाकर और धर्मोत्तर इन बौद्धदार्शनिकों के ग्रन्थों का सर्वांगीण अध्ययन किया था। इसके साथ ही जैन दार्शनिक तथा आगमिक साहित्य भी उन्हें विपुलमात्रा में उपलब्ध था। अतः अपने समय में उपलब्ध जैन वाङ्गमय तथा जैनेतर वाङ्गमय का सांगोपांग अध्ययन और मनन करके आचार्य विद्यानन्द ने यथार्थ में अपना नाम सार्थक किया था। यही कारण है उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में समस्त दर्शनों का किसी न किसी रूप में उल्लेख मिलता है। आचार्य विद्यानन्द ने अपने पूर्ववर्ती अनेक ग्रन्थकारों के नामोल्लेख पूर्वक और कहीं-कहीं बिना नामोल्लेख के उनके ग्रन्थों से अपने ग्रन्थों में अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। तथा पूर्वपक्ष के रूप में अन्य दार्शनिकों के सिद्धान्तों को प्रस्तुत करके प्राञ्जल भाषा में उनका निराकरण किया है। उनके ग्रन्थों का प्रायः बहुभाग बौद्धदर्शन के मन्तव्यों की विशद आलोचनाओं से भरा हुआ है। आचार्य विद्यानन्द अकलंक देव के प्रमुख व्याख्याकार हैं।

आचार्य विद्यानन्द द्वारा विरचित अष्टसहस्री आचार्य समन्तभद्र की आप्तमीमांसा पर विस्तृत और महत्त्वपूर्ण व्याख्या है। इस व्याख्या में अकलंक देव द्वारा रचित अष्टशती को इस प्रकार से आत्मसात् कर लिया गया है जैसे वह अष्टसहस्री का ही अंग हो। यदि आचार्य विद्यानन्द अष्टसहस्री को न बनाते तो अष्टशती का रहस्य समझ में नहीं आ सकता था। क्योंकि अष्टशती का प्रत्येक पद और वाक्य इतना क्लिष्ट और गूढ़ है कि अष्टसहस्री के बिना विद्वान् का भी उसमें प्रवेश होना अशक्य है। आचार्य विद्यानन्द ने अष्टसहस्री में अपनी सूक्ष्मबुद्धि से आप्तमीमांसा और अष्टशती के हार्द को विशेषरूप से स्पष्ट किया है। आप्तमीमांसा और अष्टशती में निहित तथ्यों के उद्घाटन के अतिरिक्त अष्टसहस्री में अनेक नूतन विचारों का भी समावेश किया गया है। हम कह सकते हैं कि अष्टसहस्री में पूर्वपक्ष या उत्तरपक्ष के रूप में समस्त दर्शनों के सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। इसीलिए आचार्य

विद्यानन्द ने साधिकार कहा है कि हजार शास्त्रों के सुनने से क्या लाभ है। केवल इस अष्टसहस्री को सुन लीजिए। इतने मात्र से ही स्वसिद्धान्त और पर सिद्धान्त का ज्ञान हो जायेगा।

आचार्य विद्यानन्द को समस्त दर्शनों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त था। जैन वाङ्गमय में भावना, विधि और नियोग की चर्चा सर्वप्रथम विद्यानन्द की अष्टसहस्री और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक में ही विस्तार से देखने को मिलती है। कुमारिल भट्ट भावनावादी हैं। प्रभाकर नियोगवादी हैं और वेदान्ती विधिवादी हैं। इनके ग्रन्थों के सूक्ष्म अध्ययन के बिना भावना आदि का इतना गहन और विस्तृत विवेचन असंभव है। तत्त्वोप्लववाद का पूर्वपक्ष और उसका विस्तार से निराकरण इन्हीं के ग्रन्थों में देखने को मिलता है।

आचार्य विद्यानन्द ने अष्टसहस्री में अनेक प्रसिद्ध दार्शनिकों के ग्रन्थों से नामोल्लेख पूर्वक और बिना नामोल्लेख के भी अनेक उद्धरण दिये हैं। 'तदुक्तं भट्टेन अथवा तदुक्तं' लिखकर कुमारिल भट्ट की मीमांसाश्लोकवार्तिक के अनेक श्लोकों को उद्धृत किया गया है। धर्म कीर्ति के प्रमाण वार्तिक से अनेक श्लोकों को उद्धृत करके उनके सिद्धान्तों की समालोचना की गयी है। धर्म कीर्ति के टीकाकार प्रज्ञाकर की भी कई बार नाम लेकर समालोचना की गयी है। भर्तृहरि के वाक्यपदीय से 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके' इत्यादि श्लोक, शंकराचार्य के शिष्य सुरेश्वर के वृहदारण्यक वार्तिक से 'आत्मापि सदिदं ब्रह्म' इत्यादि श्लोक तथा ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका से भी कई श्लोक उद्धृत किये गये हैं। महाभारत के वन पर्व से 'तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयोविभिन्नाः' इत्यादि श्लोक उद्धृत है। ज्ञानश्रीमित्र की अपोहसिद्धि से 'अपोहः शब्दलिंगाभ्यां न वस्तु विधिनोच्यते' यह श्लोकांश उद्धृत है। शावरभाष्य से 'चोदना हि भूतं भवन्त भविष्यन्तम्' इत्यादि तथा 'ज्ञाते त्वर्थेऽनुमानादवगच्छति बुद्धिम्' यह वाक्य उद्धृत है। योगदर्शन से 'चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपम्' तथा 'बुद्धयवसितमर्थं पुरुषश्चेतयते' यह वाक्य उद्धृत है। अकलंक देव के न्यायविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह आदि ग्रन्थों से अनेक श्लोक उद्धृत हैं। आचार्य कुन्दकुन्द के पञ्चास्तिकाय से 'सत्ता सव्वपयत्था' इत्यादि गाथा की संस्कृत छाया उद्धृत है। तत्त्वार्थसूत्र से अनेक सूत्र उद्धृत हैं। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक से भी अनेक श्लोकों को उद्धृत किया गया है।

अष्टसहस्री में अनेक दार्शनिकों का नामोल्लेख करके उनके सिद्धान्तों

की आलोचना की गयी है। उनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं–

तदेतदना लोभितामिधानं मण्डनमिश्रस्य। एतेनैतदपि प्रत्याख्यातं यदुक्तं धर्मकीर्तिना। यदाह धर्मकीर्तिः इति धर्मकीर्तिदूषणम्। ततोविवक्षारूढ एवार्थो वाक्यस्य न पुनर्भावना इति प्रज्ञाकरः। नेदं प्रज्ञाकर वचश्चारुः। यदप्यवादि प्रज्ञाकरेण। तदेतदपि प्रज्ञाकरापराध विजृम्भितं प्रज्ञाकरस्य। इति कश्चित् सोऽप्यप्रज्ञाकर एव। इति प्रज्ञाकरमतमपास्तम्।

इस प्रकार अनेक ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के सिद्धान्तों का उल्लेख अष्टसहस्री में उपलब्ध होता है। यही कारण है कि अष्टसहस्री के अध्ययन से स्वसमय और परसमय का बोध सरलतापूर्वक हो सकता है।

अष्टसहस्री का प्रतिपाद्य विषय

अष्टसहस्री में 10 परिच्छेद हैं और इनमें आप्तमीमांसा की 114 कारिकाओं की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

प्रथमपरिच्छेद—इस परिच्छेद में 23 कारिकाओं की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। सर्वप्रथम देवागमन आदि, निःस्वेदत्व आदि अन्तरंग अतिशय, गन्धोदकवृष्टि आदि, बहिरंग अतिशय तथा तीर्थकरत्व आदि उन विशेषताओं की मीमांसा की गयी है जिनके कारण कोई अपने को आप्त मान सकता है। इसके बाद यह सिद्ध किया गया है कि किसी पुरुष में दोष और आवरणों की सम्पूर्ण हानि हो जाती है। सामान्य से सर्वज्ञ को सिद्ध करके पुनः युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्त्व हेतु से अर्हन्त में निर्दोषत्व और आप्तत्व सिद्ध किया गया है। इसके बाद यह बतलाया गया है कि एकान्तवादियों के यहाँ पुण्य-पाप कर्म, परलोक आदि कुछ नहीं बन सकता है। भावैकान्त मानने पर प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव का निषेध हो जायेगा और ऐसा होने पर कार्यद्रव्य में अनादिता, अनन्तता, सर्वात्मकता और अचेतन में चेतनता का तथा चेतन में अचेतनता का प्रसंग प्राप्त होगा। वस्तु न तो सर्वथा भावरूप है और न सर्वथा अभावरूप है। उसे सर्वथा अवाच्य रूप भी नहीं कहा जा सकता। अस्तित्व नास्तित्व का अविनाभावी है और नास्तित्व अस्तित्व का अविनाभावी है तथा अस्तित्व-नास्तित्व रूप वस्तु ही शब्द का विषय होती है। विधि और निषेध से रहित वस्तु अर्थक्रिया भी नहीं कर सकती है। स्याद्वादन्याय में अपेक्षा विशेष से वस्तु को कथंचित् सत्, असत्, उभय, अवाच्य, सदवाच्य, असदवाच्य और सदसदवाच्य सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार एकत्व-अनेकत्वआदि

धर्मों में भी सप्तभंगी की प्रक्रिया की योजना की गयी है।

द्वितीय परिच्छेद—इस परिच्छेद में 24 से 36 तक 13 कारिकाओं की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। सर्वप्रथम यह बतलाया गया है कि वस्तु को सर्वथा एक मानने पर कारकभेद, क्रियाभेद, पुण्य-पापरूप कर्मद्वैत, सुख-दु:खरूप फलद्वैत, इहलोक-परलोकरूप लोकद्वैत यह सब नहीं बन सकेगा। हेतु से अद्वैत की सिद्धि मानने पर हेतु और साध्य का द्वैत विद्या और अविद्या का द्वैत तथा बन्ध और मोक्ष का द्वैत हो जायेगा। और हेतु के बिना अद्वैत की सिद्धि मानने पर वचनमात्र से ही सब की इष्टसिद्धि हो जायेगी। इसके बाद सर्वथा भेदैकान्तवादी वैशेषिकों के मत की समालोचना की गयी है। तदनन्तर बौद्धों के निरन्वय क्षणिकवाद की समालोचना करते हुए यह बतलाया गया है कि अनेक क्षणों में एकत्व के न मानने पर सन्तान, समुदाय, साधर्म्य और प्रेत्यभाव नहीं बन सकते हैं। इसी प्रकार बौद्धों के अन्यापोहवाद का निराकरण युक्तिपूर्वक किया गया है। शब्दों का वाच्य न केवल सामान्य है और न विशेष किन्तु सामान्य विशेषात्मक वस्तु ही शब्द का वाच्य होती है। भेद और अभेद दोनों वास्तविक हैं, काल्पनिक नहीं, क्योंकि वे प्रमाण के विषय होते हैं।

तृतीय परिच्छेद—इस परिच्छेद में 37 से 60 तक 24 कारिकाओं की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। सर्वप्रथम सांख्यदर्शन के नित्यत्वैकान्त की समालोचना में कहा गया है कि सर्वथा नित्यपक्ष में कारकों का अभाव होने से किसी भी प्रकार की विक्रिया नहीं बन सकती है। प्रमाण तथा प्रमाण का फल भी नहीं बन सकते हैं। यहाँ सांख्यों के सत्कार्यवाद का निराकरण युक्तिपूर्वक किया गया है। इसी प्रकार बौद्धों के असत्कार्यवाद का निराकरण भी प्रमाणपूर्वक किया गया है। यदि कार्य सर्वथा असत् है तो आकाशपुष्प के समान वह उत्पन्न नहीं हो सकता है, और कार्य की उत्पत्ति में कोई विश्वास भी नहीं किया जा सकता है। क्षणिकैकान्त पक्ष में भी प्रेत्यभाव आदि का असंभव है। इस पक्ष में कृतनाश और अकृतागम का प्रसंग प्राप्त होता है। नाश को निर्हेतुक मानने में दोष, संवृतिरूप स्कन्धसन्तति में स्थिति आदि का निषेध, तत्त्व की अवाच्यता का निराकरण, एक ही वस्तु में नित्यत्व और क्षणिकत्व की निर्दोष व्यवस्था, वस्तु में उत्पादादि त्रय की व्यवस्था आदि विषयों पर यहाँ विस्तृत विचार किया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद—इस परिच्छेद में 61 से 72 तक 12 कारिकाओं

कीव्याख्या की गयी है। पहले वैशेषिकों के भेदैकान्त की समीक्षा करते हुए कहा गया है कि यदि कार्य और कारणों में, गुण और गुणी में तथा सामान्य और विशेष में सर्वथा अन्यत्व है तो एक का अनेकों में रहना संभव नहीं है। क्योंकि एक की अनेकों में वृत्ति न तो एक देश से बन सकती है और न सर्वदेश से। अवयव और अवयवी में सर्वथा भेद मानने पर उनमें देशभेद और कालभेद भी मानना पडेगा। तब उनमें अभिन्नदेशता कैसे बन सकेगी। अवयव-अवयवी आदि में समवाय का निषेध, नित्य, व्यापक और एक सामान्य तथा समवाय का निराकरण किया गया है। तदनन्तर सांख्य के अनन्यतैकान्त की आलोचना करते हुए कहा गया है कि यदि कार्य और कारण सर्वथा अनन्य हैं तो उनमें से एक का ही अस्तित्व रहेगा। विरोध आने के कारण कार्य-कारण आदि में सर्वथा भेद और सर्वथा अभेद नहीं माना जा सकता है। यहाँ भेद और अभेद के विषय में सप्तभंगी प्रक्रिया बतलायी गयी है।

पञ्चम परिच्छेद—इस परिच्छेद में 73 से 75 तक तीन कारिकाओं की व्याख्या की गयी है। इसमें वस्तुतत्त्व की सर्वथा आपेक्षिक सिद्धि और सर्वथा अनापेक्षिक सिद्धि मानने की समीक्षा की गयी है। यदि धर्म और धर्मी आदि की आपेक्षित सिद्धि मानी जाये तो दोनों की ही व्यवस्था नहीं बन सकती है। और अनापेक्षिक सिद्धि मानने पर उनमें सामान्यविशेषभाव नहीं बनता है। वास्तव में धर्म और धर्मी का अविनाभाव ही एक दूसरे की अपेक्षा से सिद्ध होता है, स्वरूप नहीं। स्वरूप तो कारकाङ्ग और ज्ञापकाङ्ग की तरह स्वतः सिद्ध है।

षष्ठ परिच्छेद— इस परिच्छेद में 76 से 78 तक तीन कारिकाओं की व्याख्या की गयी है। पहले यह बतलाया गया है कि हेतु से सब वस्तुओं की सर्वज्ञा सिद्धि मानने पर प्रत्यक्षादि अन्य प्रमाणों से उनका ज्ञान नहीं हो सकेगा और सर्वथा सिद्धि मानने पर प्रत्यक्षादि अन्य प्रमाणों से उनका ज्ञान नहीं हो सकेगा और आगम की सर्वथा सिद्धि मानने पर परस्पर विरुद्ध मतों की भी सिद्धि हो जायेगी। यथार्थ बात यह है कि जहाँ वक्ता आप्त न हो वहाँ हेतु से साध्य की सिद्धि होती है और जहाँ वक्ता आप्त हो वहाँ आगम से वस्तु की सिद्धि होती है। इस परिच्छिेद के अन्त में मीमांसकाभिमत वेदापौरुषेयत्व का निराकरण किया गया है।

सप्तम परिच्छेद— इस परिच्छिेद में 79 से 87 तक 9 कारिकाओं की

व्याख्या की गयी है। इसमें अन्तरंगार्थैकान्त (ज्ञानाद्वैत) और बाह्यार्थैकान्त की समीक्षा करते हुए कहा गया है कि यदि सर्वथा ज्ञानमात्र ही तत्त्व है तो सभी बुद्धियाँ (अनुमान) और वचन (आगम) मिथ्या हो जायेंगे। अनेक दोष आने के कारण अनुमान से भी विज्ञप्तिमात्र तत्त्व को सिद्ध नहीं किया जा सकता है। केवल बाह्यार्थ की सत्ता मानने पर प्रमाणाभास का लोप हो जायेगा। और ऐसा होने से प्रत्यक्षादि विरुद्ध अर्थ का प्रतिपादन करने वाले सभी लोगों के मतों की सिद्धि हो जायेगी। इस परिच्छेद के अन्त में जीव तत्त्व की सिद्धि की गयी है। संज्ञा होने से जीव शब्द बाह्यार्थ सहित है। प्रत्येक अर्थ की तीन संज्ञाए होतीं हैं—बुद्धिसंज्ञा, शब्दसंज्ञा और अर्थसंज्ञा। तथा ये तीनों संज्ञाएं बुद्धि, शब्द, और अर्थ की वाचक होती हैं। बुद्धि और शब्द में प्रमाणता बाह्य अर्थ के होने पर होतीं है और बाह्य अर्थ के अभाव में उनमें अप्रमाणता होती है।

अष्टम परिच्छेद—इस परिच्छेद में ८८ से 91 तक चार कारिकाओं की व्याख्या की गयी है। इसमें दैव और पुरुषार्थ के विषय में विचार किया गया है। यदि दैव से ही अर्थ की सिद्धि मानी जाय तो दैव की सिद्धि पौरुष से कैसे होगी। और दैव से ही दैव की निष्पत्ति मानने पर मोक्ष का अभाव हो जायेगा। यदि पुरुषार्थ से ही अर्थ की सिद्धि मानी जाय तो पुरुषार्थ दैव से कैसे होगा। और यदि पुरुषार्थरूप कार्य की सिद्धि भी पौरुष से ही मानी जाये तो सब पुरुषों में पुरुषार्थ को सफल होना चाहिये। अन्त में दैव और पुरुषार्थ का समन्वय करते हुए बतलाया गया है कि जहाँ इष्ट और अनिष्ट वस्तुओं की प्राप्ति बुद्धि के व्यापार के बिना होती है वहाँ उनकी प्राप्ति दैव से मानना चाहिए। और जहाँ उनकी प्राप्ति बुद्धि के व्यापारपूर्वक होती है वहाँ उनकी प्राप्ति पुरुषार्थ से मानना चाहिए।

नवम परिच्छेद—इस परिच्छेद में 92 से 95 तक चार कारिकाओं की व्याख्या की गयी है। इसमें पुण्य और पाप का बन्ध के विषय में विचार किया गया है। पहले यह बतलाया गया है कि यदि पर को दुःख देने से पाप का बन्ध और सुख देने से पुण्य का बन्ध माना जाय तो अचेतन पदार्थ और कषाय रहित जीव भी पर के सुख-दुःख में निमित्त होने से बन्ध को प्राप्त होंगे। यदि अपने को दुःख देने से पुण्य का बन्ध और सुख देने से पाप का बन्ध माना जाये तो वीतराग तथा विद्वान् मुनि भी अपने सुख-दुःख में निमित्त

होने से बन्ध को प्राप्त होंगे। अन्त में पुण्यबन्ध और पापबन्ध के कारणों का समन्वय करते हुए कहा गया है कि यदि स्व तथा पर में होने वाला सुख और दुःख विशुद्धि और संक्लेश का अंग है तो वह क्रमशः पुण्यबन्ध और पापबन्ध का कारण होता है और यदि वह विशुद्धि और संक्लेश दोनों में से किसी का भी अंग नहीं है तो वह बन्ध का कारण नहीं होता है।

दशम परिच्छेद--इस परिच्छेद में 96 से 114 तक 19 कारिकाओं की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। यहाँ सर्वप्रथम बन्ध और मोक्ष के कारण के विषय में विचार किया गया है। यदि अज्ञान से बन्ध का होना माना जाये तो ज्ञेयों की अनन्तता के कारण कोई भी केवली नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार यदि अल्पज्ञान से मोक्ष माना जाये तो बहुत अज्ञान के कारण बन्ध होता ही रहेगा और मोक्ष कभी नहीं हो सकेगा। तदनन्तर स्याद्वादन्याय के अनुसार बन्ध और मोक्ष के कारण की व्यवस्था बतलाते हुए कहा गया है कि मोहसहित अज्ञान से बन्ध होता है, मोह रहित अज्ञान से नहीं। इसी प्रकार मोहरहित अल्पज्ञान से मोक्ष संभव है, किन्तु मोह सहित ज्ञान से मोक्ष नहीं होता है। इसके बाद प्रमाण के भेद बतलाकर उनका फल बतलाया गया है। तदनन्तर स्याद्वाद का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है कि स्यात् शब्द एक धर्म का वाचक होता हुआ अन्य अनेक धर्मों का द्योतक होता है। स्याद्वाद सात भंगों और नयों की अपेक्षा लिए हुए होता है। निरपेक्ष नय मिथ्या होते हैं और सापेक्षनय अर्थक्रियाकारी होते हैं। एकान्तों को मिथ्या होने पर भी सापेक्ष एकान्तों का समूह अनेकान्त मिथ्या नहीं है। स्याद्वाद, और केवल ज्ञान दोनों सर्वतत्त्व प्रकाशक हैं। उनमें अन्तर यही है कि केवलज्ञान साक्षात् सर्वतत्त्वों का प्रकाशक है और स्याद्वाद परोक्षरूप से उनका प्रकाशक है। इस प्रकार इस परिच्छेद में स्याद्वाद की सम्यक् स्थिति का प्रतिपादन किया गया है और स्याद्वाद और संस्थिति ही आचार्य समन्तभद्र और आचार्य विद्यानन्द का मुख्य प्रयोजन है।

इस प्रकार यहाँ अष्टसहस्री के दश परिच्छेदों में प्रतिपादित विषयों का संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है।

वाराणसी **उदयचन्द जैन**

अणुव्रत और महाव्रत : आज के संदर्भ में

विज्ञान की प्रगति और तकनीकी विकास के कारण भौतिक दृष्टि से आज का जीवन अधिक सुविधापूर्ण, खानपान और रहन-सहन के तौर-तरीकों में अधिक सुखी प्रतीत होता है, पर गहराई से देखने में लगता है कि मानसिक रूप से व्यक्ति अधिक दुखी, कुंठित और तनावग्रस्त है। परिवार और समाज में जो स्नेह, सद्‌भाव और शांतिपूर्ण वातावरण अभीष्ट है, वैसा लक्षित नहीं होता। वैर-विरोध, कलह-क्लेश, ईर्ष्या-द्वेष, शंका-संदेह के कारण जैसा विश्वास, मैत्री-भाव और वात्सल्य होना चाहिए, उसका प्रायः अभाव है। राष्ट्रीय स्तर पर क्षेत्रीयता, प्रान्तीयता, संकीर्णता और स्वार्थपरता का बोलबाला है। सत्ता, सम्पत्ति, पद-प्रभुता के लिये संघर्ष और प्रतिद्वन्द्वता है, आपाधापी और छीनाझपटी है। अस्थिरता, बिखराव और तोड़फोड़ की प्रवृत्ति हर क्षेत्र में सक्रिय है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर द्रुतगामी यातायात और संचार-साधनों के विकास के कारण राष्ट्र परस्पर जुड़ से गये हैं। समयगत और स्थानगत दूरी कम हुई है, पर वैचारिक मतभेद के कारण शीतयुद्ध बराबर चलते रहते हैं। शांति-सम्मेलनों के मंच से विश्व-बंधुत्व, मानवीय एकता और परस्पर स्नेह-संबंधों की बात अवश्य कही जाती है, पर भीतर ही भीतर ईर्ष्या-द्वेष और अविश्वास की आग बराबर धधकती रहती है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान के विकास के कारण जैसा सुन्दर सुख-सुविधापूर्ण, समृद्धिदायक, स्वास्थ्यप्रद वातावरण बनना चाहिए, वैसा संवेदना के स्तर पर, अनुभूति के स्तर पर आज दिखाई नहीं देता।

यह सही है कि सभ्यता का रथ बहुत आगे बढ़ा है पर मनुष्य के मन की जो पाशविक वृत्तियाँ हैं, वैयक्तिक स्तर पर उनमें कभी कमी नहीं आई है। पहले जिन कारणों से क्षेत्र विशेष में जैसे युद्ध होते थे, वैसे आज नहीं होते, पर आज युद्ध अधिक सूक्ष्म बन गये हैं। अब वे द्वन्द्व युद्ध के रूप में सीमित क्षेत्र में नहीं लड़े जाते और न उनका प्रभाव युद्ध से संबंधित देश-काल

तक सीमित रहता है। पूर्व की भांति हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील जैसी दुष्प्रवृत्तियां भले ही स्थूल रूप में कम दिखाई देतीं हों पर ये सूक्ष्म बनकर अशुभ विचारों के रूप में संपूर्ण मानवता को, उसके सांस्कृतिक परिवेश को प्रदूषित किये हुए हैं। बाहरी तौर पर लगता है कि सामूहिक नैतिकता का ग्राफ काफी ऊंचा चढ़ गया है, क्योंकि सभा-स्थलों से, समाज-संगठनों से, राजनैतिक अधिवेशनों से, अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से सहयोग, सद्भाव, एकता, विश्व-शांति आदि की बातें की जातीं हैं, उनसे संबंधित प्रस्ताव पारित किये जाते हैं, रासायनिक हथियारों को कम करने तथा प्रतिबन्धित करने के निर्णय लिये जाते हैं; पर वैयक्तिक स्तर पर व्यक्ति के जीवन में कथनी और करनी का अन्तर बढ़ा है। वह पहले की अपेक्षा अधिक स्वार्थकेन्द्रित, संकीर्ण और संदेहशील बना है पूर्वापेक्षा वह अधिक बेचैन, उग्र, व्यग्र और अशान्त है।

शास्त्रों में कहा गया है कि मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभ है पर आज मानव संख्या अनियंत्रित है। बढ़ती हुई जनसंख्या के विस्फोट से बड़े-बड़े अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री चिन्तित हैं। मनुष्य आकृति से मानव भले ही हो पर प्रकृति से वह मानव नहीं लगता। मानव के साथ पशुता का अंश जुड़ा हुआ है। यह पशुता ही उसे मानवता का बोध नहीं करने देती। पशुता को वैज्ञानिक यंत्रों से, तकनीकी प्रगति से नहीं काटा जा सकता। सुख-सुविधाएं बढ़ाकर, धन-सम्पत्ति का संग्रह कर, मानव की आकृति को सजाया-संवारा जा सकता है पर उसकी प्रकृति में आन्तरिक रूपान्तरण नहीं लाया जा सकता। मनुष्य और पशु में मूल अन्तर बुद्धि और विवेक का है। इन्द्रियों के विषय-सेवन के क्षेत्रों में विज्ञान के द्वारा वृद्धि की जा सकती है, इन्द्रियों की शक्ति को वैज्ञानिक उपकरणों से बढ़ाया जा सकता है, शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श के नये-नये रूप आविष्कृत किये जा सकते हैं पर इनकी तृप्ति मानसिक चेतना पर निर्भर है यह चेतना जागतिक पदार्थों से परिष्कृत नहीं हो सकती। इसके परिष्कार के लिए मन का प्रशिक्षण और आत्मा का जागरण आवश्यक है। मानसिक संयम और आत्म-जागृति में व्रत-निष्ठा, व्रत-शक्ति और व्रत-विधान का बड़ा महत्व है।

वर्तमान युग की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि आज हमारे जीवन, समाज और राष्ट्र के केन्द्र में वित्त प्रधान बन गया है। वित्त-लिप्सा ने व्रत-निष्ठा को निर्वासित कर दिया है। व्रत कहीं दिखाई देता है, सुना जाता है तो

धार्मिक अनुष्ठानों और क्रियाकाण्डों के क्षेत्र में ही और वह भी बहुत ही स्थूल रूप में ऊपरी सतह पर। व्रत की मूल अवधारणा और उसकी प्रभावक शक्ति से आज का व्यक्ति परिचित नहीं है।

व्रत मानवीय ऊर्जा और क्षमता का प्रतीक है। जीवन में जो अशुभ है, कर्म में जो अनिष्टकारी है, व्यवहार में जो निषिद्ध है, उससे हटना, दूर रहना व्रत है। इसी दृष्टि से 'विरतिर्व्रतम्' कहा गया है अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह से विरत होना व्रत है। यह व्रत का निषेधात्मक पक्ष है। व्रत का विधेयात्मक पक्ष है अहिंसा, सत्य, अस्तेय, संयम और अपरिग्रह का अपनी शक्ति अनुसार संकल्पबद्ध होकर, प्रतिज्ञा लेकर नियम लेना और विवेकपूर्वक यथाशक्ति उनका पालन करना। इस प्रकार के व्रत-धारण में भौतिक लाभ की आकांक्षा नहीं रहती, क्षुद्र स्वार्थपूर्ति का लक्ष्य नहीं रहता। मुख्य लक्ष्य रहता है-अपनी सुषुप्त आत्म-शक्ति का विकास करना, अपनी आत्मा से अपनी आत्मा में प्रवृत्त होना, संकल्प-विकल्पों से ऊपर उठकर ज्ञान-दर्शन रूप स्वभाव में रमण करना, विषय-कषाय से उपरत होकर क्षमता भाव में प्रतिष्ठित होना। दूसरे शब्दों में जीवन-समुद्र में ऊपरी सतह के आलोडन-विलोड़न, आंधी-तूफान, गर्जन-तर्जन से विरत होकर अन्तस् की गहराई में पैठना, समुद्र की मर्यादा और प्रशान्त स्थिति से जुड़ना, आत्म-मंथन कर यथार्थ का बोध करना, सच्चे अमृत-तत्त्व की प्राप्ति करना।

ऐसी व्रतनिष्ठा और व्रत-धारण के लिए सम्यक् दृष्टि, सम्यक् चिन्तन और सम्यक् श्रद्धान् की आवश्यकता है। तथाकथित विज्ञान ने जो दृष्टि दी है उससे जागतिक पदार्थों से संबंधित अज्ञान का आवरण तो हटा है पर आत्म-ज्ञान के श्रद्धान् की वृत्ति बाधित हुई है। विज्ञान से मानव-मन की जो आकांक्षा बढ़ी है, उसने उपभोक्ता संस्कृति को जन्म दिया है। जिसमें इस बात पर अधिक बल है कि आवश्यकताएं बढ़ाई जाएँ और नित्य नई-नई आवश्यकताएं पैदा की जाएँ। इच्छाओं की मांग के अनुरूप पूर्ति के साधन जुटाना, यही सभ्यता का लक्षण है और वैज्ञानिक अनुसंधान का उद्देश्य भी। दूसरे शब्दों में उपभोक्ता संस्कृति ने व्रत के स्थान पर वासना को, त्याग के स्थान पर भोग को, संवेदना के स्थान पर उत्तेजना को, हार्दिकता के स्थान पर यांत्रिकता को अधिक महत्त्व दिया है। परिणामस्वरूप जीवन-सागर का मंथन कर आनन्द की, अमृत की प्राप्ति के लिये जिस प्रशम गुण की

आवश्यकता है, वह आज जीवन में नहीं सा है। प्रशान्तता का स्थान प्रचण्डता ने ले लिया है। मन, वचन, कर्म क्षमा से न जुड़कर क्रोध से जुड़ते हैं, विनय से न जुड़कर अहम् से जुड़ते हैं, सरलता से न जुड़कर वक्रता से जुड़ते हैं, संतोष से न जुड़कर लोभ से जुड़ते हैं, सरलता से न जुड़कर वक्रता से जुड़ते हैं, परिणाम स्वरूप जिस आत्मीयता, करूणा और प्रमोद भावना का विकास होना चाहिए, वह नहीं हो पाता। उसके स्थान पर आक्रोश, विक्षोभ और द्वन्द्व पनपता रहता है। अपने से अतिरिक्त जो जीवन-सृष्टि है, उसके प्रति अनुराग का भाव विकसित नहीं हो पाता, उसके सुख-दुख में व्यक्ति हाथ नहीं बटा पाता, उससे अनुकम्पित नहीं हो पाता। जीवन के प्रति आस्थावान नहीं रह पाता। बुद्धि स्थिर नहीं रह पाती, वह भोग के विभिन्न स्तरों में भटकती रहती है, उसे विवेक का आधार नहीं मिल पाता। दूसरे शब्दों में शम, संवेद, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था जैसे भाव चेतना के साथ जुड़ नहीं पाते और इनके अभाव में ज्ञान, प्रेम में नहीं बदल पाता, दर्शन आत्मस्वरूप का निरीक्षण नहीं कर पाता, चारित्र चित्त का अंग नहीं बन पाता। चित्त की वृत्ति प्रमाद में भटकती रहती है, व्यसन-विकारग्रस्त होकर जड़ और मूर्च्छित बनी रहती है। इन सबके दबाव से व्रतनिष्ठा और व्रत-धारणा कुंठित हो जाती है। व्रत-धारणा और व्रत-ग्रहण के लिये दृष्टि का सम्यक् होना आवश्यक है। दृष्टि सम्यक् तभी हो पाती है जब चेतना के मूल स्वभाव की पहचान हो। यह पहचान जीवन की सात्विकता, चित्त की निर्मलता, निशल्यता, वत्सलता और सत्यानुभूति पर निर्भर है। पर दुःख की बात है कि आज व्यक्ति बाहर से सरल दिखकर भी भीतर से वक्र है, बाहर से तरल दिखकर भी भीतर से शुष्क है। जब तक श्रद्धा, संयम, विनय, दया, शील, धैर्य जैसे गुणों का अंकुरण नहीं होता, तब तक व्रत की ओर कदम नहीं बढ़ाया जा सकता। व्रत की ओर कदम बढ़ाने के लिए हमें अशुभ से शुभ में प्रवृत्त होना होगा, विवेक को जागृत करना होगा, उपभोग के स्थान पर उपयोग दृष्टि को प्रतिष्ठित करना होगा।

जो भी पशुता से ऊपर उठा है, व्रत-नियम ग्रहण करके, उनकी पालना करके ही। व्रत दीपक की तरह है, जिसके द्वारा व्याप्त अंधकार को छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। साधना की दृष्टि से व्रत के दो प्रकार हैं—अणुव्रत और महाव्रत। अणुव्रत में "अणु" शब्द अल्पता का, छोटेपन का, स्थूलता का सूचक

है। सांसारिक प्राणी, घर-गृहस्थी में रहने वाला सामाजिक प्राणी सब प्रकार के दुष्कर्मों से विरत नहीं हो सकता। इसलिए शास्त्रों में सद्‌गृहस्थों के लिए अणुव्रत की व्यवस्था की गई है। ये अणुव्रत पाँच प्रकार के माने गये हैं—अहिंसा- णुव्रत, सत्याणुव्रत, अस्तेयाणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रह-परिमाण व्रत (इच्छा परिमाणव्रत)।

जीवन में और समाज में अपने दायित्वों को निभाते हुए भी दुष्कर्मों से बचने के लिये अणुव्रत धारण किये जाते हैं। इन्हें धारण करते समय यह संकल्प किया जाता है कि मैं स्थूल हिंसा, स्थूल झूठ, स्थूल चोरी, स्थूल कुशील और स्थूल परिग्रह से बचूंगा। मन, वचन और काय से इन्हें न करूंगा और न दूसरों को प्रेरित कर ऐसा कराऊंगा। शास्त्रीय शब्दावली में इसे दो करण, तीन योग से प्रतिज्ञाबद्ध होना कहा जाता है। करना, कराना और अनुमोदन करना करण कहलाता है तथा मन, वचन और काया की प्रवृत्ति को योग कहा गया है। अणुव्रत में करण की छूट रहती है। किसी भी व्रत को व्रतधारी अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार एक या दो करण से ग्रहण कर सकता है।

महाव्रत महान् व्रत है। तीर्थंकर आदि महापुरुषों ने राग-द्वेष से मुक्त होने के लिए, जन्म-मरण के बन्धन से छूटने के लिऐ, मोक्ष-प्राप्ति के लिए जिन व्रतों को धारण किया है, वे महाव्रत हैं। ये भी पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन्हें तीन करण, तीन योग से धारण किया जाता है। महाव्रतधारी को श्रमण या साधु कहा गया है। इन्हें "अनगार" भी कहा गया है। क्योंकि इनका घर नहीं होता। ये संसार से सर्वथा विरत होते हैं। महाव्रतधारी को स्थूल, झूठ आदि की छूट नहीं होती। महाव्रत धारण करने वाले को पांचों महाव्रत धारण करने होते हैं। किन्हीं एक दो महाव्रतों का चयन कर वह उन्हें ग्रहण नहीं करता, संपूर्ण रूप से वह अहिंसा, सत्य आदि महाव्रतों को धारण कर पूर्ण सजगता के साथ उनकी परिपालना करता है। एक भी महाव्रत किसी भी रूप में खण्डित होने पर उसकी साधना दूषित हो जाती है। इसीलिए महाव्रत को अखण्ड मोती की उपमा दी हुई है। मोती का मूल्य तभी तक है, जब तक उसमें आब अर्थात् चमक बनी रहती है। चमक के गायब होते ही मोती दो कौड़ी का नहीं रहता। पर अणुव्रत की उपमा सोने की सिल्ली से दी गई है। अपने पास जितना रुपया-पैसा है, उससे जितना सोना आये, उतना खरीदा जा सकता है। इसी प्रकार अणुव्रतधारी

अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार किसी भी एक व्रत को धारण कर सकता है एक करण, तीन योग से भी और दो करण, तीन योग से भी। अणुव्रत की साधना में निरन्तर आगे बढ़ते हुए वह महाव्रती बन सकता है। आगार से अनगार और श्रावक से श्रमण बन सकता है। महाव्रत-धारण आध्यात्मिक साधना का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है पर अणुव्रत की धारणा किसी भी देश-काल में रहने वाले नागरिक का आदर्श है। महाव्रत में पापों से पूर्णतः बचा जाता है, अणुव्रत में अंशतः। महाव्रत सर्वविरति व्रत है, अणुव्रत देशविरति व्रत है।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ अहिंसा आदि जो मूल पांच अणुव्रत हैं, जिन्हें महर्षि पतंजलि ने "यम" कहा है, बौद्ध धर्म में जो 'पंचशील' भी कहे गये हैं, उनके स्वरूप में युगानुरूप परिवर्तन आता रहा है। कृषि प्रधान युग में हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह आदि के अलग मानदण्ड रहे होंगे पर आज जब हम औद्योगिक क्रांति के बाद अन्तरिक्ष युग में प्रवेश कर गये हैं तो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि के रूप अत्यधिक सूक्ष्म और बारीक हो गये हैं। अतः अणुव्रतों की परिपालना में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। इन व्रतों के जो अतिचार हैं, जिनसे बचने के लिए व्रतधारी को बराबर सावधान किया गया है, उनकी वर्तमान संदर्भ में नई व्याख्या अभीष्ट है। अहिंसा अणुव्रत में बंधन, वध, अतिभार, अन्न-पानी का विछोह का जो संकेत है उसे व्यापक अर्थ में लेना होगा। हम किसी की स्वतंत्रता में बाधा न डालें, मानसिक और वाचिक रूप से किसी को कष्ट न पहुंचाये, समाज में ऐसे नियम न बनायें, जो सामान्य व्यक्ति के लिए भारभूत हों, ऐसी व्यवस्था का समर्थन न करें, जिसमें किसी की रोटी-रोजी या खान-पान छिनता हो। आज चारों ओर क्रूरता और संवेदनहीनता दिखाई देती है। अहिंसा-अणुव्रती को अहिंसा का जो विधायक रूप है—प्रेम, मैत्री, सेवा, उसे बढ़ावा देना चाहिए, सर्वहितकारी समाज-सेवाओं में सक्रिय भागीदारी निभानी चाहिए। मांसाहार के खिलाफ आंदोलन छेड़कर सात्विक आहार-विहार के रूप में शाकाहार का प्रचार करना चाहिए। आहार-विहार में सात्विकता, रात्रि-भोज के त्याग की नियमबद्धता और सप्त व्यसनों के त्याग की अनिवार्यता बनी रहे, इस ओर विशेष प्रयत्न अपेक्षित है। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि को जैन तीर्थंकरों ने सजीव बताया है। इनके उपयोग में विवेक बना रहे, आवश्यकताओं के अनुरूप इनका दोहन हो, दोहन के स्थान पर शोषण न

हो, प्राकृतिक संतुलन बना रहे, ताकि पर्यावरण-प्रदूषण का संकट न आये। इस दृष्टि से अहिंसा अणुव्रत आज के संदर्भ में विशेष उपयोगी और प्रासंगिक है।

सत्याणुव्रत में वचनशुद्धि, विश्वसनीयता और प्रामाणिकता को महत्त्व दिया गया है। आज वाणी का संयम कम देखा जाता है। झूठे आश्वासनों का बाजार गर्म है। झूठे शपथ पत्र, झूठे दस्तावेज, झूठे विज्ञापन प्रायः देखने-सुनने में आते हैं। इससे व्यक्ति की साख गिरती है और समाज में संदेह का वातावरण बनता चलता है। जनतंत्र में प्रायः राजनैतिक पार्टियाँ और नेता झूठे आश्वासन देते रहते हैं। वायदे करते रहते हैं। इससे पूरे राष्ट्र का चरित्र कलंकित होता है। सत्य ईश्वर कहा गया है। सत्य का साक्षात्कार ही महापुरुषों ने जीवन का लक्ष्य माना है। यदि यह सत्य खण्डित होता है तो इससे हमारा पूरा व्यक्तित्व खण्डित होता है। अतः सत्यव्रतधारी को चाहिए कि वह विचारपूर्वक बोले, किसी पर मिथ्या दोषारोपण न करे, किसी के मर्म को प्रकट न करे और व्यर्थ न बोले। "बातें कम काम ज्यादा" को व्यवहार में लाये।

अचौर्याणुव्रत आज के संदर्भ में अत्यन्त उपयोगी है। आज का व्यक्ति अर्थ प्रधान हो गया है। येन-केन-प्रकारेण धन एकत्र करना उसने अपना लक्ष्य बना लिया है। अधिकांश कानूनों की परिपालना नहीं होती, व्यावसायिक क्षेत्र में पग-पग पर अनैतिकता और तस्कर वृत्ति देखी जाती है। चोरी शब्द अत्यन्त व्यापक है। स्वयं चोरी न करे पर यदि चोर को सहायता दे, चुराई हुई वस्तु खरीदे, राजकीय नियमों के विरुद्ध आदान-प्रदान करे, लेन-देन में झूठा तोल या माप करे, असली वस्तु दिखाकर नकली वस्तु बेचे, यह सब चोरी है। अचौर्यव्रत के पालन से समाज में नैतिकता का विकास होता है। श्रम के महत्व की प्रतिष्ठा होती है और स्वावलम्बन का भाव जागता है।

ब्रह्मचर्याणुव्रत शारीरिक और आत्मिक शक्ति के संचय और वृद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ केवल वीर्य-रक्षा ही नहीं है। आत्मिक शक्ति के संचय-संवर्द्धन के लिए की जाने वाली प्रत्येक प्रवृत्ति ब्रह्मचर्य से संबंधित है। इसीलिए शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य को सभी तपों में श्रेष्ठ तप कहा है। आज ब्रह्मचर्य का तेज युवापीढ़ी में देखने को नहीं मिलता। भोग-विलास के साधन इस स्तर से बढ़ गये हैं कि व्यक्ति अपनी वीर्य-शक्ति

की रक्षा नहीं कर पाता। अश्लील नृत्य, अश्लील गायन, अश्लील साहित्य का पठन-पाठन, अश्लील विज्ञापनों का प्रदर्शन योजनाबद्ध तरीके से आज परिवार और समाज में इस प्रकार छा रहा है कि हम शरीर से स्वस्थ लगते हुए भी मन से रुग्ण और निराश बनते जा रहे हैं। उपभोक्ता संस्कृति ने कामवृत्ति को अधिक जागृत कर दिया है। भोगलिप्सा इतनी बढ़ गई है कि उससे व्यक्ति मानसिक रूप से दुर्बल बन गया है। दुख, द्वन्द्व और तनाव इतना अधिक है कि सब प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाओं के होते हुए भी व्यक्ति भीतर से एकाकी है, रिक्त है, अपने आत्म-विश्वास को खो बैठा है, स्वाधीन भाव लुप्त हो गया है। पर पदार्थों को भोगने की वृत्ति ने उसे पराधीन बना दिया है। भोग का दुःख नारकीय यंत्रणा से कम नहीं नरक के जो सात स्तर बताये गये हैं—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, महातमाप्रभा; ये सब ब्रह्मचर्य के अभाव में भोगवृत्ति के अतिरेक से उत्पन्न मानसिक अवस्थाएँ ही हैं, जिनमें व्यक्ति प्रारम्भ में रत्न की तरह चकाचौंध से आकर्षित होता है पर धीरे-धीरे भोग के जाल में वह फंसता जाता है। कीचड़ की तरह वह फंस जाता है। चाहने पर भी निकल नहीं पाता, उसकी दृष्टि धुंधला जाती है और वह टैन्शन के अंधकार से डिप्रेशन के महांधकार में डूबता चला जाता है। जब तक उपभोग दृष्टि उपयोग दृष्टि नहीं बनती, भोग के स्थान पर संयम और त्याग का भाव जागृत नहीं होता, तब तक वह शान्त और सुखी नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य का मर्यादापूर्वक पालन करने वाला व्यक्ति ही अपनी अधोमुखी चेतना को उर्ध्वगामी बना सकता है। उर्ध्वगामी चेतना संयम और त्याग की प्रतीक है। सुधर्म, सहस्रार, अच्युत आदि देवलोक, भद्र, सुभद्र, सुजात, सुमानष, सुदर्शन, प्रियदर्शन, अमोह, सुप्रतिष्ठित और यशोधर रूप नाम के अनुरूप ग्रैवेयक, विजय, वैजयन्त, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि रूप अनुत्तर विमान अपने ऊर्ध्वचेतन अवस्था के प्रतीक हैं। सुधर्म से लेकर अपनी सभी मनोकामनाएँ सिद्ध करने की स्थिति रूप सर्वार्थसिद्धि अवस्था उत्तरोत्तर संयम-यात्रा की ही प्रतीक है।

परिग्रह परिमाण व्रतधारी बाहरी और आन्तरिक परिग्रह की मर्यादा करता है। परिग्रह-संचय के मूल में कामना निहित रहती है। इसीलिए इस व्रत को इच्छा परिमाण व्रत भी कहा गया है। वर्तमान संदर्भ में वैज्ञानिक प्रभाव के कारण व्यक्ति ने अपनी इच्छाओं को ही आवश्यकता समझ लिया है और

येन-केन-प्रकारेण उनकी पूर्ति में वह व्यग्र बना रहता है। इच्छा का स्वभाव है कि एक की पूर्ति होते ही दूसरी इच्छा तुरन्त जन्म ले लेती है। उत्पत्ति और पूर्ति का यह दुश्चक्र निरन्तर चलता रहता है। इच्छा-पूर्ति में जो सुख दिखाई देता है, वह वस्तुतः सुख नहीं, सुखाभास होता है। यह सुख इन्द्रियाश्रित होता है जो धीरे-धीरे नीरसता में दुःख में बदल जाता है। दुःख रहित सुःख की प्राप्ति इच्छा-पूर्ति में नहीं, इच्छा के अभाव में है। निष्काम होने में है। अतः परिग्रह परिमाण व्रतधारी को यह प्रयत्न करना चाहिए कि वह अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण करे, अपनी जीवन-पद्धति को सादा और सरल बनाये, विषय-कषायवर्द्धक पदार्थों और परिस्थितियों से बचे, इच्छाओं को मर्यादित करते हुए धन-धान्य, स्वर्ण-रजत, चल-अचल, सम्पत्ति, पशुधन, जड़धन आदि की मर्यादा बांधे और प्राप्त सम्पत्ति का दूसरों के हित में, जन-कल्याणकारी प्रवृत्तियों में उपयोग करने का लक्ष्य रखे। अर्जन का विसर्जन करे और अपने अर्जन के साधनों को शुद्ध और प्रामाणिक बनाये रखे। ऐसे व्यवसाय न करे, जिससे निरपराध जीवों की हिंसा होती हो। यथा-जंगल में आग लगाना, वृक्षों को काटना, तालाबों को सुखाना, नशीले पदार्थों को बेचना, शराब का ठेका लेना, असामाजिक तत्वों को प्रश्रय देना आदि। इस व्रत के धारण से समाज में बढ़ती हुई शोषण, अपहरण, तस्कर आदि प्रवृत्तियाँ रुकती हैं और स्वावलम्बन, श्रम, आत्म-निर्भरता को प्रश्रय मिलता है।

व्यक्ति जिन व्रतों को धारण करे, उनकी पूर्ण सजगता और ईमानदारी के साथ रक्षा भी करे। आज जो व्रत धारण किये जाते हैं, उनकी दिशा उल्टी है। आतंकवाद और उग्रवाद के नाम पर, संकीर्ण प्रान्तीयता और राष्ट्रीयता के नाम पर, साम्प्रदायिकता के नाम पर, दलबन्दी के नाम पर, धार्मिक कट्टरता के नाम पर भी लोग प्रतिज्ञा लेते हैं। पर उस प्रतिज्ञा में जीवन-रूपान्तरण का लक्ष्य नहीं होता। वहाँ लक्ष्य होता है-स्वार्थसिद्धि, अनैतिक तरीकों से धन प्राप्त करना, दूसरों को डराना, धमकाना, आतंकित और भयभीत करना। अणुव्रत और महाव्रत धारण करने वाला व्यक्ति भोग के लिये नहीं त्याग के लिए, परिग्रह बढ़ाने के लिये नहीं इन्द्रिय-संयम के लिए, इन्हें धारण करता है और इसीलिए इन व्रतों के सम्यक् रूपेण परिपालन के लिए वह सजग और सावधान रहता है। व्रत धारण करते समय वह किसी दबाव में नहीं आता।

स्वेच्छा से, अन्तःस्फुरणा से गुरू साक्षी में सार्वजनिक रूप से वह उन्हें धारण करता है और जब कभी व्रत भंग होने का अवसर आता है तो वह शुद्ध हृदय से प्रायश्चित्त करता है, आत्मालोचन कर उन परिस्थितियों को दूर करने का प्रयत्न करता है, जिनके कारणों से व्रत भंग होने का खतरा पैदा हुआ है। अपने अन्तर में पैठकर वह व्रतों के अतिचारों की आलोचना करता है। स्वतः या गुरू से दण्ड लेता है, प्रायश्चित्त करता है और पुनः व्रत धारण कर सजगकता के साथ उनकी पालना के लिए कटिबद्ध होता है। व्रत भंग कर वह उल्लसित नहीं होता, अपने आपको प्रतिष्ठित अनुभव नहीं करता, जैसा कि आज के तथाकथित व्यक्ति कानून भंग कर अपने को सामान्य व्यक्ति से ऊँचा और श्रेष्ठ समझने लगते हैं। पर वह व्रतधारी व्रत भंग कर भीतर ही भीतर दुःखी होता है, पीड़ित होता है, अपने को दोषी समझने लगता है और उस दोष से मुक्त होने के लिये, व्रत की रक्षा के लिये पुनः तैयारी करता है।

व्रत भंग न हो, उसकी परिपालना बराबर होती रहे, इसके लिए मन में शुभ भावनाओं का चिन्तन निरन्तर चलता रहना चाहिए। मुझे अपनी आत्मा जैसी प्रिय है, वैसी ही अन्य जीवों को अपनी आत्मा प्रिय है, ऐसा सोचकर प्राणिमात्र के प्रति मन में मैत्रीभाव का चिन्तन करना चाहिए। दूसरों के गुणों को देखकर मन में प्रमोद भाव लाना चाहिए। दूसरों को कष्ट में देखकर उसे दूर करने के लिए करुणा लाकर सहयोग करना, सुख-दुःख में, लाभ-हानि में, यश-अपयश में विचलित न होकर समता-संतुलन और माध्यस्थ भाव का चिन्तन करना चाहिए। संसार परिवर्तनशील है। प्रत्येक द्रव्य और पदार्थ उत्पाद-व्यय और ध्रुव युक्त हैं। पर्याय बदलते रहते हैं पर उसमें जो गुण है, वह स्थायी है। इसी प्रकार शरीर के जो संबंध हैं, वे परिवर्तनगामी हैं, पर आत्मा अजर-अमर है। उसके गुणधर्म स्थायी हैं, उनका निरन्तर विकास हो, इसका चिन्तन व्यक्ति को अनासक्त, निर्द्वन्द्व और निष्काम बनाता है। इससे अशुभ से शुभ भावों में, भोग से त्याग में प्रवृत्ति होती है।

अणुव्रतों की पुष्टि और रक्षा के लिये गुणव्रतों और शिक्षाव्रतों का विधान किया गया है। अहिंसा, सत्य आदि अणुव्रत निरन्तर पुष्ट होते चलें, इसके लिए आवश्यक है कि गमनागमन के लिए क्षेत्र, दिशा आदि की मर्यादा निश्चित की जाए, उपभोग-परिभोग में आने वाली सामग्री निश्चित की जाए,

निष्प्रयोजन होने वाली हिंसा को रोका जाए, यही गुणव्रत है। जीवन में आयी विषमता और विचलन को रोकने के लिए समभाव की साधना आवश्यक है। दैनन्दिन प्रवृत्तियाँ मन को चंचल बनाती हैं अतः आवश्यक है कि प्रतिदिन उपयोग में आने वाले पदार्थों को नियंत्रित किया जाए। आत्मगुणों का पोषण हो, इसके लिये इन्द्रियों का संयमन किया जाए और जो कुछ अपने पास है, उसका उपयोग दूसरों के लिए हो, ऐसी प्रवृत्ति की जाए, ताकि मोह और आसक्ति को छोड़ने का अभ्यास बना रहे, यही शिक्षाव्रत है। अणुव्रतधारी गुणव्रत और शिक्षाव्रतों को धारण करके प्रतिमाधारी बन जाता है, जिसे हम "व्रत प्रतिमा" कह सकते हैं अर्थात् व्रत को केवल उसने रस्मी तौर पर नहीं धारण किया है, बल्कि अपने जीवन में उनका परिपालन कर स्वयं व्रत का प्रतीक बन गया है, व्रत की प्रतिमा बन गया हैं। ऐसा व्यक्ति ही आज के संदर्भ में आदर्श नागरिक है, विश्व-नागरिक है, विश्व मानवता का सच्चा प्रतिनिधि है, मानव देह में देवता है।

जयपुर

डॉ० नरेन्द्र भानावत

श्रावक और उसके पञ्च अणुव्रतों का जीवन में महत्त्व

जैन संस्कृति में आचरण का विशिष्ट स्थान है। आचरण वह दर्पण है जिसके आलोक में व्यक्ति के निर्मल भावों का स्पष्ट निदर्शन होता है, वीतरागता के पथ पर चलकर ही वह अपने परम परमार्थ अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। उसके बिना भावों में निर्विकारता नहीं आ सकती। उसके अभाव में ध्यान या उपयोग में तन्मयत्व स्थापित नहीं हो सकता और ध्यान के बिना मुक्ति असंभव है। साधना के साधकों की अपेक्षा जैनधर्म को दो भागों में विभक्त किया गया है —(1) श्रमण या मुनिधर्म, (2) श्रावक धर्म। मुनिधर्म के पालयिता पूर्ण महाव्रतधारी होते हैं या साक्षात् निर्विकारता के प्रतीक होते हैं तथा श्रावक धर्म के पालनकर्ता उस निर्विकारता की प्राप्ति हेतु निरन्तर अभ्यास करने वाले होते हैं। श्रमण और श्रावक दोनों ही 'परस्परोपग्रहो जीवानां' सूत्र को चरितार्थ करते हैं अर्थात् दोनों ही एक दूसरे का उपकार करते हैं। श्रावक मुनियों को आहार दान आदि के द्वारा उनकी संयम साधना की वृद्धि करने में सहायक बनते हैं और मुनि श्रावकों को धर्मोपदेश द्वारा अज्ञानता के मार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर चलने हेतु प्रेरणा प्रदान करते हैं।

जैन आचार शास्त्र में व्रतधारी गृहस्थ श्रावक, अणुव्रती, देशविरत, सागार आदि नामों से जाना जाता है। दूसरे शब्दों में सद्गृहस्थ का ही अपरनाम श्रावक है जिसका अपभ्रंश शब्द अनेक जगह 'सरावजी' प्रचलित हो गया है। श्रावक शब्द का अर्थ है सुनने वाला अर्थात् जो अपने निर्ग्रन्थ गुरु से आत्मकल्याण का उपदेश सुने 'शृणोतिइति श्रावकः'। श्रावक का सामान्य स्वरूप सागारधर्मामृत ग्रन्थ में पण्डितप्रवर 'श्री आशाधर' जी ने लिखा है—

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् सद्गीस्त्रिवर्ग भजन्।
अन्योन्यानुगुणं तदर्हगृहिणी स्थानालयो ह्रीमयः।।
युक्ताहार विहार आर्यसमितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी।
शृण्वन् धर्मनिधिं दयालुरघभीः सागारधर्मं चरेत्।।

जो न्यायपूर्वक धन उपार्जन करता हो, अपने गुरुओं की पूजा उपासना करता हो, सत्य बोलता हो, धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थों का अविरुद्ध सेवन करता हो, अपने योग्य स्त्री, मुहल्ला, घर वाला हो, योग्य आहार करने वाला हो, सज्जन पुरुषों की संगति करता हो, बुद्धिमान् हो, कृतज्ञ हो, इन्द्रिय विजयी हो, धर्मोपदेश को सुनता हो, पापों से भयभीत हो, दयालुचित्त हो ऐसा पुरुष श्रावक धर्म का आचरण करता है।

श्रावकाचार से सम्बन्धित ग्रन्थों में उपासक धर्म का प्रतिपादन तीन प्रकार से किया गया है। (i) बारह व्रतों के आधार पर (ii) ग्यारह प्रतिमाओं के आधार पर (iii) पक्षचर्या अथवा निष्ठा एवं साधन के आधार पर। आचार्य जिनसेन ने महापुराण के 38, 39, 40वें पर्व में श्रावक धर्म का विशद वर्णन किया है। उन्होंने पक्ष, चर्या और साधन रूप से श्रावक धर्म के तीन भेद किए हैं। इस त्रिविध धर्म को धारण करने वाले श्रावक क्रम से पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक कहे गये हैं।

मोक्षशास्त्र में व्रती को परिभाषित करते हुए लिखा गया है "निश्शल्यो व्रती" अर्थात् जो शल्य रहित है वह व्रती है। उसके दो भेद बतलाये गये हैं—"आगार्यनगारश्च" (मोक्षशास्त्र 7-19) अर्थात् अगारी और अनगार। अगारी वह है जिसके घर है तथा जिसके नहीं है वह अनगार है। अणुव्रतों का धारी अगारी है। आचार्य उमास्वामी जी के उपर्युक्त सूत्रों से स्पष्ट है कि श्रावक भी अनवरत रूप से अपनी साधना में संलग्न रहता है। जिस प्रकार से स्नातकोत्तर कक्षा तक पहुँचने के लिए प्राथमिक, माध्यमिक, स्नातक कक्षा का अध्ययन आवश्यक है उसी प्रकार पूर्ण निवृत्ति के लिए प्रारम्भ से त्याग का बीजारोपण आवश्यक है। श्रावक सांसारिक प्रतिकूलताओं के वातावरण में भी धार्मिक क्रियाओं के प्रति सावधान रहता है और यही गृहस्थ जीवन की साधना उसे पूर्ण वीतरागी बनने में सहायक बनती है। जैनधर्म की श्रावक चर्या का विधान प्रत्येक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। ये उसकी आचारगत विशेषतायें आधुनिक जीवन में नियंत्रक का कार्य कर उच्छृंखलता की प्रवृत्तियों से रोकती हैं। आत्मानुशासन की प्रेरणा देकर व्यक्ति के जीवन को मर्यादित बनातीं हैं तथा सम्पूर्ण मानव जीवन को समता के सूत्र में बांधने की अद्भुत क्षमता रखतीं हैं। पर्यावरण प्रदूषण तथा स्वास्थ्य की रक्षा में तो श्रावकाचार का विशेष ही महत्त्व है। पहले जब व्यक्ति संयमित जीवन व्यतीत करते थे, तब वे उतने

शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से ग्रसित नहीं थे, परन्तु जब हमने आचारगत मर्यादाओं का उल्लंघन कर स्वेच्छाचारिता के वशीभूत होकर आचरण प्रारम्भ कर दिया, तो वर्तमान में बड़ी विषमतायें उत्पन्न हो गयीं। पहले व्यक्ति व्रत, नियमों के कारण स्वयं संयमित था आज चिकित्सकों के द्वारा तरह-तरह से प्रतिबन्धित होकर जबर्दस्ती संयमी बनना पड़ रहा है। लेकिन जबर्दस्ती के त्याग से हमें भावों की अपेक्षा विशेष लाभ नहीं होता। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार में लिखा है—

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो सो मुणेदव्वो।।

अर्थात् जिस समय जो आत्मा जिस भाव रूप से परिणमन करता है उस समय वह आत्मा उसी रूप से है। इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके ही हम आत्मा का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। उपनिषदों में कहा गया है—'त्यागपूर्वक उपभोग करो। किसी भी वस्तु में आसक्ति का भाव नहीं होना चाहिए।' आज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मिलावट, दिखावट एवं सजावट की चकाचौंध में व्यक्ति अपने शाश्वत मूल्य, जो अनुभव की कसौटी पर परीक्षित होने के कारण सार्वभौमिक सत्यता को लिए हुए हैं, उन सबसे बहुत दूर भाग रहा है। जिसके कारण वह अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक तनावों से युक्त हो रहा है। हम दूसरों को धोखा दे सकते हैं परन्तु अपने आपको नहीं, क्योंकि स्वयं के द्वारा किए गए अपराध से व्यक्ति सशंकित रहता है जिसके कारण वह निश्चिन्त नहीं रह पाता। सावधानीपूर्वक या निरालस्य- भाव से क्रिया करने पर हमें दोष नहीं लगता।

श्रावक दृढ़ आस्था के साथ सम्यग्दर्शन को स्वीकार करके अपनी शक्ति के अनुसार गृहस्थ धर्म के प्रयोजक बारह व्रतों को धारण करता है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' नामक ग्रंथ में लिखा है—"रागद्वेषनिवृत्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः" अर्थात् राग-द्वेष की निवृत्ति के लिए भव्यजीव चारित्र को प्राप्त होता है। सम्यग्ज्ञानी जीव का पाप की प्रणाली स्वरूप हिंसा, झूठ, चोरी कुशील तथा परिग्रह से निवृत्ति होना चारित्र कहा जाता है। वह चारित्र दो प्रकार से कहा गया है—

"सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंग विरतानाम्।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससंगानाम्।।

अर्थात् वह चारित्र सकल, विकल चारित्र के भेद से दो प्रकार का है। सकल चारित्र समस्त परिग्रहों से रहित मुनियों के और विकल चारित्र या एक देश चारित्र परिग्रह युक्त गृहस्थों के होता है।

श्रावक के 12 व्रतों का जीवन और जगत की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। वे व्रत हैं—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। यदि इन व्रतों का हम जीवन में सही ढंग से पालन करें तो बहुत ही सुखद आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। जैनाचार्यों ने श्रावक के पांच अणुव्रतों तथा उनके पालन-कर्ताओं को जिन दोषों से सावधान रहने हेतु प्रेरित किया है उनको यदि व्यक्ति जीवन में स्थान दें तो आज अनेकानेक राष्ट्रीय समस्याओं का स्वतः ही निराकरण हो सकता है। संक्षिप्त रूप से पञ्च अणुव्रतों की विश्व समुदाय के लिए क्या उपादेयता है उसका वर्णन निम्न प्रकार से है—

1. **अहिंसाणुव्रत** : जो तीनों योगों के कृत, कारित, अनुमोदना रूप संकल्प से त्रस जीवों को नहीं मारता है उसे हिंसादि पापों के त्याग रूप व्रत के विचार करने में समर्थ मनुष्य स्थूल हिंसा का त्याग अर्थात् अहिंसाणुव्रत कहते हैं।

संकल्प शक्ति का जीवन में बहुत महत्त्व है क्योंकि इस आधार पर ही हम अच्छे और बुरे कार्य में संलग्न होते हैं। जिस क्षण जीव ने मन में विचार किया उस समय से ही उस कार्य को करने की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो जाती है। कार्य का जैसा उद्देश्य होता है उसके लिए अनुकूल साधनों को जुटाता है। अच्छे कार्यों के संकल्प करने वाले व्यक्ति की चित्तवृत्ति में निरन्तर सुख, शान्ति की प्राप्ति होती रहती है तथा बुरे या पापमय कार्यों के बारे में सोच रहे व्यक्ति के मन में निरन्तर अशान्ति या उद्विग्नता बनी रहती है। इस कारण से संकल्प का शुभ होना आवश्यक है। हिंसा चार प्रकार की मानी गयी है—संकल्पी, आरम्भी, उद्यमी और विरोधी। इन चार प्रकार की हिंसाओं में अहिंसाणुव्रती जीव मात्र संकल्पी हिंसा का त्याग कर पाता है, शेष तीन हिंसाओं का नहीं और वह भी मात्र त्रस जीवों की हिंसा का। मनुष्यों के प्रति तो जैनधर्म में अहिंसा का वर्णन किया गया है ही, पशु-पक्षियों के प्रति भी करुणाभाव रखने के प्रति सजग किया गया है। अहिंसाणुव्रत के अतिचारों का वर्णन करते हुए लिखा है कि छेदना, बांधना, पीड़ा देना, अधिक भार लादना और आहार का रोकना अथवा आहार बचाकर रखना ये पांच अतिचार हैं।

यहाँ पर नीति के उस श्लोक के साथ विशेष संबंध जुड़ा हुआ है 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" अर्थात् अपने लिए जो प्रतिकूल

बातें लगतीं हैं उनका प्रयोग हम दूसरों पर भी न करें। यहाँ तक कि प्राणिमात्र के प्रति भी वही भावना रखनी चाहिए। जिस प्रकार हमें यदि खाने के लिए उचित मात्रा में आहार प्राप्त नहीं होता है, कोई कटु वचनों को बोलता है तो बुरा लगता है उसी प्रकार का आचरण हम दूसरे पर करके उसे दुःखमय न बनायें। ऐसी भावना मन में जागृत हो जाने से सम्पूर्ण विश्व में शान्ति एवं समता का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। आज एक राष्ट्र दूसरे की प्रभुसत्ता के प्रति आदर की भावना नहीं रखता सभी अपने आपको उच्च मानकर दूसरे राष्ट्रों को नीचा दिखाने हेतु प्रयासरत रहते हैं। यदि हम उसके उत्थान में योगदान नहीं दे सकते तो कम से कम उसकी प्रगति में बाधक न बनें, इस प्रकार की भावना ही समस्त राष्ट्रों के बीच सेतु बनकर जोड़ सकती है। इस प्रकार अहिंसाणुव्रत की भावना लोगों को सन्मार्ग प्रशस्त कराने हेतु उपयोगी है।

2. **सत्याणुव्रत** : जो स्थूल असत्य को नहीं बोलता है, न दूसरों से बुलवाता है और ऐसा सत्य भी नहीं बोलता है, न दूसरों से बुलवाता है जो दूसरे के प्राणघात के लिए हो उसे सत्पुरुष स्थूल असत्य का त्याग अर्थात् सत्याणुव्रत कहते है।

यदि सत्य वचनों का व्यवहार सामान्य जीवन में हो जाये तो छल-कपट का व्यवहार समाज से समाप्त होकर विश्वास का वातावरण बन सकता है। आज यथार्थ से हटकर हम लोगों को धोखा देने में सफल तो हो सकते हैं परन्तु धोखा वाले व्यक्ति का मन सदैव सशंकित रहता है कि कहीं मेरे असत्य का भण्डाफोड़ न हो जाये। एक असत्य को छिपाने के लिये अनेकों असत्यों को बोलना पड़ता है और अन्ततः असत्य एक न एक दिन प्रगट होता है। जिसके कारण इस लोक में भी दुर्गति का पात्र उसे बनना पड़ता है, तथा परलोक में भी। सत्याणुव्रत के मिथ्या उपदेश, रहोभ्याख्यान, कूट लेख लिखना, धरोहर को हड़प जाना, इशारों से कोई बात करना ये अतीचार कहे गये हैं। आचार्यों ने इन दोषों से सावधान कर व्यक्ति को सामाजिक बुराइयों से दूर रहने का निर्देश दिया है। कई लोग दो आदमियों के अच्छे सम्बन्धों के बीच नारदवृत्ति के द्वारा इधर-उधर की बातों को कहकर आपस में मतभेद स्थापित करा देते हैं। दूसरे लोगों को धोखा देकर उसका धन हड़पने की बात सोचते हैं। यदि इस व्रत का यथार्थ रूप से परिपालन किया जाये तो समाज में अनेकों लोगों के हृदयों में विशेष स्थान बनाया जा सकता है।

3. अचौर्याणुव्रत : रखे हुए, पड़े हुए अथवा भूले हुए, बिना दिये हुए दूसरे के धन को न स्वयं लेता है और न किसी दूसरे को देता है, वह स्थूल स्तेय का परित्याग अर्थात् अचौर्याणुव्रत है।

अचौर्याणुव्रत के अतीचारों की चर्चा करते हुए जैनाचार्यों ने जो वर्णन किया है उससे उनकी सूक्ष्म से सूक्ष्म विश्लेषण शक्ति का अद्‌भुत परिचय प्राप्त होता है। इस अणुव्रत का धारक चोरी करने वाले चोर के लिए स्वयं प्रेरित करता है, दूसरे से प्रेरणा दिलवाता है और किसी ने उसकी प्रेरणा दी हो तो उसकी अनुमोदना करता हो तो यह चोर-प्रयोग दोष है। किसी चोर के द्वारा चुराकर लाई गयी वस्तु को ग्रहण करता है तो यह चौरार्थादान दोष है। उचित न्याय को छोड़कर अन्य प्रकार के पदार्थ का ग्रहण करना विलोप कहलाता है, इसे ही विरुद्ध राज्यातिक्रम कहते हैं। जिस राज्य के साथ अपने राज्य का व्यापारिक सम्बन्ध निषिद्ध है उसे विरुद्ध राज्य कहते हैं। विरुद्ध राज्य में महगी वस्तुयें स्वल्प मूल्य में मिलतीं हैं, ऐसा मानकर वहाँ स्वल्प मूल्य में वस्तुओं को खरीदना और तस्कर व्यापार के द्वारा अपने राज्य में लाकर अधिक मूल्य में बेचना विरुद्ध राज्यातिक्रम नाम का दोष है। यदि इस प्रकार के दोष को समझकर व्यक्ति इस व्रत को धारण करता है तो तस्करी आदि को रोकने के लिए सरकार को जो करोड़ों रुपये व्यय करने पड़ते हैं वह जबर्दस्त समस्या स्वतः ही हल हो सकती है। आजकल जगह-जगह वस्तुओं में मिलावट चल रही है इस प्रकार के दोष को सदृश सन्मिश्र दोष कहा है। समान रूप रंग वाली नकली वस्तु, असली वस्तु में मिलावट असली वस्तु के भाव से बेचना, जैसे घी को तेल आदि से मिश्रित करना कृत्रिम बनावटी सोना-चांदी के द्वारा धोखा देते हुए व्यापार करना सदृश सन्मिश्र दोष है। आज के समय में मिलावट होती है फलस्वरूप हजारों लोग रोग ग्रस्त हो जाते हैं। यहाँ तक कि दवाइयों में मिलावट के कारण प्राण भी गंवाने पड़ जाते हैं। यदि इस दोष को दृष्टिगत रखें तो समाज में व्यापार के क्षेत्र में स्वस्थ नैतिक वातावरण स्थापित हो सकता है। एक अन्य दोष है हीनाधिक विनिमान। जिनसे वस्तुओं का विनिमान—आदान-प्रदान, लेन-देन होता है उन्हें विनिमान कहते हैं। इन्ही को मानोन्मान भी कहते हैं। जिसमें भरकर या तौलकर कोई वस्तु ली या दी जाती है उसे मान कहते हैं जैसे प्रस्थ, तराजू आदि और जिससे नापकर कोई वस्तु ली या दी जाती है उसे उन्मान कहते है, जैसे सेंटीमीटर, मीटर आदि। किसी वस्तु को देते समय हीन मान-उन्मान और खरीदते समय अधिक मान-उन्मान का प्रयोग करना

हीनाधिक मानोन्मान दोष है। इस प्रकार के दोषों को दृष्टिगत करते हुए समाज में व्यवहार किया जाये तो परस्पर में आस्था या विश्वास का वातावरण बन सकता है।

4. ब्रह्मचर्याणुव्रत : जो पाप के भय से परस्त्रियों के प्रति न स्वयं गमन करता है और न दूसरों का गमन कराता है वह परस्त्री त्याग अथवा स्वदार सन्तोष नाम का अणुव्रत है। आज समाचार पत्रों में बलात्कार जैसी घृणित घटनाओं के समाचार पढ़ने को मिलते हैं। यदि इस व्रत के प्रति लोगों में आस्था हो जाय तो आज जो समाज में भय का वातावरण व्याप्त है। वह समाप्त हो सकता है।

5. परिग्रह परिमाणाणुव्रत : धन-धान्य आदि परिग्रह का परिमाण कर उससे अधिक में इच्छा रहित होना परिमित परिग्रह अथवा इच्छा परिमाण नाम का अणुव्रत होता है। व्यक्ति की इच्छायें अनन्त होतीं हैं। जैनाचार में स्पष्ट निरूपित किया गया है कि इच्छाओं की वृद्धि में सुख नहीं उनको सीमित करने में ही सुख है। आज जगह-जगह असमानता की दूरी बढ़ रही है गरीब और ज्यादा गरीब हो रहा है और अमीर ज्यादा अमीर। कई व्यक्तियों के पास तन ढकने को कपडे तक नहीं है। कई लोगों के पास इतना धन है कि उन्हें छिपाने की दिन रात चिन्ता लगी हुई है। यदि इस अणुव्रत की भावना मानव में समाविष्ट हो जाये तो उन्हें स्वयं के लिए शान्ति मिल सकती है तथा दूसरों को भी लाभ मिल सकता है। आज पूँजीवादी प्रवृत्तियों के कारण गरीबों की प्रत्येक क्षेत्र में परेशानियां बढ़ रहीं हैं। इसको जीवन का अंग बनाने से समाज में समता का वातावरण बन सकता है।

इस प्रकार इन व्रतों का परिपालन श्रावकों के लिए तो उपयोगी है ही परन्तु समग्र मानव समाज के लिए भी उपयोगी है। उनको इहलोक तथा परलोक दोनों में ही सुख-शान्ति मिल सकती है। रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा गया है कि अतिचार रहित पांच अणुव्रत रूपी निधियाँ उस स्वर्गलोक का फल देतीं हैं जिसमें अवधिज्ञान, अणिमा, महिमा आदि आठ गुण और सात धातुओं से रहित वैक्रियक शरीर प्राप्त होते हैं। नीतिसारसमुच्चय नामक ग्रंथ के श्लोक न. 91 में लिखा है कि सगुण (देशव्रती वा विशिष्ट ज्ञानी) व निर्गुण (अव्रती वा जिसमें ज्ञान की न्यूनता है ऐसा भी) श्रावक सदैव मान्य है, आदरणीय है। उसकी अवज्ञा नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्म की प्रवृत्ति श्रावकों के अधीन है।

पिलानी **डॉ. अशोक कुमार जैन**

हरिवंशपुराण और वृहत्कथा के संदर्भ में

पुन्नाट संघीय (पुन्नाट अथवा पोन्नट कर्णाटक) जिनसेन प्रथम (आदिपुराण के कर्ता मूलसंघीय सेनान्वयी जिनसेन द्वितीय से भिन्न) एक बहुश्रुत विद्वान् थे जिन्होंने कर्णाटक से काठियावाड़ पहुंचकर शक् संवत् 705 (783 ई.) में वर्धमानपुर (बाढवाण) में हरिवंश को लेकर अपनी महत्त्वपूर्ण रचना हरिवंशपुराण समाप्त की। सर्वप्रथम यह रचना 1930-31 में माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रंथमाला से दो भागों में प्रकाशित हुई। तत्पश्चात् पंडित पन्नालाल जैन साहित्याचार्य के हिन्दी अनुवाद, प्रस्तावना एवं परिशिष्ट के साथ भारतीय ज्ञानपीठ काशी द्वारा सन् 1962 में प्रकाश में आई। निस्सन्देह पंडित पन्नालाल जी ने प्रथमानुयोग संबंधी इस कृति का अनुवाद प्रस्तुत कर हिन्दी पाठकों का बड़ा उपकार किया है। किन्तु कहना न होगा कि सांस्कृतिक सामग्री से भरपूर इस अनुपम कृति का आलोचनात्मक अध्ययन अभी शेष है।

वृहत्कथा की सुरक्षितता

यह जान लेना आवश्यक है कि पैशाची प्राकृत में रचित कवि गुणाढ्य की अनुपम कृति बड्ढकहा (बृहत्कथा) की रोमांचक कथा इसमें सुरक्षित है। गुणाढ्य की यह कृति आजकल अनुपलब्ध है। सर्वप्रथम महाकवि दण्डी (660-680 ई.) ने गुणाढ्य की इस कृति के काव्य सौष्ठव की प्रशंसा करते हुए 'भूतभाषामयी' के रूप में इसका उल्लेख कर इसे 'अद्भुतार्थ' रचना कहा है।

संक्षिप्त टिप्पणी—इस लेख के सम्बन्ध में विद्वानों के विचार सादर आमंत्रित हैं।

उद्योतन सूरि (779 ई.) जिनसेन द्वितीय (9वीं शताब्दी ई.) सोमदेवसूरि (951 ई), धनपाल (970ई.) आदि जैन विद्वानों ने इस अनुपम कृति की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। उद्योतन सूरि ने अपनी कुवलयमाला में पादलिप्त, सातवाहन (हाल), षट्पर्णक के साथ गुणाढ्य की बड्डकहा का उल्लेख करते हुए इसे

समस्त कलाओं का वास एवं कविजनों का सच्चा दर्पण कहा है। इसकी उपमा साक्षात् सरस्वती से दी गई है जिसकी रचना कमल पर आसीन ब्रह्मा-स्वरूप कवि गुणाढ्य द्वारा की गई। जिनसेन द्वितीय वृहत्कथा से इतने प्रभावित जान पड़ते हैं कि उन्होंने अपनी अद्वितीय रचना आदिपुराण (महापुराण) को सचमुच की वृहत्कथा ही कह डाला। महाकवि धनपाल के निम्न श्लोक पर ध्यान दीजिये :

सत्यं वृहत्कथाम्भोधेः, बिन्दुमादाय संस्कृतः।
तेनेतरकथा कन्थाः प्रतिभाति तदग्रतः।।

यह सत्य है कि कवियों ने वृहत्कथा रूपी समुद्र की एक बूंद को लेकर अपनी कथायें रचीं किन्तु ये कथायें उसके समक्ष एक फटे हुए चींथड़े की भाँति जान पड़ती हैं।

वृहत्कथा की लोकप्रियता

गाहासत्तसई अथवा गाहाकोस के संग्रहकर्ता आन्ध्रवंशीय प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन, महाराष्ट्र) के शासक, प्राकृत के आसाधारण विद्वान्, कविवत्सल सातवाहन (शालि वाहन) अथवा हाल ने अपने सुप्रसिद्ध संग्रह-ग्रन्थ में पालित्त (पादलिप्त) हरिउड्ढ, पोट्टिस, पवरसेण (सुप्रसिद्ध सेतुबन्ध के कर्ता से भिन्न) आदि सर्वश्रेष्ठ कवि एवं रेवा, ससिप्पहा और रोहा आदि सर्वश्रेष्ठ कवयित्रियों के साथ कवि गुणाढ्य का नामोल्लेख किया है जिनके चुने हुए मुक्तक गाहासत्तसई में संग्रहीत हैं। पादलिप्त की भाँति गुणाढ्य भी सातवाहनवंशी राजा हाल की विद्वत् सभा के एक परम आदरणीय श्रेष्ठ कवि गिने जाते थे—अर्थात् ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के पास वे मौजूद थे।

जैन विद्वान् सदैव अलौकिक असाधारण एवं अद्भुत कथा-कहानियों की खोज में रहते थे जिन्हें अपना कर वे अपने पाठकों एवं श्रोताओं का मनोरंजन कर धर्मोपदेश का वातावरण तैयार कर सकें। इस लोकरंजक प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए संघदासगणि वाचक ने (ईसा की तीसरी-चौथी शताब्दी), अपने वसुदेवहिंडि, जिनसेन प्रथम (783 ई.) ने हरिवंशपुराण, पंडित श्वेताम्बराचार्य महारक के रूप में प्रसिद्ध मलधारि हेमचन्द्र सूरि (1123 ई.) ने भवभावना (वररयण मालिया = श्रेष्ठरत्न माला) तथा 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहे जाने वाले आचार्य हेमचन्द्र ने (1159-1171 ई.) त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित में वृहत्कथा के अलौकिक कथानक को अपने असाधारण काव्य कौशल

से इस वैशिष्ट्य के साथ आत्मसात् कर लिया कि पाठकों को यह जानना कठिन हो गया कि वह कथानक उनका अपना नहीं है। इन कृतियों में कौशांबी के वत्सराज उदयन के सुपुत्र वृहत्कथा के नायक विद्याधर-चक्रवर्ती नरवाहन दत्त की साहसिक रोमांचक घटनाओं को कथानायक कृष्णवासुदेव के जनक वसुदेव के साथ जोड दिया गया है। वसुदेवहिंडि (वसुदेव के भ्रमण की कथा) नाम की यही सार्थकता है। वृहत्कथा कथानक को आंशिक रूप में अपनाने वाले जैन विद्वानों में गुणभद्र (उत्तर पुराण), पुष्पदंत (महापुराण अथवा त्रिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकाहः' प्रोफेसर लुडविग आल्स डोर्फ द्वारा, हाम्बुर्ग (1936 में प्रकाशित), कनकामर (करकंडुचरिउ), हरिषेण (वृहत्कथा कोश), देवेन्द्र गणि (आख्यान मणिकोश), रामचन्द्र मुमुक्षु (पुण्यास्त्रव कथा कोश) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जैनेतर विद्वानों में वृहत्कथा को अपनाने वाले वृहत्कथाश्लोक संग्रह के कर्ता बुधस्वामी, कथासरित्सागर के कर्ता सोमदेव व वृहत्कथा-मंजरी के कर्ता क्षेमेन्द्र आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

इन पंक्तियों के लेखक ने अपनी "द वसुदेवहिंडि—ऐन ऑथेण्टिक जैन वर्ज़न ऑव द वृहत्कथा" (एल. डी. इन्स्टिट्यूट ऑव इंडोलौजी, अहमदाबाद, 1977) में प्रतिपादित किया है कि उपर्युक्त जैन एवं जैनेतर ग्रन्थों में किस रूप में और किन प्रसंगों में गुणाढ्य की वृहत्कथा के कथानक का उपयोग किया गया है। इस दृष्टि से जिनसेन के हरिवंशपुराण का महत्त्व अधिक बढ़ जाता है। संघदास गणि के वसुदेवहिंडि में-जो कि अनेक स्थानों पर त्रुटित एवं स्खलित है—कतिपय प्रसंग ऐसे आते हैं जिनकी पूर्ति के लिये जिनसेन के हरिवंशपुराण एव हेमचन्द्राचार्य के त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टि से भी हरिवंशपुराण जैसी महत्त्वपूर्ण रचना का आलोचनात्मक अध्ययन अनिवार्य है।

हरिवंश की उत्पत्ति

रामायण की भाँति जैन विद्वानों ने महाभारत को भी अपनाया। नन्दिसूत्र में रामायण, महाभारत और अर्थशास्त्र आदि का लौकिक श्रुत के रूप में उल्लेख किया गया है। वसुदेवहिंडि (पृ. 356-58) में हरिवंश कुल की उत्पत्ति का उल्लेख करते हुए अंधगवण्हि के दस पुत्रों के नाम गिनाये हैं जो दसार अथवा दशार्ह के नाम से प्रसिद्ध थे—समुद्दविजय, अक्खोय, थिमिअ, सागर, हिमव, अयल, धरण, पूरण, अभिचन्द और वसुदेव अंधगवण्हि के भ्राता का

नाम था भोजगवष्णि। समुद्रविजय अरिष्टनेमि अथवा नेमिनाथ के पिता थे। जैन परम्परा में समुद्रविजय के पुत्र नेमिनाथ तथा वासुदेव के पुत्र कृष्ण वासुदेव दोनों चचेरे भाई थे। नेमिनाथ यादवों को अत्यन्त प्रिय थे। परंपरा के अनुसार, दोनों भाइयों में युद्ध हुआ जिसमें कृष्ण को पराजित होना पड़ा।

हरिवंश संबंधी इन्हीं सब बातों को लेकर आचार्य जिनसेन ने हरिवंशपुराण-जिसे अरिष्टनेमि पुराण भी कहा गया है—की रचना की। मलधारि हेमचन्द्र सूरि की कृति भवभावना (संसार भावना) में भी नेमिनाथ के चरित की ही प्रधानता है। इस कृति में 532 गाथाओं में 12 भावनाओं का धार्मिक एवं नैतिक कथा-कहानियों के माध्यम से सरस वर्णन किया गया है। यह वर्णन लगभग 670 पृष्ठों में है। ग्रंथ के आरंभ में नेमिनाथ के चरित का 155 पृष्ठों में प्ररूपण किया गया है। इसमें हरिवंश कुलोत्पत्ति, दशार्ह राजा, कंस का वृत्तान्त, वसुदेव का चरित, वसुदेव की पत्नियाँ, कृष्ण का जन्म, नेमिनाथ का चरित आदि विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उल्लेखनीय है कि श्वेतांवरीय परम्परा में हरिवंश कुलोत्पत्ति को दस आश्चर्यों में गिना गया है ये आश्चर्य हैं : 1. भगवान महावीर द्वारा उपसर्गों का सहन किया जाना, 2. महावीर का गर्भहरण, 3 मल्लि का स्त्री-तीर्थंकरत्व, 4. अभव्य-परिषद्, 5. कृष्ण का अमरक का गमन, 6. चन्द्र सूर्य-अवतरण, 7. हरिवंशकुलोत्पत्ति, 8 चमर-उत्पात, 9. अष्टशतसिद्ध, 10 असंयतों की पूजा। विचारणीय है कि महावीर के गर्भहरण एवं मल्लि के स्त्री-तीर्थंकरत्व की भांति हरिवंशकुलोत्पत्ति को आश्चर्यकारी घटनाओं में क्यों गिनाया गया है? क्या इस प्रकार की घटनाओं को लोग असंगत समझते थे? अथवा इस प्रकार की घटनायें पूर्वागत परंपरा के अनुकूल नहीं थीं? इन घटनाओं में हरिवंशकुल की उत्पत्ति को सम्मिलित करने का क्या कारण हो सकता है? क्या उस समय तक हरिवंश कुल को जैन परम्परा में निश्चित स्थान नहीं प्राप्त हो सका था? जो आगे चलकर प्राप्त हुआ।

शलाका पुरुषों का समावेश

आल्सडोर्फ ने वसुदेवहिंडि का ऐतिहासिक मूल्यांकन करते हुए प्रश्न उठाया है कि हरिवंश कुलोत्पन्न कृष्ण एवं त्रेसठ शलाका पुरुषों का जैन परम्परा में कम समावेश क्यों किया गया? क्या हरिवंश कुल की परंपरा पहले से ही मौजूद थी जिसमें गुणाढ्य की वृहत्कथा पर आधारित्त वसुदेवहिंडिगत

शलाकापुरुषों की परंपरा को उसमें बैठा दिया गया? अथवा वृहत्कथा की परंपरा को लेकर उसमें शलाका पुरुषों के आख्यान को सम्मिलित किया गया? उन्होंने पूर्व पक्ष का समर्थन किया है जो उचित जान पड़ता है। प्रोफेसर हरमन याकोबी ने जैन परंपरा में हरिवंशपुराण के समावेश का समय ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी माना है, यद्यपि उनके कथनानुसार ईसा की प्रथम शताब्दी के आरंभ में इस आख्यान को अंतिम रूप प्रदान किया गया, जबकि जैनधर्म कृष्ण की कर्मभूमि सौराष्ट्र में पहुंचा और जैन धर्मानुयायी वहाँ बस गये।

उल्लेखनीय है कि जैन परंपरा में शलाकापुरुषों अथवा उत्तम पुरुषों की संख्या सुनिश्चित नहीं जान पडती। समवायांग (सूत्र 132) में 54 शलाकापुरुषों का उल्लेख है : 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण और 9 बलदेव शीलांक के चउप्पन्न महापुरिस चरिय में भी 54 शलाका पुरुषों का ही निर्देश है। इनमें 9 प्रतिनारायण जोड़ देने से इनकी संख्या 63 हो जाती है। जिनसेन ने हरिवंशपुराण और हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित में इसी संख्या को स्वीकार किया हैं अपभ्रंश के महाकवि पुष्पदंत ने भी शलाकापुरुषों की संख्या यही मानी है। भद्रेश्वर ने अपनी कहावली में इस संख्या में 9 नारदों को सम्मिलित कर शलाकापुरुषों की संख्या 72 तक पहुंचा दी है। वस्तुतः शलाकापुरुषों की 54 संख्या भी विचार करने से कसौटी पर खरी नहीं उतरती। 24 तीर्थंकरों और 12 चक्रवर्तियों को छोड़कर शेष 9 बल देवों, 9 वासुदेवों और 9 प्रतिवासुदेवों का संबंध प्रमुख रूप से वासुदेव कृष्ण पर ही आधारित है। इसके सिवाय शांति, कुंथु और अर के नाम चक्रवर्तियों और तीर्थंकरों दोनों में सम्मिलित किये गये हैं। वसुदेवहिंडि में भी उक्त समस्त तीर्थंकरों, समस्त चक्रवर्तियों, समस्त बलदेवों, समस्त वासुदेवों और समस्त प्रतिवासुदेवों के आख्यानों का प्रतिपादन न कर कुछ ही शलाकापुरुषों को प्रमुखता दी गई है।

श्वेताम्बरीय समवायांग (24), कल्पसूत्र (6-7) और आवश्यक निर्युक्ति (369 आदि) में 24 तीर्थंकरों की नामावलि का उल्लेख मिलता है, यद्यपि विचारणीय है कि व्याख्या प्रज्ञप्ति (20.8.675) में कतिपय नामों में भिन्नता पाई जाती है। मथुरा के शिलालेखों में अर तीर्थंकर का नन्द्यावर्त नाम से उल्लेख किया गया है। 12 चक्रवर्तियों का उल्लेख स्थानांग (10.718),

समवायांग (12) तथा आवश्यक निर्युक्ति (374 आदि) में पाया जाता है। 9 बलदेवों, 9 वासुदेवों और 9 प्रतिवासुदेवों का उल्लेख सर्वप्रथम आवश्यक भाष्य में मिलता है।

वस्तुतः इस संबंध में पूर्वापर आलोचनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है कि जैन परम्परा में शलाका पुरुषों का अन्तर्भाव कब और किन परिस्थितियों में किया गया।

हरिवंश पुराण में अन्य महत्त्वपूर्ण विषयों की चर्चा

(1) लेखक ने अपनी कृति के प्रति शुभकामना व्यक्त करते हुए कहा है कि यह कृति श्री पर्वत की भाँति सुप्रतिष्ठित रहे (66.54)। जान पड़ता है कि उनके समय में तांत्रिकों का बहुत प्रभाव था जो मंत्र-तंत्र एवं विद्या-साधना के लिये श्री पर्वत (आन्ध्र प्रदेश में करनूल जिले में अवस्थित) से जालंधर तक के चक्कर लगाया करते थे। कहारयण कोस (1101 ई.) में गुणचन्द्र गणि ने श्रीपर्वत का उल्लेख किया है।

(2) जैन शास्त्रों के असाधारण विद्वान् होने के साथ वे कवि भी थे। हरिवंशपुराण में महाकाव्य के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी साहित्यिक धरा उनके द्वारा प्रयुक्त विविध अलंकारों एवं छन्दों में देखी जा सकती है। उनके बसंतऋतु, शरदऋतु एवं चन्द्रोदय के वर्णन अद्वितीय हैं। 57वें सर्ग में 183 श्लोकों में भगवान नेमिनाथ के समवसरण का अनुपम वर्णन किया गया है जो अन्यत्र देखने में नहीं आता। 63वें सर्ग में (78-114) बलदेव के घोर तप का वर्णन है। इसी प्रसंग में स्वजनों की तृप्ति के हेतु मृतक कृष्ण को जल प्रदान करने का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त कृष्ण की बालक्रीड़ा, उनके लोकोत्तर पराक्रम, प्रद्युम्न की चेष्टायें, यादवों की जलक्रीड़ा आदि के काव्यमय सुन्दर वर्णनों से यह रचना सुशोभित है जो लेखक की काव्य प्रतिभा पर चार चांद लगाती है।

(3) गंधर्वसेना वर्णन नामक 19वें सर्ग में (141-261) गंधर्वविद्या का विस्तृत वर्णन है जो लेखक के संगीत विद्या के गंभीर अध्ययन का साक्षी है। 20वें सर्ग में विष्णुकुमार मुनि के माहात्म्य का सरस वर्णन है। यहां 'सिद्धान्तगीतिका गानैरुच्चैराकाशचारणैः' (58) श्लोक का अर्थ किया गया है : 'सिद्धांत शास्त्र की गाथाओं को गाने वाले एवं बहुत ऊँचे आकाश में विचरण करने वाले चारण ऋद्धिधारी मुनियों ने'। वस्तुतः यहां लेखक का तात्पर्य 'सिद्धांतगीतिका' (वसुदेवहिंडि में विण्हुगीइया = विष्णुगीतिका) से है जिसे 'ऊँचे स्वर से गाये जाने की ओर लक्ष्य किया गया है।

(4) संजयत्तपुराण वर्णन (सर्ग 27) के प्रसंग में प्रस्तुत हरिवंशपुराण,

वसुदेवहिंडि तथा हरिषेण कृत वृहत्कथा कोश के अन्तर्गत कुछ नामों में परस्पर विभिन्नता पाई जाती है जिनका उल्लेख इन पंक्तियों के लेखक ने अपने 'द रोल ऑव धरणेन्द्र इन जैन माइथोलौजी' (ऑल इंडिया ओरिंटियल कान्फरेन्स, जयपुर-1982) नामक लेख में किया है। पूर्वागत परंपराओं की भिन्नता ही इस विभिन्नता का कारण समझना चाहिए। यहां धरणेन्द्र के संबंध में भी दो भिन्न-भिन्न मान्यताएं देखने में आतीं हैं (अ) वसुदेवहिंडि (पृ. 305, पंक्ति 24-26) के अनुसार धरणेन्द्र इन्द्रपद से च्युत होकर तीर्थंकर पद प्राप्त करेगा जबकि उसकी अल्ला, अक्का आदि अग्रमहिषियां उसकी गणधर होंगीं; (आ) हरिवंशपुराण (27.137-38) तथा वृहत्कथा कोश (78.260) के अनुसार नागराज धरणेन्द्र श्रेयांसनाथ तीर्थंकर के गणधर पद को प्राप्त होगा।

यहां भी परंपराओं की भिन्नता ही कारण समझना चाहिये। आचार्य वीरसेन ने षट्खंडागम (तीसरी पुस्तक) की टीका में कतिपय परस्पर विरोधी मान्यताओं की ओर लक्ष्य किया है।

(5) आचार्य जिनसेन के अनुसार नारद चरमशरीरी (42.22) थे और वे मोक्षगामी (65.24) हुए, यद्यपि दिगंबर मान्यता के अनुसार उन्हें नरकगामी कहा गया है।

(6) दिगंबर संप्रदाय की सामान्य मान्यता के विपरीत हरिवंशपुराण (66.8) में यशोदा-कन्या के साथ 'वीर विवाहमंगल' के उल्लेखपूर्वक महावीर भगवान के विवाह को सूचित किया गया है। ज्ञातव्य है कि श्वेताम्बर परंपरा में भी महावीर भगवान के विवाहित एवं अविवाहित होने संबंधी दोनों मान्यताओं का उल्लेख है (देखिये लेखक का प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. 69 का फुटनोट)

(7) जिनेन्द्र भगवान के नाममात्र से पीडाकारक ग्रहों की शान्ति मानी गई है (66.41)। चक्रधारिणी, अप्रतिचक्र देवता, ऊर्जयन्त (गिरनार) पर्वत पर निवास करने वाली सिंहवाहिनी अंबिका देवी से कल्याणप्रद होने की प्रार्थना की गई है। कर्णाटक में ज्वालामालिनी, पद्मावती, सिद्धायिका आदि देवियों की मान्यता प्रचलित थी। इस मान्यता का प्रभाव रहना आश्चर्यजनक नहीं।

आचार्य जिनसेन की इस विशाल रचना में धर्म एवं नीति संबंधी अन्य कितने ही ऐसे विषय हैं जिनका अधिकारपूर्वक सटीक विवेचन किया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में इस रचना का आलोचनात्मक अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

डॉ. जगदीशचंद्र जैन

भगवान महावीर से चली हुई श्रमण परम्परा

अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के समवसरण में उनके द्वारा दीक्षित चौदह हजार दि. मुनियों का विपुल संघ था। इनमें से सात सौ मुनिवृन्द भगवान के जीवनकाल में ही केवली बन चुके थे और पांच सौ मुनि विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान के धारी थे, जो नियम से केवल ज्ञान को प्राप्त हुए होंगे। आर्यिकाओं और श्रावक-श्राविकाओं की विपुल संख्या थी।

भगवान महावीर के निर्वाण होने के बाद उनके संघ के प्रमुख पट्ट पर श्री गौतम- गणधर स्वामी और उनके बाद श्री सुधर्मा स्वामी और उनके बाद श्री जम्बूस्वामी ये तीनों महामुनि 62 वर्ष के भीतर क्रमशः संघनायक हुए और केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्तिधाम पहुंचे।

इन बासठ वर्षों के बाद जम्बूस्वामी के प्रमुख शिष्य श्री विष्णु श्रुतकेवली संघ नायक हुए और उनके बाद क्रमशः श्री नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु संघ नायक हुए। इन पांचों श्रुतकेवलियों का काल सौ वर्ष का था। इस तरह 162 वर्ष तक यह परम्परा चली। इसके बाद विशाखाचार्य संघ नायक हुए ये दशपूर्वधारी थे और इनके बाद जो शिष्य परंपरा चली उनमें दस आचार्य भी दशपूर्व के धारी हुए जिनका काल 183 वर्ष लिखा गया है।

दशपूर्वधारी धर्मसेनाचार्य के शिष्य क्रमशः पांच हुए जो ग्यारह अंग के पाठी थे। बाद के चार आचार्य कुछ-कुछ अंगों के ज्ञाता थे इनमें द्वितीय भद्रवाहु आचार्य से "मूलसंघ" की परम्परा आगे बढ़ी। इसके बाद जो आचार्य हुए उनमें अंगपूर्व का ज्ञान परिपूर्ण नहीं रहा, क्रमशः हीन होता गया।

जो आचार्य ऊपर लिखी परंपरा में हुए वे ही संघ के अधिनायक होते आये। परंतु जिस संघ के वे अधिनायक थे उस संघ में हमेशा अनेकानेक मुनि थे जो इन पांच सौ पैंसठ वर्षों के भीतर श्रुत केवली, दशपूर्वधारी, ग्यारह अंग के ज्ञाता और कतिचित् अंगों के ज्ञाता हुए होंगे जिनकी संख्या शास्त्रों में अलग से नहीं दी गई है।

मूलसंघ के पट्ट पर द्वितीय भद्रवाहु के शिष्य, अर्हद्वली जिनका दूसरा नाम गुप्तिगुप्त भी था, वि. स. 26 में पट्टाधीश हुए इस प्रकार श्रुतधर आचार्यों की परंपरा चली। जो आचार्य पट्ट पर नहीं बैठे उन सब संघ के मुनियों को अपट्टधर की संज्ञा स्वयं प्राप्त है। उनमें आचार्य माघनंदी के काल में

(अर्हद्‌वली के शिष्य) आचार्य धरसेन हुए जिन्हें अग्रायणी पूर्व का आंशिक ज्ञान था। उन्होंने अपने दो शिष्यों को जिनके नाम भूतबलि और पुष्पदन्त थे, अपना ज्ञान प्रदान किया जिन्होंने षट्‌खंडागम की रचना की और वीरसेनाचार्य ने जिनकी धवला-जय धवला आदि आगम ग्रन्थों की टीकाएं की जिनका हिन्दी अनुवाद हो चुका है। इन ग्रन्थों का स्वाध्याय हो रहा है।

माघनन्दि आचार्य की प्रमुखता में मूलसंघ के अंतर्गत नन्दिसंघ की स्थापना हुई—नन्दिसंघ की पट्टावली में इसके बाद की आचार्य परंपरा वि. सं. 1310 तक दि. जैनाचार्यों की चली आई और उनके अधिनायकत्व में मुनि-आर्यिका-श्रावक श्राविका इस प्रकार चर्तुर्विध संघ की धार्मिक परंपरा विशुद्ध रूप में चली। वि.सं.0 1375 में आचार्य प्रभाचन्द जी के सामने मुगलशासन के समय कुछ ऐसी कठिनाईयां उपस्थित हुई थी कि श्रावकों ने इन प्रभाचन्द्र आचार्य को बादशाह के निमंत्रण पर लंगोटी लगाकर जाने को बाध्य किया। वे इस आशंका से लंगोटी लगाकर गये कि जैन समाज के श्रावकों को इन अत्याचारी शासकों का कोप भाजन न बनना पड़े।

आचार्य प्रभाचन्द को इससे बड़ी आत्मग्लानि हुई और उन्होंने घोषित किया कि मैं मुनि और आचार्य नहीं रहा। अब मुझे और आगे की शिष्य परंपरा को भट्टारक शब्द से ही संबोधित किया जाये। यद्यपि उस काल के बाद भी इस भट्टारक परंपरा में कुछ पट्टाधीश नग्न दिगम्बर भी हुए, परंतु कालांतर में यह परंपरा सवस्त्र हो गई, शिथिलाचार भी क्रमशः बढ़ता गया और दि. जैन मुनि परंपरा का प्रायः लोप सा हो गया। फलतः मूलआम्नाय की विशुद्ध परंपरा छिन्न-भिन्न हो गई। दक्षिण प्रान्त में कहीं-कहीं नग्न दि. मुनि पाये जाते थे। कालांतर में राजस्थान के छाणी ग्राम के श्रावक क्रमशः क्षुल्लक दीक्षा के बाद 2985 में मुनि पद पर आसीन हुए। इन्हीं के समय में श्री 108 मुनि सूर्यसागर जी इनके पास दीक्षित हुए उसी समय मुगांवली (म.प्र.) में इन दोनों का शुभागमन हुआ। जहां तक मुझे स्मरण है एक मुनिराज और भी संघ में थे जिनका नाम याद नहीं आता। ये तीनों साधु शुद्धाम्नायी थे अपने आचार में दृढ़ थे किसी प्रकार का परिग्रह उनके साथ में नहीं था। वे मुंगावली किसी मंदिर या धर्मशाला में नहीं ठहरे किन्तु नगर के बाहर आम्रवन में ठहरे थे। मैंने तीन दिन उनके प्रवचन सुने थे जिनको सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। पश्चात् उसी वर्ष आचार्य श्री शांतिसागर जी (दक्षिण) का कटनी में चौमासा हुआ। इसके बाद मुझे आचार्य शांतिसागर जी छांणी के दर्शन करने का अवसर नहीं आया।

अज्ञात

विश्व शांति और अहिंसा

'जीवो जीवस्य भोजनम्'-प्रत्येक प्राणी दूसरे को खा जाना चाहता है और दूसरे से खाये जाने की आशंका में जीता है। प्रत्येक प्राणी-समूह की यही प्रकृति और नियति प्रतीत होती है। बहुत पहले आदमी भी 'पुच्छ-विषाण हीन पशु' ही था। न जाने कैसे और कब, उसमें बुद्धि और भाषा का विकास हुआ। वह स्वयं सोचने-समझने लगा दूसरों की बात सुनने-समझने लगा, अपनी बात समझाने लगा और इन दोनों को याद भी रखने लगा। इसी 'मतिज्ञान और श्रुतज्ञान' या इसी 'श्रुति और स्मृति' ने इस मानव नामक पशु को मानवता की ओर अग्रसर होने, एक के बाद एक कदम उठाने और आदमी बनने को प्रेरित किया है हिंसा से अहिंसा की ओर एक-एक कदम बढ़ने का नाम ही संस्कृति है।

मनुष्य अपने प्राचीनतम इतिहास के युग में नरमांसाहारी तथा पशु पक्षियों का शिकार करने वाला प्राणी था। मनुष्य ने अहिंसा की दिशा में बहुत बड़ा कदम उठाया जब उसने नरमांसाहार का निषेध किया और पशु-हत्या के बजाय पशु-पालन का धंधा अपनाया तथा अपने भोजन में दूध और दूध से बने पदार्थों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। पर मांसाहार भी पुरानी आदत के कारण न्यूनाधिक रूप में चलता रहा।

संस्कृति की उन्नति की दिशा में बहुत बड़ा कदम तब उठा, जब मानव ने कृषि के विज्ञान को समझा और कृषि की कला का विकास किया। मनुष्य कृषि-खेती से पशु-खेती की ओर बढ़ा। कृषि मानव जाति की भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति की दृष्टि से मनुष्य के लिए अपूर्व वरदान सिद्ध हुई। एक दाने से हजार दानों का उत्पादन, रात-दिन हथेली पर प्राण रखकर दौड़ते-भागते, लड़ते-भिड़ते रहने के बजाय धरती से जुड़ने, घर, गांव बसाने, विश्राम के समय में चर्चा-वार्ता, पढ़ने-पढ़ाने, सीखने-सिखाने आदि का समय और अवसर मिला। कृषि से ही दर्शन और विज्ञान का प्रारम्भ हुआ।

कृषि-संस्कृति की एक बड़ी देन राज्य संस्था का प्रारंभ और विकास

था जो मनुष्य-मनुष्य, परिवार-परिवार और गांव-गांव के बीच आपसी लड़ाई-झगड़े, हत्या, हिंसा, लूटमार, आगजनी आदि हिंसक तौर-तरीकों को रोकने का बड़ा कारगर अहिंसक उपाय सिद्ध हुआ। इसने अन्याय, अतिक्रमण, अत्याचार, हत्या, युद्ध आदि हिंसक पद्धतियों को कानून और न्याय से जोड़ा तथा इन बातों को राजकीय सुरक्षा के दायरे में लाकर उन्हें खत्म कर दिया।

कृषि की क्रांति के बाद दुनियां में धातुओं तथा अग्नि के उपयोग की क्रांति तथा बाद में औद्योगिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के देशों में यूरोपीय राष्ट्रों का साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशी प्रभाव बढ़ा, पर उसके साथ ही राज्यों की सत्ता तथा शक्ति भी बढ़ी। राज्यों में आपस में युद्धों की संख्या और तीव्रता भी बढ़ी, जिसकी परिणति इस शताब्दी के प्रारम्भ में प्रथम विश्व महायुद्ध में हुई, जिसमें लाखों सैनिक मारे गये, लाखों लोगों को हिंसा, लूटमार, अत्याचार और घातक बीमारियों का, अकाल, अभाव और मृत्यु का शिकार होना पड़ा। जैन धर्म द्वारा, प्रतिपादित 'प्रमत्तयोग प्राणव्यपरोणं हिंसा' के अनुसार तो युद्ध हिंसा का सबसे बड़ा और क्रूर साधन है जो मानव जाति के उद्भव से लेकर आज तक उत्तरोत्तर अधिकाधिक हिंसक, अत्याचारी, पीड़ादायी और जीवन के साधनों को नष्ट करने वाला होता गया है। अगर मानव जाति को सुख-समृद्धि पूर्वक जिंदा रहना है तो अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर युंद्ध को गैर कानूनी करार देना होगा। इसके होने पर पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण रखना होगा, और अन्त में इसकी आवश्यकता, औचित्य तथा संभावना को ही खत्म कर देना होगा। आज युद्ध और हिंसा के साधन अणु बम, अणु हथियार, हवाई जहाज और मिसाइल इतने घातक-संहारक हो गये हैं कि अगला विश्वयुद्ध मनुष्य जाति और मानव संस्कृति का ही समूल नाश कर देगा। इसके बाद उस दुनियां में थोड़े बीमार लोग कहीं बचेंगे भी तो वे फिर पाषाणयुग में जीने लगेंगे। अतः सम्पूर्ण युद्ध-निषेध विश्वशांति की दिशा में सबसे आवश्यक महत्त्वपूर्ण और कारगर पहला कदम होगा। दुनियां भर के सारे बड़े धर्म यदि संपूर्ण युद्ध-निषेध का समर्थन करें तो संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा इसे मान्य करने तथा इसे लागू करने में बड़ी मदद मिल सकती है। सिद्धान्ततः सारे धर्म प्रेम, शांति, अहिंसा और करुणा के बहुत बड़े समर्थक रहे हैं। पर कोई भी धर्म युद्ध का पूर्ण विरोधी नहीं रहा, बल्कि वे सब युद्ध के समर्थक ही रहे हैं और उन्होंने युद्ध

में मारे जाने वालों के लिये हमेशा स्वर्ग में स्थान निश्चित करके ही रक्खा है। हिन्दू धर्म का सर्वश्रेष्ठ धर्म-ग्रन्थ श्रीमद्भगवद् गीता तो अर्जुन को महाभारत के सर्वसंहारक युद्ध में भाग लेने को तैयार करने के लिये ही कहा गया। ईसाई धर्म में इस्लामी सेनाओं के साथ युद्धों को बहुत सराहनीय माना गया और सारे युद्धों को पादरियों का समर्थन मिला है। इस्लाम धर्म में विधर्मियों के साथ युद्ध को मुसलमान का धार्मिक कर्तव्य ही मान लिया गया है। जैन धर्म में विरोधी हिंसा के रूप में युद्ध को गृहस्थ के लिए मान्यता ही दी गयी है। हिंसक युद्धों में विजयी चक्रवर्तियों को सम्राट भी माना गया है और उसी जीवन में उनके निर्वाण को भी स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार बौद्ध धर्म को भी लड़ाकू राज्यों का आश्रय तथा समर्थन प्राप्त था और बौद्ध धर्म ने भी राजाओं द्वारा किये गये युद्धों का विरोध नहीं किया। केवल अशोक ने कलिंग युद्ध के पश्चात् युद्ध की हिंसा और बर्बादी से क्षुब्ध होकर युद्ध मात्र का स्वयं परित्याग कर दिया। फिर जीवन भर उन्होंने किसी युद्ध में भाग नहीं लिया। सम्राट् अशोक के इस उदाहरण को दुनियां के सारे धर्मों को मान्यता देनी चाहिये और किसी भी प्रकार के युद्ध को हिंसापूर्ण, गर्हित और अधार्मिक करार दिया जाना चाहिये तथा अपने धर्मानुयायियों को किसी भी प्रकार के युद्ध में शामिल होने पर रोक लगानी चाहिये। इसी प्रकार से सेना में भरती होने, सैनिक हथियार तथा साधन बनाने और बेचने के सब तरह के उद्योग-व्यापार को भी हिंसक और अधार्मिक करार दिया जाना चाहिए। जैन धर्म की भाषा में कहा जाय तो श्रावक तथा जैन धर्मानुयायी के लिए विरोधी और औद्योगिकी हिंसाएं भी सब रूपों में अमान्य की जानी चाहिये। दुनियां के सभी धर्मों का विश्व-शांति और अहिंसा की दिशा में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आन्दोलन, कार्यक्रम तथा योगदान होगा। हमारे देश के धर्म-विचारकों तथा आचार्यों को सामूहिक और सामाजिक रूप से हिंसा के इस क्षेत्र पर ध्यान देना चाहिए। दो हजार वर्ष पहले महान् ईसा मसीह ने कहा था कि दुनियां में स्वर्ग लाने के लिये यह आवश्यक है कि दुनियां भर की तलवारों को खेत जोतने के हलों के फालों में बदल दिया जाय। यह करने का वक्त आ गया है।

सिद्धान्ताचार्य पं. जवाहरलाल जैन

समाज-विकास में महिलाओं की भूमिका

व्यक्ति बूंद है तो समाज समुद्र। बूंद-बूंद के मिलने से जैसे सागर बनता है, वैसे ही व्यक्ति-व्यक्ति के मिलने से समाज की रचना होती है। इस रचना-प्रक्रिया में बूंद अपना अस्तित्व बनाये रखते हुए भी समुद्र के लिए सब कुछ समर्पित कर देती है। इसी प्रकार व्यक्ति अपने अस्तित्व की स्वतंत्रता का अहसास करते हुए भी समाज-हित के लिये समर्पित होता है। व्यक्ति-व्यक्ति परस्पर मिलकर जब यह संकल्प करें कि हम अपनी-अपनी स्वतंत्रता बनाये रखकर भी सबकी समानता और कल्याण के कार्य करेंगे, तभी समाज अस्तित्व में आयेगा।

समाज का विकास प्रत्येक व्यक्ति के विकास पर निर्भर है। विकास के दो पक्ष हैं। एक भौतिक पक्ष और दूसरा सांस्कृतिक या आध्यात्मिक पक्ष। भौतिक विकास में विज्ञान और उससे सम्बद्ध तकनीक व उपकरण बड़ी मदद करते हैं। भौतिक विकास से शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी की जा सकती हैं, सुख-सुविधाएं जुटाई जा सकती हैं, पर मात्र इससे सामाजिक सौहार्द और भावात्मक विकास का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। भावात्मक विकास का आधार मानसिक संयम और आत्म जागृति है। पशु और मानव में जो मूल अन्तर है वह भावात्मक विकास और मानसिक संयम का ही है। पशुओं का अपना कोई समाज नहीं होता है, उनका समूह होता है, भीड़ होती है। पारस्परिक विचारों का आदान-प्रदान, अतीत का स्मरण, वर्तमान के प्रति सजगता और भविष्य का चिन्तन वहां नहीं होता। समाज के निर्माण में इन मानवीय व्यावहारिक पक्षों का और जैविक क्षमताओं का बड़ा हाथ है। इनके अभाव में समाज की कल्पना नहीं की जा सकती।

स्त्री और पुरुष जीवन-रथ के दो पहिये हैं। जीवन के संचालन में और सभ्यता के विकास में दोनों का संतुलित और समान महत्त्व है। सामान्यतः समाज-विकास को हम बाह्य भौतिक प्रगति से जोड़ते हैं और उसमें पुरुष की भूमिका को अधिक महत्त्व देते हैं पर भौतिक बाह्य विकास की सार्थकता पारिवारिक शान्ति, सामाजिक सुरक्षा और राष्ट्रीय उत्थान में है। यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि परिवार की धुरी स्त्री है, महिला है, माता है, पत्नी

है। स्त्री, उत्पादिका शक्ति है, सृजनात्मक शक्ति है। उसमें एक से अनेक बनने-बनाने का विकास-सूत्र छिपा हुआ है, वह जननी है, धरित्री है, उसमें धारण करने की शक्ति है।

नारी की यह विशेषता है कि वह अपने में स्वाभाविक रूप से आत्मिक गुणों व शक्ति-तत्त्वों को समेटे रहती है जो परस्पर जोड़ने का काम करते हैं। ये तथ्य व्यक्ति और व्यक्ति को, मन और मन को, परिवार और परिवार को, अतीत और वर्तमान को जोड़ते हैं और जुड़ाव की यह प्रक्रिया पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। जुड़ाव का यह कार्य सकारात्मक चिन्तन से संभव हो पाता है। इसके लिये व्यक्तित्त्व की ऐसी विशेषताएं और आत्म-गुणों की अपेक्षा होती है जो स्त्री में सहज रूप से अंकुरित, पल्लवित और पुष्पायित होती हैं। यथा—सहिष्णुता, सहनशीलता, वत्सलता, त्याग-वृत्ति, श्रमशीलता, कोमलता, करुणा, परदुखकातरता आदि। किसी भी समाज के विकास के लिये ये गुण नींव के पत्थर का काम करते हैं।

नारी के अनेक रूप हैं। माता के रूप में वह सन्तान को जन्म देती है, उसका पालन-पोषण करती है। पत्नी के रूप में घर की लक्ष्मी बनकर पूरे परिवार को जोड़े रखती है। पुत्री-रूप में वह मातृ-पितृ पक्ष की मूल्यवान धरोहर है तो वही पत्नी रूप में दूसरे घर अर्थात् ससुराल जाकर अपने स्नेह-सूत्र से दो परिवारों को परस्पर जोडती है। यहीं से समाज-निर्माण का और समाज विकास का आधारभूत कार्य आरम्भ होता है। बहिन, सखी, सेविका आदि उसके अन्य रूप हैं जिनके माध्यम से उसे विभिन्न सामाजिक प्रवृत्तियों को गतिशील बनाने का अवसर मिलता है।

समाज के विकास में शिक्षा का बड़ा महत्त्व है। औपचारिक शिक्षा स्कूल और कॉलेज में मिलती है। स्वतंत्रता के बाद इस शिक्षा में आश्चर्यजनक वृद्धि और विकास हुआ है। स्कूल और कॉलेजों में प्रवेश के लिए बड़ी भीड़ लगी रहती है। शिक्षित बेरोजगार युवक डिग्रियों का भार ढोये लक्ष्यहीन, दिशाहीन दौड़ लगाते रहते हैं। कहने का तात्पर्य है कि आज तथाकथित शिक्षा के माध्यम से ज्ञानात्मक विकास बहुत हुआ है, सूचनाओं का ढेर, शिक्षित युवक-मस्तिष्क में जमा हुआ है पर सांस्कृतिक, भावात्मक और गुणात्मक विकास उस अनुपात में नहीं देखा जाता है। यही कारण है कि आज ज्ञान-विज्ञान का इतना विकास होते हुए भी जीवन में शान्ति, समाज में सौहार्द

और राष्ट्र में सुरक्षा का वातावरण नहीं है। इसका कारण है आध्यात्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक विकास की कमी। इस कमी को पूरा करने में महिलाओं की विशेष भूमिका है। वह विकास का आधार बनकर समाज को नयी दृष्टि, नई दिशा और नया मोड़ दे सकती है।

हमें यह निश्चय करना होगा कि हम समाज को किस दिशा में चाहते हैं। कुछ लोग हैं जो भौतिकता की चकाचौंध में आधुनिकता के नाम पर समाज को उस दिशा में ले जाना चाहते हैं जहां इन्द्रिय-भोग की असीमित भौतिक सामग्री हो, जहां इच्छाएँ, आवश्यकताएँ बनकर रूप, रस, गन्ध, स्पर्श के क्षेत्रों में नये-नये आविष्कार करने की होड़ हो, जहां शरीर की भूख मिटाने के लिए सर्वसाधन उपलब्ध हों, जहां विलास और वैभव थिरकता हो, जहां नारी आराधना की शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित न होकर वासना की पुतली के रूप में भटकती हो। स्पष्ट है ऐसा विकास, विकास के नाम पर विनाश है जो उपभोक्ता संस्कृति को जन्म देता है। जहां तन, मन की शक्ति का क्षरण होता है, जहां व्यक्ति व्यक्ति न रहकर वस्तु बन जाता है, यन्त्र बन जाता है, जागरूक अवस्था में भी जड़-मृत और मूर्च्छित बना रहता है। ऐसे विकास में नारी की भूमिका उसकी काम-शक्ति को उभारने वाली होगी, जो किसी भी समाज के लिए अभीष्ट नहीं है।

समाज-विकास की सही दिशा, नैतिक और मानवीय दृष्टि से सबको अपने व्यक्तित्व के विकास के समान अवसर प्रदान करने की दिशा है। इस दिशा में ज्ञान हिंसा, भय, आतंक और शोषण का साधन न बनकर प्रेम, अहिंसा, बन्धुत्व, सहकारिता और कल्याण का साधन बनता है। ऐसे समाज के निर्माण और विकास में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। माँ और पत्नी के रूप में वह अपनी सन्तान और परिवार को ऐसी शिक्षा दें कि वे नयी जीवन-शैली का विकास कर सकें, जिसमें सम्प्रदाय, जाति, लिंग आदि के नाम पर भेदभाव न हो। समाज में एक ऐसा वातावरण बने जिसमें किसी के हक का अपहरण न हो, किसी के श्रम का शोषण न हो, सब अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार श्रमनिष्ठ बनें। जीवन में सादगी, संयम, स्वावलम्बन हो, खान-पान में सात्विकता हो, मद्य-मांस, जुआ, चोरी, धूम्रपान आदि व्यसनों से परिवार और समाज मुक्त हो, शरीर के बनाव और शृंगार की अपेक्षा आत्म- गुणों के विकास की ओर ध्यान हो, अनैतिक तरीकों से धन न जोड़ा जाये, ऐसे धन का प्रवेश घर-गृहस्थी में न हो, इस ओर महिलाओं को विशेष सावधानी रखना है। यह तभी सम्भव है जब नारी का झुकाव फैशनपरस्ती

आडम्बर और प्रदर्शन की ओर न हो।

समाज के सही विकास के लिये यह आवश्यक है कि समाज रूढ़ियों और कुरीतियों से मुक्त हो। बालविवाह, मृत्युभोज, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, मादक पदार्थों का सेवन, विवाह-शादियों में अनाप-शनाप खर्च जैसी कुरीतियों के उन्मूलन में महिलाओं को संगठित होकर योजनाबद्ध तरीके से प्रयत्न करना आवश्यक है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि नारी ने समाज को पतन की ओर धकेला है तो उन्नति की ओर भी अग्रसर किया है। जब नारी अपने संयम और शील से विमुख हुई है, अपने को दुर्बल और दब्बू समझा है, अपने भोग्यस्वरूप को प्रधानता दी है तब वह युद्ध का कारण बनी, वासना का कारण बनी। ऐसे विकृतरूप की सन्तों ने निन्दा की, भर्त्सना की है समाज के लिए उसे बाधक माना है, साधना में उसे विघ्न माना। पर, नारी के सात्विक संयमशील रूप की सर्वत्र प्रशंसा की है। शक्ति और प्रेरणा के रूप में उसने समाज को आगे बढ़ाया है। पथभ्रष्ट पुरुष वर्ग को उसने सचेत कर सही रास्ते पर आरूढ़ किया है।

हमारे संविधान में लिंग के आधार पर स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं किया गया है। प्रत्येक स्त्री में अपनी समस्त शक्तियों का विकास करने की अद्‌भुत सामर्थ्य है। आज तो उसके लिए सभी क्षेत्र खुले पड़े हैं। शैक्षिक, सामाजिक, व्यावसायिक, राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रों में वह आगे बढ़कर समाज के बहुआयामी विकास में अपना योगदान कर सकती है। पर उसे इस बात का स्मरण रखना होगा कि वह सृजन शक्ति की अधिष्ठात्री देवी है और उसका दोहरा दायित्व है। पारिवारिक सम्पन्नता के लिए वह किसी भी क्षेत्र में अपना दायित्व निभाने के लिए योग्य और सक्षम है। वह अर्थ का उपार्जन करे पर सन्तति व परिवार की उपेक्षा करके नहीं। यदि घर बाजार और रसोईघर होटल बन गया तो फिर अर्थ किस काम का? यदि अर्थ अनर्थ का साधन बनता है तो वह काम का नहीं। सम्पत्ति विपत्ति न बने, वह सच्चे अर्थों में सम्पदा बने, सभ्यता और शान्ति देने वाली बने।

नारी स्वभाव से स्नेहशील और सेवाभावी होती है। आज जीवन में जो कुंठा और तनाव, समाज में जो बिखराव और विग्रह है, उसका एक प्रमुख कारण संकीर्णता और स्वार्थ-वृत्ति है। नारी अपनी सेवा भावना से इस स्वार्थ भाव को परमार्थभाव में बदल सकती है। वैज्ञानिक उपकरणों ने आज घर-गृहस्थी को सरल और सुविधापूर्ण बना दिया है। आज की नारी को पहले

की तुलना में कठिन जीवन नहीं जीना पड़ता है। दिन-प्रतिदिन के कार्य सहज बन गये है। पानी लाना, भोजन पकाना, कपड़े धोना, आटा पीसना, सफाई करना, अब नारी के लिए कष्टकारक नहीं रहे। विज्ञान ने बिजली, टेलीफोन, यातायात आदि साधनों के द्वारा दिन-प्रतिदिन के घर-गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों को इस प्रकार संयोजित किया है कि समय और श्रम की काफी बचत हो जाती है। अब साधारण महिला भी अपना सारा दिन चौके-चूल्हे में लगाये, ऐसा नहीं रहा है। घर-गृहस्थी की जिम्मेदारी संभालने के बाद भी प्रतिदिन उसें कुछ समय अवकाश का मिल जाता है। इस अवकाश का सदुपयोग अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार समाज के विकास में करना चाहिए। ऐसा न हो कि टी.वी., फिल्म और मनोरंजन के अन्य क्षेत्रों में यह समय व्यर्थ चला जाये। अनपढ़ों को साक्षर बनाने में, रोगियों की सेवा करने में, कमजोर छात्रों को पढ़ाने-लिखाने में असहायों की मदद करने में, बहरे, अन्धे, लूले-लंगड़े, विकलांगों की जरूरतें पूरी करने में, बचे हुए समय का उपयोग करना चाहिए।

समाज का विकास सम्यक् जीवन-दृष्टि पर निर्भर है। आज जीवन के प्रति कोई दृष्टि नहीं है। किताबी ज्ञान बहुत है, विस्तृत है पर आत्मज्ञान की कमी है। जीवन को नैतिक दृष्टि से पुष्ट और प्रामाणिक बनाने के लिये सत्संग और स्वाध्याय आवश्यक है। प्रत्येक महिला का यह कर्तव्य है कि वह अपने परिवार में अध्यात्मिक स्फुरणा जागृत करे। घर को मंदिर बनाकर रखे, तभी वह समाज के विकास को सही दिशा में आगे बढ़ा सकेगी।

आज की महिला मोटे तौर से शिक्षित है। आवश्यकता इस बात की है कि वह अपने ज्ञान का उपयोग समाज के मात्र बाह्य विकास में न करे वरन् व्यक्ति के आन्तरिक विकास में प्रभावकारी तरीके से उसे लगाये। मन, वचन और काया की जो प्रवृत्ति है, उसे विध्वंसकारी कार्यों से न जोड़े, रचनात्मक कार्यों में अपनी शक्तियों का सही उपयोग करे। तब समाज आतंक से नहीं अनुराग से जुड़ेगा, क्रूरता का स्थान करुणा और यांत्रिकता का स्थान हार्दिकता लेगी। समाज के विकास की यही सच्ची कसौटी है।

जयपुर — डॉ. शान्ता भानावत

व्यसन मुक्त जीवन :
मानव जीवन की सार्थकता

सामान्यतः व्यसन शब्द का अर्थ व्यक्ति का किसी कार्य में लीन होना है। विशेष रूप में 'पाप कार्य में' लीन होना व्यसन है। वैसे जो मानव को सदा व्यस्त ही बनाये रखे, क्षण भर विश्राम न लेने दें, उसे व्यसन कहा है। इस आधार पर सद् व्यसन और असद् व्यसन के भेद से व्यसन दो प्रकार के होते हैं। जीवन निर्माण हेतु सत्कार्यों में संलग्न रहना सद्व्यसन है और इसके विपरीत अहितकारी दोषपूर्ण पाप-कार्यों में लीन रहना असद् व्यसन है। सद्व्यसन ग्राह्य और असद् व्यसन त्याज्य है।

संस्कृत साहित्य के प्रथित नीतिकार आचार्य सोमदेव सूरि ने अपने नीति वाक्यामृत में 'व्यसन' का लक्षण बताया है—"व्यस्यति पुरुषं श्रेयसः इति व्यसनम्" अर्थात् व्यक्ति को कल्याण मार्ग से विचलित करने वाले कार्य ही व्यसन हैं। विजय की इच्छा से एवं आदतों के वशीभूत होकर मनुष्य जिन अकरणीय कार्यों को करता है, वही व्यसन हैं। बुरे व्यसन चाहे अणु मात्र ही क्यों न हों प्राणी को अहर्निश सन्तापित किया करते हैं। ये व्यक्ति की बुद्धि को भ्रमित कर निंद्य से निंद्य कार्य करने को बाध्य कर देते हैं। आचार्य वादीभसिंह ने क्षत्रचूड़ामणि में कहा है—

व्यसनासक्तचित्तानां गुणः को वा न नश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यवाक्।।

अर्थात् व्यसनाक्त मनुष्यों के कौन से गुण नष्ट नहीं होते? धर्म, विद्वत्ता, मानवता, कुलीनता और सत्यवादिता सभी नष्ट हो जाते हैं। बुरे व्यसनी व्यक्ति के दोनों लोक दुःखदायी होते हैं।

आचार्यों ने मोक्ष-प्राप्ति के लिये सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष रहित एवं आठ अंग सहित सम्यक् परिपालन के साथ-साथ सप्त व्यसन त्याग पर अत्यन्त बल दिया है। इनके त्याग के बिना संसार, शरीर और भोगों से विरक्ति नहीं हो सकती। व्यसनी व्यक्ति व्यसनों से आक्रान्त होकर अपने मार्ग से विचलित हो जाता है। व्यसन प्राणी को पहले लुभाते हैं, मोहित करते हैं, फिर व्यसनी

के मात्र रक्त ही नहीं, प्राणों को चूस लेते हैं।

यद्यपि व्यसनों को संख्या में सीमित नहीं किया जा सकता; क्योंकि पापों की तो सीमा होती है लेकिन इनकी न सीमा होती है और न काल प्रमाण। अतः इन्हें महापाप कहा गया है। आचार्यों ने सप्त व्यसनों का उल्लेख किया है।

द्यूतं मांसं सुरा वेश्या चौर्यारवे पराङ्गना।
महापापानि सप्तानि व्यसनानि त्यजेत् बुधः।।

—जुआ, मांस, शराब, वेश्यागमन, चोरी, शिकार और परस्त्री गमन ये सात महापाप के स्थानभूत व्यसन हैं। बुद्धिमान को इनका त्याग अपेक्षित है। नीतिकार कहते हैं—

यः सप्तस्वेकमप्यत्र व्यसनं सेवते कुधीः।
श्रावकं स्वं ब्रुवाणः स जने हास्यास्पदं भवेत्।।

—जो दुर्बुद्धि मनुष्य इन सात व्यसनों में से एक भी व्यसन का सेवन करता है, वह अपने आपको श्रावक कहता हुआ मनुष्यों में हास्य का स्थान होता है। एक-एक व्यसन मानव जीवन में सुख-शांति, सम्मान एवं आरोग्य का घातक तथा धर्म, जाति एवं संस्कृति पर कलंक होता है। यदि एक से अधिक या समस्त व्यसन एक साथ एकत्र हो जावें तो क्या परिणाम होगा? व्यसन से प्राणी का धर्म-सदाचार, शिष्टाचार, लोकमर्यादा आदि समस्त गुण नष्ट हो जाते हैं। वह दोषों का आकर हो जाता है। इन व्यसनों ने बड़े-बड़ों को पतित किया है—

द्यूतेन पाण्डवा नष्टा नष्टो मांसाशनाद् बकः।
मद्येन यादवा नष्टा चारुदत्तश्च वेश्यया।
चौर्याच्छ्रीभूतिराखेटाद् ब्रह्मदत्तः परस्त्रियाः।
रागतो रावणो नष्टो मत्वेत्येतानि संत्यजेत्।।

जुंए से पाण्डव, मांस भक्षण से बक, मदिरा से यादव, वेश्या से चारुदत्त, चोरी से श्रीभूति, शिकार से ब्रह्मदत्त और परस्त्री राग से रावण नष्ट हुआ है-यह जानकर इन व्यसनों का त्याग कर देना चाहिये। क्योंकि—

दुःखानि तेन जन्यन्ते जलानीवाम्बुवाहिना।
व्रतानि तेन धूमन्ते रजांसि मरुता यथा।।

—जिस प्रकार जल के स्रोत से जल उत्पन्न होता है, उसी प्रकार इन व्यसनों

से दुःख उत्पन्न होता है। जिस प्रकार वायु से धूलि उड़ जाती है, उसी प्रकार व्यसनों से व्रत उड़ जाते हैं, तप नष्ट हो जाते हैं, प्राण भी चले जाते हैं। यहां प्रत्येक व्यसन की प्रकृति पर विचार प्रस्तुत हैं—

द्यूत क्रीड़ा :-लाटी संहिता में द्यूत-क्रीड़ा की व्याख्या की गई है—

अक्षपाशादि निक्षिप्तं वित्ताज्जयपराजयम्।
क्रियायां विधते यत्र सर्वं द्यूतमितिस्मृतम्।।

—जिस क्रिया में खेलने के पासे डालकर धन की हार-जीत होती है, वह सब द्यूत कार्य है। जैसे—हार जीत की शर्त लगाकर ताश, चौपड़, शतरंज खेलना। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं, कि सम्पूर्ण अनर्थों में श्रेष्ठ, मन की बुद्धि को नष्ट करने वाला, माया का निवास स्थान तथा चोरी और असत्य के भण्डार द्यूत कार्य का अवश्य ही त्याग करना चाहिये। क्योंकि जुए से बुद्धि भ्रमित होती है, मानव ज्ञान एवं चरित्र से पतित होकर परिवार-समाज की दृष्टि से गिर जाता है। असीम सम्पत्ति का स्वामी होकर भी दर-दर का भिखारी बन जाता है। धर्मराज युधिष्ठिर केवल एक द्यूत व्यसन से ही द्रौपदी को हारकर भाइयों सहित वनवासी हुए। महाराजा नल अपना सम्पूर्ण राज्य हारकर अयोध्या के नरेश ऋतुपर्ण के यहां अश्वपालक बने।

पाण्डव-पुराण के अनुसार यह द्यूत व्यसन साक्षात् संकटरूपी सर्पों के रहने का बिल है। धर्म का नाशक और नरक गति का मार्ग है। सर्व दोषों का उत्पत्ति स्थल है। अपमान रूपी वृक्ष का मूल है। जुआ खेलने में हिंसा, झूठ, चोरी, लोभ और कपट आदि दोषों की अधिकता होती है अतः वेश्या-गमन और पर-स्त्री सेवन तथा शिकार खेलने के समान यह जीव स्वयं नष्ट होकर धर्मच्युत होता है।

जुए में जीती हुई सम्पदा भी प्राण घातक बन जाती है। जुए में आसक्त प्राणी को अपने परिवार की भी चिन्ता नहीं रहती। उनकी देखभाल तो दूर अपनी मां, बहिन, स्त्री आदि के जेवर भी दांव पर लगा देता है। अनोखे अंगारों के सदृश जुए के पासे अक्षपट्ट पर फेंके जाते समय तो स्पर्श में शीतल होते हुये भी हृदय को जला देते हैं। अतःएव लाटी संहिता में कहा गया है——

प्रसिद्धं द्यूतकर्मेदं सद्यो बन्धकरस्मृतम्।
यावदापन्मयं ज्ञात्वा त्याज्यं धर्मानुरागिणा।।

—तत्काल बन्धन में डाल देने वाला यह द्यूत-कर्म प्रसिद्ध कुकर्म है। समस्त

आपत्तियों का कारण जानकर धर्मानुरागी द्वारा यह त्याज्य है।

मांस भक्षण-मांस-भक्षण निर्दयता की आधार-शिला है। यह सबसे बड़ी हिंसा है।

अतः सबसे बड़ा पाप है। यह असाध्य रोगों की जननी एवं क्रूरता का जनक है। मांसाहार तामसिक प्रवृत्ति का प्रतीक, मनुष्य की बुद्धि को दूषित करने वाला है। विज्ञान ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मांसाहार मानव का प्राकृतिक भोजन नहीं है। उसके दांतों एवं आंतों की बनावट मांसाहारी प्राणियों से बिल्कुल भिन्न है। यह मांस स्वभाव से भयभीत, निरपराधी और निराश्रित मूक प्राणियों के वध से प्राप्त होता है। "जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन", 'जैसा पीवे पानी वैसी बोले वाणी।" यही कारण है कि पश्चिमी देशों में हिंसा का तांडव नृत्य है। मांस-भक्षण की कुत्सित प्रवृत्ति से ही मानव-मानव के बीच भ्रातृ-भाव समाप्त होकर विश्व अशांति का सदैव भय बना रहता है। योगसार में लिखा है—

मांसास्वादनलुब्धस्य देहिनो देहिन प्रति।
हन्तुं प्रवर्तते बुद्धिः शकुन्ता इव दुर्धियः।।

मांस-स्वाद के लोभी की बुद्धि दुष्ट प्राणियों के समान दूसरे प्राणियों को मारने में रहती है। क्योंकि-मांस भक्षण से इन्द्रियां उच्छृंखल होतीं हैं। आत्म उन्नति के लिये मांस सर्वथा बाधक होने से त्याज्य है। मनुस्मृति में लिखा है—

यावंति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भो नरः।
तावद्वर्षसहस्राणि पच्यते पशुघातकः।।

हे मनुष्य! पशु-पक्षियों के शरीर में जितने रोम हैं, उतने हजार वर्ष तक दुःख उन्हें मारने वालों को प्राप्त होता है। राजकुमार वक इसका उदाहरण है। जो लोग अमृत से भरे दूध, घी, फल, मेवे, अनाज, दाल जैसे सात्विक पदार्थों को छोड़ घृणित मांस को खाते हैं वे साक्षात् राक्षस ही हैं। अल्पायु, दरिद्रता, पराधीनता, निम्नकुल में जन्म मांसाहार का ही परिणाम है। कैंसर का मुख्य कारण मांस, शराब, अंडा है। अतः आत्मोन्नति के लिये मांस सर्वथा बाधक होने से त्याज्य है।

मद्यपान—पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में आ. अमृतचन्द्र कहते हैं-

रजसानां च बहूनां जीवानां योनिरस्यते मद्यम्।

मद्यं भजतां तेषां हिंसा संजायतेऽवश्यम्।।63।।

—अनेक पदार्थों को सड़ा-गलाकर जिसमें अनेक जीवों की उत्पत्ति और हिंसा होती है-तरल रस रूप में निर्माण की जाती है। ऐसी मद्य-का निर्माण व पान दोनों हिंसा के कारण हैं। मद्य अर्थात् शराब-सड़े-गले पदार्थों में पनपने वाले अनन्त सूक्ष्म जीवों के गलित शरीरों का सत्व-जिसके पान से सत्य-असत्य, मां-बहिन और शत्रु-मित्र का भेद समाप्त होकर कुमार्ग की प्रवृत्ति होती है। मदिरा के नशे में डूबे शराबी के मुंह में कुत्ता भी पेशाब कर जाये तो भी विवेक बुद्धि नहीं होती। यह व्यसन महापतन की ओर ले जाने वाला है। इतिहास साक्षी है कि मुगल साम्राज्य एवं नवाबी का सारा प्रभुत्व सुरा-सुन्दरी के लोभी नवाबों द्वारा समाप्त हो गया। अनजाने में पी गई शराब यादव कुमारों के एवं समस्त द्वारिका के जलने का कारण बनी। अधिकांश मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों का एकमात्र कारण यह मद्यपान ही है। जो मदिरा पान करता है, उसमें अभिमान, भय, ग्लानि, हास्य, अरति, शोक, काम, एवं क्रोधादि कषाय रूप विकारी भावों की उत्पत्ति होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार मद्यपान से लीवर का कैंसर हो जाता है, स्नायुतंत्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शराबी की सन्तान अस्वस्थ और मंदबुद्धि होती है। मद्यपान एक ऐसा व्यसन है जिससे प्राणी अपना ज्ञान और चेतना सब कुछ खो बैठता है। यह धीमा विष है, अतः त्याज्य है।

वेश्यागमन—वेश्या के स्वरूप का वर्णन आ. अमितगति ने अपने श्रावकाचार में इस प्रकार किया है—

या परं हृदये धत्ते, परेण सह भाषते।
परं निषेधते लुब्धा, परमाह्वायते तथा।
वदनं जघनं यस्यां नीच लोकमला विलम्।
गणिकां सेवमानस्य तां शौचं वद् कीदृशम्।।

—जो अपने मन में अन्य को रखती है, बात दूसरे से करती है, लोभ से अन्य पुरुष का सेवन करती है, संकेतों से अन्य को बुलाती है, उससे स्नेह कैसा? जिसके वदन और जघन मल से सदा मलीन रहते हों-उसको सेवन करने वाले की पवित्रता कैसी? वेश्या सेवन से भयभीत, चिन्तित एवं व्याकुल मानव दरिद्रता एवं कुत्सित रोगों का आगार बन जाता है। दुर्गुणों का शिकार हो जाति एवं समाज से बहिष्कृत होकर दुःखी जीवन जीने को विवश हो

जाता है। श्रेष्ठि चारुदत्त का जीवन इसका ज्वलन्त प्रमाण है। वेश्या व्यक्ति प्रेमी नहीं, धन प्रेमी है। धन के बिना वे अपने प्रेमी को पाखाने में पटक देतीं हैं। वेश्यागामी अपने माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र-पुत्री के तथा पत्नी का विश्वास गवाँ देते हैं। ऐसे लोगों को धर्म, गुरुजनों के उपदेश अच्छे नहीं लगते। जिसका मन पित्त से आकुलित हो उसे मिश्री-मिश्रित दूध कैसे रुच सकता है। वास्तव में यह व्यसन मनुष्य के नैतिक पतन की प्रथम सूचना है। इससे सर्वस्व विनाश होता है। अतः अपनी, परिवार की सुख-शांति के लिये इस व्यसन का परिहार आवश्यक है।

शिकार व्यसन- अपने क्षणिक मनोविनोद और मनोरंजन के लिये, स्वभाव से भयभीत, निरपराध, आश्रयहीन, रोंगटे खड़े करके भागते, तृण-भक्षण करने वाले निरीह मौन पशुओं का अपहरण कर मारना, धोखे से, छिपकर, ऊँचे स्थान पर चढ़कर मारना, कायरता, क्रूरता और अत्याचार है। स्वयं सुई की चुभन से विचलित होने वाला शिकारी वन्य पशुओं के प्रति दया भाव नहीं रखता। शिकार का परिणाम बहुत बुरा होता है। यदि राम मृग के शिकार के लिये न जाते तो सीता का अपहरण नहीं होता। शिकार के कारण वन सूने हो गये। राजा दशरथ को शिकार के परिणाम से ही पुत्र-वियोग जन्य दुःख सहना पड़ा। शिकारी साक्षात् यमराज ही होता है, उसके मन में वात्सल्य कहाँ? यह घोर पाप कर्म है। राजाओं का राज्य समाप्त होने का कारण उनकी यही पाशविक प्रवृत्ति ही है।

चौर कर्म -बिना अनुमति के पर पदार्थ का ग्रहण चौर कर्म ही है। चोर व्यक्ति भयभीत, शंकित और घृणा का पात्र होता है। सीता का चोर रावण अपयश को प्राप्त हुआ। दूसरों की धन-सम्पदा का अपहरण बड़ा पाप कर्म है। यह साक्षात् प्राणों का हरण ही है। चोरी की वस्तु को ग्रहण करना अनीति से उपार्जित धन है जो नाशवान है। चोर का कौन विश्वास करे। चोरी का धन धर्म में लगाना धर्म को मलीन करता है। चोर तो भिखारी से भी गया बीता होता है।

परस्त्री गमन - कामान्ध व्यक्ति विवेकहीन होकर परस्त्री गमन की इच्छा से उनका संसर्ग करते हैं; जिसका परिणाम अत्यन्त दुःखदायी होता है। परस्त्री सेवन में इहलोक का दुख पुष्प है और परलोक में भीषण यातनाएं उन दुःखों का फल है। लंकापति रावण इसका प्रमाण है। परस्त्री/पर-पुरुष से

सम्बन्ध रखना जीवन में अशान्ति पैदा करता है। चरित्र का नाशक है। यह ऐसा व्यसन है जो समग्र जीवन का विनाशक है। स्वदार सन्तोष ही सुख का कारण है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यसन मूलरूप में आत्मघातक तो होता ही है किन्तु एक साथ ही अन्य व्यसनों को भी किसी न किसी रूप में सम्मिलित किये रहता है। एक और व्यसन है-अर्थ-लोलुपता। मनुष्य अपने भौतिक वैभव की पूर्ति हेतु येन केन प्रकारेण अर्थ संचय में लगा रहता है। अतः वासना पूर्ति की इच्छा को सीमित करना ही व्यसन पर नियंत्रण है।

चौरासी लाख योनियों में मानव जीवन की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। उक्त व्यसनों से मुक्त जीवन ही मानव-जीवन की सार्थकता है। व्यसन त्याग के बाद ही धर्म-साधना का प्रथम सोपान आरम्भ होता है। विश्व के समस्त धर्मों में व्यसन-त्याग के लिये बाध्य किया गया है। व्यसन चरित्र के लिये महान् कलंक हैं। ये आत्मा के प्रति एक अभिशाप हैं, जो आत्म-साधना से वंचित कर देते हैं। ये व्यसन एक नशा हैं जो मनुष्य को अज्ञान-अंधकार में ले जाते है। अतएव दुर्लभ प्राप्य इस मानव जीवन को सफल एवं सार्थक बनाने के लिये उक्त व्यसनों से मुक्त रहना अपरिहार्य है।

जयपुर

डॉ. प्रेमचंद रांवका

शाकाहार : एक प्राकृतिक आहार

आज समस्त मानव समुदाय एक विचित्र रुग्ण मनोदशा से गुजर रहा है। उस रुग्ण-मनोदशा से छुटकारा दिलाने के लिये हजारों, लाखों, चिकित्सा शास्त्री, शरीर शास्त्री प्रयोगशालाओं में दिन रात संलग्न है। नित्य नई-नई दवाओं का आविष्कार किया जा रहा है, फिर भी मानव जाति अशान्त है, अस्वस्थ है, तनावग्रस्त है और एक बेचैनी का जीवन व्यतीत कर रही है। इसका एकमात्र कारण यही है कि चिकित्सा शास्त्री केवल शरीर को ठीक करने में लगे हैं, जबकि आवश्यकता इस बात की है कि इन्द्रियों और मन को स्वस्थ कैसे बनाया जाये।

एक बार चरक ऋषि कौवे का रूप धारण कर नदी तट पर जा बैठे। अनेक लोग वहां स्नान कर रहे थे। उन्होंने मनुष्य की भाषा में पूछा—कोडरूक, कोडरूक, कोडरूक।

एक ने कहा-जो प्रतिदिन "च्यवनप्राश" का सेवन करता हो, वह बात पूरी नहीं हुई कि दूसरे ने कहा-"मकरध्वज" की एक खुराक नित्य लेने वाला कभी सुस्त होता ही नहीं, नई ताजगी उसे मिलती रहती है। तीसरे ने कहा-"द्राक्षासव" पीने वाला सदा स्वस्थ रहता है। उत्तर सुनकर ऋषि हैरान हो गये मन ही मन कहने लगे-मैंने शास्त्र इसलिये नहीं लिखा कि लोग औषधियां खा-खाकर स्वस्थ रहें, औषधियों का दिग्दर्शन मैंने रोग निवारण के लिए किया है, किन्तु इन लोगों ने तो पेट को ही दवाखाना बना लिया है।

इस पेट को दवाखाना बनने से रोकने का एक ही मार्ग है, इन्द्रिय एवं मन की स्वस्थता जिसका मुख्य आधार है आहार-शुद्धि। आहार-शुद्धि का मतलब है-तामसिक तथा राजसिक आहार का निषेध। मन स्वस्थ रहे-यह हमारे लिये बहुत मूल्यवान है। भोजन का मन की क्रियाओं पर बहुत असर होता है। ऐसा भोजन करना जिससे मन विकृत, उत्तेजित और क्षुब्ध न हो। कहा भी है 'जैसा खाओ अन्न वैसा होवे मन, भोजन 3 प्रकार का होता है।

1. तामसिक आहार -तामसिक भोजन शांतिपथ की दृष्टि से अत्यन्त निष्कृष्ट है क्योंकि इससे प्रभावित हुआ मन अधिकाधिक निर्विवेक व कर्त्तव्यशून्य होता चला जाता है। तामसिक वृत्ति वाले व्यक्ति अपने लिये ही नहीं बल्कि अपने पड़ोसियों के लिये भी दुःखों का तथा भय का कारण बने रहते हैं, क्योंकि उनकी आन्तरिक वृत्ति का झुकाव प्रमुखतः अपराधो, हत्याओं अन्य जीवों के प्राणशोषण तथा व्यभिचार की ओर अधिक रहा करता है। हमारा शरीर परमात्मा का मंदिर है, जो भी भोजन इस शरीर में जायेगा उससे रस बनेगा, खून-मांस, मज्जा आदिक बनेगा। वह जब ग्रंथियों में पहुंचेगा तो उस रसायन से हमारे अंदर वैसे ही विचार उत्पन्न होंगे और फिर वैसी ही हमारी अनुभूति होगी और जैसी अनुभूति होगी वैसा ही हमारा आचरण बनेगा।

2. राजसिक आहार -राजसिक भोजन का प्रभाव व्यक्ति को विलासिता के वेग में बहा ले जाता है और इन्द्रियों का पोषण करना ही उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है। आज के युग में इसका बहुत अधिक प्रचार हो गया है। होटलों व खौंचे वालों की भरमार वास्तव में मानव की इस राजसिक वृत्ति का ही फल है। अधिक चटपटे घी में तलकर अधिकाधिक स्वादिष्ट बना दिये गये, तथा एक ही पदार्थ में अनेक-अनेक ढंग से अनेक स्वादों का निर्माण करके ग्रहण किये गये या यों कहिये कि 36 प्रकार के व्यंजन या भोजन की किस्में अथवा पौष्टिक व रसीले पदार्थ सब राजसिक भोजन में गर्भित हैं। ऐसा भोजन करने से व्यक्ति जिह्वा का दास बने बिना नहीं रह सकता और इसलिये शांति पथ के विवेक से वह कोसों दूर चला जाता है।

3. सात्विक भोजन —सात्विक भोजन से तात्पर्य उस भोजन से है, जिसमें ऐसी ही वस्तुओं का ग्रहण हो जिनकी प्राप्ति के लिये स्थूल हिंसा न करनी पड़े अर्थात् दूध, अन्न, घी, खांड व ऐसी वनस्पतियाँ जिनमें त्रस जीव अर्थात् उड़ने व चलने-फिरने वाले जीव न पाये जाते हों। ऐसा भोजन ग्रहण करने से जीवन में विवेक, सादगी, दया, करुणा, सेवा, परोपकार आदि के परिणाम सुरक्षित रहते हैं। यहाँ इतना जानना आवश्यक है कि उपरोक्त सात्विक पदार्थ ही तामसिक या राजसिक की कोटि में चले जाते हैं, यदि इनको भी अधिक मात्रा में प्रयोग किया जावे। भूख से कुछ कम खाने पर अन्न सात्विक है और अधिक खाने पर तामसिक। क्योंकि तब वह प्रमाद व निद्रा का कारण बन जाता है। इसके साथ ही आहारशुद्धि से तात्पर्य-द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि,

कालशुद्धि और भावशुद्धि से है। द्रव्य सात्विक हो, सात्विक कमायी का हो, सात्विक परिणाम से बनाया गया हो और जिस समय ग्रहण किया जाये उस समय भी सात्विक परिणाम हों तब वह रस, वह भोजन हमारे अंदर सात्विक भाव पैदा कर सकता है। इस प्रकार सात्विक आहार करने से हमारे शरीर के अंदर की ग्रन्थियों में सात्विक रसायन प्रवेश करेगा। उससे फिर सात्विक विचार बनेंगे, सात्विक अनुभव बनेंगे और फिर सात्विक आचरण बनेगा। सात्विक आहार के द्वारा ही हमारे नाभिकेन्द्र का विकास होता है।

अहिंसा की दृष्टि से हमारा भोजन कैसा होना चाहिये, यह एक महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण है। हमें वह भोजन लेना चाहिये जो जीवन-धारणा के लिये अनिवार्य हो। जिसकी अनिवार्यता न हो उसे नहीं लेना चाहिए। आदमी मांस खाकर जीता है, और अनाज खाकर जीता है? इन दोनों में से हम चयन करें तो मांस की अनिवार्यता है या अनाज की अनिवार्यता। हिंसा की संभावना मांस खाने में अधिक है या अनाज खाने में? इस चयन का फलित होगा कि मांस खाना अनिवार्य नहीं है। अनाज खाना अनिवार्य है। मांस को छोड़ने वाला शाकाहार के बल पर जी सकता है। शाकाहार जीवन की अनिवार्य अपेक्षा है। उसे छोड़ा नहीं जा सकता। उसके बिना काम नहीं चल सकता। अनाज और मांस दोनों की तुलना में मांस का भोजन मनुष्य को अधिक क्रूर बनाता है। जो लोग मांसाहारी हैं वे अगर एक बार बूचड़ खाने में चले जायें तो संभव है, उनके लिये मांस खाना मुश्किल हो जाये। हर आदमी इतना क्रूर नहीं होता कि वह हजारों-हजारों प्राणियों की मृत्युकालीन चीखों और पीड़ाओं को झेल सके। प्राणिमात्र में प्रवाहित प्राण-ऊर्जा को अपनी प्राण-ऊर्जा के समान देखने वाले लोग मांस कैसे खा सकते हैं? नहीं खा सकते। अनाज खाने में भी हिंसा होती है, परंतु आंतरिक क्रूरता की दृष्टि से मांस भोजन की कोटि में नहीं आता। जिन लोगों ने करुणा से आर्द्र होकर देखा, उन सबने एक स्वर में कहा, "मनुष्य विवेकशील प्राणी है। प्राकृतिक चिकित्सकों ने अन्वेषण कर यह प्रमाणित किया है, कि मनुष्य मांसाहारी नहीं है। मांसाहारी और शाकाहारी प्राणियों के भोजन तंत्र के बनावट में मौलिक अंतर होता है—

शाकाहारी तथा मांसहारी प्राणी की रचना में अन्तर

1. शाकाहारी प्राणी जल पीते हैं, किन्तु मांसाहारी प्राणी जल को पीते नहीं अपितु चाटते हैं

2. शाकाहारी जीवों के दांत चपटी दाढ़ वाले होते हैं, पंजे तेज नाखून वाले नहीं होते जो चीरफाड़ कर सकें। किन्तु मांसाहारी जीवों के दांत नुकीले व पंजे तेज नाखून वाले होते हैं जिससे वह आसानी से अपने शिकार को चीरफाड़ कर खा सकें।
3. शाकाहारी जीवों के निचडे, जबड़े ऊपर, नीचे, दायें, बायें सब ओर हिल सकते हैं, और वे अपना भोजन चबाने के बाद निगलते हैं, किन्तु मांसाहारी जीवों के निचड़े जबड़े केवल ऊपर नीचे ही हिलते हैं और वे अपना भोजन बिना चबाये ही निगलते हैं।
4. शाकाहारी प्राणियों की जीभ चिकनी होती है, किन्तु मांसाहारी प्राणियों की जीभ खुरदरी होती है। ये जीभ बाहर निकालकर उससे पानी पीते हैं।
5. शाकाहारी जीवों के जिगर व गुर्दे अनुपात में छोटे होते हैं और मांस के व्यर्थ मादे को आसानी से बाहर नहीं निकाल पाते। किन्तु मांसाहारी जीवों के जिगर (Lever) व गुर्दे (Kidney) अनुपात में बढ़े होते हैं, ताकि मांस का व्यर्थ मादा आसानी से बाहर निकल सके।
6. शाकाहारी जीवों के शब्द कर्कश व भयंकर नहीं होते किन्तु मांसाहारी जीवों के शब्द कर्कश व भयंकर होते हैं।
7. शाकाहारियों और मांसाहारियों के मुंह के रस में भी भिन्नता पाई जाती है। मनुष्य में क्षारिक और मांसाहारी जीवों में तेजाबी रस होता है।
8. शाकाहारी जीवों के पाचक अंगों में हाइड्रोक्लोरिक एसिड कम होता है इसलिये वह मांस को आसानी से नहीं पचा पाते। किन्तु मांसाहारी जीवों के पाचक अंगों में मनुष्य के पाचक अंगों की अपेक्षा दस गुना अधिक हाइड्रोक्लोरिक एसिड होता है जो मांस को आसानी से पचा देता है।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए मनुष्यों को मांस भक्षण नहीं करना चाहिये। मनुष्य के अलावा संसार का कोई भी जीव प्रकृति द्वारा प्रदान की हुई शरीर-रचना व स्वभाव के विपरीत आचरण करना नहीं चाहता। शेर भूखा होने पर भी शाकाहारी पदार्थ नहीं खाता और गाय भूखी होने पर भी मांसाहार नहीं करती क्योंकि वह उनका स्वाभाविक व प्रकृति अनुकूल आहार नहीं है। मांसाहारी पशु अपनी पूरी उम्र मांसाहार कर व्यतीत करते हैं, किन्तु

कोई भी मनुष्य केवल मांसाहार पर दो तीन सप्ताह से अधिक जीवित नहीं रह सकता क्योंकि केवल मांस का आहार इतना अधिक तेजाब व विष उत्पन्न कर देगा कि उसके शरीर की संचालन क्रिया ही बिगड़ जायेगी। जो मनुष्य प्रकृति के विपरीत मांसाहार करते हैं, उन्हें भी कुछ न कुछ शाकाहॉरी पदार्थ लेने ही पड़ते हैं।

कोई भी व्यक्ति फल, अनाज, सब्जी देखकर नफरत से नाक नहीं सिकोड़ता, जबकि लटके हुए मांस को देखकर अधिकांश को घृणा उत्पन्न हो जाती है, क्या यह उसकी स्वाभाविक शाकाहारी प्रवृत्ति का द्योतक नहीं है?

बैल घास खाता है शेर मांस खाता है, बैल मांस नहीं खा सकता, शेर घास नहीं खा सकता पर मानव एक ऐसा प्राणी है कि घास भी खाता है और मांस भी खाता है। कितनी विचित्र बात है'

हमें उन तिर्यंच प्राणियों से शिक्षा लेनी चाहिये जिनके पास विवेक नहीं है, फिर भी प्रकृति का उल्लंघन नहीं कर रहे हैं।

प्रकृति के निषेध के साथ-साथ धार्मिक दृष्टि से भी मानव को मांस का भोजन नहीं करना चाहिये। आदर्श धर्मग्रन्थों की पंक्तियों का पढने का प्रयास करें और देखें कि मांस भक्षण के बारे में क्या उपदेश और आदेश हैं—

विभिन्न धर्मों द्वारा मांसाहार का निषेध

दया सखि धरम को पाल : जीसस एक बार एक स्थान पर गये जहॉ कुछ लड़कों ने चिड़ियों के लिये जाल फैला रखा था। जीसस ने कहा 'कौन है, जिसने इन निर्दोष प्राणियों के लिये जाल फैला रखा है? जीसस उनके पास गये, उन पर हाथ रखकर कहा-'जाओ जब तक जियो, उडो, और वे शोर करती हुई उड़ गईं'। जीसस ने कहा-'मैं बलि और रक्त के त्यौहार बन्द करने आया हूँ।'

श्री कृष्ण जी कहते हैं : हे अर्जुन! जो शुभफल प्राणियों पर दया करने से होता है वह फल न तो वेदों से, न समस्त यज्ञों को करने से और न किसी तीर्थ वंदन अथवा स्नान से होता है।

कुरान शरीफ के शुरू में ही "विस्मिल्लाह हिर रहमान निर रहीम" खुदा को रहीम अर्थात् सब पर रहम करने वाला लिखा है।

कहा भी है कि अल्लाह अत्यन्त कृपाशील दयावान है और हर चीज का निगहबांन है। भला कोई एक लड़के को मरवाये और दूसरे लड़के को उसका मांस खिलावे ऐसा कभी हो सकता है?

सेण्ट ल्यूकस न्यूटेस्टामेण्ट में कहते हैं—कि जब तुम्हारे पिता प्रभु दयालु हैं तब उसकी सन्तान तुम भी दयावान बनो अर्थात् किसी को मत सताओ।

डा. अलवर्ट स्वाइव्जर कहते हैं-हे ईश्वर! हमें पशुओं का सच्चा मित्र होने योग्य बनाओ, ताकि हम स्वयं दयापूर्ण आशीर्वाद बांटे क्योंकि दया युक्त धर्म ही विशुद्ध धर्म है। कहा भी है **'धम्मो दया विसुद्धो'**।

भगवान बुद्ध कहते हैं 'Both man and bird and beast'

बिना पाँव के प्राणियों को मेरा प्यार।
उसी तरह दो पाँव वालों को भी,
और उनको जिनके चार पांव हैं,
मैं प्यार करता हूँ
और उन्हें भी जिनके कई पाँव हैं।

महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्म पितामह ने मांस खाने वाले, मांस का व्यापार करने वाले व मांस के लिये जीव हत्या करने वाले, तीनों को दोषी बताया है। उन्होंने कहा है कि जो दूसरे के मांस से मांस बढ़ाना चाहता है, वह जहाँ कहीं भी जन्म लेता है, चैन से नहीं रह पाता। जो अन्य प्राणियों का मांस खाते हैं, दूसरे जन्म में उन्हीं प्राणियों द्वारा भक्षण किये जाते हैं, जिस प्राणी का वध किया जाता है वह यही कहता है 'मांस भक्षयते यस्माद् भक्षयिष्ये तमप्यहम्' अर्थात् आज वह मुझे खाता है तो कभी मैं उसे खाऊंगा।

ईरान के दार्शनिक अल गजाली का कथन है कि रोटी के टुकड़ों के अलावा हम जो कुछ भी खाते हैं वह सिर्फ हमारी वासनाओं की पूर्ति के लिये होता है।

ईसाई धर्म : ईसामसीह की शिक्षा के दो प्रमुख सिद्धान्त हैं-तुम जीव हत्या नहीं करो और अपने पडोसी से प्यार करो तथा तुझे हत्या नहीं करना चाहिये।

सिख धर्म : गुरु अर्जुनदेव ने परमात्मा से सच्चा प्रेम करने वालों की समानता हंस से की है और दूसरों को बगुला बताया है उन्होंने बताया है कि हंसों की खुराक मोती है और बगुलों की मछली-मेंढक आदि।

बौद्ध धर्म : बौद्ध धर्म के पंचशील अर्थात् सदाचार के पाँच नियमों में प्रथम

व प्रमुख नियम किसी भी प्राणी को दुःख न देना ही अहिंसा है व पांचवा नियम शराब आदि नशीले पदार्थों से परहेज की।

पारसी धर्म : जो दुष्ट मनुष्य, पशुओं, भेड़ों और अन्य चौपायों की अनीतिपूर्वक हत्या करता है उसके अंगोपांग तोड़कर छिन्न-भिन्न किये जायेंगे। मानव को प्रत्येक प्राणी का मित्र बनना चाहिये।

कन्फ्यूशस धर्म : जो कार्य तुम्हें अप्रिय है, उसका प्रयोग दूसरों के प्रति न करो।

शिन्तो जापान का धर्म : देवता हचिमान ने कहा कि इन निरीह कीड़ियों और मकोडों की रक्षा करो। जो दया करते हैं, उनकी आयु बढ़ती है।

लाउत्सो धर्म : जो मनुष्य पूर्ण होना चाहता है वह भूमि से उपजा आहार करे।

वैदिक धर्म : हे अग्नि! तूं मांस भक्षकों को अपने ज्वालामुखी मुख में रख ले।

प्राणियों की हिंसा किये बिना मांस उत्पन्न नहीं होता और प्राणियों के वध से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती, इसलिये मनुष्य को मांसाहार का त्याग कर देना चाहिये।

(मनुस्मृति अ. 2 श्लोक 47-48)

जैन धर्म : अहिंसा जैन धर्म का सबसे प्रमुख सिद्धान्त है। जैन ग्रन्थों में हिंसा के 108 भेद किये गये हैं। भाव हिंसा, द्रव्य हिंसा, स्वयं हिंसा करना, दूसरों के द्वारा करवाना अथवा सहमति प्रकट करके हिंसा कराना सब वर्जित हैं। हिंसा के विषय में सोचना तक पाप माना है। किसी को ऐसे शब्द कहना जो उसको पीड़ित करें वह भी हिंसा मानी गई है। ऐसे धर्म में जहाँ जानवरों को बांधना, दुःख पहुंचाना, मारना व उन पर अधिक भार लादना तक पाप माना जाता है, वहाँ मांसाहार का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

इस प्रकार संसार के सभी प्रमुख धर्म मानव को अहिंसोपजीवी होने और अन्न, शाक एवं फल खाने का उपदेश देते हैं। इतना ही नहीं सभी महापुरुषों ने भी मांसाहार का निषेध किया है।

संसार के सभी महापुरुषों द्वारा मांसाहार की निंदा

विश्व इतिहास पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि संसार के सभी महापुरुष, चिन्तक, वैज्ञानिक, कलाकार, कवि, लेखक जैसे—पायथगॉरस,

प्लूटार्क, सर आईजक न्यूटन, महान चित्रकार लिनार्डो डार्विसी, डॉक्टर ऐनी बेसेन्ट, अलबर्ट आईंस्टाइन, जार्ज वर्नार्डशा, टालस्टाय, सुकरात व यूनानी दार्शनकि अरस्तु आदि सभी शाकाहारी थे। शाकाहार ने ही उन्हें सहिष्णुता, दयालुता, अहिंसा आदि सद्गुणों से विभूषित किया।

महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आईंस्टाईन कहते थे-शाकाहार का हमारी प्रकृति पर गहरा प्रभाव पड़ता है, यदि पूरी दुनियां शाकाहार को अपना ले तो इन्सान का भाग्य पलट सकता है।

यूनानी दार्शनिक पायथागोरस के शिष्य रोमन कवि सैनेका जब शाकाहारी बने तब उन्हें सुखद और आश्चर्यजनक अनुभव यह हुआ कि उनका मन पहले से अधिक स्वस्थ, सावधान और समर्थ हो गया है।

जार्ज वर्नार्डशां को डाक्टरों ने कहा कि यदि आप मांसाहार नहीं करेंगे तो मर जायेंगे। इस पर बर्नार्डशां ने कहा कि मांसाहार से मृत्यु अच्छी है। उन्होंने डाक्टरों से कहा कि यदि मैं बच गया तब मैं आशा करता हूँ कि आप शाकाहारी हो जायेंगे। बर्नार्डशां तो बच गये किन्तु डाक्टर शाकाहारी नहीं बने। उस महान आत्मा ने साथी जीवों को खाने की बजाय मर जाना स्वीकार किया।

सभी सूफी संत शाकाहारी थे और घूम-घूम कर शाकाहार का प्रचार किया करते थे।

इसी प्रकार महात्मा गांधी का बच्चा जब सख्त बीमार हुआ तो डाक्टरों ने उनसे कहा कि यदि इसे मांस का सूप नहीं दिया गया तो यह जिन्दा नहीं रहेगा, किन्तु महात्मा गांधी ने कहा कि चाहे जो परिणाम हो मांस का सूप नहीं देंगे। बच्चा बिना मांस के प्रयोग के ही बच गया।

महात्मा गांधी ने तो यहाँ तक कहा, कि "मेरे विचार के अनुसार गौ रक्षा का सवाल स्वराज्य के प्रश्न से छोटा नहीं है। कई बातों में मैं इसे स्वराज्य के सवाल से भी बड़ा मानता हूँ।"

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद जी लिखते हैं-मांस का प्रचार करने वाले सब राक्षस के समान हैं, वेदों में मांस खाने का कहीं भी उल्लेख नहीं। शराबी व मांसाहारी के हाथ का खाने में भी शराब-मांसादि खाने-पीने का दोष लगता है।

ऋषि दयानंद जी की देशवासियों को घोर चेतावनी—गौ आदि पशुओं के विनाश से राजा और प्रजा दोनों का विनाश होता है।

गुरु नानकदेव जी ने अपने शिष्यों, को मांस खाने और शराब पीने की सख्त मनाही की थी। उन्होंने कहा है-

मांस-मांस सब एक है, मुरगी, हिरनी, गाय।
मांस देख नर खात है वे नर नरकंहि जाय।।

कबीरपंथ के संस्थापक संत कबीर कहते हैं, मांस खाने से चित्तवृत्तियां क्रूर एवं पाशविक हो जातीं हैं, जबकि सात्विक आहार से मनुष्य की चित्तवृत्तियां निर्मल एवं सात्विक बनी रहती हैं। उन्होंने कहा-है—

बकरी पाती खात है, ताकि काढी खाल।
जो नर बकरी खात हैं, ताको कौन हवाल।।

चाणक्य नीति में कहा गया है, कि जो मांस खाते हैं, शराब पीते हैं उन पुरुष रूपी पशुओं के बोझ से पृथ्वी दु:ख पाती है।

टालस्टाय : मांसाहार पशु-वृत्तियों को बढ़ाता है, वासनायें जागृत करता है और व्यभिचार व शराबखोरों का प्रसार करता है अत: जो मनुष्य उत्तम जीवन बिताने की इच्छा रखते हैं, उन्हें इसका परित्याग करना ही चाहिये।

इस प्रकार भारतीय ऋषि-मुनि, कपिल, व्यास, पाणिनि, पतञ्जली, शंकराचार्य, आर्यभट्ट आदि सभी महापुरुषों ने मांसाहार का विरोध किया है। **शाकाहार ही बढ़ती हुई खाद्य समस्या का एकमात्र हल है।** शाकाहार मानवीय पाचनक्रिया के अनुकूल है। मांसाहार की अपेक्षा शाकाहार जल्दी हज़म होता है। मांसाहार की अपेक्षा शाकाहार अधिक सस्ता है, आर्थिक दृष्टि से भी यह तथ्य प्रमाणित होता है कि मांस द्वारा एक किलोग्राम प्रोटीन प्राप्त करने के लिये पशु को 7 से 8 किलोग्राम तक प्रोटीन खिलाना पड़ता है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि 1 पशु मांस कैलोरी प्राप्त करने के लिये 7 वनस्पति कैलोरी खर्च होती है। अमेरिका के कृषि विभाग ने जो आंकड़े बताये हैं उससे पता लगता है कि जितनी भूमि एक औसत पशु को चराने के लिये चाहिये उतनी से औसत दर्जे के पांच परिवारों का काम चल सकता है।

एक अमरीकी औसतन 120 किलो मांस प्रतिवर्ष खाता है। इसे प्राप्त करने के लिये करीब एक टन अनाज खर्च होता है। यदि वह सीधा 120 किलो अनाज खाये तो वर्ष भर आठ व्यक्तियों का कार्य चल सकता है। सीधे अनाज का आहार करने के लिये मानव को जितनी कृषि भूमि चाहिये

मांसाहार के लिये पशु-भोजन के उत्पादन के रूप में उससे 14 गुनी अधिक कृषि भूमि की आवश्यकता होती है।

क्या आप जानते हैं कि यदि दस एकड़ जमीन पर सोयाबीन की खेती की जाये तो एक साल तक 60 लोगों का पेट भरा जा सकता है? चावल पैदा किये जायें तो एक वर्ष के लिये 40 लोगों का पेट भरना संभव है। गेहूँ उत्पादन किया जाये तो 30 लोगों का पेट एक वर्ष तक भरा जा सकता है। मक्का का उत्पादन किया जाये तो 15 लोगों की पूरे एक साल तक परवरिश की जा सकती है। किन्तु मांस देने वाले पशुओं को पैदा किया जाये तो केवल 3 लोगों का पेट भरा जा सकता है। एक बकरा 7 पौंड अनाज खाता है तब एक पौंड मांस तैयार होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी तथ्य यह प्रमाणित करते हैं कि मानव को अपनी भूख शांत करने के लिये शाकाहार का ही सेवन करना चाहिये।

भारतीय जीवन में अहिंसा, करुणा, प्रीति, वात्सल्य, पर्यावरण की रक्षा, प्रकृति से भरपूर प्यार, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों के लिए गहरी सहानुभूति का जो तत्त्व था, वह बिल्कुल चौपट हो गया है। प्रकृति के लिये हमारे मन में जो धारणा और आत्मीयता थी वह अब लगभग खत्म हो चली है।

मूलतः हमारा देश शाकाहारी है, अहिंसक है, प्रकृति प्रेमी है, कृषि प्रधान है। धरती हमारी मां है, किन्तु अब उपहासास्पद यह है कि उसी की छाती पर मुर्गी पालन केन्द्रों का एक अन्तहीन जाल बिछा दिया गया है।

पं. जवाहरलाल नेहरु ने कहा था यदि पशु-पक्षियों का अस्तित्व खतरे में पड़ता है तो हमारा जीवन तुरंत सुस्त और बदरंग पड़ जायेगा। इसी तरह मनीषी, चिन्तक, अल्बर्ट स्वाइत्जर' के शब्द हैं, "मनुष्य जीवित प्राणियों के प्रति जिस हमदर्दी का अनुभव करता है वही उसे सच्चे अर्थों में मानवीय बनाती है।" क्यों भूल रहे हैं हम महापुरुषों की इन सूक्तियों को और क्यों उजाड़ रहे हैं बदहवास प्रकृति और पृथ्वी का सुहाग?

हमारी हिंसा का जाल अब इतना घिनौना और खून में सना हो गया है कि हम अपने पालतू कृषि-पशुओं को भी काटकर खाने लगे हैं।

किसी की खुशियाँ छीनकर अगर हम सुख से जीना चाहें तो हम सुख का जीवन नहीं जी सकते। आज मानव के हृदय में लकवा सा लग गया है। हृदय शून्य हो गया है, संवेदना से, करुणा से, दया से। राम-रहीम और

महावीर के समय में जिस भारत-भूमि पर दया बरसती थी उसी भारत-भूमि पर आज अहिंसा खोजे नहीं मिलती। आज बडी-बड़ी मशीनों के सामने रखकर एक-एक दिन में दस-दस लाख निरपराध पशु काटे जा रहे हैं। आप बंबई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली कहीं भी चले जाइये सर्वत्र हिंसा का ताण्डव नृत्य ही दिखाई देगा। आज इस दुनिया में ऐसा कोई दयालु वैज्ञानिक नहीं है, जो जाकर के इन निरपराध पशुओं की करुण पुकार को सुन ले और उनके पीड़ित अस्तित्व को समझकर, आत्मा की आवाज पहचान कर इन कुकर्मों को रोकने का प्रयास करे। जिस भारत भूमि पर धर्मायतनों का निर्माण होता था उसी भारत भूमि पर आज धड़ाधड़ सैंकड़ों हिंसायतनों का निर्माण हो रहा है।

आज सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री आप मुंह मांगे दाम देकर के खरीदते हैं। नश्वर शरीर की सुंदरता बढ़ाने के लिये आज कितने जीवों को मौत के घाट उतारा जा रहा है। खरगोश, चूहे और बंदरों की हत्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आखिर यह सब क्यों हो रहा है? आपने कभी सोचा? यह सब आपके अंदर बैठी हुई वासना की पूर्ति के लिये ही हो रहा है। कहाँ गई आपकी दया? जबकि दया शब्द स्वयं विलोम रूप से आपको शिक्षा दे रहा है कि आप अपना-अपना जीवन जीते समय जो कोई भी कर्तव्य कर रहे हो उसको याद रखिये, किन्तु उसकी पुकार कौन सुनता है? कोई विरले ही महापुरुष, कोई विरली ही आत्मायें।

शाकाहर से मानव मेहनती एवं सहिष्णु बनता है। शाकाहारी पशु ताकतवर, सहिष्णु तथा चपल होते हैं। उदाहरणार्थ हाथी, घोड़ा, ऊँट आदि सभी प्रोटीन्स, कार्बोहाइड्रेट्स, स्निग्धता, लोहा, कैल्शियम, फास्फोरस एवं जीवन सत्व इस संतुलित आहार से नियमित रूप से मिलते हैं। सोयाबीन व मूंगफली में मांस व अण्डे से अधिक प्रोटीन होता है। इंग्लैंड में परीक्षण करके देखा गया है कि स्वाभाविक मांसाहारी शिकारी कुत्तों को भी जब शाकाहार पर रखा गया तो उनकी बर्दाश्त शक्ति व क्षमता में वृद्धि हुई। जापान में किये गये अध्ययनों से यह पता चला है कि शाकाहारी न केवल स्वस्थ व निरोग रहते हैं अपितु दीर्घजीवी भी होते हैं व उनकी बुद्धि भी अपेक्षाकृत तेज होती है।

शाकाहारी भोजन के गुणों को जानकर अब पाश्चात्य देशों में शाकाहार

आन्दोलन तेज़ हो रहा है। अमेरिका में सलाद अत्यधिक लोकप्रिय हो रहा है, ब्रिटेन के दस लाख से अधिक लोग अब पूर्णतः शाकाहारी हैं और इस संख्या में दिनोंदिन वृद्धि हो रही है।

घटना - परमवीर चक्र विजेता नायक यदुनाथ सिंह, जिन्होंने 1948 में कश्मीर के मोर्चे पर अपने अद्‌भुत पराक्रम व शौर्य से अकेले ही अनेकों पाकिस्तानी हमलावरों को मार गिराया था, वह पूर्णतया शाकाहारी थे। फौज में भी वे शाकाहारी भोजन करते थे, जबकि अन्य सभी लोग मांसाहारी भोजन करते थे। एक बार अंग्रेज अफसर ने उनका चालान किया और कहा कि यदि वह शाकाहारी भोजन करेगा तो युद्ध कैसे लड़ेगा? इस पर यदुनाथ सिंह ने उत्तर दिया कि शाकाहारी भोजन अधिक पौष्टिक है। आप किन्हीं भी मांसाहारियों से मेरी कुश्ती करवा दें। यदि मैं जीता तो मुझे शाकाहारी भोजन ज्यादा दिया जाये और अगर में हारा तो मैं मांसाहारी भोजन ग्रहण करुंगा। कुश्ती में यदुनाथसिंह की जीत हुई और अंग्रेज अफसर ने न केवल उन्हें शाकाहारी भोजन की इजाजत दी अपितु शाकाहार की प्रशंसा की और कहा—"कि मैं भी अब शाकाहारी भोजन करुंगा।"

कुछ शाकाहारी व्यक्ति भी अपने को आधुनिक दिखाने की होड़ में शाकाहारी पदार्थों से पशु-पक्षियों की आकृति के भोजन तैयार कराकर उन्हें मांसाहारियों की भांति इस प्रकार खाते हैं कि मानों वे भी मांसाहारी हैं। ऐसा शाकाहारी भोजन करना यद्यपि स्वास्थ्य की दृष्टि से बुरा नहीं है किन्तु भावनात्मक दृष्टि से उचित नहीं है क्योंकि हमारी भावना ही कर्मों को प्रेरित करती है। ऐसा शाकाहारी भोजन करते हुए भी भावना तो यही रहती है कि हम दूसरे प्राणी को काटकर खाने का आनंद ले रहे हैं। यह भावना हमें अहिंसा, नैतिकता, दया, प्रेम जैसे गुणों से दूर ले जाकर हिंसा, क्रूरता आदि की ओर आकर्षित करेगी और देर-सवेर से हमें नहीं तो आने वाली पीढ़ी को तो मांसाहारी बना ही देगी। अतः हमें नैतिक एवं आध्यत्मिक जीवन को सुरक्षित रखने के लिये कभी भी मन में इस प्रकार की कल्पना से शाकाहारी भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिये।

अण्डे शाकाहार हैं इस प्रकार की भ्रांति फैलायी जा रही है किन्तु यह प्रचार एकदम झूठा एवं सर्वथा निराधार है क्योंकि अंडे कभी भी पेड़ से पैदा नहीं होते और न ही उन्हें कहीं पर भी वनस्पति घी या तेल की तरह तैयार

किया जाता है। वास्तव में वे मुर्गी के ही बच्चे हैं। **अण्डे शाकाहार हैं-ये व्यापारी चाल है।**

इस प्रकार हमें अपने जीवन में शाकाहार को स्थान देना चाहिये। मानव! अन्य से नहीं तो प्रकृति से तो डर! प्रकृति ने तुझे शाकाहारी बनाकर भेजा है। मांसाहारी नहीं। इसके नियम को भंग मत कर। दूसरों की आहें व चीत्कारों को अपनी हंसी का आधार मत बना। दूसरों की चिताओं पर अपने जीवन का प्रासाद खड़ा मत कर। अपने पेट को दूसरों के मृत शरीरों की कब्र मत बना। प्रेम कर सबसे छोटे व बड़ों से, मानव व पशु से, बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि तुम अपनी संतान से करते हो। तभी जीवन जीना सार्थक है। आज भी हैं, जो दया की पुकार सुनते हुए अपना जीवन जी रहे हैं। किसी ने कहा है—

यह पत्थरों की बस्ती है यहाँ पर दया।
आंखों में नहीं, बंद मुट्ठियों में बसती है।।

आईये अब शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से मांसाहार कितना खतरनाक है, इसे देखें :

मांसाहार रोगों का जन्मदाता : मांसाहार से दिल का दर्दनाक दौरा, कैंसर, अपेंडोसाइटीज, हड्डियों में ह्रास, पथरी आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस पर जो निष्कर्ष बड़े-बड़े डॉक्टरों, वैज्ञानिकों ने निकाले हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :-

ब्रिटेन के डा. एम रॉक ने एक सर्वेक्षण अभियान के बाद यह प्रतिपादित किया कि शाकाहारियों में संक्रामक और घातक बीमारियाँ मांसाहारियों की अपेक्षा कम पाई जाती हैं।

अमरीकी विशेषज्ञ डा. विलियम सी. राबर्ट्स का कहना है, कि अमेरिका में मांसाहारी लोगों में दिल के मरीज ज्यादा हैं, उनके मुकाबले शाकाहारी लोगों में दिल के मरीज कम होते हैं।

इंग्लैंड के डा. इन्हा ने अपनी पुस्तकों में साफ-साफ माना है कि 'अण्डा मनुष्य के लिये जहर है।'

जर्मनी के प्रोफेसर एग्नश्वर्ग का निष्कर्ष है कि 'अण्डा 51.83 प्रतिशत कफ पैदा करता है। वह शरीर के पोषक तत्त्वों को असंतुलित कर देता है।

और भी अनेक नवीनतम खोजों से यह फलित हुआ है कि मांसाहार

रोगों का जन्मदाता है।

इस प्रकार मांसाहार प्राकृतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से त्याज्य है। अब आईये शाकाहार क्या है इस पर दृष्टिपात करें।

शाकाहार—सर्वप्रथम शाकाहार का शाब्दिक अर्थ देखें-

"शं यानि शान्ति 'क' आत्मा: -'आ' चारों ओर से।
जीवन में चारों ओर से जो शांति लाता है वह आहार ही शाकाहार है।

शाकाहार कुदरती आहार है। शाकाहार का मतलब है-सद्विवेक बुद्धि एवं सदभिरूचि का तादात्म्य। शाकाहार मानव मात्र का मूल आहार है। शाकाहार सभ्यता का सूचक है, संस्कृति का सूचक है। शाकाहार जीवन शैली है। शाकाहारी नीति का अनुसरण करने से ही पृथ्वी पर शांति, प्रेम और आनंद चिरकाल तक बने रहेंगे। इसलिये पाश्चात्य विद्वान् मोरस सी. कीघली ने लिखा है कि यदि "पृथ्वी पर स्वर्ग का साम्राज्य स्थापित करना है तो पहले कदम के रूप में मांस-भोजन करना सर्वथा वर्जनीय करना होगा क्योंकि मांसाहार से अहिंसक समाज की रचना नहीं हो सकेगी।"

कहा गया है प्राणाः प्राणभृतामन्नम् (चरक सूत्र. अ. 2) अर्थात् अन्न प्राणियों का प्राण है। अन्न दीर्घ जीवन का आधार है। प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभ देव ने, जो 'कृषि देवता' भी कहे जाते हैं, 'खेती करना और शाकाहार' को मनुष्य का वास्तविक एवं उचित आहार निरूपित किया है।

महात्मा बुद्ध कहते हैं—हे महामते ! मैं यह आज्ञा कर चुका हूँ कि पूर्व ऋषि प्रणीत भोजन में चावल, जौ, गेहूँ, मूंग, उड़द, घी, तेल, दूध, शक्कर आदि लेना ही योग्य है। भारत की सभ्यता में बहुत बड़े-बड़े प्रयोग हुए हैं। सब प्राणी सुखी हों, सब नीरोग हों, सभी कल्याण के भागी बनें, कोई भी दुखी न हो। शाकाहार के कारण मानव तंदुरुस्त नहीं बन सकता, यह कहना सरासर गलत है।

सागर **अनीता जैन**

अहिंसक जीवन में शाकाहार की भूमिका

आज सम्पूर्ण विश्व हिंसा, आतंक और अशान्ति के वातावरण से आक्रान्त है। चारों ओर भय, असुरक्षा का साम्राज्य छाया हुआ है। मानव-मन द्वेष, ईर्ष्या, स्वार्थपरता से भरा है। हिंसा और क्रूरता के कारणों की खोज की जाए तो अनेक कारणों में एक कारण हमारा गलत खान-पान भी है।

मांसाहारी भोजन से मनुष्य अपने संवेगों-आवेगों पर नियंत्रण नहीं रख पाता, वृत्तियां उत्तेजक बन जातीं हैं, मानव व्यवहार सामंजस्य रहित हो जाता है और परिणामतः हिंसा के नए-नए रूपों का उद्भावन होता है। जैनाहार-विज्ञान भोजन से जुड़ी हिंसा और अहिंसा की अवधारणा पर आधारित है। जैनाचार्यों ने दैनिक जीवन में होने वाली हिंसा का बहुत सूक्ष्मता के साथ विश्लेषण कर इसके चार प्रकार बताए हैं।

1. जीवन के अनिवार्य कार्यों से संबंधित आरम्भी हिंसा;
2. आजीविकोपार्जन संबंधित उद्योगी हिंसा;
3. सुरक्षा, दायित्वों से संबंधित विरोधी हिंसा और
4. जानबूझ कर किसी प्राणी को पीड़ा देना या वध करना संकल्पी हिंसा।

मांसाहारी भोजन, चाहे स्वाद लोलुपतावश, आर्थिक लाभ की दृष्टि से, तथाकथित सभ्यता के प्रतीक के रूप में या धार्मिक अनुष्ठानों का बहाना लेकर किया जाए, संकल्पी हिंसा के अन्तर्गत आता है, जिससे पूर्ण रूपेण बचा जा सकता है। यह सत्य है कि जीने के लिये हमें कुछ न कुछ मात्रा में हिंसा करनी ही पड़ती है पर महत्त्वपूर्ण बात है कि जीवन चलाने के लिए हम हिंसा के प्रति कितने विवेकशील रहते हैं। शाकाहार भोजन में कम से कम हिंसा होती है। यह प्राकृतिक आहार है, अहिंसक जीवन-शैली का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। पेड़-पौधों में कम जीवनी शक्ति पाई जाती है। शाकाहारी वस्तुओं की चेतना भी सुप्त होती है। अव्यक्त चेतना के जीव होने के कारण इन्हें कष्ट भी कम होता है। ऐसे भोजन में मन में क्रूरता के भाव जागृत नहीं होते।

भोजन हमारे शरीर, भावना तथा मानसिक स्थिति को प्रभावित करता

है। शान्त, संतुलित और संयमित जीवन के लिए सात्विक भोजन करना जरूरी है। मांसाहार बुद्धि को मन्द करने वाला, उत्तेजक और विकार उत्पन्न करने वाला तामसिक भोजन होता है।

शाकाहार भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंग रहा है—वेदों और महाभारत से लेकर भगवान महावीर, महात्मा बुद्ध के युग को पार करते हुए आधुनिक समय में महात्मा गांधी, अनेक सन्तों, मुनियों की वाणी से इसकी गूंज बराबर मिलती रही है। महाभारत (अनुशासन पर्व, 114 .11) में भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं कि "पशुओं का मांस अपने पुत्र के मांस की तरह है और जो लोग इसका सेवन करते हैं वे इस भूतल पर निकृष्ट प्राणी हैं।" इसी प्रकार मनुस्मृति (5.49) में मांस भक्षण पर प्रतिबन्ध लगाया है क्योंकि उसमें हिंसा होती है जो कर्मबन्ध का कारण है।

पाश्चात्य संस्कृति व धर्म में भी शाकाहार की श्रेष्ठता के प्रमाण भरे पड़े हैं। ईसाई धर्म में परमात्मा ने जब मूसा को दस आदेश दिए तो उसमें शाकाहार का आदेश आवश्यक रूप से निहित था। यीशु मसीह अमन और शान्ति के देवता थे। अहिंसा के अवतार थे। सूफी परम्परा में जितने भी संत हुए हैं वे सब शाकाहारी थे। मीरदार ने कहा-"जो रुहानियत के रास्ते पर चलने वाले हैं, उन्हें इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए कि अगर वे मांसाहार करेंगे तो उसके फलस्वरूप उन्हें अपने खुद के मांस को दण्ड रूप में चुकाना पड़ेगा।"

आज सांस्कृतिक विरासत, धार्मिक और पारलौकिक आस्थाओं के बल पर कोई बात अधिक समय तक नहीं टिक सकती। आज के मानव को चाहिए तर्क पर आधारित वैज्ञानिक परीक्षण एवं निष्कर्ष। वैज्ञानिक, जीव-शास्त्री और आहार विशेषज्ञ इस तथ्य की गहराई में जा रहे हैं कि शाकाहारी भोजन सबसे अधिक पौष्टिक एवं मानव स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम हैं।

ब्रूसेल्स विश्वविद्यालय में दस हजार विद्यार्थियों पर परीक्षण किए गए। परीक्षण से मांसाहारियों की अपेक्षा शाकाहारी श्रेष्ठ प्रमाणित हुए। शाकाहारियों में दया, प्रेम आदि के गुण प्रकट हुए जबकि मांसाहारियों में क्रोध, क्रूरता, भय आदि। शाकाहारियों में शारीरिक क्षमता, सहिष्णुता, प्रतिभा, धैर्य, सन्तुलन आदि गुण विकसित रूप में पाए गए।

एक सर्वेक्षण के अनुसार अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया में प्रति व्यक्ति

प्रतिवर्ष लगभग 200 पौण्ड से अधिक मांसाहार का प्रयोग किया जाता है। मांस की इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रतिवर्ष चार मिलियन गाय, बछड़े, बकरी, सुअर, मुर्गी, बतख और टर्की मौत के घाट उतारे जाते हैं। औसतन सत्तर वर्ष की आयु में औसतन एक अमेरिकी या केनेडियन के खाने के लिये लगभग ग्यारह गाय, एक बछड़ा, तीन मेमने और बकरी, तेईस सुअर, पैंतालिस टर्की, ग्यारह सौ मुर्गियां और लगभग आठ सौ बासठ पौण्ड मछलियां मारी जाती हैं। इनको मारने से पहले इन मूक प्राणियों को जो यातनाएं दी जातीं हैं उनका अनुमान लगाना ही कठिन है। उसके साथ-साथ इन पशुओं को बलि के लिये तैयार करने के लिए इतना अधिक अनाज, चारा, सब्जी आदि खिलाना पड़ता है जिससे पूरे विश्व में लाखों भूखे लोगों की उदर पूर्ति हो सकती है। कई देशों में लोग इसी कारण शाकाहारी बनते जा रहे हैं। मांस भक्षण करने वालों को पशुवध शाला में यदि मूक प्राणियों की नृशंस हत्या का दारुण दृश्य एक बार दिखा दिया जाए तो अधिकांश व्यक्ति मांस खाना बंद कर देंगे।

पिछले 50 वर्षों में स्वास्थ्य अधिकारी तथा चिकित्सकों ने बहुत से उदाहरणों से यह स्पष्ट कर दिया है कि कैंसर, हार्ट-अटैक, हाईपर-टेन्सन जैसे रोगों का कारण मांसाहार है। शाकाहार में भोजन के सभी तत्त्व प्रोटीन, कार्बोज, वसा, खनिज, विटामिन और जल होते हैं। अतः यह पर्याप्त/आदर्श भोजन है। यह तर्क निराधार एवं भ्रान्तिपूर्ण है कि मांसाहार से शारीरिक क्षमता और बल बढ़ता है।

शाकाहार केवल स्वास्थ्य ही प्रदान नहीं करता अपितु प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में सहयोगी है। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि भूमि की उर्वरा शक्ति पेड़ों और जानवरों पर निर्भर करती है।

प्रायः "जीवोजीवस्य भोजनम्" उक्ति के आधार पर मांसभक्षण का समर्थन किया जाता है। इस उक्ति का सहारा लेते ही विवेकशील और विकसित कहलाने वाला यह प्राणी अपने स्तर से गिर कर पशु जगत में प्रवेश कर जाता है। जहां न होता है विवेक, न बुद्धि, केवल होती है स्वार्थपरता, अहं-प्रदर्शन और शक्ति-परीक्षण। मानवीय संस्कार अमानवीय हो जाते हैं। संवेदनाएं शुष्क हो जातीं हैं।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है, कि—जब कोई व्यक्ति अपने भोजन के

लिए किसी अन्य जीव की हत्या करता है तो सर्वप्रथम वह अपने लिए न्याय की मांग खो देता है। वह स्वयं अपने न्याय की मांग की हत्या करता है।

मनुष्य जब संकट में पड़ता है, पीड़ित होता है तो न्यायालय के दरवाजे पर न्याय की मांग करता है, अपने साथियों से दया मांगता है और प्रभु कृपा की मांग करता है। अगर वह अपने दया भाव की सीमाएं सभी प्राणियों तक बढ़ाता है तो प्रतिदान में उसे भी वैसा ही मिलेगा। जैन दर्शन का एक सूत्र है—"परस्परोपग्रहो जीवानाम्"। हम जितना-जितना इस सिद्धान्त को जीवन में उतारते चले जायेंगे, उतना-उतना अपने चारों ओर शांतिमय और अहिंसक वातावरण निर्मित करते जायेंगे।

यह संवेदनशीलता एवं करुणा ही थी जिसने महान् अशोक, बादशाह अकबर, लियो टालस्टाय, महात्मा गांधी जैसे व्यक्तियों को समस्त प्राणियों के प्रति अहिंसक जीवन जीने की प्रेरणा दी। अफसोस है कि भारतीय अपनी इस अहिंसक विरासत को भूलकर मांसाहार का सेवन बढ़ाते जा रहे हैं, जबकि पश्चिमी देशों के लोग नवीन-नवीन प्रयोगों, परीक्षणों एवं व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर शाकाहार के समर्थक बनते जा रहे हैं। अपेक्षा है कि हम इसे समझें।

शाकाहार शारीरिक दृष्टि से स्वास्थ्य, मानसिक दृष्टि से शांति, सामाजिक दृष्टि से संतुलित व्यवहार, आर्थिक दृष्टि से मितव्ययिता को प्रदान करने वाला है।

बहुत जरूरी है मांसाहार और शाकाहार के प्रति हमारा दृष्टिकोण सही बने। जीवन विकास के लिए वह शक्ति भी किस काम की जो औरों को आहत कर जाए। सिर्फ अपना स्वार्थ देखना भी तो हिंसा है।

अहिंसा के प्रति हमारे मन में आस्था जागे। हम अपनी सुखवादी इच्छाओं की मांगें सीमित करें। हिंसा के कारणों की मीमांसा करें। जहां तक जिस सीमा तक हो सके, अवश्य बचें। शाकाहार इसी सन्दर्भ में एक प्रयोग है।

लाडनूं — सुश्री वीणा जैन

श्रावकव्रतातिचार एवं इण्डियन पैनल कोड

"सर्वोदय" शब्द के आद्य उद्‌गाता आचार्य समन्तभद्र द्वारा प्रणीत "रत्नकरण्डश्रावकाचार" को न केवल जैनाचार की, अपितु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र-विकास की दृष्टि से एक प्रामाणिक आचार संहिता (Code of Conduct) माना जा सकता है। इसमें श्रावक अर्थात् सद्‌गृहस्थ (House Holder) को उत्तम नागरिक बनने हेतु यह शिक्षा प्रदान की गई है कि आत्मानुशासन में रहते हुए उसे किस प्रकार न्यायविधिपूर्वक परिवार का पालन-पोषण कर अपना जीवन-यापन करना चाहिए।

चाहे अधिवक्ता हो या चिकित्सक, शिक्षक हो या व्यापारी, गृहस्थ हो या साधु, पुरुष हो या महिला, देशी हो या विदेशी, बालक हो या वृद्ध, समाजनेता हो या राजनेता, सभी के लिए समाज के नवनिर्माण एवं राष्ट्रीय अखण्डता एवं एकता की भावना के परिस्फुरण की दिशा में उक्त रत्नकरण्डश्रावकाचार की उपादेयता स्वतः सिद्ध है। विश्वनागरिकता के प्रशिक्षण के लिये यह कृति एक प्रारम्भिक बालपोथी के प्रथम भाग के समान मानी जा सकती है।

हमारे महामहिम श्रमण साधकों ने संसार की समस्त समाज-विरोधी दुष्प्रवृत्तियों एवं अनाचारों को पांच भागों में विभक्त किया है—(1) हिंसा (Intury)2 झूठ (Falsehood)] (3) चोरी (Theft), (4) कुशील, (Unchastity) एवं (5) परिग्रह (Worldly attachment, hoarding)। जैनाचार में इन्हें "पाँच पाप" माना गया है। इनका तथा मद्य (मदिरा), मांस एवं मधु जैसी हिंसक-विधियों से तैयार की जाने वाली वस्तुओं का सेवन मानवीय गुणों के विकास में सर्वाधिक बाधक माना गया है। जीवन में इन आठों बाधक तत्त्वों का त्याग करने वाला व्यक्ति ही आठ मूलगुणों का धारक, श्रावक अथवा सद्‌गृहस्थ कहलाता है। हिंसादि पाँच पापों के यथाशक्ति त्याग को पाँच अणुव्रतों की संज्ञा प्रदान की गई है, जिनका निरतिचार (अर्थात् निर्दोष) पालन प्रत्येक सद्‌गृहस्थ के लिए अनिवार्य माना गया है।

आज संसार में वर्गभेद एवं विचारभेद के साथ-साथ ईर्ष्या एवं विद्वेष-जन्य जो अशान्ति सर्वत्र फैल रही है, उसके मूल कारण पाँच पाप ही हैं। स्वार्थपूर्ति न होने के कारण व्यक्ति का मन प्रतिक्रियावादी, क्रोधी एवं हिंसक बन जाने से उसका दुष्प्रभाव उसके स्नायुतन्त्र पर पड़ने लगता है। फलस्वरूप वह अनेक असाध्य रोगों का शिकार बनता जाता है, जिसका दुष्फल अनिवार्य रूप से उसे ही भोगना पड़ता है। तात्पर्य यह कि धार्मिक दृष्टि से तो पूर्वोक्त पापों के त्याग का महत्त्व है ही, व्यक्तिगत सुख, सन्तोष एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उसका विशेष महत्त्व है। चिकित्सकों का भी यह स्पष्ट कथन है कि मन को उद्वेलित करने वाले हिंसादि पापों से बचकर व्यक्ति रक्तचाप, कैंसर, शिरोरोग एवं हृदयरोग जैसी प्राणलेवा बीमारियों से सहज ही मुक्ति पा सकता है।

वर्तमान युग में हर व्यक्ति मानसिक तनाव से ग्रस्त है। चोरी, डकैती, बलात्कार, छल-छिद्र, माया, कपट-जाल, रिश्वतखोरी, जमाखोरी, मिलावट आदि अपराध-कर्मों के बढ़ जाने के कारण शान्त एवं सरल प्रकृति वाले लोगों का जीवन कठिन हो गया है। पुलिस एवं सेना की संख्यातीत वृद्धि तथा नरसंहारक विविध आग्नेयास्त्रों के उत्पादन की होड़ में बड़े-बड़े राष्ट्रों ने येन केन प्रकारेण शोषण करके राष्ट्र-सम्पदा का बहुभाग व्यय कर सामान्य जनता को दरिद्रता के कगार पर खड़ा कर दिया है और साधनविहीन राष्ट्रों को अपना दास बनाकर स्वार्थपूर्ति हेतु वे उनका नाजायज लाभ उठा रहे हैं। इन सभी के मून में उनकी लोभी-परिग्रही मनोवृत्ति ही है। संक्षेप में कहा जाय, तो इन समस्त सांसारिक समस्याओं का समाधान अणुव्रत अथवा श्रावकाचार के पालन से सहज में ही हो सकता है।

श्रावकाचार वस्तुतः सर्वोदय का ही पर्यायवाची है। यदि श्रावकाचार का मन, वाणी एवं कर्मपूर्वक निरतिचार (अर्थात् निर्दोष) पालन होने लगे, तब तो कोर्ट-कचहरियों एवं थानों में ताले ही पड़ जायेंगे। पुलिस एवं सेना की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। आत्म-विश्वास, आत्म-गौरव, स्वाभिमान, राष्ट्राभिमा, एवं करुणा स्नेह तथा सभी का हित करने वाली भावना को जगाने के लिये "श्रावकाचार" ही सर्वश्रेष्ठ कुंजी है।

आचार्य समन्तभद्र ने पूर्वागत विचार-सरणी को ध्यान में रखते हुए आज से लगभग 1850 वर्ष पूर्व वृद्धिंगत अपराध-कर्मों को देख-समझकर

उनके दूरगामी दुष्परिणामों पर सर्वाधिक गम्भीर विचार किया था और इसीलिए उन्होंने अपने साहित्य में सर्वप्रथम "सर्वोदय" शब्द का प्रयोग कर एक सर्वोदयी उन्नत समाज की परिकल्पना की थी। परवर्ती काल में सर्वोदय की भावना वाले देश को Welfare State की श्रेणी में रखा गया।

जैनधर्म भावना-प्रधान है। उसमें बतलाया गया है कि किसी भी व्रत का पालन मन, वचन एवं कर्म रूप त्रियोग की पवित्रता के साथ होना अनिवार्य है। यदि व्रत-पालन में मनसा, वाचा एवं कर्मणा कोई शिथिलता हुई या कोई त्रुटि रह गई तो वह व्रत अतिचार-दोष से युक्त हो जायेगा।

समन्तभद्र ने पाँच अणुव्रतों में से प्रत्येक के 5-5 अतिचार-दोष बतलाए हैं। इनमें से किसी भी अणुव्रत के सदोष-पालन से जिस उत्तम नागरिक बनने अथवा जिस स्वस्थ समाज एवं राष्ट्र-निर्माण की आशा की जाती है, वह सम्भव नहीं। अतिचारों के लिए जैनधर्म में तो विविध प्रायश्चित्तों के रूप में दण्डव्यवस्था की गई है, लेकिन यह दण्डविधान प्रायश्चित्त-मूलक ही है, जो हृदय-परिवर्तन एवं आत्म-शुद्धि से सम्बन्धित है।

इस सन्दर्भ में यदि भारतीय आचार-संहिता (Indian Penal Code) का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाये, तो उससे स्पष्ट विदित हो जायेगा कि उसमें जिन अपराधों की चर्चा है, वे वही अपराध हैं, जिन्हें रत्नकरण्डश्रावकाचार में पूर्वोक्त हिंसादि पाँच पापों तथा अणुव्रतों के 5-5 अतिचारों में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय आचार (अथवा दण्ड) व्यवस्था की विविध धाराओं में उन्हीं के लिए दण्ड-व्यवस्था की गई है। श्रावकाचार एवं भारतीय दण्डसंहिता की दण्ड-विधियों में अन्तर यही है कि श्रावकाचार की दण्ड-व्यवस्था स्वतः अथवा गुरु के आदेशोपदेश-पूर्वक प्रायश्चित्त एवं भावनात्मक अथवा आत्मशुद्धिकरण से ही सम्बन्धित है, जबकि इण्डियन पैनल कोड की दण्डव्यवस्था आर्थिक अथवा शारीरिक मात्र है, जिसमें पुलिस द्वारा मार-पीट एवं कारागार की सजा भी आती है। इसमें भावना अथवा आत्मशुद्धि से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं।

पाँच अणुव्रतों के 5x5 (=25) अतिचार-दोष एवं Indian Penal Code में वर्णित अपराध-कर्मों में आश्चर्यजनक समता है। उसे निम्न तालिका से स्पष्ट समझा जा सकता है :—

आई.पी.सी. इण्डियन पैनल कोड की धारा संख्या	के अनुसार अणुव्रत अथवा अतिचारों के नाम	अपराध विवरण (अध्यायक्रमानुसार)
1. भूमिका	1	न्याय विधिपूर्वक रहना अथवा ग्रहण करना।

2. साधारण व्याख्याएँ अहिंसाणुव्रतादि	6-52	हिंसादि पाँच पापों एवं पाँच व्रतों के लक्षण।
3. दण्ड-शिक्षा के विषय में	53-75	प्रायश्चित्त विधि।
4. साधारण अपवाद	76-106	प्रमत्तयोग न होने से पाप का बन्ध नहीं होता।
5. प्रेरणा अथवा सहायता करने के विषय में	107-120	पाँच अणुव्रत एवं उनके अतिचार।
6. राज्य-विरुद्ध अपराधों के विषय में	121-130	विरुद्धराज्यातिक्रम त्याग।
7. सेना सम्बन्धी अपराधों के विषय में	131-140	विरुद्धराज्यातिक्रम त्याग।
8. सार्वजनिक शान्ति के विरुद्ध अपराधों के विषय में	141-160	अहिंसाणुव्रत एवं उसके पाँच अतिचार।
9. राज्य-कर्मचारियों द्वारा या उनसे सम्बन्धित अपराधों के विषय में	161-171	असत्य के अतिचार एवं अचौर्य तथा उसके अतिचार।
10. राज्य-कर्मचारियों के प्राधिकार की अवमानना के विषय में	172-190	विरुद्धराज्यातिक्रम अतिचार का त्याग।
11. झूठी गवाही और सार्वजनिक न्याय के विरुद्ध अपराध	191-229	असत्य, मिथ्योपदेश,, विरुद्धराज्यातिक्रम त्याग।
12. सिक्के तथा सरकारी स्टाम्प्स सम्बन्धी अपराधों राज्यातिक्रम त्याग।	230-263	प्रतिरूपक व्यवहार एवं विरुद्ध
13. माप-तौल सम्बन्धी अपराध	264-267	हीनाधिक मानोन्मान अतिचारों का त्याग।
14. सार्वजनिक स्वास्थ्य, सुरक्षा, सुविधा, सदाचार तथा शिष्टाचार के विरुद्ध	268-294	अहिंसा, सत्य तथा इनके समस्त अतिचारों का त्याग अपराधों के विषय में

15. धर्म सम्बन्धी अपराध	295-298	उपर्युक्त
16. मानव-शरीर के विरुद्ध अपराधों के विषय में	299-377	निरतिचार (निर्दोष) अहिंसाणुव्रत का पालन करना।
17. सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध	378-462	निरतिचार अचौर्याणुव्रत का पालन।
18. दस्तावेजों तथा व्यापार अथवा सम्पत्ति-चिन्हों से सम्बन्धित अपराधों के विषय में	463-489	कूटलेखक्रिया और प्रतिरूपक व्यवहार-त्याग।
19. सेवा-संविदाओं (शर्तनामों) सम्पत्ति-चिन्हों से विरुद्ध आपराधिक भंग के विषय में	490-492	सत्याणुव्रत का पालन।
20. विवाह से सम्बन्धित अपराध	493-498	परस्त्री-कामना का त्याग।
21. मानहानि	499-502	सत्याणुव्रत के और रहोभ्याख्यान अतिचार का त्याग।
22. आपराधिक अभित्रास (धमकी देना) अपमान तथा कलेश देने के अपराध में	503-510	सत्याणुव्रत के अतिचार का त्याग।
23. अपराध करने के प्रयत्न के विषय में	511	पाँचों अणुव्रतों का निर्दोष पालन।

जिस श्रावकाचार के सिद्धान्त इतने आदर्श, सार्वजनीन, सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं, उनको कण्ठस्थ कर लेने मात्र से कोई लाभ नहीं। उनकी सार्थकता तो तभी है जब उन्हें जीवन में अक्षरशः उतारा जाए तथा घर-घर में उसका प्रचार किया जाय।

आरा

डॉ. राजाराम जैन